

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY
**CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY**

Acc 8791

CALL NO. 491.435 Guy

D.G.A. 79.

स्वर्यकुमारी पुस्तकमाला—२०

हिंदी व्याकरण

Hindi Vyākaraṇa

स्व० पं० कामताप्रसाद गुरु, साहित्य-वाचस्पति,
व्याकरणाचार्य

Kamtaprasad Gurur.

8791

471-435

Guru



नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक—महताव राय, नागरी मुद्रण, काशी
संशोधित संस्करण, सं० २००८ चि०, २००९ प्रतिष्ठा
मूल्य ७) रुपया

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY, NEW DELHI.

Acc. No. 274 273

Date. 29.6.53

Call No. 891.435/kar

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY, NEW DELHI.

Acc. No. 8791

Date. 24.4.57

Call No. 491.435

Gur

जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रांत में सेतड़ी राज्य है। वहाँ के राजा श्री अंजीतसिंह जी महादुर बड़े यशस्वी और विद्याप्रेमी हुए। गणित-शास्त्र में उनकी अद्भुत गति थी। विज्ञान उन्हें बहुत प्रिय था। राजनीति में वह दब और गुणप्राप्ति में अद्वितीय थे। दर्शन और अध्यात्म की चर्चि उन्हें इतनी थी कि विज्ञायत जाने के पहले और पीछे स्वामी विवेकानन्द उनके वहाँ महीनों रहे। स्वामी जी से धंटो शास्त्र-चर्चा हुआ करती। राजपूताने में प्रसिद्ध है कि जयपुर के पुण्यक्षेत्र महाराज श्रीरामसिंह जी को छोड़कर ऐसी सर्वतोमुखी प्रतिभा राजा श्रीअंजीतसिंह जी ही में दिखाई दी।

राजा श्रीअंजीतसिंह जी की रानी आठआ (मारवाड़) चौपावत जी के गर्भ से तीन संतानि हुईं—दो कन्या, एक पुत्र। ज्येष्ठ कन्या श्रीमती श्यंकुमारी जी जिनका विवाह शाहपुरा के राजाधिराज सर श्रीनाहरसिंह जी के ज्येष्ठ चिरंजीव और सुवराज राजकुमार श्रीउमेदसिंह जी से हुआ। छोटी कन्या श्रीमती चौदकुँवर का विवाह प्रतापगढ़ के महारावड़ साहब के सुवराज महाराजकुमार श्रीमानसिंह जी से हुआ। तीसरी संतान जयसिंह जी ये जो राजा श्रीअंजीतसिंह जी और रानी चौपावतजी के स्वर्गवास के पीछे सेतड़ी के राजा हुए।

इन तीनों के शुभचितकों के लिये तीनों की स्मृति, संचित कर्मों के परिणाम से, दुःखमय हुई। जयसिंह जी का स्वर्गवास सत्रह वर्ष की अवस्था में हुआ। सारी प्रजा, सब शुभचितक, संबंधी, मित्र और गुरुजनों का दृढ़दय आज भी उस आँच से जल ही रहा है। अश्वत्थामा के व्रण की तरह यह धाव कभी भरने का नहीं। ऐसे आशामय जीवन का ऐसा निराशात्मक परिणाम कदाचित् ही हुआ हो। श्रीश्यंकुमारी जी को एकमात्र भाई के वियोग की ऐसी ठेस लगी कि दो ही तीन वर्ष में उनका शरीरांत हुआ। श्रीचौदकुँवर बाई जी को वैष्णव की विष्वम यातना भोगनी पड़ी और भानू-वियोग और पति-वियोग दोनों का असहा दुःख वे केज़रही हैं। उनके एकमात्र चिरंजीव प्रतापगढ़ के कुँवर श्रीरामसिंह जी से मातामह राजा श्रीअंजीतसिंह जी का कुल प्रजावान है।

भीमती सूर्यकुमारी जी के कोई संतति जीवित न रही। उनके बहुत आग्रह करने पर भी राजकुमार श्रीउमेदसिंह जी ने उनके जीवन-काल में दूसरा विवाह नहीं किया। किंतु उनके वियोग के पीछे, उनके आशानुसार, कृष्णगढ़ में विवाह किया जिससे उनके चिरंजीव वंशांकुर विद्यमान हैं।

भीमती सूर्यकुमारी जी बहुत शिक्षित थीं। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिंदी का पुल्लकालय परिपूर्ण था। हिंदी इतनी अच्छी जिज्ञासी थीं और अच्छर इतने सुंदर होते थे कि देखनेवाले चमत्कृत रह जाते। स्वर्गवास के कुछ समय के पूर्व भीमती ने कहा था कि स्वामी विवेकानंद जी के सब ग्रंथों, व्याखानों और लेखों का प्रामाणिक हिंदी अनुवाद में छपवाऊँगी। बाल्य काल से ही स्वामी जी के लेखों और अध्यात्म विशेषतः अद्वैत वेदांत की ओर भीमती की रुचि थी। भीमती के निर्देशानुसार इसका कार्यक्रम बांधा गया। साथ ही भीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उच्चमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अच्छय निधि की व्यवस्था का भी सूचनात हो जाय। इसका व्यवस्थापन बनते बनते भीमती का स्वर्गवास हो गया।

राजकुमार श्रीउमेदसिंह जी ने भीमती की अंतिम कामना के अनुसार बीस हजार रुपए देकर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा ग्रंथमाला के प्रकाशन की व्यवस्था की। तीस हजार रुपए के सूद से गुरुकुल विद्यु-विद्यालय, काँगड़ी में 'सूर्यकुमारी आर्यभाषा गदी (चेयर)' की स्थापना की।

पाँच हजार रुपए से उपर्युक्त गुरुकुल में चेयर के साथ ही सूर्यकुमारी निधि की स्थापना कर सूर्यकुमारी-ग्रंथावली के प्रकाशन की व्यवस्था की।

पाँच हजार रुपए दरबार हाई स्कूल शाहपुरा में सूर्यकुमारी-विज्ञान भवन के लिए प्रदान किए।

स्वामी विवेकानंद जी के यावत् निबंधों के अतिरिक्त और भी उच्चमोत्तम ग्रंथ इस ग्रंथमाला में छापे जायेंगे और अल्प बूल्य पर सर्व-साधारण के लिये मुलभ होंगे। ग्रंथमाला की विक्री की आय इसी में लगाई जायगी। यो भीमती सूर्यकुमारी तथा श्रीमान् उमेदसिंह जी के पुण्य तथा यश की निरंतर वृद्धि होगी और हिंदी भाषा का अभ्युदय तथा उसके पाठकों को ज्ञान-लाभ होगा।



स्वर्गीय श्री कामताप्रसाद गुरु



भूमिका ।

यह हिंदी-व्याकरण काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के अनुरोध और उत्तेजन से लिखा गया है। सभा ने लगभग पाँच वर्ष पूर्व हिंदी का एक सर्वांग-नूर्ण व्याकरण लिखवाने का विचार कर इस विषय के दोनीन ग्रंथ लिखवाये थे, जिनमें बाबू गंगाप्रसाद, एम० ए० और पै० रामकरण शर्मा के लिये हुए व्याकरण अधिकांश में उपयोगी निकले। तब सभा ने इन ग्रंथों के आधार पर, अथवा स्वतंत्र रीति से, एक विस्तृत हिंदी-व्याकरण लिखने का गुरु भार मुझे सौंप दिया। इस विषय में पै० महावीरप्रसादजी द्विवेदी और पै० माधवराव सप्रे ने भी सभा से अनुरोध किया था, जिसके लिए मैं आप दोनों महाशयों का कृतश्च हूँ। मैंने इस कार्य में किसी विद्वान् को आगे बढ़ते हुए न देखकर अपनी अल्पशता का कुछ भी विचार न किया और सभा का दिया हुआ भार धन्यवाद-पूर्वक तथा कर्तव्य-बुद्धि से ग्रहण कर लिया। उस भार को अब मैं पाँच वर्ष के पश्चात्, इस पुस्तक के रूप में, यह कहकर सभा को लौटाता हूँ कि—

“अर्पित है, गोविंद, तुम्हारोंको वस्तु तुम्हारी !”

इस ग्रंथ की रचना में मैंने पूर्वोक्त दोनों व्याकरणों से यत्र-तत्र सहायता ली है और हिंदी-व्याकरण के आज तक छपे हुए हिंदी और अङ्गरेजी ग्रंथों का भी योड़ा-बहुत उपयोग किया है। इन सब ग्रंथों की सूची पुस्तक के अंत में दी गई है। द्विवेदीजी-लिखित “हिंदी भाषा की उत्पत्ति” और “ब्रिटिश विश्व-कोष” के “हिंदुस्तानी” नामक लेख के आधार पर, इस पुस्तक में, हिंदी की उत्पत्ति लिखी गई है। अरबी-फारसी शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए मैं अधिकांश में राजा शिवप्रसाद-कृत “हिंदी-व्याकरण” और माट्स-कृत “हिंदुस्तानी ग्रामर” का उपयोग किया है।

हूँ। काले-कृत “उच्च संस्कृत व्याकरण” से मैंने संस्कृत-व्याकरण के कुछ अंश लिये हैं।

सबसे अधिक सहायता मुझे दामलो-कृत “शास्त्रीय मराठी व्याकरण” से मिली है जिसकी शैली पर मैंने अधिकांश में अपना व्याकरण लिखा है। पूर्वोक्त पुस्तक से मैंने हिंदो में घटित होनेवाले व्याकरण-विषयक कई एक वर्गीकरण, विवेचन, नियम और न्याय-सम्मत लक्षण, आवश्यक परिवर्तन के साथ, लिये हैं। संस्कृत-व्याकरण के कुछ उदाहरण भी मैंने इस पुस्तक से संग्रह किये हैं।

पूर्वोक्त प्रथों के अतिरिक्त छाँगरेजी, बँगला और गुजराती व्याकरणों से भी कहीं-कहीं सहायता ली गई है।

इन सब पुस्तकों के लेखकों के प्रति मैं, नम्रतापूर्वक, अपनी हादिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

हिंदी तथा अन्यान्य भाषाओं के व्याकरणों से उचित सहायता लेने पर भी, इस पुस्तक में जो विचार प्रकट किये गये हैं, और जो सिद्धांत निश्चित किये गये हैं, वे साहित्यिक हिंदी से ही संबंध रखते हैं। उठ सबके लिए मैं ही उत्तरदाता हूँ। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि हिंदी-व्याकरण की छोटी-मोटी कई पुस्तकें उपलब्ध होते हुए भी, हिंदी में, इस समय अपने विषय और ढंग की यही एक व्यापक और (संभवतः) मौलिक पुस्तक है। इसमें मेरा कई ग्रंथों का अध्ययन और कई वर्षों का परिश्रम तथा विषय का अनुराग और स्वार्थ-त्याग समिलित है। इस व्याकरण में अन्यान्य विशेषताओं के साथ-साथ एक बड़ी विशेषता यह भी है कि नियमों के स्पष्टीकरण के लिए इसमें जो उदाहरण दिये गये हैं वे अधिकांश हिंदी के भिज-भिज कालों के प्रतिष्ठित और प्रामाणिक लेखकों के ग्रंथों से लिये गये हैं। इस विशेषता के कारण पुस्तक में यथा-संभव, अंत-परंपरा अथवा कृत्रिमता का

दोष नहीं आने पाया है। पर इन सब बातों पर यथार्थ सम्मति देने के अधिकारी विशेषण ही हैं।

कुछ लोगों का मत है कि हिंदी के “सर्वांग-पूर्ण” व्याकरण में, मूल विषय के साथ-साथ, साहित्य का इतिहास, छंदो-निरूपण, रस, अलंकार, कहावतें, मुहायिरे, आदि विषय रहने चाहिए। यद्यपि ये सब विषय भाषा-शान की पूर्णता के लिए आवश्यक हैं, तो भी ये सब अपने-आपमें स्वतंत्र विषय हैं और व्याकरण से इनका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। किसी भी भाषा का “सर्वांग-पूर्ण” व्याकरण वही है जिससे उस भाषा के सब शिष्ट रूपों और प्रयोगों का पूर्ण विवेचन किया जाय और उनमें यथा-संभव स्थिरता लाई जाय। हमारे पूर्वजों ने व्याकरण का यही उद्देश्य माना है* और मैंने इसी पिछली दृष्टि से इस पुस्तक को सर्वांग-पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि यह ग्रंथ पूर्णतया सर्वांग-पूर्ण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इतने व्यापक विषय में विवेचन की कठिनाई और भाषा की अस्थिरता तथा लेखक की भ्रांति और अल्पशता के कारण कई बातों का छूट जाना संभव है, तथापि मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि इस पुस्तक से आधुनिक हिंदी के स्वरूप का प्रायः पूरा पता लग सकता है।

यह व्याकरण, अधिकांश में, अँगरेजी व्याकरण के टैंग पर लिखा गया है। इस प्रणाली के अनुसरण का मुख्य कारण यह है कि हिंदी में आरंभ हो से इसी प्रणाली का उपयोग किया गया है और आज तक किसी लेखक ने संस्कृत-प्रणाली का कोई पूर्ण आदर्श उपस्थित नहीं किया। वर्तमान प्रणाली के प्रचार का दूसरा कारण यह है कि इसमें स्पष्टता और सरलता विशेष रूप से पाई जाती है और सब तथा भाष्य,

* उन्होंने साधानता-पूर्वक अपनी भाषा के विषय का अवलोकन किया और जो सिद्धांत उन्हें मिले उनकी स्थापना की। —दा० भाषडारकर।

दोनों ऐसे मिले रहते हैं कि एक ही लेखक पूरा व्याकरण, विशद रूप में, लिख सकता है। हिंदी-भाषा के लिए वह दिन सचमुच वहे गौरव का होगा जब इसका व्याकरण 'अष्टाध्यायी' और 'महाभाष्य' के मिथित रूप में लिखा जायगा; पर वह दिन अभी बहुत दूर दिखाई देता है। यह कार्य मेरे लिए तो, अल्पशता के कारण, दुस्तर है; पर इसका संपादन तभी संभव होगा जब संस्कृत के अद्वितीय वैयाकरण हिंदी को एक स्वतंत्र और उन्नत भाषा समझकर इसके व्याकरण का अनुशीलन करेंगे। जब तक ऐसा नहीं हुआ है, तब तक इसी व्याकरण से इस विषय के अभाव की पूर्ति होने की आशा की जा सकती है। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि इस पुस्तक में सभी जगह अँगरेजी व्याकरण का अनुकरण नहीं किया गया। इसमें यथा-संभव संस्कृत-प्रशाली का भी अनुसरण किया गया है और यथा-स्थान अँगरेजी-व्याकरण के कुछ दोष भी दिखाये गये हैं।

मेरा विचार था कि इस पुस्तक में मैं विशेष-कर 'कारकों' और 'कालों' का विवेचन संस्कृत की शुद्ध प्रशाली के अनुसार करता; पर हिंदी में इन विषयों की रुद्धि, अँगरेजी के समागम से, अभी तक इतनी प्रचल है कि मुझे सहसा इस प्रकार का परिवर्तन करना उचित न जान पड़ा। हिंदी में व्याकरण का पठन-पाठन अभी बाल्यावस्था ही में है, इसलिए इस नई प्रशाली के कारण इस रूपे विषय के और भी रूपे हो जाने की आशंका थी। इसी कारण मैंने 'विभक्तियों' और 'आख्यातों' के बदले 'कारकों' और 'कालों' का नामोल्लेख तथा विचार किया है। यदि आवश्यकता जान पड़ेगी तो ये विषय किसी अगले संस्करण में परिवर्तित कर दिये जावेंगे। तब तक संभवतः विभक्तियों को मूल शब्दों में मिलाकर लिखने के विषय में भी कुछ सर्व-सम्मत निष्पत्ति जायगा।

इस पुस्तक में, जैसा कि ग्रंथ में अन्यत्र (पृ० ७५ पर) कहा है,

अधिकांश में वही पारिभाषिक शब्द रखे गये हैं जो हिंदी में 'भाषा-भास्कर' के द्वारा प्रचलित हो गये हैं। यथार्थ में ये सब शब्द संस्कृत व्याकरण के हैं जिससे, मैंने और भी कुछ शब्द लिये हैं। योहे-बहुत आवश्यक पारिभाषिक शब्द मराठी तथा बंगला भाषाओं के व्याकरणों से लिये गये हैं और उपयुक्त शब्दों के अभाव में कुछ शब्दों की रचना मैंने स्वयं की है।

व्याकरण की उपयोगिता और आवश्यकता इस पुस्तक में यथास्थान बतलाई गई है, तथापि यहाँ इतना कहना उचित जान पड़ता है कि किसी भी भाषा के व्याकरण का निर्माण उसके साहित्य की पूर्ति का कारण होता है और उसकी प्रगति में सहायता देता है। भाषा की सत्ता स्वतंत्र होने पर भी, व्याकरण उसका सहायक अनुयायी बनकर उसे समय-समय और स्थान-स्थान पर जो आवश्यक सूचनाएँ देता है उससे भाषा को लाभ होता है। जिस प्रकार किसी संस्था के संतोष-पूर्वक चलाने के लिए सर्व-सम्मत नियमों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषा की चंचलता दूर करने और उसे व्यवस्थित रूप में रखने के लिए व्याकरण ही प्रधान और सर्वोत्तम साधन है। हिंदी-भाषा के लिए यह नियंत्रण और भी आवश्यक है, क्योंकि इसका स्वरूप उपभाषाओं की खीचातानी में अनिश्चित-सा हो रहा है।

हिंदी-व्याकरण का प्रारंभिक इतिहास अंधकार में पड़ा हुआ है। हिंदी-भाषा के पूर्व रूप 'अपञ्चा' का व्याकरण हेमचंद्र ने बारहवीं शताब्दी में लिखा है, पर हिंदी-व्याकरण के प्रथम आचार्य का पता नहीं लगता। इसमें संदेह नहीं कि हिंदी के आरंभ-काल में व्याकरण की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि एक तो स्वयं भाषा ही उस समय अपूर्णविस्था में थी; और दूसरे, लेखकों को अपनी मातृभाषा के ज्ञान और प्रयोग के लिए उस समय व्याकरण की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी। उस समय लेखों में गद्य का अधिक प्रचार न होने के

कारण भाषा के सिद्धांतों की ओर संभवतः लोगों का ध्यान भी नहीं जाता था। जो हो, हिंदी के आदि-व्याकरण का पता लगाना स्वतंत्र खोज का विषय है। मुझे जहाँ तक पुस्तकों से पता लग सका है, हिंदी-व्याकरण के आदि-निर्माता वे अँगरेज ये जिन्हें ईसवी सन् की उच्चीसवीं शताब्दी के आरंभ में इस भाषा के विधिवत् अध्ययन की आवश्यकता हुई थी। उस समय कलकत्ते के फोट-विलियम कालेज के अध्यक्ष डा० गिलकाइस्ट ने अँगरेजी में हिंदी का एक व्याकरण लिखा था। उन्हीं के समय में प्रेम-सागर के रचयिता लल्लूजी लाल ने “कवायद-हिंदी” के नाम से हिंदी-व्याकरण की एक छोटी पुस्तक रची थी। मुझे इन दोनों पुस्तकों को देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ; पर इनका उल्लेख अँगरेजों के लिखे हिंदी-व्याकरणों में तथा हिंदी-साहित्य के इतिहास में पाया जाता है।

लल्लूजी लाल के व्याकरण के लगभग २५ वर्ष पश्चात् कलकत्ते के पादरी आदम साहब ने हिंदी-व्याकरण की एक छोटी-सी पुस्तक लिखी जो कई वर्षों तक स्कूलों में प्रचलित रही। इस पुस्तक में अँगरेजी-व्याकरण के टंग पर हिंदी-व्याकरण के कुछ साधारण नियम दिये गये हैं। पुस्तक की भाषा पुरानी, पंडिताऊ और विदेशी लेखक की स्वाभाविक भूलों से भरी हुई है। इसके पारिभाषिक शब्द बँगला-व्याकरण से लिये गये जान पढ़ते हैं और हिंदी में उन्हें समझाते समय विषय की कई भूलें भी हो गई हैं।

सिपाही-विद्रोह के पीछे शिक्षा-विभाग की स्थापना होने पर पं० रामजसन की “भाषा-तत्व-वोधिनी” प्रकाशित हुई जो एक साधारण पुस्तक है और जिसमें कहीं-कहीं हिंदी और संस्कृत की मिश्रित प्रशालियों का उपयोग किया गया है। इसके पीछे पं० श्रीलाल का “भाषा-चंद्रोदय” प्रकाशित हुआ जिसमें हिंदी-व्याकरण के कुछ अधिक नियम पाये जाते हैं। फिर सन् १८६६ ईसवी में बाबू नवीनचंद्र राय-कृत “नवीन-चंद्रोदय” निकला। राय महाशय पंजाब-निवासी बंगाली और वहाँ के शिक्षा-

विभाग के उच्च कर्मचारी थे । आपने अपनी पुस्तक में “भाषा-चंद्रोदय” का उल्लेख कर उसके विषय में जो कुछ लिखा है उससे आपकी कृति का पता लगता है । आप लिखते हैं—“‘भाषा-चंद्रोदय’ की रीति स्वाभाविक है; पर इसमें सामान्य वा अनावश्यक विषयों का विस्तार किया गया है, और जो अत्यंत आवश्यक या अर्थात् संस्कृत शब्द जो भाषा में व्यवहृत होते हैं उनके नियम यहाँ नहीं दिये गये” । “नवीन-चंद्रोदय” में भी संस्कृत-प्रथाओं का आंशिक अनुसरण पाया जाता है । इसके पश्चात् १०० हरिगोपाल पाठ्ये ने अपनी “भाषा-तत्त्व-दीपिका” [लिखी] पाठ्ये महाशाय महाराष्ट्र ये; अतएव उन्होंने मराठी-व्याकरण के अनुसार, कारक और विभक्ति का विवेचन, संस्कृत की रीति पर, किया है और कई एक पारिभाषिक शब्द मराठी-व्याकरण से लिये हैं । पुस्तक की भाषा में स्वभावतः मराठीपन पाया जाता है । यह पुस्तक बहुत कुछ अँगरेजी टंग पर लिखी गई है ।

लगभग इसी समय (सन् १८७५, ई० में) राजा शिवप्रसाद का हिंदी-व्याकरण निकला । इस पुस्तक में दो विशेषताएँ हैं । पहली विशेषता यह है कि पुस्तक अँगरेजी टंग की होने पर भी इसमें संस्कृत-व्याकरण के सब्दों का अनुकरण किया गया है; और दूसरी यह कि हिंदी के व्याकरण के साथ-साथ, नागरी अच्छों में, उदू का भी व्याकरण दिया गया है । इस समय हिंदी और उदू के स्वरूप के विषय में बाद-विवाद उपस्थित हो गया था, और राजा साहब दोनों बोलियों को एक बनाने के प्रयत्न में अगुआ थे; इसलिए आपको ऐसा दोहरा व्याकरण बनाने की आवश्यकता हुई । इसी समय भारतेंदु हरिश्चंद्रजी ने बचों के लिए एक छोटा-सा हिंदी व्याकरण लिखकर इस विषय की उपयोगिता और आवश्यकता सिद्ध कर दी ।

इसके पीछे पादरी एथरिंगटन साहब का प्रसिद्ध व्याकरण “भाषा-भास्कर” प्रकाशित हुआ जिसकी सत्ता ४० वर्ष से आज तक एक-सी

अटल बनी हुई है। अधिकांश में दृष्टि होने पर भी इस पुस्तक के आधार और अनुकरण पर हिंदी के कई छोटे-मोटे व्याकरण बने और बनते जाते हैं। यह पुस्तक अँगरेजी ट्रॅन्सलेशन पर लिखी गई है और जिन पुस्तकों में इसका आधार पाया जाता है उनमें भी इसका ट्रॅन्सलेशन लिया गया है। हिंदी में यह अँगरेजी-प्रणाली इतनी प्रिय हो गई है कि इसे छोड़ने का पूरा प्रयत्न आज तक नहीं किया गया। मराठी, गुजराती, बंगला, आदि भाषाओं के व्याकरणों में भी बहुधा इसी प्रणाली का अनुकरण पाया जाता है।

इधर गत २५ वर्षों के भीतर हिंदी के छोटे-मोटे कई एक व्याकरण प्रकाशित हुए हैं जिनमें विशेष उल्लेख-योग्य पं० केशवराम भट्ट-कृत “हिंदी-व्याकरण”, ठाकुर रामचरण सिंह-कृत “भाषा-प्रभाकर”, पं० रामावतार शर्मा का “हिंदी-व्याकरण”, पं० विश्वेश्वरदत्त शर्मा का “भाषा-तत्त्व-प्रकाश” और पं० रामदेहिन मिश्र का प्रवेशिका-हिंदी-व्याकरण है। इन वैयाकरणों में किसी ने प्रायः देशी, किसी ने पूर्णतया विदेशी और किसी ने मिश्रित प्रणाली का अनुसरण किया है। पं० गोविंदनारायण मिश्र ने “विभक्ति-विचार” लिखकर हिंदी-विभक्तियों की व्युत्पत्ति के विषय में गवेषणा-पूर्ण समालोचना की है और हिंदी-व्याकरण के इतिहास में एक नवीनता का समावेश किया है।

मैंने अपने व्याकरण में पूर्वोक्त प्रायः सभी पुस्तकों के अधिकांश विवरमान विषयों की, यथा-स्थान, कुछ चर्चा और परीक्षा की है। इस पुस्तक का एकाशन आरंभ होने के पश्चात् पं० अंधिकाप्रसाद वाजपेयी की “हिंदी-कौमुदी” प्रकाशित हुई; इसलिए अन्यान्य पुस्तकों के समान इस पुस्तक के किसी विवेचन का विचार मेरे ग्रंथ में न हो सका। “हिंदी-

“हिंदी-व्याकरण” और उसके संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित होने तथा इनकी नकल करके कई व्याकरण बनने के कारण “भाषा-भास्कर” का प्रचार बहुत घट गया है।

कौमुदी” अन्यान्य सभी व्याकरणों की अपेक्षा अधिक व्यापक, प्रामाणिक और शुद्ध है।

कैलाग, ग्रीव्ज़, पिंकाट आदि विदेशी लेखकों ने हिंदी-व्याकरण की उत्तम पुस्तकें, अँगरेजों के लाभार्थ, अँगरेजी में लिखी हैं; पर इनके ग्रंथों में किये गये विवेचनों की परीक्षा मेंने अपने ग्रंथ में नहीं की, क्योंकि भाषा की शुद्धता की दृष्टि से विदेशी लेखक पूर्णतया प्रामाणिक नहीं माने जा सकते।

ऊपर, हिंदी-व्याकरण का, गत प्रायः सौ वर्षों का, संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। इससे जाना जाता है कि हिंदी-भाषा के जितने व्याकरण आज तक हिंदी में लिखे गये हैं वे विशेष कर पाठशालाओं के छोटे-छोटे विद्यार्थियों के लिए निर्मित हुए हैं। उनमें बहुधा साधारण (त्यूल) नियम ही पाये जाते हैं जिससे भाषा की व्यापकता पर पूरा प्रकाश नहीं पड़ सकता। शिक्षित समाज ने उनमें से किसी भी व्याकरण को अभी तक विशेष रूप से प्रामाणिक नहीं माना है। हिंदी-व्याकरण के इतिहास में एक विशेषता यह भी है कि अन्य-भाषा-भाषी भारतीयों ने भी इस भाषा का व्याकरण लिखने का उद्योग किया है जिससे हमारी भाषा की व्यापकता, इसके प्रामाणिक व्याकरण की आवश्यकता और साथ ही हिंदी-भाषा वैयाकरणों का अभाव अथवा उनकी उदासीनता खनित होती है। हिंदी-भाषा के लिए यह एक बड़ा शुभ चिह्न है कि कुछ दिनों से हिंदी-भाषी लेखकों (विशेषकर शिक्षकों) का ध्यान इसे विषय की ओर आकृष्ट हो रहा है।

हिंदी में अनेक उप-भाषाओं के होने तथा उदूँ के साथ अनेक वर्षों से इसका संपर्क रहने के कारण हमारी भाषा की रचना शैली अभी तक बहुधा इतनी अस्थिर है कि इस भाषा के वैयाकरण को व्यापक नियम बनाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ये कठिनाइयाँ भाषा के स्वाभाविक संगठन से भी उत्पन्न होती हैं; पर निरक्षा लेखक इन्हें और

भी बड़ा देते हैं। हिंदी के स्वराज्य में अहंमन्य लेखक बहुधा स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया करते हैं और व्याकरण के शासन का अभ्यास न होने के कारण इस विषय के उचित आवेशों को भी पराधीनता मान लेते हैं। प्रायः लोग इस बात को भूल जाते हैं कि साहित्यिक भाषा सभी देशों और कालों में लेखकों की मातृ-भाषा अथवा बोल-चाल की भाषा से योड़ी-बहुत भिन्न रहती है और वह, मातृ-भाषा के समान, अभ्यास ही से आती है। ऐसी अवस्था में, केवल स्वतंत्रता के आवेश के बशीभूत होकर, शिष्ट भाषा पर विदेशी भाषाओं अथवा प्रांतीय बोलियों का अधिकार चलाना एक प्रकार की राष्ट्रीय अराजकता है। यदि स्वयं लेखकगण अपनी साहित्यिक भाषा को योग्य अध्ययन और अनुकरण से शिष्ट, स्पष्ट और प्राभागिक बनाने की चेष्टा न करेंगे तो वैयाकरण “प्रयोग-शरण” का सिद्धांत कहाँ तक मान सकेगा? मैंने अपने व्याकरण में प्रसंगानुरोध से प्रांतीय बोलियों का योड़ा-बहुत विचार करके, केवल साहित्यिक हिंदी का विवेचन किया है। पुस्तक में विषय-विस्तार के द्वारा यह प्रयत्न भी किया गया है कि हिंदी-पाठकों की इच्छा व्याकरण की ओर प्रवृत्त हो। इन सब प्रयत्नों की सफलता का निर्णय विह पाठक ही कर सकते हैं।

इस पुस्तक में एक विशेष जुटि रह गई है जो कालांतर ही में दूर हो सकती है, जब हिंदी भाषा की पूरी और वैज्ञानिक खोज की जायगी। मेरी समझ में किसी भी भाषा के सर्वोंग-पूर्ण व्याकरण में उस भाषा के रूपांतरों और प्रयोगों का इतिहास लिखना आवश्यक है। यह विषय इस व्याकरण में न आ सका, क्योंकि हिंदी-भाषा के आरंभ-काल में, समय समय पर (प्रायः एक शताब्दि में) बदलनेवाले रूपों और प्रयोगों के प्रामाणिक उदाहरण, जहाँ तक मुझे पता लगा है, उपलब्ध नहीं हैं। फिर इस विषय के योग्य प्रतिपादन के लिए शब्द-शाल की विशेष योग्यता की भी आवश्यकता है। ऐसी अवस्था में मैंने “हिंदी-व्याकरण” में हिंदी-भाषा के इतिहास के बदले हिंदी-साहित्य का

संबिस्त इतिहास देने का प्रयत्न किया है । यथार्थ में यह बात अनुचित और अनावश्यक प्रतीत होती है कि भाषा के संपूर्ण कृपों और प्रयोगों की नामावली के स्थान में कवियों और लेखकों तथा उसके ग्रंथों की शुष्क नामावली दी जाय । मैंने यह विषय केवल इसलिए लिखा है कि पाठकों को, प्रस्तावना के रूप में, अपनी भाषा की महत्ता का योहान-बहुत अनुमान हो जाय ।

हिंदी के व्याकरण का सर्व-सम्मत होना परम आवश्यक है । इस विचार से काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने इस पुस्तक को दोहराने के लिए एक संशोधन-समिति निर्वाचित की थी । उसने गत दशहरेकी छुट्टियों में अपनी बैठक की, और आवश्यक (किंतु साधारण) परिवर्तन के साथ इस व्याकरण को सर्व-सम्मति से स्वीकृत कर लिया । यह बात लेखक, हिंदी-भाषा और हिंदी-भाषियों के लिए अत्यंत लाभदायक और महत्व-पूर्ण है । इस समिति के निम्नलिखित सदस्यों ने बैठक में भाग लेकर पुस्तक के संशोधनादि कार्यों में अनूल्य सहायता दी है—

आचार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

साहित्याचार्य पंडित रामावतार शर्मा, एम० ए० ।

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, ची० ए० ।

रा० ब० पंडित लज्जाराशंकर भाषा, ची० ए० ।

पंडित रामनारायण मिश्र, ची० ए० ।

बाबू जगन्नाथदास (रक्षाकर), ची० ए० ।

बाबू श्यामसुंदरदास, ची० ए० ।

पंडित रामचंद्र शुक्र ।

इन सब सजनों के, प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतशता प्रकट करता हूँ । प० महावीरप्रसाद द्विवेदी का मैं विशेषतया कृतश हूँ, क्योंकि आपने इस्त-लिखित प्रति का अधिकांश भाग पढ़कर अनेक उपयोगी सूचनाएँ देने की कृपा और परिश्रम किया है । खेद है कि प० गोविंदनारायणजी

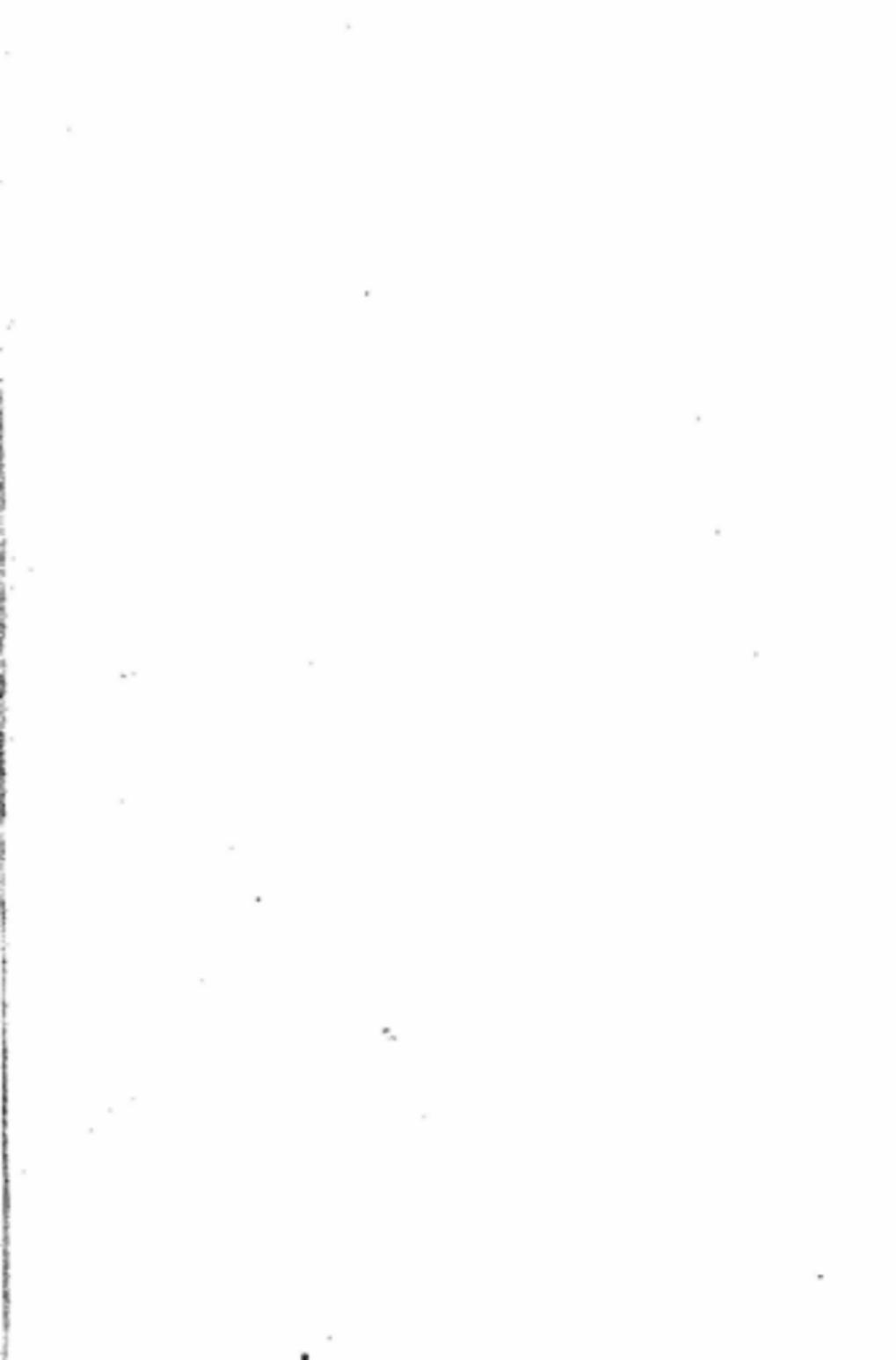
मिथ तथा पं० अंबिकाप्रसादजी बाजपेयी समयाभाव के कारण समिति की बैठक में योग न दे सके जिससे मुझे आप लोगों की विद्वत्ता और सम्मति का लाभ प्राप्त न हुआ । व्याकरण-संशोधन-समिति की सम्मति अन्यत्र दी गई है ।

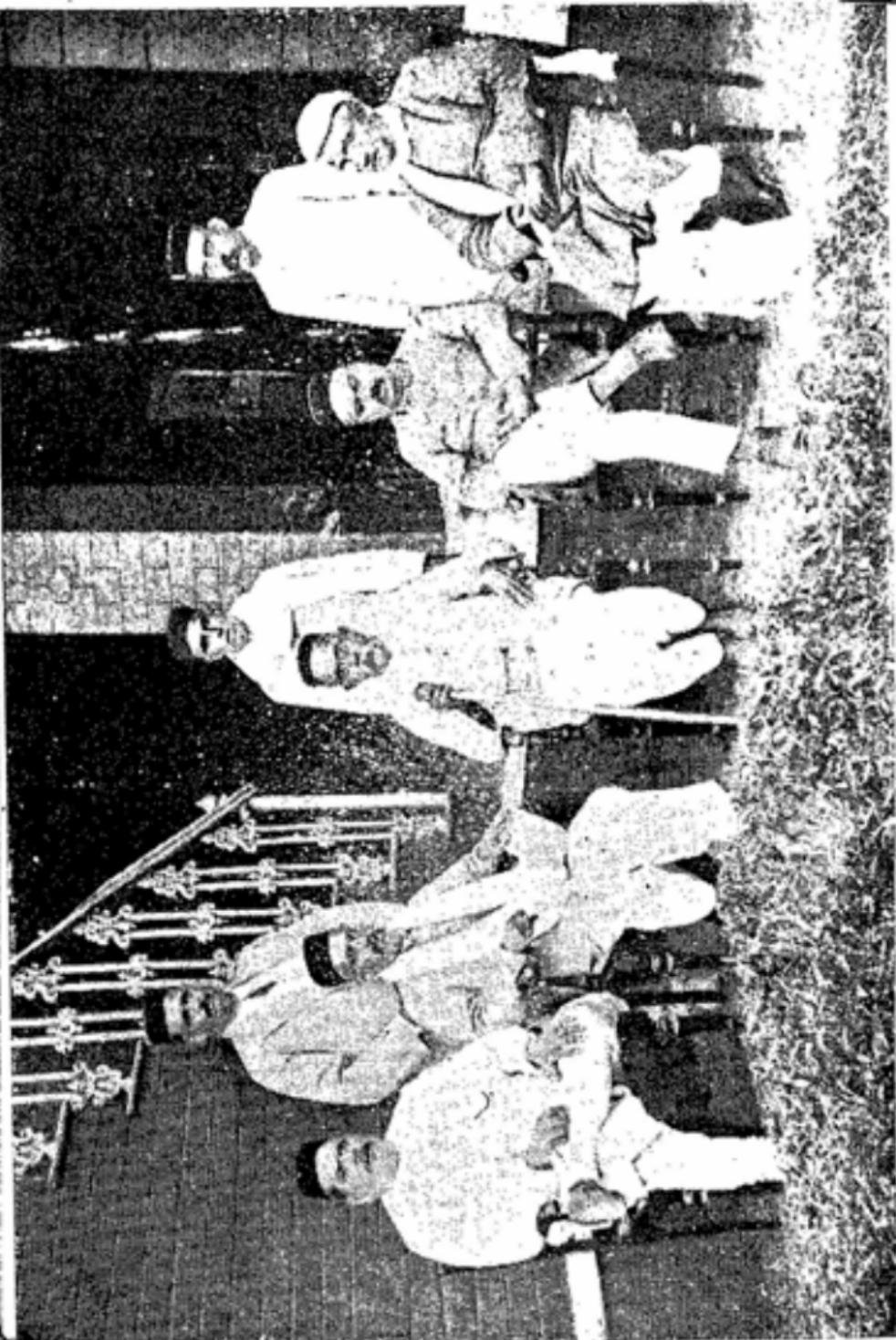
अंत में, मैं विज्ञ पाठकों से नम्र निवेदन करता हूँ कि आप लोग कृपाकर मुझे इस पुस्तक के दोषों की सूचना अवश्य दें । यदि ईश्वरेच्छा से पुस्तक को द्वितीयावृत्ति का सौभाग्य प्राप्त होगा तो उसमें इन दोषों को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न किया जायगा । तब तक पाठक-गण कृपाकर “हिंदी-व्याकरण” के सार को उसी पकार ग्रहण करें जिस प्रकार—

संत-हंस गुण गहिं पय, परिहरि वारि-विकार ।

गवा-फाटक,
जबलपुर;
वसंत-पंचमी,
सं० १९७७

निवेदक—
कामताप्रसाद गुरु





व्याकरण-संशोधन-समिति की सम्मति ।

भीयुत मंत्री,

नागरीप्रचारिणी सभा,

काशी ।

महाशय,

सभा के निष्पत्र के अनुसार व्याकरण-संशोधन-समिति का कार्य बृहस्पतिवार आश्विन शुक्र ३ संवत् १९७७ (ता० १४ अक्टूबर १९२०) को सभा-मवन में यथासमय आरंभ हुआ । इम लोगों ने व्याकरण के मुख्य-मुख्य सभी अंगों पर विचार किया । हमारी सम्मति है कि सभा ने जो व्याकरण विचार के लिए छपवाकर प्रस्तुत किया है वह आज तक प्रकाशित व्याकरणों से सभी बातों में उत्तम है । वह बड़े विस्तार से लिखा गया है । प्रायः कोई अंश छूटने नहीं पाया । इसमें सदैद नहीं कि व्याकरण बड़ी गवेषणा से लिखा गया है । इम इस व्याकरण को प्रकाशन-योग्य समझते हैं और अपने सहयोगी पंडित कामताप्रसादजी गुरु को साधुवाद देते हैं । उन्होंने ऐसे अच्छे व्याकरण का प्रशंसन करके हिंदी साहित्य के एक महत्व-पूर्ण अंश की पूर्ति कर दी ।

जहाँ-जहाँ परिवर्त्तन करना आवश्यक है उसके विषय में इम लोगों ने सिद्धांत स्थिर कर दिये हैं । उनके अनुसार सुधार करके पुस्तक छपवाने का भार निझ-लिखित महाशयों को दिया गया है—

(१) पंडित कामताप्रसाद गुरु,
असिस्टेंट मास्टर, मॉडल हाई स्कूल, जगलपुर ।

(२) पंडित महाचीरप्रसाद दिवेदी,
जुही-कलाँ, कानपुर ।

(३) पंडित चंद्रधर शार्मा गुलेरी, चौ० ए०,
जयपुर-भवन, मेयो कालेज, अजमेर ।

निवेदन-कत्ति—

महावीरप्रसाद द्विवेदी
रामावतार शार्मा
लज्जाशंकर भट्टा
रामनारायण निख
जगन्नाथदास
श्रीचंद्रधर शार्मा
रामचंद्र शुक्र
श्यामसुंदरदास
कामताप्रसाद गुरु

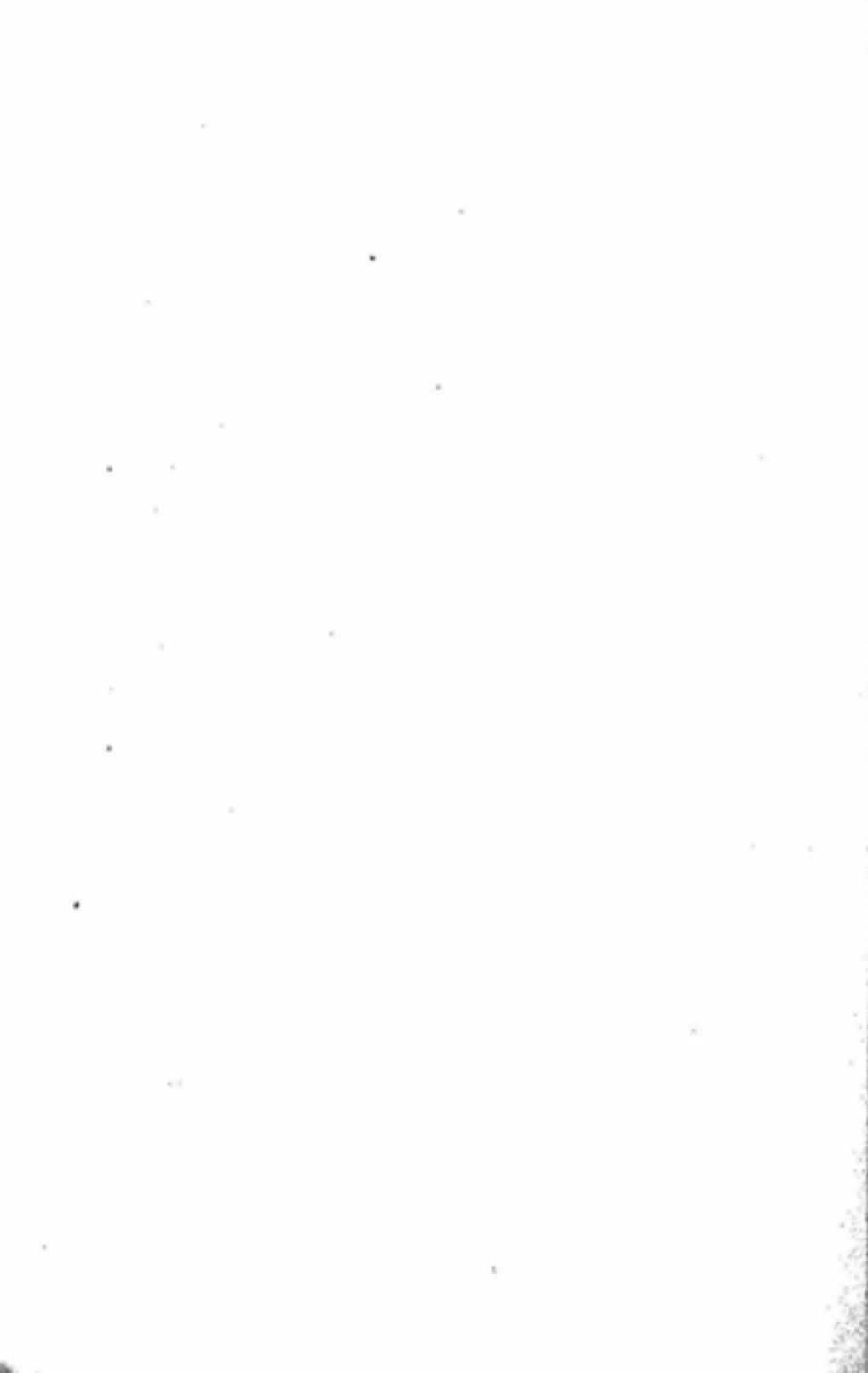
नवीन संस्करण की भूमिका

हिंदी व्याकरण का यह नवीन संस्करण लगभग चोस वर्ष पश्चात् प्रकाशित हो रहा है। इधर कई वर्षों से यह अप्राप्य था। हिंदी-ज्ञेन में इसकी मौगि अत्यधिक होते हुए भी, खोद है कि अनेक अड़चनों के कारण सभा इसका नया संस्करण इतने दिनों तक प्रकाशित नहीं कर सकी थी। पिताजी ने नवीन संस्करण की पांहुलिपि मृत्यु के कुछ मास पूर्व तैयार कर सभा के पास भेज दी थी। चार वर्ष बाद इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के प्रकाशन का अवसर अब आया है। इस संस्करण में पूज्य पिताजी ने संशोधन और परिवर्तन कर व्याकरण के उन स्थलों को तर्कपूर्ण और विवेचना-पूर्ण बनाने का भरसक प्रयत्न किया है जो हिंदी में नये प्रयोगों और अभिव्यक्तियों के कारण विवाद-ग्रस्त और शंका-पूर्ण समझे जाने लगे थे।

यदि इस संवंध में अधिकारी विद्वान् समय-समय पर अपने तर्क-सम्मत सुभाव देते रहें तो उनका समुचित समावेश अगले संस्करण में हो जायगा।

दीक्षितपुरा,
जबलपुर,
वसंत-पंचमी,
संवत् २००६

रामेश्वर गुरु
राजेश्वर गुरु



विषय-सूची

१—प्रस्तावना—

(१)	भाषा	५
(२)	भाषा और व्याकरण	६
(३)	व्याकरण की सीमा	७
(४)	व्याकरण से लाभ	८
(५)	व्याकरण के विभाग	९

२—हिंदी की उत्पत्ति—

(१)	आदिम भाषा	१०
(२)	आर्य-भाषाएँ	११
(३)	संस्कृत और प्राकृत	१३
(४)	हिंदी	१७
(५)	हिंदी और उर्दू	२५
(६)	तस्म म और तद्व शब्द	३१
(७)	देशज और अनुकरण-बाचक शब्द	३३
(८)	विदेशी शब्द	३५

पहला भाग

वर्ण-विचार।

पहला अध्याय—वर्णमाला	३५
दूसरा „—लिपि	३८
तीसरा „—वर्णों का उच्चारण और वर्गीकरण	४२
चौथा अध्याय—स्वरावात्	५२
पाँचवा „—संधि	५५

दूसरा भाग ।

शब्द-साधन ।

पहला परिच्छेद—शब्द-मेद

पहला अध्याय—शब्द-विचार ६५

दूसरा „ —शब्दों का वर्गीकरण ६८

पहला खंड—विकारी शब्द ।

पहला अध्याय—संज्ञा ७७

दूसरा „ —सर्वनाम ८६

तीसरा „ —विशेषण १२४

चौथा „ —क्रिया १५४

दूसरा खंड—अव्यय ।

पहला अध्याय—क्रिया-विशेषण १७१

दूसरा „ —संबंध-सूचक १८७

तीसरा „ —समुच्चय-बोधक २१३

चौथा „ —विस्मयादि-बोधक २३६

दूसरा परिच्छेद—रूपांतर

पहला अध्याय—लिंग २३८

दूसरा „ —वचन २६०

तीसरा „ —कारक २७४

चौथा „ —सर्वनाम ३०१

पाँचवाँ „ —विशेषण ३१२

छठा „ —क्रिया ३२२

सातवाँ „ —संयुक्त क्रियाएँ ३४७

आठवाँ „ —विकृत अव्यय ४०२

तीसरा परिच्छेद—व्युत्पत्ति ।

पहला अध्याय—विषयारंभ	४०६
दूसरा " —उपसर्ग	४१३
तीसरा " —संस्कृत-प्रत्यय	४२२
चौथा " —हिंदी-प्रत्यय	४४२
पाँचवाँ " —उद्भूत-प्रत्यय	४६६
छठा " —समास	४८१
सातवाँ " —पुनरुक्त शब्द	५१०

तीसरा भाग ।

वाक्य-विन्यास ।

पहला परिच्छेद—वाक्य-रचना

पहला अध्याध—प्रस्तावना	५१६
दूसरा " —कारकों के अर्थ और प्रयोग	५२२
तीसरा " —समानाधिकरण शब्द	५४६
चौथा " —उद्देश्य, कर्म और क्रिया का अन्वय	५५१
पाँचवाँ " —सर्वनाम	५६०
छठा " —विशेषण और संबंध कारक ...	५६४
सातवाँ " —कालों के अर्थ और प्रयोग ...	५६६
आठवाँ " —क्रियार्थिक संज्ञा	५८४
नवाँ " —कुदंत	५८७
दसवाँ " —संयुक्त क्रियाएँ	५९७
म्यारहवाँ " —अध्यय	६०१
बारहवाँ " —अध्याहार	६०४
तेरहवाँ " —पदक्रम	६०६
चौदहवाँ " —पद-परिचय	६१४

दूसरा परिच्छेद—वाक्य-पृथक्करण ।

पहला अध्याय—विषयारंभ	६८६
दूसरा " —वाक्य और वाक्यों में भेद	६९१
तीसरा " —साधारण वाक्य	६३४
चौथा " —मिश्र वाक्य	६५०
पाँचवाँ " —संयुक्त वाक्य	६७४
छठा " संज्ञित वाक्य	६८०
सातवाँ " —विशेष प्रकार के वाक्य	६८१
आठवाँ " —विराम-चिह्न	६८३
परिशिष्ट (क)—कविता की भाषा	६९७
" (ख)—काव्य-स्वतंत्रता	७१४

१—प्रस्तावना ।

(१) भाषा ।

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है । मनुष्य के कार्य उसके विचारों से उत्पन्न होते हैं और इन कार्यों में दूसरों की सहायता अथवा सम्मति प्राप्त करने के लिए उसे वे विचार दूसरों पर प्रकट करने पड़ते हैं । जगत् का अधिकांश व्यवहार बोल-चाल अथवा लिखा-पढ़ी से चलता है, इसलिए भाषा जगत् के व्यवहार का मूल है ।

[वहरे और गूँगे मनुष्य अपने विचार संकेतों से प्रकट करते हैं । बच्चा केवल रोकर अपनी इच्छा जनाता है । कभी कभी केवल मुख की चेष्टा से मनुष्य के विचार प्रकट हो जाते हैं । कोई कोई जंगली लोग बिना बोले ही संकेतों के द्वारा बात-चीत करते हैं । इन सब संकेतों को लोग ठीक ठीक नहीं समझ सकते और न इनसे सब विचार ठीक ठीक प्रकट हो सकते हैं । इस प्रकार की संकेतिक भाषाओं से शिष्ट समाज का काम नहीं चल सकता ।] पशु-पक्षी आदि जो बोलते हैं उससे दुःख, सुख, भय आदि मनोविकारों के सिवा और कोई बात नहीं जानी जाती । मनुष्य की भाषा से उसके सब विचार भली भाँति प्रकट होते हैं, इसलिए वह व्यक्त भाषा कहलाती है; दूसरी सब भाषाएँ या बोलियाँ अव्यक्त कहलाती हैं ।

व्यक्त भाषा के द्वारा मनुष्य केवल एक-दूसरे के विचार ही नहीं जान लेते, बरन उसकी सहायता से उनके नये विचार भी उत्पन्न होते हैं। किसी विषय को सोचते समय हम एक प्रकार का मानसिक संभाषण करते हैं, जिससे हमारे विचार आगे चलकर भाषा के रूप में प्रकट होते हैं। इसके सिवा भाषा से धारणा-शक्ति को सहायता मिलती है। यदि हम अपने विचारों को एकत्र करके लिख लें तो आवश्यकता पड़ने पर हम लेख-रूप में उन्हें देख सकते हैं और बहुत समय बीत जाने पर भी हमें उनका स्मरण हो सकता है। भाषा की उन्नत या अवनत अवस्था राष्ट्रीय उन्नति या अवनति का प्रतिविच है। प्रत्येक नया शब्द एक नये विचार का चित्र है और भाषा का इतिहास मानो उसके बोलने-बालों का इतिहास है।

भाषा स्थिर नहीं रहती; उसमें सदा परिवर्तन हुआ करते हैं। विद्वानों का अनुमान है कि कोई भी प्रचलित भाषा एक हजार वर्ष से अधिक समय तक एकसी नहीं रह सकती। जो हिंदी हम लोग आजकल बोलते हैं वह हमारे प्रपितामह आदि के समय में ठीक इसी रूप में न बोली जाती थी, और न उन लोगों की हिंदी वैसी थी जैसी महाराज पृथ्वीराज के समय में बोली जाती थी। अपने पूर्वजों की भाषा की खोज करते करते हमें अंत में एक ऐसी हिंदी भाषा का पता लगेगा जो हमारे लिए एक अपरिचित भाषा के समान कठिन होगी। भाषा में यह परिवर्तन धीरे धीरे होता है—इतना धीरे धीरे कि वह हमको मालूम नहीं होता, पर, अंत में, इन परिवर्तनों के कारण नई-नई भाषाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

भाषा पर रथान, जल-वायु और सभ्यता का बड़ा प्रभाव पड़ता है। बहुत से शब्द जो एक देश के लोग बोल सकते हैं, दूसरे देश के लोग तद्दृत् नहीं बोल सकते। जल-वायु में हेर-फेर

होने से लोगों के उचारण में अंतर पड़ जाता है। इसी प्रकार सभ्यता की उन्नति के कारण नये-नये विचारों के लिए नये-नये शब्द बनाना पड़ते हैं, जिससे भाषा का शब्द-कोष बढ़ता जाता है। इसके साथही बहुतसी जातियाँ अबनत होती जाती हैं और उच्च भावों के अभाव में उनके बाचक शब्द लुप्त होते जाते हैं।

विद्वान् और ग्रामीण मनुष्यों की भाषा में कुछ अंतर रहता है। किसी शब्द का जैसा शुद्ध उचारण विद्वान् पंडित करते हैं वैसा सर्व-साधारण लोग नहीं कर सकते। इससे प्रवान भाषा विगड़कर उसकी शाखा-रूप नई-नई बोलियाँ बन जाती हैं। भिन्न-भिन्न दो भाषाओं के पास-पास बोले जाने के कारण भी उन दोनों के मेल से एक नई बोली उत्पन्न हो जाती है।

भाषागत विचार प्रकट करने में एक विचार के प्रायः कई अंश प्रकट करने पड़ते हैं। उन सभी अंशों के प्रकट करने पर उस समय विचार का मतलब अच्छी तरह समझ में आता है। प्रत्येक पूरी बात को वाक्य कहते हैं। प्रत्येक वाक्य में प्रायः कई शब्द रहते हैं। प्रत्येक शब्द एक सार्थक ध्वनि है जो कई मूल-ध्वनियों के योग से बनती है। जब हम बोलते हैं तब शब्दों का उपयोग करते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दों को काम में लाते हैं। यदि हम शब्द का ठीक-ठीक उपयोग न करें तो हमारी भाषा में बड़ी गड़बड़ पड़ जाय और संभवतः कोई हमारी बात न समझ सके। हाँ, भाषा में जिन शब्दों का उपयोग किया जाता है वे किसी न किसी कारण से कलिप्त किये गये हैं, तो भी जो शब्द जिस वस्तु का सूचक है उसका इससे, प्रत्यक्ष में, कोई संबंध नहीं। हाँ, शब्दों ने अपने वाच्य पदार्थादि की भावना को अपने में बौध-सा लिया है जिससे शब्दों का उचारण करते ही उन उन पदार्थों का बोध

संतकोंल हो जाता है। कोई-कोई शब्द के बीच अनुकरण-वाचक होते हैं; पर जिन सार्थक शब्दों से भाषा बनती है उनके आगे ये शब्द बहुत थोड़े रहते हैं।

जब हम उपस्थित लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं तब बहुधा कथित भाषा काम में लाते हैं; पर जब हमें अपने विचार दूरवर्ती मनव्यों के पास पहुँचाने का काम पड़ता है, अर्थवा भावी संतति के लिए उनके संप्रद की आवश्यकता होती है, तब हम लिखित भाषा का उपयोग करते हैं। लिखी हुई भाषा में शब्द की एक-एक मूल-ध्वनि को पहचानने के लिए एक-एक चिह्न नियत कर लिया जाता है जिसे वर्ण कहते हैं। ध्वनि कानों का विषय है, पर वर्ण आँखों का, और वह ध्वनि का प्रतिनिधि है। पहले-पहल केवल बोली हुई भाषा का प्रचार था, पर पीछे से विचारों को स्थायी रूप देने के लिए कई प्रकार की लिपियाँ निकाली गईं। वर्ण-लिपि निकलने के बहुत समय पहले तक लोगों में चित्र-लिपि का प्रचार था, जो आजकल भी पृथक्की के कई भागों के जंगली लोगों में प्रचलित है। मिस्र के पुराने खंडहरों और गुफाओं आदि में पुरानी चित्र-लिपि के अनेक नमूने पाये गये हैं और इन्हीं से वहाँ की वर्णमाला निकली है। इस देश में भी कहीं-कहीं ऐसी पुरानी बस्तुएँ मिली हैं जिनपर चित्र-लिपि के चिह्न मालूम पड़ते हैं। कोई-कोई विद्वान् यह अनुमान करते हैं कि प्राचीन समय के चित्र-लेख के किसी-किसी अवयव के कुछ लक्षण वर्तमान वर्णों के आकार में मिलते हैं, जैसे “ह” में हाथ और “ग” में गाय के आकार का कुछ न कुछ अनुकरण पाया जाता है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही विचार के लिए बहुधा भिन्न-भिन्न शब्द होते हैं उसी प्रकार एक ही मूल-ध्वनि के लिए उनमें भिन्न-भिन्न अन्तर भी होते हैं।

(२) भाषा और व्याकरण ।

किसी भाषा की रचना को ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ता है कि उसमें जितने शब्दों का उपयोग होता है वे सभी बहुधा भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार प्रकट करते हैं और अपने उपयोग के अनसार कोई अधिक और कोई कम आवश्यक होते हैं । फिर, एक ही विचार को कई रूपों में प्रकट करने के लिए शब्दों के भी कई रूपांतर हो जाते हैं । भाषा में यह भी देखा जाता है कि कई शब्द दूसरे शब्दों से बनते हैं और उनसे एक नया ही अर्थ प्राया जाता है । वाक्य में शब्दों का उपयोग किसी विशेष क्रम से होता है और उनमें रूप अथवा अर्थ के अनसार प्रत्यक्षर संबंध रहता है । इस अवस्था में यह आवश्यक है कि पूर्णता और स्पष्टतापूर्वक विचार प्रकट करने के लिए शब्दों के रूपों तथा प्रयोग में स्थिरता और समानता हो । जिस शास्त्र में शब्दों के शुद्धरूप और प्रयोग के नियमों का निरूपण होता है उसे व्याकरण कहते हैं । व्याकरण के नियम बहुधा लिखी हुई भाषा के आवार पर निश्चित किये जाते हैं, क्योंकि उसमें शब्दों का प्रयोग बोली हुई भाषा की अपेक्षा अधिक सावधानी से किया जाता है । व्याकरण (वि + आ + करण) शब्द का अर्थ “भली भाँति समझाना” है । व्याकरण में वे नियम समझाये जाते हैं जो शिष्ट जनों के द्वारा स्वीकृत शब्दों के रूपों और प्रयोग में दिखाई देते हैं ।

व्याकरण भाषा के अधीन है और भाषा ही के अनुसार बदलता रहता है । वैयाकरण का क्राम यह नहीं कि बहु अपनी ओर से नये नियम बनाकर भाषा को बदल दे । बहु इतना ही कह सकता है कि अमुक प्रयोग अधिक शुद्ध है अथवा अधिकता से किया जाता है; पहले की सुसमिल सानुन्य या तः सानुन्य प्रभु लोगों की हच्छा पहर निर्भूत है । व्याकरण के संबंध में यह तात्-

स्मरण रखने योग्य है कि भाषा को नियमबद्ध करने के लिए व्याकरण नहीं बनाया जाता, बरन भाषा पढ़ते बोली जाती है और उसके आधार पर व्याकरण की उत्पत्ति होती है। व्याकरण और छन्दशास्त्र को निर्माण करने के बरसों पढ़ते से भाषा बोली जाती है और कविता रची जाती है।

(३) व्याकरण की सीमा ।

लोग बहुधा यह समझते हैं कि व्याकरण पढ़कर वे शुद्ध शुद्ध बोलने और लिखने की रीति सीख लेते हैं। ऐसा समझना पूर्ण रूप से ठीक नहीं। यह धारणा अधिकांश में मृत (अप्रचलित) भाषाओं के संबंध में ठीक कही जा सकती है जिनके अध्ययन में व्याकरण से बहुत कुछ सहायता मिलती है। यह सच है कि शब्दों की बनावट और उनके संबंध की खोज से भाषा के प्रयोग में शुद्धता आ जाती है, पर यह बात गौण है। व्याकरण न पढ़कर भी लोग शुद्ध शुद्ध बोलना और लिखना सीख सकते हैं। कई अच्छे लेखक व्याकरण नहीं जानते अथवा व्याकरण जानकर भी लेख लिखने में उसका विशेष उपयोग नहीं करते। उन्होंने अपनी मातृभाषा का लिखना अभ्यास से सीखा है। शिक्षित लोगों के लड़के, विना व्याकरण जाने, शुद्ध भाषा सुनकर ही, शुद्ध-शुद्ध बोलना सीख लेते हैं; पर अशिक्षित लोगों के लड़के व्याकरण पढ़ लेने पर भी प्रायः अशुद्ध ही बोलते हैं। यदि छोटा लड़का कोई वाक्य शुद्ध नहीं बोल सकता तो उसकी माँ उसे व्याकरण का नियम नहीं समझती, बरन शुद्ध वाक्य बता देती है और लड़का वैसा ही बोलने लगता है।

केवल व्याकरण पढ़ने से मनुष्य अच्छा लेखक या वक्ता नहीं हो सकता। विचारों की सत्यता अथवा असत्यता से भी व्याकरण का कोई संबंध नहीं। भाषा में व्याकरण की भूलें न होने पर भी

विचारों की भूलें हो सकती हैं और रोचकता का अभाव रह सकता है। व्याकरण की सहायता से हम केवल शब्दों का शुद्ध प्रयोग जानकर अपने विचार स्पष्टता से प्रकट कर सकते हैं, जिससे किसी भी विचारवान् मनुष्य को उनके समझने में कठिनाई अथवा संदेह न हो।

(४) व्याकरण से लाभ ।

यहाँ अब यह प्रश्न हो सकता है कि यदि भाषा व्याकरण के आक्षित नहीं और यदि व्याकरण की सहायता पाकर हमारी भाषा शुद्ध, रोचक और प्रामाणिक नहीं हो सकती, तो उसका निर्माण करने और उसे पढ़ने से क्या लाभ ? कुछ लोगों का यह भी आवेप है कि व्याकरण एक शुष्क और निरुपयोगी विषय है। इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि भाषा से व्याकरण का प्रायः वही संबंध है जो प्राकृतिक विकारों से विज्ञान का है। वैज्ञानिक लोग ध्यानपूर्वक सुशिक्षण का निरीक्षण करते हैं और जिन नियमों का प्रभाव वे प्राकृतिक विकारों में देखते हैं उन्हींको वे बहुधा सिद्धांत-बन् प्रदर्शन कर लेते हैं। जिस प्रकार संसार में कोई भी प्राकृतिक घटना नियम-विरुद्ध नहीं होती, उसी प्रकार भाषा भी नियम-विरुद्ध नहीं बोली जाती। वैयाकरण इन्हीं नियमों का पता लगाकर सिद्धांत स्थिर करते हैं। व्याकरण में भाषा की रचना, शब्दों की व्युत्पत्ति, और स्पष्टतापूर्वक विचार प्रकट करने के लिए, उनका शुद्ध प्रयोग बताया जाता है, जिनको जानकर हम भाषा के नियम जान सकते हैं और उन भूलों का कारण समझ सकते हैं, जो कभी-कभी नियमों का ज्ञान न होने के कारण अथवा असावधानी से, बोलने या लिखने में हो जाती हैं। किसी भाषा का पूर्ण ज्ञान होने के लिए उसका व्याकरण जानना भी आवश्यक है। कभी-कभी तो कठिन अथवा संदिग्ध भाषा का

अर्थ केवल व्याकरण की सहायता से जाना जा सकता है। इसके सिवा व्याकरण के ज्ञान से विदेशी भाषा सीखना भी बहुधा सहज हो जाता है।

कोई-कोई वैयाकरण व्याकरण को शास्त्र मानते हैं और कोई-कोई उसे केवल कला समझते हैं; पर यथार्थ में उसका समावेश दोनों भेदों में होता है। शास्त्र से हमको किसी विषय का ज्ञान विधिपूर्वक होता है और कला से हम उस विषय का उपयोग सीखते हैं। व्याकरण को शास्त्र इसलिए कहते हैं कि उसके द्वारा हम भाषा के उन नियमों की खोज करते हैं जिनपर शब्दों का शुद्ध प्रयोग अवलंबित है, और वह कला इसलिए है कि हम शुद्ध भाषा बोलने के लिए उन नियमों का पालन करते हैं।

विचारों की शुद्धता तर्फ़-शास्त्र के ज्ञान से और भाषा की रोचकता साहित्य-शास्त्र के ज्ञान से आती है।

हिंदी-व्याकरण में प्रचलित साहित्यिक हिंदी के रूपांतर और रचना के बहु-जन-मान्य नियमों का क्रमपूर्ण संप्रह रहता है। इसमें प्रसंग-वश प्रांतीय और प्राचीन भाषाओं का भी यत्र-तत्र विचार किया जाता है; पर वह केवल गोण रूप में और तुलना की दृष्टि से।

(५) व्याकरण के विभाग ।

व्याकरण भाषा-संबंधी शास्त्र है, और जैसा अन्यत्र (पृ० ३ पर) कहा गया है, भाषा का मुख्य अंग वाक्य है। वाक्य शब्दों से बनता है और शब्द प्रायः मूल-ध्वनियों से। लिखी हुई भाषा में एक मूल-ध्वनि के लिए प्रायः एक चिह्न रहता है जिसे वर्ण कहते हैं। वर्ण, शब्द और वाक्य के विचार से व्याकरण के मुख्य

तीन विभाग होते हैं—(१) वर्ण-विचार, (२) शब्द-साधन, (३) वाक्य-विन्यास ।

(१) वर्ण-विचार व्याकरण का वह विभाग है जिसमें वर्णों के आकार, उच्चारण और उनके मेल से शब्द बनाने के नियम दिये जाते हैं ।

(२) शब्द-साधन व्याकरण के उस विभाग को कहते हैं जिसमें शब्दों के भेद, रूपांतर और व्युत्पत्ति का वर्णन रहता है ।

(३) वाक्य-विन्यास व्याकरण के उस विभाग का नाम है जिसमें वाक्यों के अवयवों का परस्पर संबंध बताया जाता है और शब्दों से वाक्य बनाने के नियम दिये जाते हैं ।

सू०—कोई-कोई लेखक गद्य के समान पद्य को भाषा का एक भेद मानकर व्याकरण में उसके अंग—छंद, रस और अलंकार—का विवेचन करते हैं । पर ये विषय यथार्थ में साहित्य-शास्त्र के अंग हैं, जो भाषा को रोचक और प्रभावशालिनी बनाने के काम आते हैं । व्याकरण से इनका कोई संबंध नहीं है, इसलिए इस पुस्तक में इनका विवेचन नहीं किया गया है । इसी प्रकार कहावतें और मुहावरे भी जो बहुधा व्याकरण की पुस्तकों में भाषा-ज्ञान के लिए लिख दिये जाते हैं, व्याकरण के विषय नहीं हैं । केवल कविता की भाषा और काव्य-स्वतंत्रता का परोद्ध संबंध व्याकरण से है; अतएव ये विषय प्रस्तुत पुस्तक के परिशिष्ट में दिये जायेंगे ॥

२—हिंदी की उत्पत्ति

(१) आदिम भाषा ।

भिन्न-भिन्न देशों में रहनेवाली मनुष्य-जातियों के आकार, स्वभाव आदि की परस्पर तुलना करने से ज्ञात होता है कि उनमें आश्चर्य-जनक और अद्भुत समानता है । इससे विदित होता है कि सृष्टि के आदि में सब मनुष्यों के पूर्वज एक ही थे । वे एक ही स्थान पर रहते थे और एक ही-से आचार-व्यवहार करते थे । इसी प्रकार, यदि भिन्न-भिन्न भाषाओं के मुख्य-मुख्य नियमों और शब्दों की परस्पर तुलना की जाय तो उनमें भी विचित्र साहश्य दिखाई देता है । इससे यह प्रकट होता है कि हम सबके पूर्वज पहले एक ही भाषा बोलते थे । जिस प्रकार आदिम स्थान से पृथक होकर लोग जहाँ-तहाँ चले गये और भिन्न-भिन्न जातियों में विभक्त हो गये, उसी प्रकार उस आदिम भाषा से भी कितनी ही भिन्न-भिन्न भाषाएँ उत्पन्न हो गईं ।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मनुष्य पहले-पहल एशिया खंड के मध्य भाग में रहता था । जैसे-जैसे उसकी संतति बढ़ती गई, क्रम-क्रम से लोग अपना मूल-स्थान छोड़ अन्य देशों में जा बसे । इसी प्रकार यह भी एक अनुमान है कि नाना प्रकार की भाषाएँ एक ही मूल भाषा से निकली हैं । पाश्चात्य विद्वान् पहले यह समझते थे कि इन्हानी भाषा से, जिनमें यहूदी लोगों के धर्म प्रथ हैं, सब भाषाएँ निकली हैं; परंतु उन्हें संस्कृत का ज्ञान होने और

शब्दों के मूल रूपों का पता लगने से यह ज्ञात हुआ है कि एक ऐसी आदिम भाषा से, जिसका अब पता लगना कठिन है, संसार की सब भाषाएँ निकली हैं और वे तीन भागों में बाँटी जा सकती हैं—

(१) आर्य-भाषाएँ—इस भाग में संस्कृत, प्राकृत (और उससे निकली हुई भारतवर्ष की प्रचलित आर्य-भाषाएँ), अंग-रेजी, फारसी, यूनानी, लैटिन, आदि भाषाएँ हैं।

(२) शामी भाषाएँ—इस भाग में इत्तानी, अरबी और हज्वरी भाषाएँ हैं।

(३) तूरानी भाषाएँ—इस भाग में मुगली, चीनी, जापानी, द्राविड़ी (दक्षिणी हिंदुस्तान की भाषाएँ), तुर्की, आदि भाषाएँ हैं।

(२) आर्य-भाषाएँ ।

इस बात का अभी तक ठीक-ठीक, निर्णय नहीं हुआ है कि संपूर्ण आर्य-भाषाएँ—फारसी, यूनानी, लैटिन, रूसी, आदि—बैदिक संस्कृत से निकली हैं अथवा और-और भाषाओं के साथ-साथ यह पिछली भाषा भी आदिम आर्य-भाषा से निकली है। जो भी हो, यह बात अवश्य निश्चित हुई है कि आर्य-लोग, जिनके नाम से उनकी माषाएं प्रख्यात हैं, आदिम स्थान से इधर-उधर गये और भिन्न-भिन्न देशों में उन्होंने अपनी भाषाओं की नींव ढाली। जो लोग पश्चिम को गये उनसे ग्रीक, लैटिन, अँगरेजी, आदि आर्य-भाषाएँ बोलनेवाली जातियों की उत्पत्ति हुई। जो लोग पूर्व को आये उनके दो भाग हो गये। एक भाग फारस को गया और दूसरा हिंदूकृश को पारकर काबुल की तराई में से होता हुआ हिंदुस्थान पहुँचा। पहले भाग के लोगों ने ईरान में

मीढ़ी (मादी) भाषा के द्वारा फारसी को जन्म दिया और दूसरे भाग के लोगोंने संस्कृत का प्रचार किया, जिससे प्राकृत के द्वारा इस देश की प्रचलित आर्य-भाषाएँ निकली हैं। प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकली हुई इनहीं भाषाओं में से हिंदी भी है। भिन्न-भिन्न आर्य-भाषाओं की समानता दिखाने के लिए कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं—

संस्कृत	मीढ़ी	फारसी	यूनानी	लैटिन	अङ्गरेजी	हिंदी
पितृ	पतर	पिदर	पाटेर	पेटर	फादर	पिता
मातृ	मतर	मादर	माटेर	मेटर	मदर	माता
भ्रातृ	ब्रतर	ब्रादर	फ्राटेर	फ्रेटर	ब्रदर	भाई
दुहितृ	दुग्धर	दुख्तर	थिगाटेर	०	डाटर	धीं
एक	यक	यक	हैन	अन	वन	एक
द्वि, द्वौ	द्व	दू	हुओ	हुओ	द्व	दो
त्रि	थृ	०	ह	ह	थी	तीन
नाम	नाम	नाम	ओनोमा	नामेन	नेम	नाम
अस्ति	अहिं	अम	ऐमी	सम	एम	है
ददामि	दधामि	दिहम	डिडोमी	डो	०	दें

इस तालिका से जान पड़ता है कि निकटवर्ती देशों की भाषाओं में अधिक समानता है और दूरवर्ती देशों की भाषाओं में अधिक भिन्नता। यह भिन्नता इस बात की भी सूचक है कि यह भेद वास्तविक नहीं है और न आदि में था, किंतु वह पीछे से हो गया है।

(३) संस्कृत और प्राकृत ।

जब आर्य-लोग पहले-पहले भारतवर्ष में आये तब उनकी भाषा प्राचीन (वैदिक) संस्कृत थी । इसे देववाणी भी कहते हैं, क्योंकि वेदों की अधिकांश भाषा यही है । रामायण, महाभारत और कालिदास आदि के काव्य जिस परिमार्जित भाषा में हैं वह बहुत पीछे की है । अष्टाध्यायी आदि व्याकरणों में 'वैदिक' और 'लौकिक' नामों से दो प्रकार की भाषाओं का उल्लेख पाया जाता है और दोनों के नियमों में बहुत कुछ अंतर है । इन दोनों प्रकार की भाषाओं में विशेषताएँ हैं कि एक तो संज्ञा के कारकों की विभक्तियाँ संयोगात्मक हैं, अर्थात् कारकों में भेद करने के लिए शब्दों के अंत में अन्य शब्द नहीं आते; जैसे, मनुष्य शब्द का संबंध-कारक संस्कृत में "मनुष्यस्य" होता है, हिंदी की तरह "मनुष्य का" नहीं होता । दूसरे, किया के पुरुष और वचन में भेद करने के लिए पुरुषवाचक सर्वनाम का अर्थ किया के ही रूप से प्रकट होता है, चाहे उसके साथ सर्वनाम लगा हो या न लगा हो; जैसे, "गच्छति" का अर्थ "स गच्छति" (वह जाता है) होता है । यह संयोगात्मकता वर्तमान हिंदी के कुछ सर्वनामों में और संभाष्य-भविष्यत्काल में पाई जाती है, जैसे, मुझे, किसे, रहूँ, इत्यादि । इस विशेषता की कोई-कोई वात बंगली (बंगला) भाषा में भी अब तक पाई जाती है; जैसे "मनुष्येर" (मनुष्य का) संबंधकारक में और "कहिलाम" (मैंने कहा) उत्तम पुरुष में । आगे चलकर संस्कृत की यह संयोगात्मकता चलकर विच्छेदात्मकता हो गई ।

अशोक के शिलालेखों और पतंजलि के प्रथों से जान पड़ता है कि इससी सन के कोई तीन सौ वरस पहले उत्तरी भारत में

एक ऐसी भाषा प्रचलित थी जिसमें भिन्न-भिन्न कई बोलियाँ शामिल थीं। ख्यालों, वालकों और शूद्रों से आर्य-भाषा का उत्पादन ठीक-ठीक न बनने के कारण इस नई भाषा का जन्म हुआ था और इसका नाम “प्राकृत” पड़ा। “प्राकृत” शब्द “प्रकृति” (मूल) शब्द से बना है और उसका अर्थ “स्वाभाविक” वा “गँवारी” है। वेदों में गाथा नाम से जो छंद पाये जाते हैं उनकी भाषा पुरानी संरकृत से कुछ भिन्न है, जिससे जान पड़ता है कि वेदों के समय में भी प्राकृत भाषा थी। सुविधा के लिए वैदिक काल की इस प्राकृत को हम पहली प्राकृत कहेंगे और ऊपर जिस प्राकृत का उल्लेख हुआ है उसे दूसरी प्राकृत। पहली प्राकृत ही ने कई शताव्दियों के पीछे दूसरी प्राकृत का रूप धारण किया। प्राकृत का जो सबसे पुराना व्याकरण मिलता है वह वररुचि का बनाया है। वररुचि इसबी सान के पूर्व पहली सदी में हो गये हैं। वैदिक काल के विद्वानों ने देववाणी को प्राकृत-भाषा की भष्टता से बचाने के लिए उसका संस्कार करके व्याकरण के नियमों से उसे नियंत्रित कर दिया। इस परिमार्जित भाषा का नाम ‘संस्कृत’ हुआ जिसका अर्थ “सुधारा हुआ” अथवा “बनावटी” है। यह संस्कृत भी पहली प्राकृत की किसी शाखा से शुद्ध होकर उत्पन्न हुई है। संस्कृत को नियमित करने के लिए किन्तने ही व्याकरण बने जिनमें से पाणिनि का व्याकरण सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित है। विद्वान् लोग पाणिनि का समय ₹० सन् के पूर्व सातवीं सदी में स्थिर करते हैं और संस्कृत को उनसे सौ वर्ष पीछे तक प्रचलित मानते हैं।

पहली प्राकृत में संस्कृत की संयोगात्मकता तो बैसी ही थी; परंतु व्यंजनों के अधिक प्रयोग के कारण उसकी कर्ण-कटुता बहुत

बढ़ गई थी। पहली और दूसरी प्राकृत में अन्य भेदों के सिवा यह भी एक भेद हो गया था कि कर्ण-कटु व्यंजनों के स्थान पर स्वरों की मधुरता आ गई, जैसे 'रघु' का 'रहु' और 'जीवलोक' का 'जीश्लोअ' हो गया।

बौद्ध-धर्म के प्रचार से दूसरी प्राकृत की बढ़ी उन्नति हुई। आजकल यह दूनरी प्राकृत पाली-भाषा के नाम से प्रसिद्ध है। पाली में प्राकृत का जो रूप था उसका विकास धीरे-धीरे होता गया और कुछ समय बाद उसकी तीन शाखाएँ हो गई, अर्थात् शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री। शौरसेनी-भाषा बहुधा उस प्रांत में बोली जाती थी जिसे आजकल संयुक्त-प्रदेश कहते हैं। मागधी भगव-देश और विहार की भाषा थी और महाराष्ट्री का प्रचार दक्षिण के बंधव हैं, बरार आदि प्रांतों में था। विहार और संयुक्तप्रदेश के मध्य भाग में एक और भाषा थी जिसको अर्द्ध-मागधी कहते थे। वह शौरसेनी और मागधी के मेल से बनी थी। कहते हैं कि जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी इसी अर्द्धमागधी में जैन धर्म का उपदेश देते थे। पुराने जैन भंथ भी इसी भाषा में हैं। बौद्ध और जैन-धर्म के संस्थापकों ने अपने धर्मों के सिद्धांत सर्व-प्रिय बनाने के लिए अपने अंथ बोलचाल की भाषा अर्थात् प्राकृत में रखे थे। किर काव्यों और नाटकों में भी उसका प्रयोग हुआ।

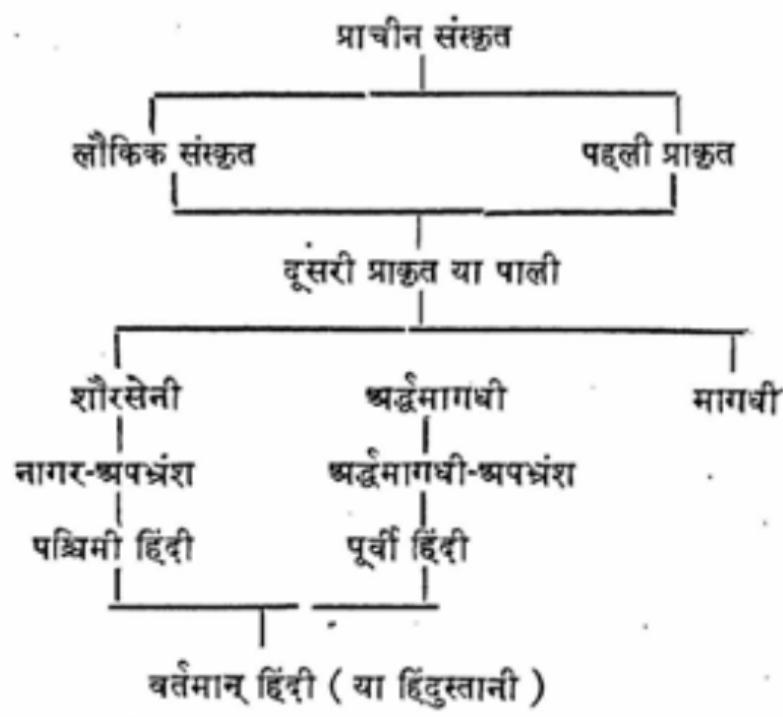
थोड़े दिनों पीछे दूसरी प्राकृत में भी परिवर्तन हो गया। लिखित प्राकृत का विकास रुक गया, परंतु कथित प्राकृत विकसित अर्थात् परिवर्तित होती गई। लिखित प्राकृत के आचार्यों ने इसी विकासपूर्ण भाषा का उल्लेख अपभ्रंश नाम से किया है। “अप-भ्रंश” शब्द का अर्थ “विगड़ी हुई” भाषा है। ये अपभ्रंश-भाषाएँ

भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न प्रकार की थीं। इनके प्रचार के समय का ठीक-ठीक पता नहीं लगता, पर जो प्रमाण मिलते हैं उनसे जाना जाता है कि ईसवी सन के न्यारहवें शतक तक अप-भ्रंश भाषा में कविता होती थी। प्राकृत के अंतिम वैयाकरण हेमचंद्र ने, जो बारहवें शतक में हुए हैं, अपने व्याकरण में अप-भ्रंश का उल्लेख किया है।

अपभ्रंशों में संस्कृत और दोनों प्राकृतों से यह भेद हो गया कि उनकी संयोगात्मकता जाती रही और उनमें विच्छेदात्मकता आ गई, अर्थात् कारकों का अर्थ प्रकट करने के लिए शब्दों में विभक्तियों के बदले अन्य शब्द मिलने लगे और क्रिया के रूप से सर्वनामों का बोध होना रुक गया।

प्रत्येक प्राकृत के अपभ्रंश पृथक्-पृथक् थे और वे भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रचलित थे। भारत की प्रचलित आर्य-भाषाएँ न संस्कृत से निकली हैं, और न प्राकृत से; किंतु अपभ्रंशों से। लिखित साहित्य में बहुधा एक ही अपभ्रंश भाषा का नमूना मिलता है जिसे नागर-अपभ्रंश कहते हैं। इसका प्रचार बहुत करके पश्चिम भारत में था। इस अपभ्रंश में कई बोलियाँ शामिल थीं, जो भारत के उत्तर की तरफ प्रायः समग्र पश्चिमी भाग में बोली जाती थीं। हमारी हिंदी भाषा दो अपभ्रंशों के मेल से बनी हैं—एक नागर-अपभ्रंश जिससे पश्चिमी हिंदी और पंजाबी निकली हैं; दूसरा, अद्भुतमार्गी का अपभ्रंश जिससे पूर्व हिंदी निकली है, जो अबध, बघेलखंड और छत्तीसगढ़ में बोली जाती है।

नीचे लिखे वृत्त से हिंदी-भाषा की उत्पत्ति ठीक-ठीक प्रकट हो जायगी।



(४) हिंदी ।

प्राकृत भाषाएँ ईसबी सन् के कोई आठनौ सौ वर्ष तक और अपभ्रंश-भाषाएँ ब्यारहवें शतक तक प्रचलित थीं । हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण में हिंदी की प्राचीन कविता के उदाहरणों पाये जाते हैं । जिस भाषा में मूल “पृथ्वीराज रासो” लिखा गया है

“भज्ञा हुआ तु मारिया, बहिणि महारा कंतु ।
लज्जे जंतु वर्येसिश्रहु जाइ भग्ना घर एंतु ॥”

(हे बहिन, भज्ञा हुआ जो मेरा पति मर गया । यदि भग्ना हुआ घर आता तो मैं सखियों में लज्जित होती ।)

उसमें “षट्-भाषा”* का मेल है। इस “काव्य” में हिंदी का पुराना रूप पाया जाता है। इन उदाहरणों से जान पढ़ता है कि हमारी वर्तमान हिंदी का विकास ईसवी सन् की बारहवीं सदी से हुआ है। “शिवसिंह सरोज” में पुष्य नाम के एक कवि का उल्लेख है जो “भाखा की जड़” कहा गया है और जिसका समय सन् ७१३ ई० दिया गया है। परन्तु इस कवि की कोई रचना मिली है और न यह अनुमान हो सकता है कि उस समय हिंदी-भाषा आकृत अथवा अपञ्चंश से पृथक् हो गई थी। बारहवें शतक में भी यह भाषा अधबनी अवस्था में थी। तथापि, अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों का प्रचार मुसलमानों के भारत-प्रवेश के समय से होने लगा था। यह प्रचार यहाँ तक बढ़ा कि पीछे से भाषा के लक्षण में ‘पारसी’ भी रक्खी गई†।

विद्वान् लोग हिंदी-भाषा और साहित्य के विकास को नीचे लिखे चार भागों में बाँटते हैं—

१—आदि-हिंदी—यह उस हिंदी का नमूना है जो अपञ्चंश से पृथक् होकर साहित्य-कार्य के लिये बन रही थी। यह भाषा दो

॥ संस्कृतं प्राकृतं चैव शीरसेनी तदुद्धवा ।

ततोऽपि मागधी तद्वत् पैशाची देशजेति यत् ॥

† उचिष्ट छंद चंद्र बयन सुनत मु जंपिय नारि ।

तनु पवित्र पावन कविय उकति अनूठ उधारि ॥

अर्थ—‘छंद (कविता) उचिष्ट है’, चंद का यह बयन सुनकर स्त्री ने कहा—पावन कवियों की अनूठी शक्ति का उद्धार करने से शरीर पवित्र हो जाता है।

† ब्रज-भाखा भाखा रुचिर कहें सुमति सब कोय ।

मिली संस्कृत पारस्यौ पै अतिमुगम जु होय ॥ (काव्य-निर्णय)

कालों में बौद्धी जा सकती है—(१) बीर-काल (१२००-१४००) और धर्म-काल (१४००-१६००) ।

बीर-काल में यह भाषा पूर्ण रूप से विकसित न हुई थी और इसकी कविता का प्रचार अधिकतर राजपूताने में था । इससे बाहर के साहित्य की कोई विशेष उल्लेख नहीं हुई । उपी समय महोबे में जगनिक कवि हुआ, जिनके किसी प्रथ के आधार पर “आल्हा” की रचना हुई । आजकल इस काव्य की मूल-भाषा का ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता, क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रांतों के लोखाँ और गवैयों ने इसे अपनी-अपनी बोलियों का रूप दे दिया है । विद्वानों का अनुमान है कि इसकी मूल-भाषा बुद्देलखंडी थी और यह बात कवि की जन्मभूमि बुद्देलखंड में होने से पुष्ट होती है ।

प्राचीन हिंदी का समय बतानेवाली दूसरी रचना भक्तों के साहित्य में पाई जाती है जिसका समैय अनुमान से, १४००-१६०० है । इस काल के जिन-जिन कवियों के प्रथ आजतक लोगों में प्रचलित हैं उनमें से बहुतेरे वैष्णव थे और उन्हीं के मार्ग-प्रदर्शन से पुरानी हिंदी के उस रूप में, जिसे ब्रज-भाषा कहते हैं, कविता रची गई । वैष्णव-सिद्धांतों के प्रचार का आरंभ रामानुज से माना जाता है, जो दक्षिण के रहनेवाले थे और अनुमान से बारहवीं सदी में हुए हैं । उत्तर भारत में यह धर्म रामानंद स्वामी ने फैलाया, जो इस संप्रदाय के प्रचारक थे । इनका समय सन् १४०० ईसवी के लगभग माना जाता है । इनकी लिखी कुछ कविता सिक्खों के आदि-प्रथ में मिलती है और इनके रचे हुए भजन पूर्व में मिथिला तक प्रचलित हैं । रामानंद के चेतों में कबीर थे, जिनका समय १५१२ ईसवी के लगभग है । उन्होंने कई प्रथ लिखे हैं, जिनमें “साखी,” “शब्द,” “रेखता” और

“बीजक” अधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा* में ब्रज-भाषा और हिंदी के उस रूपांतर का मेल है जिसे लल्लू जी लाल ने (सन् १८०३ ई० में) “खड़ी-बोली” नाम दिया है। कबीर ने जो कुछ लिखा है वह धर्म-सुधारक की दृष्टि से लिखा है, लेखक की दृष्टि से नहीं। इसलिये उनकी भाषा साधारण और सहज है। लगभग इसी समय मीराबाई द्वारा जिन्होंने कृष्ण की भक्ति में बहुत सी कविताएँ की। इनकी भाषा कहीं भेदाही और कहीं ब्रज-भाषा है। इन्होंने “राग-गोविंद,” “गीत-गोविंद की टीका” आदि प्रथ्य लिखे। सन् १४६८ ई० से १५२८ तक बाबा नानक का समय है। ये नानक-पंथी संप्रदाय के प्रचारक और “आदि-प्रथा” के लेखक हैं। इस प्रथा की भाषा पुरानी पंजाबी होने के बदले पुरानी हिंदी है। शेरशाह (१५४०) के आश्रय में मलिक मुहम्मद जायसी ने “पद्मावत” लिखी, जिसमें सुल्तान अलाउद्दीन के चित्तौर का किला लेने पर बहाँ के राजा रत्नसेन की रानी पद्मावती के आत्मप्राप्ति की ऐतिहासिक कथा है। इस पुस्तक की भाषा अवधी है।

बैष्णव धर्म का एक और भेद है जिसमें लोग श्रीकृष्ण को अपना इष्ट-देव मानते हैं। इस संप्रदाय के संस्थापक बल्लभस्वामी थे जिनके पूर्वज दक्षिण के रहनेवाले थे। बल्लभस्वामी ने सोलहवीं सदी के आदि में उत्तर भारत में अपने मत का प्रचार

* मन का फेरत बुग गया गया न मन का फेर।
कर का मन का छाँड़ि दे मन का मनका फेर॥
नव द्वारे को पौजरा तामे पंछी पौन।
रहिये को आचर्ज हैं गये अचर्चमा कौन॥

† यह एक अन्योक्ति भी है जिसमें सत्य ज्ञान के लिए आत्मा की खोज का और उस खोज में आनेवाले विज्ञों का वर्णन है।

किया । इनके आठ शिष्य थे, जो “अष्टलाप” के नाम से प्रसिद्ध हैं । ये आठों कवि ब्रज में रहते थे और ब्रजभाषा में कविता करते थे । इनमें सूरदास मुख्य हैं, जिनका समय सन् १५५० ई० के लगभग है । कहते हैं, इन्होंने सबा लाख पद* लिखे हैं, जिनका संग्रह “सूर-सागर” नामक प्रथम में है । इस प्रथ के चौरासी गुरुओं का वर्णन “चौरासीवाच्ची” नामक प्रथ में पाया जाता है, जो ब्रजभाषा के ग्रन्थ में लिखा गया है, पर इस प्रथ का समय निश्चित नहीं है ।

अकबर (१५५६-१६०५ ई०) के समय में ब्रजभाषा की कविता की अच्छी उन्नति हुई । अकबर स्वयं ब्रजभाषा में कविता करते थे और उनके दरबार में हिंदू कवियों के साथ रहीम, कैजी, फहीम आदि मुसलमान कवि भी इस भाषा में रचना करते थे । हिंदू कवियों में टोडरमल, बीरबल, नरहरि, हरिनाथ, करनेश और गंग आदि अधिक प्रसिद्ध थे ।

२—मध्य-हिंदी—यह हिंदी-कविता के सत्ययुग का नमूना है जो अनुमान से सन् १६०० से लेकर १८०० ई० तक रहा । इस काल में केवल कविता और भाषा ही की उन्नति नहीं हुई बरन साहित्य-विषय के भी अनेक उत्तम और उपयोगी प्रथ लिखे गये । मध्य-हिंदी के कवियों में सब से प्रसिद्ध गुसाई तुलसीदास जी हुए, जिनका समय सन् १५७३ से १६२४ ई० तक है । उन्होंने हिंदी में एक महाकाव्य लिखकर भाषा का गौरव बढ़ाया और सर्व-साधारण में वैष्णव धर्म का प्रचार किया । राम के अनन्य भक्त होने

* संभवतः सूरदासजी के पदों की संख्या सबा लाख अनुष्ठुप् श्लोकों के बराबर होगी । इससे भ्रमवश लोगों ने सबा लाख पदों की बात प्रचलित कर दी । ग्रंथ का वित्तार बताने के लिए प्राचीन काल से अनुष्ठुप् छुंद एक प्रकार की नाम मान लिया गया है ।

पर भी गोसाइंजी ने शिव और राम में भेद नहीं माना और मत-मतांतर का विवाद नहीं बढ़ाया। वैराग्य-वृत्ति के कारण उन्होंने श्रीकृष्ण की भक्ति और लीलाओं के विषय में बहुत नहीं लिखा, तथापि, “कृष्णगीतावली” में इन विषयों पर यथेष्ट और मनोहर रचना की है।

तुलसीदास ने ऐसे समय में रामायण की रचना की जब मुगल राज्य दृढ़ हो रहा था और हिंदू समाज के वंधन अनीति के कारण ढीले हो रहे थे। मनुष्य के मानसिक विकारों का जैसा अच्छा चित्र तुलसीदास ने खींचा है वैसा और कोई नहीं खींच सका।

रामायण की भाषा अवधी है; पर वह बैसबाड़ी से विशेष मिलती जुलती है। गोसाइंजी के और प्रथों में अधिकांश ब्रज-भाषा है।

इस काल के दूसरे प्रसिद्ध कवि केशवदास, विहारीलाल, भूषण, मतिराम और नाभादास हैं।

केशवदास प्रथम कवि हैं जिन्होंने साहित्य-विषयक प्रथ रचे। इस विषय के इनके प्रथ “कविप्रिया,” “रसिकप्रिया” और “रामालंकृत-मंजरी” हैं। “रामचंद्रिका” और “विज्ञान-गीता” भी इनके प्रसिद्ध प्रथ हैं। इनकी भाषा में संस्कृत-शब्दों की बहुतायत है। इनकी योग्यता की तुलना सूरदास और तुलसीदास से की जाती है। इनका मरण-काल अनुमान से सन् १६१२ ईसवी है। विहारीलाल ने १६५० ईसवी के लगभग “सतसई” समाप्त की। इस प्रथ-रत्न में काव्य के प्रायः सब गुण विद्यमान हैं। इसकी भाषा शुद्ध ब्रज-भाषा है। “विहारी-सतसई” पर कई कवियों ने टीकाएँ लिखी हैं। भूषण ने १६७३ ईसवी में “शिवराज-भूषण” बनाया और कई अन्य प्रथ लिखे। इनके प्रथों में देश-

भक्ति और धर्माभिमान खूब दिखाई देता है। इनकी कुछ कविता मळड़ी बोली में भी है और अधिकांश कविता वीर-रस से भरी हुई है। चिंतामणि और मतिराम भूषण के भाई थे, जो भाषा-साहित्य के आचार्य माने जाते हैं। नाभादास जाति के ढोम थे और तुलसीदास के समकालीन थे। इन्होंने ब्रजभाषा में “भक्त-माल” नामक पुस्तक लिखी जिसमें अनेक वैष्णव भक्तों का संचित वर्णन है।

इस काल के उत्तरार्द्ध (१७००—१८०० ईसवी) में राज्य-क्रांति के कारण कविता की विशेष उन्नति नहीं हुई। इस काल के प्रसिद्ध कवि प्रियादास, कृष्णकवि, भिखारीदास, ब्रजवासीदास, और सूरति मिश्र हैं। प्रियादास ने सन् १७१२ ईसवी में “भक्तमाल” पर एक (पद्य) टीका लिखी। कृष्णकवि ने “विद्वारीसत्सई” पर सन् १७२० के लगभग एक टीका रची। भिखारीदास सन् १७२३ के लगभग हुए और साहित्य के अच्छे लेखक समझे जाते हैं। इनके प्रसिद्ध प्रथं “छुंदोऽर्णव” और “काव्य निर्णय” हैं। ब्रजवासीदास ने सन् १७७० ई० में “ब्रज-विलास” लिखा, जो विशेष लोक-प्रिय है। सूरति मिश्र ने इसी समय में ब्रजभाषा के गद्य में “बैताल-पचीसो” नामक एक प्रथं लिखा। यही कवि गद्य के प्रथम लेखक हैं।

३—आधुनिक हिंदी—यह काल सन् १८०० से १९०० ईसवी तक है। इसमें हिंदी-गद्य की उत्पत्ति और उन्नति हुई। अंगरेजी राज की स्थापना और छापे के प्रचार से इस शताब्दी में हिंदी गद्य और पद्य की अनेक पुस्तकें बनी और छर्पी। साहित्य के सिवा इतिहास, भूगोल, व्याकरण, पदार्थ-विज्ञान और धर्म पर इस काल में कई पुस्तकें लिखी गईं। सन् १८५७ ई० के विद्रोह के पीछे देश में शांति-स्थापना होने पर समाचार-पत्र, मासिक-पत्र,

नाटक, उपन्यास और समालोचना का आरंभ हुआ। हिंदी की उन्नति का एक विशेष चिह्न इस समय यह है कि इसमें खड़ी-बोली (बोलचाल की भाषा) की कविता लिखी जाती है। इसके साथ ही हिंदी में संस्कृत शब्दों का निरंकुश प्रयोग भी बढ़ता जाता है। इस काल में शिक्षा के प्रचार से हिंदी की विशेष उन्नति हुई।

पादरी गिलकाइस्ट की प्रेरणा से लल्लूजी लाल ने सन् १८०४ ई० में “प्रेमसागर” लिखा, जो आधुनिक हिंदी-गद्य का अथवा ग्रन्थ है। इनके बनाये और प्रसिद्ध ग्रन्थ “राजनीति” (ब्रज-भाषा के गद्य में), “सभा-विलास,” “लाल-चंद्रिका” (“बिहारी-सत्तसई” पर टीका), “सिंहासन-बत्तीसी” और “बैताल-पचोसी” हैं। इस काल के प्रसिद्ध कवि पद्माकर (१८१५), ग्वाल (१८१५), पञ्जनेश (१८१६), रघुराजसिंह (१८३४), दीनदयालगिरि (१८५५) और हरिशचंद्र (१८८०) हैं।

गद्य लेखकों में लल्लूजीलाल के पश्चात् पादरी लोगों ने कई विषयों की पुस्तकें अँगरेजी से अनुवाद कराकर छपवाईं। इसी समय से हिंदी में ईसाई धर्म की पुस्तकों का छपना आरंभ हुआ। शिक्षा-विभाग के लेखकों में पं० श्रीलाल, पं० वंशीधर बाजपेयी औह राजा शिवप्रसाद हैं। शिवप्रसाद ऐसी हिंदी के पचपाती थे जिसे हिंदू-मुसलमान दोनों समझ सकें। इनकी रचना प्रायः उर्दू-हिंदी की होती थी। आर्य-समाज की स्थापना से साधारण लोगों में बैदिक विषयों की चर्चा और धर्म-संबंधी हिंदी की अच्छी उन्नति हुई। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी की विशेष उन्नति की है। उसने गत अर्द्ध-शताब्दि में अनेक विषयों के न्यूनाधिक सौ उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं जिन में सर्वांग-पूर्ण हिंदी-कोश और हिंदी व्याकरण मुख्य हैं। उसने प्राचीन हस्त-

लिखित पुस्तकों की नियम-बद्ध खोज कराकर अनेक दुर्लभ ग्रंथों का भी प्रकाशन किया है। प्रयाग की हिंदी-साहित्य-सम्मेलन नामक संस्था-हिंदी की उच्च परीक्षाओं का प्रबंध और संपूर्ण देश में उसका प्रचार राष्ट्र-भाषा के रूप में कर रही है। उसने कई एक उपयोगी पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं।

इस काल के और प्रसिद्ध लेखक राजा लक्ष्मणसिंह, पं० अंबि-कादत व्यास, राजा शिवप्रसाद और भारतेन्दु हरिशंद्र हैं। इन सब में भारतेन्दु जी का आसन ऊँचा है। उन्होंने केवल ३५ वर्ष की आयु में कई विषयों की अनेक पुस्तकें लिखकर हिंदी का उपकार किया और भावी लेखकों को अपनी मातृ-भाषा की उन्नति का मार्ग बताया। भारतेन्दु के पश्चात् वर्तमान काल में सब से प्रसिद्ध लेखक और कवि पं० महावोर प्रसाद द्विवेदी, पं० श्रीधर पाठक, पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय और बाबू मैथिलीशरण हैं जिन्होंने उच्च कोटि के अनेक ग्रंथ लिखकर हिंदी भाषा और साहित्य का गौरव बढ़ाया है। आधुनिक-काल के अन्य प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद, पं० सुमित्रा-नंदन पंत, बाबू जयशंकर प्रसाद पं० सूर्यकांत त्रिपाठी, पं० माखन लाल चतुरेंदी, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, नंदुलारे बाजपेयी, जैनेन्द्रकुमार, दिनकर, वशन, श्याम-सुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल और रामचंद्र वर्मा हैं। कवियित्रियों में श्रीमती महादेवी वर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान प्रसिद्ध हैं।

(५) हिंदी और उदूँ।

'हिंदो' नाम से जो भाषा हिंदुस्थान में प्रसिद्ध और प्रचलित है उसके नाम, रूप और विस्तार के विषय में विद्वानों का मत-भेद है। कई लोगों की राय में हिंदो और उदूँ एकही भाषा हैं और कई लोगों की राय में ये दोनों अलग-अलग दो बोलियाँ हैं। राजा

शिवप्रसाद सद्गुरु महाशयों की युक्ति यह है कि शहरों और पाठ-
शालाओं में हिंदू और मुसलमान कुछ सामाजिक तथा धर्म-संबंधी
और वैज्ञानिक शब्दों को छोड़कर प्रायः एकही भाषा में बातचीत
करते हैं और एक दूसरे के विचार पूर्णतया समझ लेते हैं। इसके
विरुद्ध राजा लक्ष्मणसिंह सद्गुरुओं का पक्ष यह है कि जिन
दो जातियों का धर्म, व्यवहार, विचार, सभ्यता और उद्देश एक
नहीं हैं उनकी भाषा पूर्णतया एक कैसे हो सकती है? जो हो,
साधारण लोगों में आजकल हिंदुस्थानियों की भाषा हिंदी और
मुसलमानों की भाषा उदूँ प्रसिद्ध है। भाषा का मुसलमानी
रूपांतर केवल हिंदी ही में नहीं, बरन बंगला, गुजराती, आदि
भाषाओं में भी पाया जाता है। “हिंदी-भाषा की उत्पत्ति” नामक
पुस्तक के अनुसार हिंदी और उदूँ हिंदुस्तानी की शाखाएँ हैं जो
पश्चिमी हिंदी का एक भेद है। इस भाषा का “हिंदुस्तानी” नाम
आँगरेजों का रक्खा हुआ है और उससे बहुधा उदूँ का बोध
होता है। हिंदू लोग इस शब्द को “हिंदुस्तानी” कहते हैं और
इसे बहुधा “हिंदी बोलनेवाली जाति” के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।

हिंदी कई नामों से प्रसिद्ध है; जैसे, भाषा, हिंदवी (हिंदुई),
हिंदी, खड़ीबोली और नागरी। इसी प्रकार मुसलमानों की भाषा
के भी कई नाम हैं। वह हिंदुस्तानी, उदूँ, रेखता और दक्षिणी
कहलाती के। इनमें से बहुतसे नाम दोनों भाषाओं का व्यार्थ
रूप निश्चित न होने के कारण दिये गये हैं।

हमारी भाषा का सब से पुराना नाम केवल “भाषा” है।
महामहोपाध्याय वं० सुधाकर द्विवेदी के अनुसार यह नाम
भास्तवी की टीका में आया है जिसका समय सं० १४८५ है।
तुलसीदास ने रामायण में “भाषा” शब्द लिखा है, पर अपने
फारसी पंचनामे में “हिंदवी” शब्द का प्रयोग किया है। बहुधा

पुस्तकों के नामों में और टीकाओं में यह शब्द आजतक प्रचलित है; जैसे, “भाषा-भास्कर,” “भाषा-टीका-सहित,” इत्यादि। पादरी आदम साहब की लिखी और सन् १८३७ में दूसरी बार छपी “उपदेश-कथा” में इस भाषा का नाम “हिंदुवी” लिखा है। इन उदाहरणों से जान पड़ता है कि हमारी भाषा का “हिंदी” नाम आधुनिक* है। इसके पहले हिंदू लोग इसे “भाषा” और मुसलमान लोग “हिंदुई” या “हिंदवी” कहते थे। लल्लूजी लाल ने प्रेम-सागर में (सन् १८०४ में) इस भाषा का नाम “खड़ी-बोली†” लिखा है जिसे आजकल कुछ लोग न जाने क्यों “खरी बोली” कहने लगे हैं। आजकल “खड़ी-बोली” शब्द केवल कविता की भाषा के लिए आता है, यद्यपि गश्त की भाषा भी “खड़ी-बोली” है। लल्लूजी लाल ने एक जगह अपनी भाषा का नाम “रेखते की बोली” भी लिखा है। “रेखता” शब्द कथीर के एक ग्रन्थ में भी आया है, पर वहाँ उसका अर्थ “भाषा” नहीं है, किंतु एक प्रकार का “छंद” है। जान पड़ता है कि फारसी-अरबी शब्द मिलाकर भाषा में जो फारसी छंद रचे गये उनका नाम रेखता (अर्थात् मिला हुआ) रक्खा गया और फिर पीछे से यह शब्द मुसलमानों की कविता की बोली के लिये प्रयुक्त होने लगा। यह भी एक अनुमान है कि मुसलमानों में रेखता का प्रचार बढ़ने के कारण हिंदुओं की भाषा का नाम “हिंदुई” या (हिंदवी) रक्खा गया। इस “हिंदवी” में जिसे आजकल “खड़ी-बोली” कहते हैं,

* सन् १८४६ में दूसरी बार छपी “पदार्थविद्यासार” नामक पुस्तक में “हिंदी-भाषा” नाम आया है।

† ब्रज-भाषा के ओकारों रूपों से मिलान करने पर हिंदी के आकारों-रूप ‘खड़े’ जान पड़ते हैं। बुंदेलखण्ड में इस भाषा को ठाड़ी बोली, या ‘तुक्की’ कहते हैं।

कवीर, भूषण, नागरीदास आदि कुछ कवियों ने थोड़ी-बहुत कविता की है; पर अधिकांश हिंदू कवियों ने श्रीकृष्ण की उपासना और भाषा की मधुरता के कारण ब्रज-भाषा का ही उपयोग किया है।

आरंभ में हिंदुई और रेख्ता में थोड़ा ही अंतर था। अमीर खुसरो जिनकी मृत्यु सन् १३२५ ई० में हुई, मुसलमानों में सर्व-प्रथम और प्रधान कवि माने जाते हैं। उनकी भाषाओं से जान पढ़ता है कि उस समय तक हिंदी में मुसलमानी शब्दों और फारसी ढंग की रचना की भरमार न हुई थी और मुसलमान लोग शुद्ध हिंदी लिखते-पढ़ते थे। जब देहली के बाजार में तुर्क, अफगान फारसबालों का संपर्क हिंदुओं से होने लगा और वे लोग हिंदी शब्दों के बदले अरबी, फारसी के शब्द बहुतायत से मिलाने लगे तब रेख्ता ने दूसरा हाँ रूप धारण किया और उसका नाम “उर्दू” पड़ा। “उर्दू” शब्द का अर्थ “लक्ष्यकर” है। शाहजहाँ के समय में उर्दू की बहुत उन्नति हुई छिससे “खड़ी-बोली” की उन्नति में बाधा पड़ गई।

हिंदी और उर्दू मूल में एक ही भाषा हैं। उर्दू हिंदी का केवल मुसलमानी रूप है। आज भी कई शतक बीत जाने पर इन दोनों में विशेष अंतर नहीं; पर इनके अनुयायी लोग इस नाम-मात्र के अंतर को बृथा ही बढ़ा रहे हैं। यदि हम लोग हिंदी में संस्कृत के और मुसलमान उर्दू में अरबी-फारसी के शब्द कम लिखें तो दोनों भाषाओं में बहुत थोड़ा भेद रह जाय और संभव है, किसी दिन,

* तरबर से एक तिरिया उत्तरी, उसने खूब रिभाया।

बाप का उसके नाम जो पूँछा, आधा नाम चताया ॥

आधा नाम पिता पर बाका, अपना नाम निचोरी ॥

अमीर खुसरो यो कहै, बूझ पहेली मोरी ॥

दोनों समुदायों की लिपि और भाषा एक हो जायें। धर्म-भेद के कारण पिछली शताब्दि में हिंदी और उर्दू के प्रचारकों में परस्पर खींचातानी शुरू हो गई। मुसलमान हिंदी से घृणा करने लगे और हिंदुओं ने हिंदी के प्रचार पर जोर दिया। परिणाम यह हुआ कि हिंदी में संस्कृत-शब्द और उर्दू में अरबी-फारसी के शब्द बहुत मिल गये और दोनों भाषाएँ किट्ठ हो गईं। इन दिनों कई राजनीतिक कारणों से हिंदी उर्दू का विवाद और भी बढ़ रहा है और “हिंदुस्तानी” के नाम से एक खिचड़ी भाषा की रचना की जा रही है जो न शुद्ध हिंदी होगी और न शुद्ध उर्दू।

आरंभ ही से उर्दू और हिंदी में कई बातों का अंतर भी रहा है। उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरबी-फारसी शब्दों की विशेष भरमार रहती है। इसकी वाक्य-रचना में बहुधा विशेष्य विशेषण के पहले आता है और (कविता में) फारसी के संबोधन कारक का रूप प्रयुक्त होता है। हिंदी के संबंध-वाचक सर्वनाम के बदले उसमें कभी कभी फारसी का संबंध-वाचक सर्वनाम आता है। इसके सिवा रचना में और भी दो एक बातों का अंतर है। कोई-कोई उर्दू लेखक इन विदेशी शब्दों के लिखने में सीमा के बाहर चले जाते हैं। उर्दू और हिंदी की छंद-रचना में भी भेद है। मुसलमान लोग फारसी-अरबी के छंदों का उपयोग करते हैं। फिर उनके साहित्य में मुसलमानी इतिहास और दृतकथाओं के उल्लेख बहुत रहते हैं। शेष बातों में दोनों भाषाएँ प्रायः एक हैं।

कुछ लोग समझते हैं कि वर्तमान हिंदी की उत्पत्ति लल्लूजी लाल ने उर्दू की सहायता से की है। यह भूल है। ‘प्रेमसागर’ की भाषा दो-आव भौम में पहले ही से बोली जाती थी। उन्होंने उसी भाषा का प्रयोग “प्रेमसागर” में किया और आवश्यकतानुसार उसमें

संस्कृत के शब्द भी मिलाये । मेरठ के आसपास और उसके कुछ उत्तर में यह भाषा अब भी अपने विशुद्ध रूप में बोली जाती है । वहाँ इसका वही रूप है जिसके अनुसार हिंदी का व्याकरण बना है । यथापि इस भाषा का नाम “उदू” या “खड़ी-बोली” नया है तो भी उसका यह रूप नया नहीं, किंतु उतना ही पुराना है जितने उसके दूसरे रूप—बजभाषा, अवधी, बुँदेलखंडी आदि, हैं । देहली में मुसलमानों के संयोग से हिंदी-भाषा का विकास जरूर हुआ और इसके प्रचार में भी बृद्धि हुई । इस देश में जहाँ-जहाँ मुगल बादशाहों के अधिकारी गये वहाँ-वहाँ वे अपने साथ इस भाषा को भी लेते गये ।

कोई-कोई लोग हिंदी भाषा को “नागरी” कहते हैं । यह नाम अभी हाल का है और वेब-नागरी लिपि के आधार पर रखा गया जान पड़ता है । इस भाषा के तीन नाम और प्रसिद्ध हैं—
 (१) ठेठ हिंदी (२) शुद्ध हिंदी और (३) उच्च हिंदी । “ठेठ हिंदी” हमारी भाषा के उस रूप को कहते हैं जिसमें “हिंदवो छुट् और किसी बोली की पुट् न मिले ।” इसमें बहुधा तद्द्रवक्षं शब्द आते हैं । “शुद्ध हिंदी” में तद्द्रव शब्दों के साथ तत्मसां शब्दों का भी प्रयोग होता है, पर उसमें विदेशी शब्द नहीं आते । “उच्च हिंदी” शब्द कई अर्थों का बोधक है । कभी-कभी प्रांतिक भाषाओं से हिंदी का भेद बताने के लिए इस भाषा को “उच्च हिंदी” कहते हैं । अँगरेज लोग इस नाम का प्रयोग बहुधा इसी अर्थ में करते हैं । कभी-कभी “उच्च हिंदी” से वह भाषा समझी जाती है जिसमें अनावश्यक संस्कृत-शब्दों की भरमार की जाती है और कभी-कभी यह नाम केवल “शुद्ध हिंदी” के पर्याय में आता है ।

* इसका अर्थ आगामी प्रकरण में लिखा जायगा ।

† इसका अर्थ आगामी प्रकरण में लिखा जायगा ।

(६) तत्सम और तद्भव शब्द ।

उन शब्दों को छोड़कर जो फारसी, अरबी, तुर्की, अँगरेजी आदि विदेशी भाषाओं के हैं (और जिनकी संख्या बहुत थोड़ी—केवल दरमांश—है) अन्य शब्द हिंदी में मुख्य तीन प्रकार के हैं—

(१) तत्सम

(२) तद्भव

(३) अर्द्ध-तत्सम

तत्सम वे संस्कृत शब्द हैं जो अपने असली स्वरूप में हिंदी भाषा में प्रचलित हैं; जैसे, राजा, पिता, कवि, आज्ञा, अग्नि, वायु चत्स, धाता, इत्यादिक्षण ।

तद्भव वे शब्द हैं जो या तो सीधे प्राकृत से हिंदी-भाषा में आ गये हैं या प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं; जैसे, राय, खेत, दाहिना, किसान ।

अर्द्ध-तत्सम उन संस्कृत शब्दों को कहते हैं जो प्राकृत-भाषा चोलनेवालों के उच्चारण से विगड़ते विगड़ते कुछ और ही रूप के हो गये हैं; जैसे, बच्छ, अग्नां, मुँह, बंस, इत्यादि ।

बहुत से शब्द तीनों रूपों में मिलते हैं; परंतु कई शब्दों के सब रूप नहीं पाये जाते । हिंदी के कियाशब्द प्रायः सबके सब तद्भव हैं । यही अवस्था सर्वनामों की है । बहुत से संज्ञा शब्द तत्सम या तद्भव हैं और कुछ अर्द्ध-तत्सम हो गये हैं ।

तत्सम और तद्भव शब्दों में रूप की भिन्नता के साथ साथ

* इस प्रकार के कई शब्द कई संदियों से भाषा में प्रचलित हैं । कोई कोई साहित्य के बहुत पुराने नमूनों में भी मिलते हैं; परंतु बहुत से वर्तमान शताब्दि में आये हैं । यह भरती अभी तक जारी है । जिस रूप में ये शब्द आते हैं वह बहुधा संकृत की प्रथमा के एकवचन का है ।

बहुधा अर्थ की भिन्नता भी होती है। तत्सम प्रायः सामान्य अर्थ में आता है, और तद्व शब्द विशेष अर्थ में; जैसे “स्थान” सामान्य नाम है, पर “थाना” एक विशेष स्थान का नाम है। कभी-कभी तत्सम शब्द से ग्रुहता का अर्थ निकलता है और तद्व से लघुता का; जैसे, “देखना” साधारण लोगों के लिए आता है, पर “दर्शन” किसी बड़े आदमी या देवता के लिए। कभी कभी तत्सम के दो अर्थों में से तद्व से केवल एक ही अर्थ सूचित होता है, जैसे “वंश” का अर्थ “कुटुंब” भी है और “बाँस” भी है; पर तद्व “बाँस” से केवल एकही अर्थ निकलता है।

यहाँ तत्सम, तद्व और अद्व-तत्सम शब्दों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

तत्सम	अद्वतत्सम	तद्व
आङ्गा	आग्या	आन
राजा	०	राय
बहस ✓	बच्छ	बचा
अग्नि ✓	अग्निन	आग
स्वामी	०	साइ
कर्ण ✓	०	कान
काय ✓	कारज	काज
पक्ष ✓	०	पंख, पाख
बायु	०	बयार
अक्षर ✓	अच्छर	अक्षर, आखर
रात्रि	रात	०
सर्व	०	सब
दैव	दह	०

(७) देशज और अनुकरणवाचक शब्द ।

हिंदी में और भी दो प्रकार के शब्द पाये जाते हैं—

(१) देशज (२) अनुकरण-वाचक ।

देशज वे शब्द हैं जो किसी संस्कृत (या प्राकृत) मूल से निकले हुए नहीं जान पड़ते और जिनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं लगता; जैसे—तेंदुआ, खिङ्की, घूआ, ठेस इत्यादि ।

ऐसे शब्दों की संख्या बहुत थोड़ी है और संभव है कि आधुनिक आर्य-भाषाओं की वट्टती के नियमों की अधिक खोज और पहचान होने से अंत में इनकी संख्या बहुत कम हो जायगी ।

पदार्थ की यथार्थ अथवा कल्पित ध्वनि को ध्यान में रखकर जो शब्द बनाये गये हैं वे अनुकरण-वाचक शब्द कहलाते हैं; जैसे - खटखटाना, धड़ाम, चट आदि ।

(८) विदेशी शब्द ।

फारसी, अरबी, तुर्की, अँगरेजी आदि भाषाओं से जो शब्द हिंदी में आये हैं वे विदेशी कहाते हैं । अँगरेजी से आजकल भी शब्दों की भरती जारी है । विदेशी शब्द हिंदी में ध्वनि के अनुसार अथवा विगड़े हुए उच्चारण के अनुसार लिखे जाते हैं । इस विषय का पता लगाना कठिन है कि हिंदी में किस समय पर कौन कौन से विदेशी शब्द आये हैं; पर ये शब्द भाषा में मिल गये हैं और इनमें कोई कोई शब्द ऐसे हैं जिनके समानार्थी हिंदी शब्द बहुत समय से अप्रचलित हो गये हैं । भारतवर्ष की और और प्रचलित भाषाओं—विशेष कर मराठी और बँगला से भी—कुछ शब्द हिंदी में आये हैं । कुछ विदेशी शब्दों की सूची नीचे दी जाती है—

(३४)

(१) फारसी ।

आदमी, उम्मेदवार, कमर, खर्च, गुलाब, चश्मा, चाकूः चाप-
लूस, दाग, दूकान, बाग, भोजा, इत्यादि ।

(२) अरबी ।

अदालत, इन्सिहान, ऐतराज, औरत, तनखाह, तारीख, मुकदमा,
सिफारिश, हाल, इत्यादि ।

(३) तुर्की ।

कोतल, क्षेचकमक, क्षेत्रगमा, तोप, लाश, इत्यादि ।

(४) पोर्चुगीज ।

कमरा, क्षेनीलाम, पादरी, क्षेमारतौल, पेरू ।

(५) अँगरेजी ।

अपील, डंच, क्षेकलकटर, क्षेक्सेटी, कोट, क्षेगिलास, क्षेटिकट,
क्षेटीन, नोटिस, डाक्टर, डिगरी, क्षेपतलून, फंड, फीस, फुट,
क्षेमील, रेल, क्षेलाट, लालटैन, समन, स्कूल, इत्यादि ।

(६) मराठी ।

प्रगति, लागू, चालू, चाढा, चाजू (ओर, तरफ) इत्यादि ।

(७) बँगला ।

उपन्यास, प्राणपण, चूड़ान्त, भद्रलोग (= भले आदमी),
गल्प, नितांत, इत्यादि ।

* ये शब्द अपभ्रंश हैं ।

हिंदी व्याकरण ।

पहला भाग । वर्णविचार ।

—०००.१००.३०—

पहला अध्याय ।

वर्णमाला ।

१—वर्णविचार व्याकरण के उस भाग को कहते हैं जिसमें वर्णों के आकार, भेद, उचारण तथा उनके मेल से शब्द बनाने के नियमों का निरूपण होता है ।

२—वर्ण उस मूल-ध्वनि को कहते हैं जिसके खंड न हो सकें; जैसे, अ, इ, क्, ख्, इत्यादि ।

“सबेरा हुआ” इस वाक्य में दो शब्द हैं, “सबेरा” और “हुआ” । “सबेरा” शब्द में साधारण रूप से तीन ध्वनियाँ सुनाई पढ़ती हैं—स, बे, रा । इन तीन ध्वनियों में से प्रत्येक ध्वनि के खंड हो सकते हैं, इसलिए वह मूल-ध्वनि नहीं है । ‘स’ में दो ध्वनियाँ हैं, स् + अ, और इनके कोई और खंड नहीं हो सकते, इसलिए ‘स्’ और ‘अ’ मूल-ध्वनि हैं । ये ही मूल-ध्वनियाँ वर्ण कहलाती हैं । “सबेरा” शब्द में स्, अ, ब्, ए, र्, आ—ये छः

मूल-ध्वनियाँ हैं। इसी प्रकार “हुआ” शब्द में ह्, उ, आ-ये तीन मूल-ध्वनियाँ वा वर्ण हैं।

३—वर्णों के समुदाय को वर्णमाला* कहते हैं। हिंदी वर्णमाला में ४६ वर्ण हैं। इनके दो भेद हैं, (१) स्वर (२) व्यंजन॥।

४—स्वर उन वर्णों को कहते हैं जिनका उचारण स्वतंत्रता से होता है और जो व्यंजनों के उचारण में सहायक होते हैं; जैसे—अ, इ, उ, ए, इत्यादि। हिंदी में स्वर ११ + हैं—

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, ओौ।

५—व्यंजन वे वर्ण हैं, जो स्वर की सहायता के बिना नहीं बोले जा सकते। व्यंजन ३३ + हैं—

*फारसी, अँगरेजी, यूनानी आदि भाषाओं में वर्णों के नाम और उचारण पक्क से नहीं हैं, इसलिए विद्यार्थियों को उन्हें पहचानने में कठिनाई होती है। इन भाषाओं में जिन (अलिफ, ए, डेल्टा, आदि) को वर्ण कहते हैं उनके खंड ही सकते हैं। वे यथार्थ में वर्ण नहीं, किंतु शब्द हैं। यद्यपि व्यंजन के उचारण के लिए उनके साथ स्वर लगाने की आवश्यकता होती है, तो भी उसमें केवल छोटे से छोटा स्वर अर्थात् अकार मिलाना चाहिए, जैसा हिंदी में होता है।

॥ संस्कृत-व्याकरण में स्वरों को अच् और व्यंजनों को इल् कहते हैं।

१ संस्कृत में अह, लु, लू, ये तीन स्वर और हैं; पर हिंदी में इनका प्रयोग नहीं होता। अह (हस्त) भी हिंदी में आनेवाले केवल तत्सम शब्दों ही में आती है; जैसे, अहषी, अहण, कृपा, नृत्य, मृत्यु इत्यादि।

२ इनके सिवा वर्णमाला में तीन व्यंजन और मिला दिए जाते हैं—क्, त्, न्। ये संयुक्त व्यंजन हैं और इस प्रकार मिलकर बने हैं—क्+ष = क्ष, त्+र = त्र, ज्+ञ = ञ। (२१ वां अंक देखो।)

क, ख, ग, घ, ङ । च, छ, ज, झ, ञ ।
 ट, ठ, ड, ढ, ण । त, थ, द, ध, न ।
 प, फ, ब, भ, म । य, र, ल, व, ।
 शा, ष, स, ह ।

इन व्यंजनों में उच्चारण की सुगमता के लिए 'अ' मिला दिया गया है । जब व्यंजनों में कोई स्वर नहीं मिला रहता तब उनका स्पष्ट उच्चारण दिखाने के लिए उनके नीचे एक तिरछी रेखा () कर देते हैं जिसे हिंदी में हल्काहते हैं; जैसे, क्, थ्, म्, इत्यादि ।

६—व्यंजनों में दो वर्ण और हैं जो अनुस्वार और विसर्ग कहलाते हैं । अनुस्वार का चिन्ह स्वर के ऊपर एक चिन्ही और विसर्ग का चिन्ह स्वर के आगे दो बिंदियाँ हैं; जैसे, अं, अः । व्यंजनों के समान इनके उच्चारण में भी स्वर की आवश्यकता होती है; पर इनमें और दूसरे व्यंजनों में एह अंतर है कि स्वर इनके पहले आता है और दूसरे व्यंजनों के पीछे; जैसे, अ + ॒ = अं, अ + ः = अः, क् + अ = क, ख् + अ = ख, ।

७—हिंदी वर्णमाला के वर्णों के प्रयोग के संबंध में कुछ नियम ध्यान देने योग्य हैं—

(अ) कुछ वर्णों केवल संस्कृत (तत्सम) शब्दों में आते हैं; जैसे, अ॒, ण्, ष् । उदाहरण—ऋतु, ऋषि, पुरुष, गण, रामायण ।
 (आ) छ् और ब् पृथक् रूप से केवल संस्कृत शब्दों में आते हैं;
 जैसे पराछमुख, नब् तत्पुरुष ।

(इ) संयुक्त व्यंजनों में से च और छ केवल संस्कृत शब्दों में आते हैं; जैसे मोच, संहा ।

* अनुस्वार और विसर्ग के नाम और उच्चारण एक नहीं हैं । इनके रूप श्रीर उच्चारण की विशेषता के कारण कोई कोई ऐयाकरण इन्हें अं अः के रूप में स्वरों के साथ लिखते हैं ।

- (ई) छ्, व्, ण् हिंदी में शब्दों के आदि में नहीं आते। अनुस्वार और विसर्ग भी शब्दों के आदि में प्रयुक्त नहीं होते।
- (उ) विसर्ग के बल थोड़े से हिंदी शब्दों में आता है; जैसे, छः, छिः, इत्यादि ।
-

दूसरा अध्याय लिपि

८—लिखित भाषा में मूल ध्वनियों के लिए जो चिन्ह मान लिये गये हैं, वे भी वर्ण कहलाते हैं; पर जिस रूप में ये लिखे जाते हैं, उसे लिपि कहते हैं। हिंदी-भाषा देवनागरी-लिपि* में लिखी जाती है।

[यदू देवनागरी के सिवा कैथी, महाजनी आदि लिपियों में भी हिंदी-भाषा लिखी जाती है; पर उनका प्रचार सर्वत्र नहीं है। अंथ लेखन और छापने के काम में बहुधा देवनागरी लिपि का ही उपयोग होता है।]

९—व्यंजनों के अनेक उत्तरण दिखाने के लिए उनके साथ स्वर जोड़े जाते हैं। व्यंजनों में मिलने से बदलकर स्वर का जो रूप हो जाता है उसे मात्रा कहते हैं। प्रत्येक स्वर की मात्रा नीचे लिखी जाती है —

* 'देवनागरी' नाम की उत्तरति के विषय में मत-भेद है। श्याम शास्त्री के मतानुसार देवताओं की प्रतिमाओं के बनने के पूर्व उनकी उपासना साकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के शिकोणादि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। वे यंत्र 'देवनागर' कहलाते थे और उनके मध्य लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के साकेतिक चिह्न कालांतर में वर्ण माने जाने लगे। इसीसे उनका नाम 'देवनागरी' हुआ।

अ, आ, इ. ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ^१
ति^२ तो^३

१०—अ की कोई मात्रा नहीं है। जब वह व्यंजन में मिलता है, तब व्यंजन के नीचे का चिन्ह () नहीं लिखा जाता; जैसे, क् + अ = क, ख् + अ = ख।

११—आ, ई, ओ और औ की मात्राएँ व्यंजन के आगे लगाई जाती हैं; जैसे, का, की, को, कौ। इ की मात्रा व्यंजन के पहले, ए और ऐ की मात्राएँ ऊपर और उ, ऊ, औ की मात्राएँ नीचे लगाई जाती हैं; जैसे, का, कि, की, के, कै, कु, कू, कृ।

१२—अनुस्वार स्वर के ऊपर और विसर्ग स्वर के पीछे आता है; जैसे, कं, किं, कः, का।

१३—उ और ऊ की मात्राएँ जब र् में मिलती हैं तब उनका आकार कुछ निराला हो जाता है; जैसे, रु, रू। र् के साथ श्व की मात्रा का संयोग व्यंजनों के समान होता है; जैसे, र + श्व + श्व। (२५ वाँ अंक देखो)।

१४—श्व की मात्रा को छोड़कर और अं, अः को लेकर व्यंजनों के साथ सब स्वरों में मिलाप को बारहखड़ी* कहते हैं। स्वर अथवा स्वरांत व्यंजन अक्षर कहलाते हैं। क् की बारहखड़ी नीचे दी जाती है—

क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः।

१५—व्यंजन दो प्रकार से लिखे जाते हैं (१) खड़ी पाई समेत (२) बिना खड़ी पाई के। छ, छ, ट, ठ, ड, ड, द, र को छोड़कर शेष व्यंजन पहले प्रकार के हैं। सब वर्णों के सिरे पर एक एक आड़ी रेखा रहती है जो घ, भ और भ में कुछ तोड़ दी जाती है।

१६—नीचे लिखे वर्णों के दो-दो रूप पाये जाते हैं—
अ और अ; म और म; ग और ग; च और च; त्र और त्र; श और श ।

१७—देवनागरी लिपि में वर्णों का उच्चारण और नाम तुल्य होने के कारण, जब कभी उनका नाम लेने का काम पड़ता है, तब अच्छर के आगे 'कार' जोड़कर उसका नाम सूचित करते हैं; जैसे अकार, ककार, मकार, सकार से अ, क, म, स का बोध होता है। 'रकार' को कोई-कोई 'रेक' भी कहते हैं ।

१८—जब दो वा अधिक व्यंजनों के बीच में स्वर नहीं रहता तब उनको संयोगी वा सुंयुक्त व्यंजन कहते हैं; जैसे, क्य, स्म, त्र । संयुक्त व्यंजन बहुधा मिलाकर लिखे जाते हैं । हिंदी में प्रायः तीन से अधिक व्यंजनों का संयोग नहीं होना; जैसे, स्तंभ, मत्स्य, माहात्म्य ।

१९—जब किसी व्यंजन का संयोग उसी व्यंजन के साथ होता है, तब वह संयोग द्वित्व कहलाता है । जैसे, पका, सचा, अन्न ।

२०—संयोग में जिस क्रम से व्यंजनों का उच्चारण होता है, उसी क्रम से वे लिखे जाते हैं; जैसे, अन्त, यन्त्र, अशक्त, सत्कार ।

२१—च, त्र, श, जिन व्यंजनों के मेल से बने हैं, उनका कुछ भी रूप संयोग में नहीं दिखाई देता; इसलिए कोई-कोई उन्हें व्यंजनों के साथ वर्णमाला के अंत में लिख देते हैं । क् और ष के मेल से च, त्र, और र के मेल से त्र और ज् और व के मेल से श बनता है ।

२२—पाई (।)—बाले आदि वर्णों की पाई संयोग में गिर जाती है; जैसे, प + य = प्य, त्र + य = त्र्य, त्र + म + य = त्र्यम्य ।

२३—छ, छ, ट, ठ, ड, ड, ह, ये सात व्यंजन संयोग के

आदि में भी पूरे लिखे जाते हैं और इनके अंत का (संयुक्त) व्यंजन पूर्व वर्णों के नीचे विना सिरे के लिखा जाता है, जैसे, अङ्गुर, उच्छ्वास, टट्टी, मट्टा, हङ्गा, प्रह्लाद, सह्याद्रि ।

२४—कई संयुक्त अचर दा प्रकार से लिखे जाते हैं, जैसे, क् + क = क्क, कक; व् + व = व्व, वृ; ल् + ल = ल्ल, ल्ल; क् + ल् = क्ल, कल; श् + व = श्व, श्व ।

२५—यदि रकार के पीछे कोई व्यंजन हो तो रकार उस व्यंजन के ऊपर यह रूप (^) धारण करता है जिसे रेफ कहते हैं; जैसे, धर्म, सर्व, अर्थ । यदि रकार किसी व्यंजन के पीछे आता है तो उसका रूप दो प्रकार का होता है—

(अ) खड़ी पाईवाले व्यंजनों के नीचे रकार इस रूप (-) से लिखा जाता है; जैसे चक्र, भद्र, हस्त, वज्र ।

(आ) दूसरे व्यंजनों के नीचे उसका यह रूप (,) होता है; जैसे, राष्ट्र, त्रिपुंड्र, कुच्छु ।

(तू) ब्रजभाषा में बहुवा र् + य का रूप यथ होता है । जैसे, मारथो, हारथो ।)

२६—क् और त मिलकर च और त् और त मिलकर च होता है ।

२७—ङ्, व्, ण्, न्, म्, अपने ही वर्ग के व्यंजनों से मिल सकते हैं; पर उनके बदले में विकल्प से अनुस्वार* आ सकता है; जैसे, गङ्गा = गंगा, चञ्चल = चंचल, पण्डित = पंडित, दन्त = दंत, कम्प=कंप ।

कई शब्दों में इस नियम का भंग होता है; जैसे, बाढ़मय, मृणमय, धन्वन्तरि, सम्राट्, उन्हें, तुम्हें ।

* हिंदी में बहुधा अनुनासिक (^) के बदले में भी अनुस्वार आता है; जैसे, हँसना = हंसना, पाँच = पांच । (देखो ४०वां अंक) ।

२८—हकार से मिलनेवाले व्यंजन, कभी-कभी, भूल से उसके पूर्व लिख दिये जाते हैं; जैसे, चिन्ह (चिह्न), ब्रह्म (ब्रह्म), आव्हान (आह्वान), आल्हाद (आह्वाद) इत्यादि ।

२९—साधारण व्यंजनों के समान संयुक्त व्यंजनों में भी स्वर जोड़कर बारहखड़ी बनाते हैं, जैसे, क्र, क्रा, क्रि, क्री, क्रु, क्रू, क्रे, क्रौ, क्रौ, कं, क्रः । देखो १५वां अंक) ।

तीसरा अध्याय

बणों का उचारण और वर्गीकरण ।

३०—मुख के जिस भाग से जिस अक्षर का उचारण होता है, उसे उस अक्षर का स्थान कहते हैं ।

३१—स्थानभेद से बणों के नीचे लिखे अनुसार वर्ग होते हैं—

कंठ्य—जिनका उचारण कंठ से होता है; अर्थात् अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग ।

तालव्य—जिनका उचारण तालु से होता है; अर्थात् इ, ई, च, छ, ज, झ, अ, और श ।

मूर्द्धन्य—जिनका उचारण मूर्द्धा से होता है; अर्थात् ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष ।

दंत्य—त, थ, द, ध, न, ल और स । इनका उचारण ऊपर के दाँतों पर जीभ लगाने से होता है ।

ओष्ठ्य—इनका उचारण ओंठों से होता है; जैसे, ड, झ, प, फ, ब, भ, म ।

अनुनासिक—इसका उचारण मुख और नासिका से होता

है; अर्थात् ड, ब्र, ण, न, म और अनुस्वार। (३६वाँ और ४६वाँ अंक देखो)।

(स०—स्वर भी अनुनासिक होते हैं। (२८ वाँ अंक देखो)।

कंठन्तालव्य—जिनका उच्चारण कंठ और तालु से होता है; अर्थात् प, ए।

कंठोध्य—जिनका उच्चारण कंठ और ओठों से होता है; अर्थात् ओ, ओ।

दंत्योष्ठ्य—जिनका उच्चारण दाँत और ओठों से होता है; अर्थात् च।

३२—बणों के उच्चारण की रीति को प्रयत्न कहते हैं। ध्वनि उत्पन्न होने के पहले वागिंद्रिय की क्रिया को आम्यंतर प्रयत्न और ध्वनि के अंत की क्रिया को वाह्य प्रयत्न कहते हैं।

३३—आम्यंतर प्रयत्न के अनुसार बणों के मुख्य चार भेद हैं।

(१) **विवृत**—इनके उच्चारण में वागिंद्रिय खुली रहती है। स्वरों का प्रयत्न विवृत कहाता है।

(२) **स्पृष्ट**—इनके उच्चारण में वागिंद्रिय का ढार बंद रहता है। 'क' से लेकर 'म' तक २५ व्यंजनों को स्पृश्य वर्ण कहते हैं।

(३) **ईपत्-विवृत**—इनके उच्चारण में वागिंद्रिय कुछ खुली रहती है। इस भेद में य, र, ल, व, हैं। इनको अंतस्थ वर्ण भी कहते हैं; क्योंकि इनका उच्चारण स्वर और व्यंजनों का मध्यवर्ती है।

(४) ईपत्-स्पृष्ट—इनका उच्चारण वागिन्द्रिय के कुछ बंद रहने से होता है—श, प, स, ह, । इन वर्णों के उच्चारण में एक प्रकार का घर्षण होता है, इसलिए इन्हें ऊष्म वर्ण भी कहते हैं।

(३४)—वाह्य-प्रयत्न के अनुसार वर्णों के मुख्य दो भेद हैं—(१) अधोप (२) घोप ।

(१) अधोप, वर्णों के उच्चारण में केवल श्वास का उपयोग होता है; उनके उच्चारण में घोप अर्थात् नाद नहीं होता ।

(२) घोप वर्णों के उच्चारण में केवल नाद का उपयोग होता है ।

अधोप वर्ण—क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ और श, ष, स ।

घोप वर्ण—शेष व्यंजन और सब स्वर ।

[३०—वाह्य प्रयत्न के अनुसार केवल व्यंजनों के जो भेद हैं वे आगे दिये जायेंगे । (४४ वाँ अक देखो) ।]

स्वर ।

३५—उत्पत्ति के अनुसार स्वरों के दो भेद हैं—(१) मूलस्वर, (२) संधि-स्वर ।

(१) जिन स्वरों की उत्पत्ति किसी दूसरे स्वरों से नहीं है, उन्हें मूलस्वर (वा हस्त्र) कहते हैं । वे चार हैं—अ, इ, उ, और औ ।

(२) मूलस्वरों के मेल से बने हुए स्वर संधि-स्वर कहलाते हैं; जैसे, आ, ई, ए, ऐ, ओ, औ ।

३६—संधि-स्वरों के दो उपभेद हैं—

(१) दीर्घ और (२) संयुक्त ।

(१) किसी एक मूल स्वर में उसी मूल स्वर के मिलाने से जो स्वर उत्पन्न होता है, उसे दीर्घ कहते हैं; जैसे, अ + अ = आ, इ + इ = ई, उ + उ = ऊ, अर्थात् आ, ई, ऊ, दीर्घ स्वर हैं।

[स०—अ + अ = अ॒; यह दीर्घ स्वर हिंदी में नहीं है ।]

(२) भिन्न-भिन्न स्वरों के मेल से जो स्वर उत्पन्न होता है उसे संयुक्त स्वर कहते हैं; जैसे, अ + इ = ए, अ + उ = ओ, आ + ए = ऐ, आ + ओ = औ ।

३७—उच्चारण के काल-मान के अनुसार स्वरों के दो भेद किये जाते हैं— लघु और गुरु । उच्चारण के काल-मान को मात्रा^५ कहते हैं । जिस स्वर के उच्चारण में एक मात्रा लगती है उसे लघु स्वर कहते हैं; जैसे, अ, ई, उ, ओ । जिस स्वर के उच्चारण में दो मात्राएँ लगती हैं उसे गुरु स्वर कहते हैं; जैसे, आ, ई, ए, ऐ, ओ, औ ।

[स० १—सब मूल-स्वर लघु और सब संधि-स्वर गुरु हैं ।]

[स० २—संकृत में प्लुत नाम से स्वरों का एक तीसरा भेद माना जाता है; पर हिंदी में उसका उपयोग नहीं होता । ‘प्लुत’ शब्द का अर्थ है “उछला हुआ” । प्लुत में तीन मात्राएँ होती हैं । वह बहुषा दूर से पुकारने, रोने, गाने और चिज्जाने में आता है । उसकी पहचान दीर्घ स्वर के आगे तीन का अंक लिख देने से होती है; जैसे, ए ! ३, लड़के ! ३, है ! ३, ।)

३८—जाति के अनुसार भी स्वरों के दो भेद हैं—सर्वर्ण और असर्वर्ण अर्थात् सज्जातीय और विजातीय । समान स्थान

^५ हिंदी में ‘मात्रा’ शब्द के दो अर्थ हैं—एक, स्वरों का रूप (देखो ६ वाँ अंक), दूसरा, काल-मान ।

और प्रयत्न से उत्पन्न होनेवाले स्वरों को सवर्ण कहते हैं। जिन स्वरों के स्थान और प्रयत्न एक से नहीं होते वे असवर्ण कहलाते हैं। अ, आ परस्पर सवर्ण हैं। इसी प्रकार इ, ई तथा ऊ, ऊ सवर्ण हैं।

अ, इ वा आ, ऊ अथवा इ, ऊ असवर्ण स्वर हैं।

(स०—ए, ऐ, ओ, औ, इन संयुक्त स्वरों में परस्पर सवर्णता नहीं है; क्योंकि ये असवर्ण स्वरों से उत्पन्न हैं।)

३६—उच्चारण के अनुसार स्वरों के दो भेद और हैं—

(१) सानुनासिक (२) निरनुनासिक ।

यदि मुँह से पूरा पूरा श्वास निकाला जाय तो शुद्ध—निरनुनासिक—ध्वनि निकलती है; पर यदि श्वास का कुछ भी अंश नाक से निकाला जाय तो अनुनासिक ध्वनि निकलती है। अनुनासिक स्वर का चिह्न (^) चंद्रबिंदु कहलाता है; जैसे गाँव, ऊँचा। अनुस्वार और अनुनासिक व्यंजनों के समान चंद्रबिंदु कोई स्वतंत्र यर्णा नहीं है; वह केवल अनुनासिक स्वर का चिह्न है। अनुनासिक व्यंजनों को कोई-कोई “नासिक्य” और अनुनासिक स्वरों को केवल “अनुनासिक” कहते हैं। कभी-कभी यह शब्द चंद्रबिंदु का पर्यायवाचक भी होता है। (४६ वाँ अंक देखो) ।

४०—(क) हिंदी में अंत्य अ का उच्चारण प्रायः हल् के समान होता है; जैसे, गुण, रात, घन, इत्यादि। इस नियम के कई अपवाद हैं—

(१) यदि अकारांत शब्द का अंत्याक्षर संयुक्त हो तो अंत्य अ का उच्चारण पूरा होता है; जैसे, सत्य, इंद्र, गुरुत्व, सन्न, धर्म, अशक्त, इत्यादि ।

(२) इ, ई वा ऊ के आगे य हो तो अंत्य अ का उच्चारण पूर्ण होता है; जैसे, प्रिय, सीय, राजसूय, इत्यादि ।

(३) एकाच्चरी अकारांत शब्दों के अंत्य अ का उच्चारण पूरा पूरा होता है; जैसे, न, व, र, इत्यादि ।

(४) (क) कविता में अंत्य अ का पूर्ण उच्चारण होता है; जैसे, “समाचार जब लहमण पाये”; परंतु जब इस वर्ण पर यति* होती है, तब इसका उच्चारण बहुधा अपूर्ण होता है; जैसे, “कुद-इंदु-सम देह, उमा-रमन करुणा-अयन ।”

(ख) दीर्घ-स्वरांत अच्छरी शब्दों में यदि दूसरा अच्छर अकारांत हो तो उसका उच्चारण अपूर्ण होता है; जैसे, बकरा, कपड़े, करना, बोलना, तानना, इत्यादि ।

(ग) चार अच्छरों के ह्रस्व-स्वरांत शब्दों में यदि दूसरा अच्छर अकारांत हो तो उसके अ का उच्चारण अपूर्ण होता है; जैसे, गढबढ़, देवधन, मानसिक, सुरलोक, कामरूप, बलहीन ।

अपवाद—यदि दूसरा अच्छर संयुक्त हो अथवा पहला अच्छर कोई उपसर्ग हा तो दूसरे अच्छर के अ का उच्चारण पूर्ण होता है; जैसे, पुनर्लाभ, धर्महीन, आचरण, प्रचलित ।

(घ) दीर्घ-स्वरांत चार-अच्छरी शब्दों में तीसरे अच्छर के अ का उच्चारण अपूर्ण होता है; जैसे, समझना, निकलता, सुनहरी, कच्छरी, प्रवलता ।

(ङ) यौगिक शब्दों में मूल अवयव के अंत्य अ का उच्चारण आधा (अपूर्ण) होता है; जैसे, देव-धन, सुर-लोक, अन्न-दाता, सुख-दायक, शीतल-ता, मन-मोहन, लड़क-पन, इत्यादि ।

४१—हिंदी में ऐ और औ का उच्चारण संरक्षित से भिन्न होते हैं। तत्सम शब्दों में इनका उच्चारण संरक्षित के ही अनुसार होता है; पर हिंदी में ऐ बहुधा अय् और औ बहुधा अव् के समान बोला जाता है, जैसे—

संस्कृत—ऐश्वर्य, सदैव, पौत्र, कौतुक, इत्यादि ।

हिंदी—है, मैल, और, चौथा, इत्यादि ।

(क) ए और ओ का उच्चारण कभी-कभी कमशः इ और ए तथा उ और ओ का मध्य-बर्त्ता होता है, जैसे, इकट्ठा (एकट्ठा), मिहतर (मेहतर), उसीसा (ओसीसा), गुबरैला (गोबरैला) ।

४२—उदू और अँगरेजी के कुछ अक्षरों का उच्चारण दिखाने के लिए अ, आ, इ, उ आदि स्वरों के साथ बिंदी और अर्द्ध-चंद्र लगाते हैं; जैसे, इलम, उम्र, लॉडं । इन चिह्नों का प्रचार सार्वदेशिक नहीं है; और किसी भी भाषा में विदेशी उच्चारण पूर्ण रूप से प्रकट करना कठिन भी होता है ।

व्यंजन ।

४३—स्पर्श-व्यंजनों के पाँच वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में पाँच-पाँच व्यंजन हैं । प्रत्येक वर्ग का नाम पहले वर्षा के अनुसार रखा गया है; जैसे—

क-वर्ग—क, ख, ग, घ, ङ ।

च-वर्ग—च, छ, ज, झ, झ ।

ट-वर्ग—ट, ठ, ड, ढ, ण ।

त-वर्ग—त, थ, द, ध, न ।

प-वर्ग—प, फ, ब, भ, म ।

४४—बाह्य प्रयत्न के अनुसार व्यंजनों के दो भेद हैं—

(१) अल्पप्राण, (२) महाप्राण ।

जिन व्यंजनों में हकार की ध्वनि विशेष रूप से सुनाई देती है उनको महाप्राण और शेष व्यंजनों को अल्पप्राण कहते हैं । स्पर्शव्यंजनों में प्रत्येक वर्ग का दूसरा और चौथा अक्षर तथा

उठम महाप्राण हैं; जैसे,—ख, घ, छ, झ, ठ, थ, ध, फ, भ, और श, प, स, ह।

शेष व्यंजन अल्पप्राण हैं।

सब स्वर अल्पप्राण हैं

[स०—अल्पप्राण अक्षरों की अपेक्षा महाप्राणों में प्राणवायु का उपयोग अधिक अमपूर्वक करना पड़ता है। ख, घ, छ, आदि व्यंजनों के उच्चारण में उनके पूर्ववर्ती व्यंजनों के साथ हकार की अनि मिली हुई सुनाई पड़ती है, अर्थात् ख = क + ह, छ = च + ह। उद्दू, अँगरेजी आदि भाषाओं में महाप्राण अक्षर ह मिलाकर बनाये गये हैं।]

पृथ—हिंदी में ढ और ठ के दो दो उच्चारण होते हैं—(१) मूर्द्धन्य (२), द्विस्पृष्ट।

(१) मूर्द्धन्य उच्चारण नीचे लिखे स्थानों में होते हैं—

(क) शब्द के आदि में; जैसे, डाक, डमरू, डग, ढम, ढिग ढंग, ढोल, इत्यादि।

(ख) द्वित्व में; जैसे, अङ्गू, लङ्, लाङ्-ढा।

(ग) हस्त स्वर के पश्चात् अनुनासिक व्यंजन के संयोग में; जैसे, ढंड, पिंडी, चंडू, मंडप, इत्यादि।

(२) द्विस्पृष्ट उच्चारण जिहा का अप्रभाग उलटाकर मूर्द्धी में लगाने से होता है। इस उच्चारण के लिए इन अक्षरों के नीचे एक एक बिंदी लगाई जाती है। द्विस्पृष्ट उच्चारण बहुधा नीचे लिखे स्थानों में होता है—

(क) शब्द के मध्य अधवा अंत में; जैसे, सङ्क, पकङ्ना, आङ्ग, गङ्ग, चङ्गाना इत्यादि।

(ख) दीर्घ स्वर के पश्चात् अनुनासिक व्यंजन के संयोग में दोनों उच्चारण बहुधा विकल्प से होते हैं; जैसे, मूँडना, मूँडना; खाँड, खाँड़; मेंडा, मेंडा, इत्यादि।

४६—ङ, च, ण, न, म का उच्चारण अपने अपने स्थान और नासिका से किया जाता है। विशिष्ट स्थान से श्वास उत्पन्न कर उसे नाक के द्वारा निकालने से इन अच्छरों का उच्चारण होता है। केवल स्पर्श-व्यंजनों के एक-एक वर्ग के लिये एक-एक अनुनासिक व्यंजन हैं, अंतस्थ और ऊपर के साथ अनुनासिक व्यंजन का कार्य अनुस्वार से निकलता है। अनुनासिक व्यंजनों के बदले में विकल्प से अनुस्वार आता है; जैसे, अङ्ग = अंग, कण्ठ = कैठ, अंश, इत्यादि ।

४७—अनुस्वार के आगे कोई अंतस्थ व्यंजन अथवा ह हो तो उसका उच्चारण दंत-तालव्य अर्थात् वैं के समान होता है; परंतु श, प, स के साथ उसका उच्चारण बहुधा न् के समान होता है; जैसे, संवाद, संरक्षा, सिंह, अंश, हंस, इत्यादि ।

४८—अनुस्वार (^) और अनुनासिक (~) के उच्चारण में अंतर है, यद्यपि लिपि में अनुनासिक के बदले बहुधा अनुस्वार ही का उपयोग किया जाता है (३६ वाँ अंक देखो)। अनुस्वार दूसरे स्वरों अथवा व्यंजनों के समान एक अलग ध्वनि है; परंतु अनुनासिक स्वर की ध्वनि केवल नासिक्य है। अनुस्वार के उच्चारण में (४६ वाँ अंक देखो) श्वास केवल नाक से निकलता है; पर अनुनासिक के उच्चारण में वह मुख और नासिका से एक ही साथ निकाला जाता है। अनुस्वार तीव्र और अनुनासिक धीमी ध्वनि है, परंतु दोनों के उच्चारण के लिये पूर्ववर्ती स्वर की आवश्यकता होती है; जैसे, रंग, रँग; कंबल, कुँवर, बेदांत, दाँत, हंस, हँसना, इत्यादि ।

४९—संस्कृत-शब्दों में अंत्य अनुस्वार का उच्चारण म् के समान होता है; जैसे, वरं, स्वयं, एवं ।

५०—हिंदी में अनुनासिक के बदले बहुधा अनुस्वार लिखा

जाता है; इसलिए अनुस्वार का अनुनासिक उचारण जानने के लिए कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं—

(१) ठेठ हिंदी शब्दों के अंत में जो अनुस्वार आता है उसका उचारण अनुनासिक होता है; जैसे, मैं, मैं, गैहं; जूँ, क्यों।

(२) पुरुष अथवा वचन के विकार के कारण आनेवाले अनुस्वार का उचारण अनुनासिक होता है; जैसे, करूँ, लड़कां; लड़कियाँ, हूँ, हैं, इत्यादि ।

(३) दीर्घ स्वर के पश्चात् आनेवाला अनुस्वार अनुनासिक के समान बोला जाता है; जैसे, आँख, पांच, ईंधन, ऊँट, सांभर, सौंपना, इत्यादि ।

५० (क)—लिखने में बहुधा अनुनासिक अ, आ, ऊँ और ऊ में ही चंद्र-बिंदु का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इनके कारण अक्षर के ऊपरी भाग में कोई मात्रा नहीं लगती; जैसे, अँधेरा, हँसना, आँख, दौँत, उँचाई, कुँदरू, ऊँट, करूँ, इत्यादि । जब इ और ए अकेले आते हैं, तब उनमें चंद्र-बिंदु और जब न्यंजन में मिलते हैं तब चंद्र-बिंदु के बदले अनुस्वार ही लगाया जाता है; जैसे, इँदारा, सिंचाई, संझाएँ, ढेंकी, इत्यादि ।

(स०—जहाँ उचारण में अम होने की संभावना हो वहाँ अनुस्वार और चंद्र-बिंदु पृथक्-पृथक् लिखे जाँय; जैसे अँधेर (अन्धेर), अँधेरा, हँस (हन्स), हँस, इत्यादि ।)

५१—विसर्ग (:) कंठ्य वर्ण है। इसके उचारण में ह के उचारण को एक झटका सा देकर श्वास को मुँह से एकदम छोड़ते हैं। अनुस्वार वा अनुनासिक के समान विसर्ग का उचारण भी किसी स्वर के पश्चात् होता है। यह हकार की अपेक्षा कुछ धीमा बोला जाता है; जैहे, दुःख, अंतःकरण, छिः, हः, इत्यादि ।

(स०—किसी-किसी वैयाकरण के मतानुसार विसर्ग का उचारण

केवल हृदय में होता है, और मुख के अवयवों से उसका कोई संबंध नहीं रहता ।)

५२—संयुक्त व्यंजन के पूर्व हस्त स्वर का उच्चारण कुछ मटके के साथ होता है, जिससे दोनों व्यंजनों का उच्चारण स्पष्ट हो जाता है; जैसे, सत्य, अद्भुत, पत्थर इत्यादि । हिंदी में न्ह, न्ह, आदि का उच्चारण इसके बिरुद्ध होता है; जैसे, तुम्हारा, उन्हें, कुल्हाकी, सहो ।

५३—दो महाप्राण व्यंजनों का उच्चारण एक साथ नहीं हो सकता; इसलिए उनके संयोग में पूर्व वर्ण अल्पप्राण ही रहता है; जैसे, रक्खा, अच्छा, पत्थर, इत्यादि ।

५४—उदू के प्रभाव से ज और फ का एक-एक और उच्चारण होता है । ज का दूसरा उच्चारण दंत-तालव्य और फ का दंतोष्ट्व है । इन उच्चारणों के लिये अच्चरों के नीचे पक-एक बिदी लगाते हैं; जैसे जहरत, कुरसत, इत्यादि । ज और फ से अँगरेजी के भी कुछ अच्चरों का उच्चारण प्रकट होता है, जैसे; स्वेच्छ, फ्रीस, इत्यादि ।

५५—हिंदी में ज का उच्चारण बहुधा 'म्यौ' के सदृश होता है । महाराष्ट्र लोग इसका उच्चारण 'दून्यौ' के समान करते हैं । पर इसका शुद्ध उच्चारण प्रायः 'ज्यौ' के समान है ।

चौथा अध्याय ।

स्वराधात ।

५६—शब्दों के उच्चारण में अच्चरों पर जो जोर (घक्का) लगता है उसे स्वराधात कहते हैं । हिंदी में अपूर्णोच्चरित अ (४० वाँ अंक) जिस अच्चर में आता है उसके पूर्ववर्ती अच्चर के स्वर का उच्चारण कुछ लंबा होता है, जैसे, 'घर' शब्द में अंत्य

‘अ’ का उच्चारण अपूर्ण होता है, इसलिए उनके पूर्ववर्ती ‘घ’ के स्वर का उच्चारण कुछ झटके के साथ करना पड़ता है। इसी तरह संयुक्त व्यंजन के पहले के अच्छर पर (५२ अंक) जोर पड़ता है, जैसे ‘पत्थर’ शब्द में ‘त्’ और ‘थ’ के संयोग के कारण ‘प’ का उच्चारण आधात के साथ होता है। स्वराधात-संबंधी कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं—

(क) यदि शब्द के अंत में अपूर्णोच्चरित अ आवे तो उपांत्य अच्छर पर जोर पड़ता है; जैसे, घर, भाड़, सड़क, इत्यादि ।

(ख) यदि शब्द के मध्य-भाग में अपूर्णोच्चरित अ आवे तो उसके पूर्ववर्ती अच्छर पर आधात होता है; जैसे, अनवन, बोलकर, दिनभर ।

(ग) संयुक्त व्यंजन के पूर्ववर्ती अच्छर पर जोर पड़ता है; जैसे, हळा, आळा, चिंता, इत्यादि ।

(घ) विसर्ग-युक्त अच्छर का उच्चारण झटके के साथ होता है; जैसे, दुःख, अंतःकरण ।

(च) यौगिक शब्दों में मूल अवयवों के अच्छरों का जोर जैसा का तैसा रहता है; जैसे, गुणवान्, जलमय, प्रेमसागर, इत्यादि ।

(छ) शब्द के आरंभ का अ कभी अपूर्णोच्चरित नहीं होता; जैसे, घर, सड़क, कपड़ा, तलवार, इत्यादि ।

५७—संस्कृत (वा हिंदा) शब्दों में इ, उ वा औ के पूर्ववर्ती स्वर का उच्चारण कुछ लंबा होता है; जैसे, हरि, साँधु, समुदाय, धातु, पिण्ठ, माटु, इत्यादि ।

५८—यदि शब्द के एकही रूप से कई अर्थ निकलते हैं तो इन अर्थों का अंतर केवल स्वराधात से जाना जाता है; जैसे,

‘बढ़ा’ शब्द विधिकाल और सामान्य भूतकाल, दोनों में आता है, इसलिए विधिकाल के अर्थ में ‘बढ़ा’ के अंत्य ‘आ’ पर जोर दिया जाता है। इसी प्रकार ‘की’ संबंधकारक की खीलिंग—विभक्ति और सामान्य भूतकाल का खीलिंग एकवचन रूप है, इसलिए किया के अर्थ में ‘की’ का उच्चारण आधात के साथ होता है।

[स०—हिंदी में संस्कृत के समान स्वराधात सूचित करने के लिए चिह्नों का उपयोग नहीं होता ।]

देवनागरी वर्णमाला का कोष्टक ।

स्थान	अधोष		धोष					
	स्पश्चा अल्पप्राण	उभ्य मध्यप्राण	उभ्य मध्यप्राण	स्पश्चा अल्पप्राण + अनुनासिक			स्वर	
	मध्यप्राण	मध्यप्राण	मध्यप्राण	अंतर्घट	हस्त	दीर्घ	संयुक्त	
कंठ	क	ख	ह	ग	घ	ङ	अ	आ
तालु	च	छ	श	ज	झ	ঝ	ই	ষেৰ
मूड़ी	ট	ঠ	ষ	ঢ	ঠ	ষ	ঝ	ষ
দंত	ত	থ	স	দ	ধ	ন	ল	০
শ্বোষ	প	ফ		ব	ভ	ম	ব	ও
								শ্বোচ্ছী
ঢ, ঙ = দ্বিস্পষ্ট; জা = দ্বন্দ্ব-তালাব্য				স্থান + নাসিকা	২ দ্বন্দ্ব + অঙ্গ			২ কংক + তালু ৩ কংক + শ্বোষ
* ফ = দ্বন্দ্ব-ঘ্য ।								

पाँचवाँ अध्याय ।

संधि ।

५६—दो निर्दिष्ट अक्षरों के पास पास आने के कारण उनके मेल से जो विकार होता है उसे संधि कहते हैं । संधि और संयोग में (१८ वाँ अंक) यह अंतर है कि संयोग में अक्षर जैसे के तैसे रहते हैं; परंतु संधि में उक्तारण के नियमानुसार दो अक्षरों के मेल में उनकी जगह कोई भिन्न अक्षर हो जाता है ।

(६०—संधि का विषय संस्कृत व्याकरण से संबंध रखता है । संस्कृत-भाषा में पदसिद्धि, समास और वाक्यों में संधि का प्रयोगन पड़ता है, परंतु हिंदी में, संधि के नियमों से भिन्ने हुए, संस्कृत के जो समासिक शब्द आते हैं, केवल उन्हीं के संबंध से इस विषय के निरूपण की आवश्यकता होती है ।)

६०—संधि तीन प्रकार की है—(१) स्वर-संधि (२) व्यंजन-संधि और (३) विसर्ग-संधि ।

(१) दो स्वरों के पास-पास आने से जो संधि होती है उसे स्वर-संधि कहते हैं, जैसे, राम + अवतार = राम् + अ + अ + वतार = राम् + आ + वतार = रामावतार ।

(२) जिन दो वर्णों में संधि होती है उनमें से पहला वर्ण व्यंजन हो और दूसरा वर्ण चाहे स्वर हो चाहे व्यंजन, तो उनकी संधि को व्यंजन-संधि कहते हैं; जैसे, जगत् + ईश = जगदीश, जगत् + नाथ = जगन्नाथ ।

(३) विसर्ग के साथ स्वर वा व्यंजन की संधि को विसर्ग-संधि कहते हैं, जैसे, तपः + वन = तपोवन, निः + अंतर = निरंतर ।

(५६)

स्वर-संधि

६१—यदि दो स्वरण (सजातीय) स्वर पास-पास आवें तो दोनों के बदले स्वरण दीर्घ स्वर होता है; जैसे—

(क) अ और आ की संधि—

अ + अ = आ—कल्प + अंत = कल्पांत । परम + अर्थ = पर-
मार्थ । अ + आ = आ—रत्न + आकर = रत्नाकर । कुश +
आसन = कुशासन ।

अ + ए = आ—रेखा + अंश = रेखांश । विद्या + अभ्यास =
विद्याभ्यास ।

अ + ओ = आ—महा + ओशय = महाशय । वार्ता + ओलाप
= वार्तालाप ।

(ख) इ और ई की संधि—

इ + इ = ई—गिरि + ईश = गिरीश, अभि + इष्ट =
अभीष्ट ।

इ + ई = ई—कवि + ईश्वर = कवीश्वर । कपि + ईश =
कपीश ।

ई + ई = ई—सती + ईश = सतीश । जानकी + ईश =
जानकीश ।

ई + इ = ई—मही + इंद्र = महींद्र । देवी + इच्छा =
देवीच्छा ।

(ग) उ, ऊ की संधि—

उ + उ = ऊ—भानु + उदय = भानूदय । विधु + उदय =
विधूदय ।

उ + ऊ = ऊ—सिधु + ऊर्मि = सिधूर्मि । लघु + ऊर्मि =
लघूर्मि ।

ऊ + ऊ = ऊ—भू + ऊर्द्ध्वं=भूर्द्ध्वं । भू + ऊर्जित=भूर्जित ।
 ऊ + उ = ऊ—वधू + उत्सव = वधूत्सव । भू + उद्धार=भूद्धार ।

(च) ऊ, ऊ की संधि—

ऊ के मन्बन्ध से संस्कृत व्याकरणों में बहुधा मातृ + ऊण = मातृण, यह उदाहरण दिया जाता है; पर इस उदाहरण में भी विकल्प से 'मातृण' रूप होता है। इससे प्रकट है कि दीर्घ ऊ की आवश्यकता नहीं है ।

६२—यदि अ वा आ के आगे इ वा ई रहे तो दोनों मिलकर ए; उ वा ऊ रहे तो दोनों मिलकर ओ; और ऊ रहे तो अर् हो जाता है। इस विकार को गुण कहते हैं ।

उदाहरण ।

अ + इ = ए—देव + ईंद्र = देवेंद्र ।
 अ + ई = ए—सुर + ईश = सुरेश ।
 आ + इ = ए—महा + ईंद्र = महेंद्र ।
 आ + ई = ए—रमा + ईश = रमेश ।
 अ + उ = ओ—चंद्र + उदय = चंद्रोदय ।
 अ + ऊ = ओ—समुद्र + ऊर्मि = समुद्रोर्मि ।
 आ + उ = ओ—महा + उत्सव = महोत्सव ।
 आ + ऊ = ओ—महा + ऊरु = महोरु ।
 अ + ऊ = अर्—सप्त + ऊर्षि = सप्तर्षि ।
 आ + ऊ = अर्—महा + ऊर्षि = महर्षि ।

अपवाद—स्व + ईर=स्वैर; अज्ञ + ऊहिनी=अज्ञौहिणी; प्र + ऊद्=प्रौद्; सुख + ऊत = सुखार्त; दश + ऊण = दशार्णी, इत्यादि ।

६३—अकार वा आकार के आगे ए वा ऐ हो तो दोनों मिलकर ऐ; और ओ वा औ रहे तो दोनों मिलकर औ होता है। इस विकार को वृद्धि कहते हैं। यथा—

आ + ए = ऐ—एक + एक = एकैक ।

आ + ऐ = ऐ—मत + ऐक्य = मतैक्य ।

आ + ए = ऐ—सदा + एव = सदैव ।

आ + ऐ = ऐ—महा + ऐश्वर्य = महैश्वर्य ।

आ + ओ = औ—जल + ओध = जलौध ।

आ + ओ = औ—महा + ओज = महौज ।

आ + औ = औ—परम + औषध = परमौषध ।

आ + औ = औ—महा + औदार्य = महौदार्य ।

अपवाद—अ अथवा आ के आगे ओष्ठ शब्द आवे तो विकल्प से ओ अथवा औ होता है; जैसे, विंय + ओष्ठ = विंयोष्ठ वा विंयौष्ठ; अधर = ओष्ठ = अधरोष्ठ वा अधरौष्ठ ।

६४—हस्त वा दीर्घ इकार, उकार वा ऊकार के आगे कोई असरणी (विजातीय) स्वर आवे तो इ ई के बदले य्, उ ऊ के बदले व्, और ऋ के बदले र् होता है। इस विकार को यण कहते हैं। जैसे,

(क) इ + अ = य—यदि + अपि = यद्यपि ।

इ + आ = या—इति + आदि = इत्यादि ।

इ + उ = यु—प्रति + उपकार = प्रत्युपकार ।

इ + ऊ = यू—नि + ऊन = न्यून ।

इ + ए = ये—प्रति + एक = प्रत्येक ।

ई + अ = य—नदी + अपैण = नद्यपैण ।

ई + आ = या—देवी + आगम = देव्यागम ।

ई + उ = यु—सखी + उचित = सख्युचित ।

ई + ऊ = यू—नदा + ऊर्मि = नद्यूर्मि ।

ई + ए = यै—देवी + ऐश्वर्य = देव्यैश्वर्य ।

(ख) उ + अ = व—मनु + अंतर + मन्वंतर ।

उ + आ = वा—सु + आगत = स्वागत ।

ऊ + इ = वि—अनु + इत = अन्वित ।

ऊ + ए = वे—अनु + एषण = अन्वेषण ।

(ग) ऋ + अ = र—पिण्ठ + अनुमति = पित्रनुमति ।

ऋ + आ = रा—मातृ + आनंद = मात्रानंद ।

६५—ए, ऐ, ओ वा औ के आगे कोई भिन्न स्वर हो तो
इनके स्थान में क्रमशः अय्, आय्, अव् वा आव् होता है; जैसे—
ने + अन = न् + ए + अ + न = न् + अय् + अन = नयन ।
गै + अन = ग् + ऐ + अ + न = ग् + आय् + अ + न्
= गायन ।

गो + ईश = ग् + ओ + ई + श = ग् + अव् + ई + श =
गवीश ।

नौ + इक = न् + औ + इ + क = न् + आव् + इ + क =
नाविक ।

६६—ए वा ओ के आगे अ आवे तो अ का लोप हो जाता
है और उसके स्थान में लुप्त अकार (५) का चिह्न कर देते हैं;
जैसे, ते + अपि = तेऽपि (राम०); सो + अनुमानै = सोऽनुमानै
(हिं० ग्रं०); यो + असि = योऽसि (राम०) ।

[य०—हिंदी में इस संघि का प्रचार नहीं है ।]

व्यंजन-संघि ।

६७—क्, च्, ट्, प् के आगे अनुनासिक को छोड़कर कोई

चोप वर्ण हो तो उनके स्थान में क्रम से वर्ग का तीसरा अच्छर हो जाता है; जैसे—

दिक् + गज = दिग्गज; वाक् + ईश = वागीश ।

षट् + रिपु = षड्डिपु; षट् + आनन = षड्डानन ।

अप् + ज = अब्ज; अच् + अंत = अजंत ।

६५—किसी वर्ग के प्रथम अच्छर से परे कोई अनुनासिक वर्ण हो तो प्रथम वर्ण के बदले उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण हो जाता है; जैसे—

वाक् + मय = वाङ्मय; षट् + मास = षण्मास ।

अप् + मय = अम्मय; जगत् + नाथ = जगन्नाथ ।

६६—त् के आगे कोई स्वर, ग, घ, द, ध, ब, भ, अथवा य, र, व रहे तो त् के स्थान में द् होगा; जैसे—

सत् + आनंद = सदानंद; जगत् + ईश = जगदीश ।

उत् + गम = उद्गम; सत् + धर्म = सद्धर्म ।

भगवत् + भक्ति = भगवद्भक्ति; तत् + रूप = तद्रूप ।

७०—त् वा द् के आगे च वा छ हो तो त् वा द् के स्थान में च् होता है; ज वा झ हो तो ज्; ट वा ठ हो तो ट्; ड वा ढ हो तो ढ्; और ल हो तो ल् होता है; जैसे—

उत् + चारण = उच्चारण; शरद् + चंद्र = शरचंद्र ।

महत् + छत्र = महच्छत्र; सत् + जन = सज्जन ।

विपद् + जाल = विपज्जाल; सत् + लीन = तल्लीन ।

७१—त् वा द् के आगे श हो तो त् वा द् के बदले च् और श के बदले छ होता है; और त् वा द् के आगे ह हो तो त् वा द् के स्थान में द् और ह के स्थान में ध होता है; जैसे—

सत् + शाख = सच्छाख; उत् + हार = उद्धार ।

७२—छ के पूर्व स्वर हो तो छ के बदले च्छ होता है; जैसे—

आ + आदन = आच्छादन; परि + छेद = परिच्छेद ।

७३—म् के आगे स्पर्श-वर्ण हो तो म् के बदले विकल्प से अनुस्वार अथवा उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण आता है; जैसे—

सम् + कल्प = संकल्प वा सङ्कल्प ।

किम् + चित् = किंचित् वा किञ्चित् ।

सम् + तोष = संतोष वा सन्तोष ।

सम् + पूर्ण = संपूर्ण वा सम्पूर्ण ।

७४—म् के आगे अंतस्थ वा ऊपर वर्ण हो तो म् अनुस्वार में बदल जाता है; जैसे—

किम् + वा = किंवा; सम् + हार = संहार ।

सम् + योग = संयोग; सम् + वाद = संवाद ।

अपवाद—सम् + राज् = सम्राज् (द.) ।

७५—ऋ, र वा ष के आगे न हो और इनके बीच में चाहे कोई स्वर, कवर्ग, पवर्ग, अनुस्वार य, व, ह आवे तो न का य हो जाता है; जैसे—

भर् + अन = भरण; भूष् + अन = भूषण ।

प्र + मान = प्रमाण; राम + अयन = रामायण ।

तृष् + ना = तृष्णा; ऋ + न = ऋण ।

७६—यदि किसी शब्द के आशा स के पूर्व अ, आ को छोड़ कोई स्वर आवे तो स के स्थान ष होता है; जैसे—

अभि + सेक = अभिषेक; नि + सिद्ध = निषिद्ध ।

वि + सम = विषम; सु + सुप्ति = सुषुप्ति ।

(अ) जिस संस्कृत धातु में पहले स हो और उसके पश्चात् ऋ वा र, उससे बने हुए शब्द का स पूर्वोक्त वर्णों के पीछे आने पर ष नहीं होता; जैसे—

वि + स्मरण (स्मृ—धातु) = विस्मरण ।

अनु + सरण (सृ—धातु) = अनुसरण ।

विं + सर्ग (सज्—धातु) = विसर्ग ।

७५—यौगिक शब्दों में यदि प्रथम शब्द के अंत में न् हो तो उसका लोप होता है; जैसे—

राजन् + आङ्गा = राजाङ्गा; हस्तिन् + दंत = हस्तिदंत ।

प्राणिन् + मात्र = प्राणिमात्र; धनिन् + त्व = धनित्व ।

(अ) अहन् शब्द के आगे कोई भी वर्ण आवे तो अंत्य न् के बदले र् होता है; पर रात्रि, रूप शब्दों के आने से न का उ होता है; और संधि के नियमानुसार अ + उ मिलकर ओ हो जाता है; जैसे—

अहन् + गण = अहर्गण; अहन् + मुख = अहर्मुख ।

अहन् + रात्र = अहोरात्र; अहन् + रूप = अहोरूप ।

विसर्ग-संधि ।

७६—यदि विसर्ग के आगे च वा छ हो तो विसर्ग का श हो जाता है; ट वा ठ हो तो ष; और त वा थ हो तो स् होता है; जैसे—

निः + चल = निश्चल; धनुः + टंकार ॥ धनुष्टंकार ।

निः + छिद्र = निश्छिद्र; मनः + ताप = मनस्ताप ।

७७—विसर्ग के पश्चात् श, ष वा स आवे तो विसर्ग जैसा का तैसा रहता है अथवा उसके स्थान में आगे का वर्ण हो जाता है; जैसे—

दुः + शासन = दुःशासन वा दुश्शासन ।

निः + संदेह = निःसंदेह वा निसंसंदेह ।

८०—विसर्ग के आगे क, ख वा प, फ आवे तो विसर्ग का कोई विकार नहीं होता; जैसे—

रजः + कण = रजःकण; पयः + पान = पयःपान (हि०—
पयपान) ।

(अ) यदि विसर्ग के पूर्व इ वा उ हो तो क, ख वा प, फ
के पहले विसर्ग के बदले ष् द्वृता है; जैसे,

निः + कषट = निष्कषट; दुः + कर्म = दुष्कर्म ।

निः = फळ = निष्कळ; दुः + प्रकृति = दुष्प्रकृति ।

अपवाद—दुः + ख = दुःख; निः + पक्षः = निःपक्ष वा निष्पक्ष ।

(आ) कुछ शब्दों में विसर्ग के बदले स् आता है; जैसे—

नमः + कार = नमस्कार; पुरः + कार = पुरस्कार ।

भाः + कर = भास्कर; भाः + पति = भास्पति ।

८१—यदि विसर्ग के पूर्व अ हो और आगे घोष-व्यंजन हो
तो अ और विसर्ग (अः) के बदले ओ हो जाता है; जैसे—

अधः + गति = अधोगति; भनः + योग = मनोयोग ।

तेजः + राशि = तेजोराशि; वयः + वृद्ध = वयोवृद्ध ।

(स०—बनोवास और मनोकामना शब्द अशुद्ध है ।)

(अ) यदि विसर्ग के पूर्व अ हो और आगे भी अ हो तो
ओ के पश्चात् दूसरे अ का लोप हो जाता है और
उसके बदले लुप्त अकार का चिह्न ५ कर देते हैं
(६६ वाँ अंक); जैसे—

प्रथमः + अध्याय = प्रथमोऽध्याय ।

मनः + अनुसार = मनोऽनुसार ।

८२—यदि विसर्ग के पहले अ, आ को छोड़कर और कोई
स्वर हो और आगे कोई घोष-वर्ण हो तो विसर्ग के स्थान में र्
होता है; जैसे—

निः + आशा = निराशा; दुः + उपयोग = दुरुपयोग ।

निःगुण = निर्गुण; बहिः + मुख = बहिर्मुख ।

(अ) यदि र् के आगे र हो तो र् का लोप हो जाता है और उसके पूर्व का हस्त स्वर दीर्घ कर दिया जाता है, जैसे—

निः + रस = नीरस; निः + रोग = नीरोग;

पुनर् + रचना = पुनारचना (हिं—पुनर्चना) ।

८३—यदि अकार के आगे विसर्ग हो और उसके आगे अ को छोड़कर कोई और स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है और पास पास आये हुए स्वरों की फिर संघि नहीं होती; जैसे—

अतः + एव = अतएव ।

८४—अंत्य स् के बदले विसर्ग हो जाता है; इसलिए विसर्ग संबंधी पूर्वोक्त नियम स् के विषय में भी लगता है। ऊपर दिये हुए विसर्ग के उदाहरणों में ही कहीं-कहीं मूल स् है; जैसे—

अधस + गति = अधः + गति = अधोगति ।

निस् + गुण=निः + गुण=निर्गुण ।

तेजस् + पुंज=तेजः + पुंज=तेजोपुंज ।

यशस् + दा=यशः + दा=यशोदा ।

८५—अंत्य र् के बदले भी विसर्ग होता है। यदि र् के आगे अधोष-वर्ण आवे तो विसर्ग का कोई विकार नहीं होता (७६ वाँ अंक); और उसके आगे धोष-वर्ण आवे तो र् ज्यों का त्यों रहता है (८२ वाँ अंक); जैसे—

प्रातर् + काल=प्रातःकाल ।

अंतर् + करण=अंतःकरण ।

अंतर् + पुर=अंतःपुर ।

पुनर् + उक्ति=पुनरुक्ति ।

पुनर् + जन्म=पुनर्जन्म ।

दूसरा भाग ।

शब्द-साधन ।

पहला परिच्छेद ।

शब्दनेद ।

पहला अध्याय ।

शब्द-विचार

८६—शब्द-साधन व्याकरण के उस विभाग को कहते हैं जिसमें शब्दों के भेद (तथा उनके प्रयोग), रूपांतर और व्युत्पत्ति का निरूपण किया जाता है ।

८७—एक या अधिक अच्छरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं; जैसे, लड़का, जा, छोटा, मैं, धीरे, परंतु, इत्यादि ।

(अ) शब्द अच्छरों से बनते हैं । 'न' और 'थ' के मेल से 'नथ' और 'थन' शब्द बनते हैं, और यदि इनमें 'आ' का योग कर दिया जाय तो 'नाथ', 'थान', 'नथा', 'थाना' आदि शब्द बन जायेंगे ।

(आ) सृष्टि के संपूर्ण प्राणियों, पदार्थों, धर्मों, और उनके सब प्रकार के संबंधों को व्यक्त करने के लिए शब्दों का उपयोग होता है । एक शब्द से (एक समय में) प्रायः एक ही भावना प्रकट होती है; इसलिए कोई भी पूर्ण विचार प्रकट

करने के लिए एक से अधिक शब्दों का कोम पड़ता है। ‘आज तुमें क्या सूझी है ?’—यह एक पूर्ण विचार अर्थात् वाक्य है और इसमें पाँच शब्द हैं—आज, तुमें, क्या, सूझी, है। इनमें से प्रत्येक शब्द एक स्वतंत्र सार्थक ध्वनि है और उससे कोई एक भावना प्रकट होती है।

(इ) ल, ड, का अलग-अलग शब्द नहीं हैं, क्योंकि इनसे किसी प्राणी, पदार्थ, धर्म वा उनके परस्पर संबंध का कोई बोध नहीं होता। ‘ल, ड, का, अच्छरकहाते हैं’—इस वाक्य में ल, ड, का, अच्छरों का प्रयोग शब्दों के समान हुआ है; परंतु इनसे इन अच्छरों के सिवा और कोई भावना प्रकट नहीं होती। इन्हें केवल एक विशेष (पर तुच्छ) अर्थ में शब्द कह सकते हैं; पर साधारण अर्थ में इनकी गणना शब्दों में नहीं हो सकती। ऐसे ही विशेष अर्थ में निरर्थक ध्वनि भी शब्द कही जाती है; जैसे, लड़का ‘बा’ कहता है। पागल ‘अल्लाबल्ल’ बकता था।

(ई) शब्द के लक्षण में ‘स्वतंत्र’ शब्द रखने का कारण यह है कि भाषा में कुछ ध्वनियाँ ऐसी होती हैं जो स्वयं सार्थक नहीं होतीं, पर जब वे शब्दों के साथ जोड़ी जाती हैं तब सार्थक होती हैं। ऐसी परतंत्र ध्वनियों को शब्दांश कहते हैं; जैसे, ता, पन, चाला, ने, को, इत्यादि। जो शब्दांश किसी शब्द के पहले जोड़ा जाता है उसे उपसर्ग कहते हैं और जो शब्दांश शब्द के पीछे जोड़ा जाता है; वह प्रत्यय कहता है; जैसे, ‘अशुद्धता’ शब्द में ‘अ’ उपसर्ग और ‘ता’ प्रत्यय है। मुख्य शब्द ‘शुद्ध’ है।

[स०—(अ) हिंदी में ‘शब्द’ का अर्थ बहुत ही संदिग्ध है । “अब तो तुम्हारी चाही चात हुई” — इस वाक्य में ‘तुम्हारी’ भी शब्द कहलाता है और जिस ‘तुम’ से यह शब्द बना है वह ‘तुम’ भी शब्द कहाता है । इसी प्रकार ‘मन’ और ‘चाही’ दो अलग-अलग शब्द हैं और दोनों मिल-कर ‘मनचाही’ एक शब्द बना है । इन उदाहरणों में ‘शब्द’ का प्रयोग अलग-अलग अर्थों में हुआ है; इसलिए शब्द का ठीक अर्थ जानना आवश्यक है । जिन प्रत्ययों के पश्चात् दूसरे प्रत्यय नहीं लगते उन्हें चरम प्रत्यय कहते हैं और चरम प्रत्यय लगने के पहले शब्द का जो मूल रूप होता है यथार्थ में वही शब्द है । उदाहरण के लिए ‘दीनता से’ शब्द को खो । इसमें मूल शब्द अर्थात् प्रकृति ‘दीन’ है और प्रकृति में ‘से’ और ‘दो’ प्रत्यय लगे हैं । ‘ता’ प्रत्यय के पश्चात् ‘से’ प्रत्यय आया है; परंतु ‘से’ के पश्चात् कोई दूसरा प्रत्यय नहीं लग सकता, इसलिए ‘से’ के पहले ‘दीनता’ मूल रूप है और इसीको शब्द कहेंगे । चरम प्रत्यय लगने से शब्द का जो रूपांतर होता है वही इसकी यथार्थ विहृति है और इसे पद कहते हैं । व्याकरण में शब्द और पद का अंतर वह महत्व का है और शब्द-साधन में इन्हीं शब्दों और पदों का विचार किया जाता है ।

(आ)—व्याकरण में शब्द और वस्तुकुँड़ि के अंतर पर ध्यान रखना आवश्यक है । यद्यपि व्याकरण का प्रधान विषय शब्द है तथापि कभी-कभी यह मेद बताना कठिन हो जाता है कि हम केवल शब्दों का विचार कर रहे हैं अथवा शब्दों के द्वारा किसी वस्तु के विषय में कहर रहे हैं । मान लो कि हम सुषिं भेद में एक घटना देखते हैं और तत्संबंधी अपना विचार वाक्यों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं—माली फूल तोड़ता है । इस घटना में तोड़ने की किया करनेवाला (कर्ता) माली है; परंतु वाक्य में ‘माली’ (शब्द) को कर्ता कहते हैं; यद्यपि ‘माली’ (शब्द) कोई

कुँड़ि वस्तु शब्द से यहाँ प्राणी, पदार्थ, धर्म और उनके परस्पर संबंध का (व्यापक) अर्थ लेना चाहिए ।

किया नहीं कर सकता । इसी प्रकार तो हमना किया का फल फूल (वस्तु) पर पड़ता है; परंतु व्याकरण के अनुसार वह फल 'फूल' (शब्द) पर अवलंबित माना जाता है । व्याकरण में वस्तु और उसके वाचक शब्द के संबंध का विचार शब्दों के रूप, अर्थ, प्रयोग और उनके परस्पर संबंध से किया जाता है ।

८८—परस्पर संबंध रखनेवाले दो या अधिक शब्दों को जिनसे पूरी बात नहीं जानी जाती वाक्यांश कहते हैं; जैसे, 'घर का घर', 'सच बोलना', 'दूर से आया हुआ', इत्यादि ।

८९—एक पूर्ण विचार व्यक्त करनेवाला शब्द-समूह वाक्य कहाता है; जैसे, लड़के फूल बीन रहे हैं; विद्या से नम्रता प्राप्त होती है, इत्यादि ।

दूसरा अध्याय । शब्दों का वर्गीकरण ।

६०—किसी वस्तु के विषय में मनुष्य की भावनाएँ जितने प्रकार की होती हैं उन्हें सूचित करने के लिए शब्दों के उतने ही भेद होते हैं और उनके उतने ही रूपांतर भी होते हैं ।

मान लो कि हम पानी के विषय में विचार करते हैं तो हम 'पानी' या उसके और किसी समानार्थक शब्द का प्रयोग करेंगे । किर यदि हम पानी के संबंध में कुछ कहना चाहें तो हमें 'गिरा' या कोई दूसरा शब्द कहना पड़ेगा । 'पानी' और 'गिरा' दो अलग-अलग प्रकार के शब्द हैं, क्योंकि उनका प्रयोग अलग-अलग है । 'पानी' शब्द एक पदार्थ का नाम सूचित करता है और 'गिरा' शब्द से हम उस पदार्थ के विषय में कुछ विधान

करते हैं। व्याकरण में पदार्थ का नाम सूचित करनेवाले शब्द को संज्ञा कहते हैं और उस पदार्थ के विषय में विधान करनेवाले शब्द को क्रिया कहते हैं। 'पानी' शब्द संज्ञा और 'गिरा' शब्द क्रिया है।

'पानी' शब्द के साथ हम दूसरे शब्द लगाकर एक दूसरा ही विचार प्रकट कर सकते हैं, जैसे, 'मैला पानी बहा'। इस वाक्य में 'पानी' शब्द तो पदार्थ का नाम है और 'बहा' शब्द पानी के विषय में विधान करता है; परंतु 'मैला' शब्द न तो किसी पदार्थ का नाम सूचित करता है और न किसी पदार्थ के विषय में विधान ही करता है। 'मैला' शब्द पानी की विशेषता बताता है, इसलिए वह एक अलग ही जाति का शब्द है। पदार्थ की विशेषता बतानेवाले शब्द को व्याकरण में विशेषण कहते हैं। 'मैला' शब्द विशेषण है। "मैला पानी अभी बहा"—इस वाक्य में 'अभी' शब्द न संज्ञा है, न क्रिया और न विशेषण, वह 'बहा' क्रिया को विशेषता बतलाता है; इसलिए वह एक दूसरी ही जाति का शब्द है, और उसे क्रियाविशेषण कहते हैं। इसी तरह वाक्य में प्रयोग के अनुसार शब्दों के और भी भेद होते हैं।

प्रयोग के अनुसार शब्दों की भिन्न भिन्न जातियों को शब्द-भेद कहते हैं। शब्दों की भिन्न-भिन्न जातियाँ बताना उनका वर्गीकरण कहलाता है।

३।—अपने विचार प्रकट 'करने' के लिए हमें भिन्न-भिन्न भावनाओं के अनुसार एक शब्द को बहुधा कई रूपों में कहना पड़ता है।

मान लो कि हमें 'घोड़ा' शब्द का प्रयोग करके उसके वाक्य

प्राणी की संख्या का बोध कराना है तो हम यह घुमाव की बात न कहेंगे कि “घोड़ा नाम के दो या अधिक जानवर”, किंतु ‘घोड़ा’ शब्द के अंत्य ‘आ’ के बदले ‘ए’ करके ‘घोड़े’ शब्द का प्रयोग करेंगे। ‘पानी गिरा’ इस वाक्य में यदि हम ‘गिरा’ शब्द से किसी और काल (समय) का बोध कराना चाहें तो हमें ‘गिरा’ के बदले ‘गिरेगा’ या ‘गिरता है’ कहना पड़ेगा। इसी प्रकार और-और शब्दों के भी रूपान्तर होते हैं।

शब्द के अर्थ में हेरफेर करने के लिए उस (शब्द) के रूप में जो हेरफेर होता है उसे रूपान्तर कहते हैं।

६२—एक पदार्थ के नाम के संबंध से बहुधा दूसरे पदार्थों के नाम रखते जाते हैं; इसलिए एक शब्द से कई नये शब्द बनते हैं; जैसे, ‘दूध’ से ‘दूधचाला’, ‘दुधार’, ‘दुधिय’ इत्यादि। कभी-कभी दो या अधिक शब्दों के मेल से एक नया शब्द बनता है; जैसे, गंगा-जल, चौकोन, रामपुर, त्रिकालदर्शी, इत्यादि।

एक शब्द से दूसरा नया शब्द बनाने की प्रक्रिया को व्युत्पत्ति कहते हैं।

६३—वाक्य में, प्रयोग के अनुसार, शब्दों के आठ भेद होते हैं—

(१) वस्तुओं के नाम बतानेवाले शब्द..... संज्ञा ।

(२) वस्तुओं के विषय में विधान करनेवाले शब्द...क्रिया ।

(३) वस्तुओं की विशेषता बतानेवाले शब्द.....विशेषण ।

(४) विधान करनेवाले शब्दों की विशेषता बतानेवाले शब्द..... क्रिया-विशेषण ।

(५) संज्ञा के बदले आनेवाले शब्द..... सर्वनाम ।

(६) किया से नामार्थक शब्दों का संबंध
सूचित करनेवाले शब्द..... संबंध-सूचक ।

(७) दो शब्दों वा वाक्यों को मिलानेवाले
शब्द..... समुच्चय-बोधक ।

(८) केवल मनोविकार सूचित करनेवाले शब्द...विस्यादि-
बोधक ।

(९) नीचे लिखे वाक्यों में आठों शब्द-भेदों के उदाहरण
दिये जाते हैं—

अरे ! सूरज ढूब गया और तुम अभी इसी गाँव के पास किर
रहे हो !

अरे !—विस्यादि-बोधक है । यह शब्द केवल मनोविकार
सूचित करता है । (यदि हम इस शब्द को वाक्य से निकाल दें
तो वाक्य के अर्थ में कुछ भी अंतर न पड़ेगा ।)

सूरज—संज्ञा है; क्योंकि यह शब्द एक वस्तु का नाम सूचित
करता है ।

ढूब गया—क्रिया है; क्योंकि इस शब्द से हम सूरज के विषय
में विधान करते हैं ।

और—समुच्चय-बोधक है । यह शब्द दो वाक्यों को
जोड़ता है—

(१) सूरज ढूब गया ।

(२) तुम अभी इसी गाँव के पास किर रहे हो ।

तुम—सर्वनाम है; क्योंकि वह नाम के बदले आया है ।

अभी—क्रिया-विशेषण है और ‘फिर रहे हो’ क्रिया की
विशेषता बतलाता है ।

इसी—विशेषण है; क्योंकि वह गाँव की विशेषता बतलाता है ।

गाँव—संज्ञा है ।

के—शब्दांश (प्रत्यय) है, क्योंकि वह 'गाँव' शब्द के साथ आकर सार्थक होता है।

पास—संबंध-सूचक है। यह शब्द 'गाँव' का संबंध 'फिर रहे हो' किया से मिलाता है।

फिर रहे हो—किया है।

६४—रूपांतर के अनुसार शब्दों के दो भेद होते हैं—(१) विकारी, (२) अविकारी।

(१) जिस शब्द के रूप में कोई विकार होता है, उसे विकारी शब्द कहते हैं; जैसे,

लड़का—लड़के, लड़कों, लड़की, इत्यादि।

देख—देखना, देखा, देखूँ, देखकर, इत्यादि।

(२) जिस शब्द के रूप में कोई विकार नहीं होता उसे अविकारी शब्द वा अव्यय कहते हैं; जैसे, परंतु, अचानक, बिना, बहुधा, हाय इत्यादि।

६५—संशा, सर्वनाम, विशेषण और किया विकारी शब्द हैं; और किया-विशेषण, संबंध-सूचक, समुच्चय-बोधक और विस्मयादि-बोधक अविकारी शब्द वा अव्यय हैं।

[टी०—हिंदी के अनेक व्याकरणों में संस्कृत की चाल पर शब्दों के तीन भेद माने गये हैं—(१) संशा, (२) किया, (३) अव्यय। संस्कृत में प्रातिपदिक, घातु और अव्यय के नाम से शब्दों के तीन भेद माने गये हैं; और ये भेद शब्दों के रूपांतर के आधार पर किये गये हैं। व्याकरण में मुख्यतः रूपांतर ही का विचार किया जाता है; परंतु जहाँ शब्दों के केवल रूपों से उनका परस्पर संबंध प्रकट नहीं होता वहाँ उनके

* विभक्ति (प्रत्यय) लगने के पूर्व संशा, सर्वनाम वा विशेषण का मूल-रूप।

प्रयोग वा अर्थ का भी विचार किया जाता है। संस्कृत रूपांतर-शील भाषा है; इसलिए उसमें शब्दों का प्रयोग वा अर्थ बहुधा उनके रूपों ही से जाना जाता है। यही कारण है जो संस्कृत में शब्दों के उतने भेद नहीं माने गये जितने अँगरेजी में और उसके अनुसार हिंदी, मराठी, गुजराती, आदि भाषाओं में माने जाते हैं। हिंदी में शब्द के रूप से उसका अर्थ वा प्रयोग सदा प्रकट नहीं होता; क्योंकि वह संस्कृत के समान पूर्णतया रूपांतर-शील भाषा नहीं है। हिंदी में कभी-कभी बिना रूपांतर के, एक ही शब्द का प्रयोग भिज-भिज शब्द-मेदों में होता है; जैसे, वे लड़के साथ खेलते हैं। (क्रिया-विशेषण)। लड़का बाप के साथ गया। (संबंध-सूचक)। विपत्ति में कोई साथ नहीं देता। (संशा)। इन उदाहरणों से आन पढ़ता है कि हिंदी में संस्कृत के समान केवल रूप के आधार पर शब्द-भेद मानने से उनका-ठीक ठीक निर्णय नहीं हो सकता। हिंदी के कोई-कोई वैयाकरण शब्दों के केवल पौँच भेद मानते हैं—संशा, सर्वनाम, विशेषण क्रिया और अव्यय। वे लोग अव्ययों के भेद नहीं मानते और उनमें भी विस्मयादि-ओष्ठक को शामिल नहीं करते। जो लोग शब्दों के केवल तीन भेद (संशा, क्रिया और अव्यय) मानते हैं उनमें से कोई-कोई भेदों के उपभेद मानकर शब्द-मेदों की संख्या तीन से अधिक कर देते हैं। किसी-किसी के मत में उपसर्ग और प्रत्यय भी शब्द है और वे इनकी गणना अव्ययों में करते हैं। इस प्रकार शब्द-मेदों की संख्या में बहुत मत-भेद है।

अँगरेजी में भी (जिसके अनुसार हिंदी में आठ शब्द-भेद मानने की चाल पड़ी है) इनके विषय में वैयाकरण एक-मत नहीं। उन लोगों में किसी ने दो, किसी ने चार, किसी ने आठ और किसी ने नौ तक भेद माने हैं। इस मत-भेद का कारण यह है कि वे वर्गीकरण पूर्णतया वैज्ञानिक आधार पर नहीं किये गये। कुछ विद्वानों ने इन शब्द-भेदों को तर्क-सम्मत आधार देने की चेष्टा की है, जिसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

(१) भावनात्मक शब्द

- (१) वाक्य में उद्देश होनेवाले शब्द.....संशा ।
 (२) विषेय होनेवाले शब्द.....किया ।
 (३) संशा का धर्म बतानेवाले शब्द...विशेषण ।
 (४) किया का धर्म बतानेवाले शब्द...किया-विशेषण ।

(२) संबंधात्मक शब्द

- (५) संशा का संबंध वाक्य से
 बतानेवाले शब्द.....संबंध-मूलक
 (६) वाक्य का संबंध वाक्य से
 बतानेवाले शब्द.....समुच्चय-बोधक ।

- (७) अप्रधान (परंतु उपयोगी)
 शब्द-मेद.....सर्वनाम ।
 (८) अव्याकरणीय उद्धार.....विस्मयाधि-बोधक ।

शब्दों के जो आठ मेद और गरेजी भाषा के वैयाकरणों ने किये हैं वे निरे अनुमान-मूलक नहीं हैं। भाषा में उन अर्थों के शब्दों की आवश्यकता होती है और प्रायः प्रत्येक उच्चत भाषा में आपही आप उनकी उत्पत्ति होती है। भाषा-शास्त्रियों में वह सिद्धांत सर्वसम्मत है कि किसी भी भाषा में शब्दों के आठ मेद होते ही हैं। यद्यपि इन मेदों में तक़-सम्मत वर्गांकरण के नियमों का पूरा पालन नहीं हो सकता और इनके लक्षण पूर्णतया निर्दोष नहीं हो सकते, तथापि व्याकरण के शान के लिए इन्हें जानने की आवश्यकता होती है। व्याकरण के द्वारा विदेशी भाषा सीखने में इन मेदों के ज्ञान से बड़ी सहायता मिलती है। वर्गांकरण का उद्देश यही है कि किसी भी विषय की बातें जानने में स्मरण-शक्ति को सहायता मिले। इसीलिए विशेष धर्मों के आचार पर पदार्थों के वर्ग किये जाते हैं।

किसी-किसी का मत है कि हिंदी में अँगरेजी व्याकरण की 'छूट' न छुसनी चाहिये। ऐसे लोगों को सोचना चाहिये कि जिस प्रकार हिंदी से संस्कृत का संबंध नहीं दूट सकता उसी प्रकार अँगरेजी से उसका वर्तमान संबंध दूटना, इष्ट होने पर भी, शक्य नहीं। अँगरेज लोगों ने अपने दूसरे विचार और दीर्घ उच्योग से ज्ञान की प्रत्येक शाखा में जो समुद्रति की है उसे हम लोग सहज ही में नहीं भुला सकते। यदि संस्कृत में शब्दों के आठ भेद नहीं माने गये हैं तो हिंदी में उन्हें उपयोगिता की दृष्टि से मानने में कोई हानि नहीं, किंतु लाभ ही है।

यहाँ अब यह प्रश्न हो सकता है कि जब हम संस्कृत के अनुसार शब्द-भेद नहीं मानते तब किर संस्कृत के पारिभाषिक शब्दों का उपयोग क्यों करते हैं? इसका उत्तर यह है कि ये शब्द हिंदी में प्रचलित हैं और हम लोगों को इनका हिंदी अर्थ समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। इसलिए बिना किसी विशेष कारण के प्रचलित शब्दों का स्वाग उचित नहीं। किसी-किसी पुस्तक में 'संश' के लिए 'नाम' और 'सर्व-नाम' के लिए 'संशा-प्रतिनिधि' शब्द आये हैं और कोई-कोई लोग 'अव्यय' के लिए 'निपात' शब्द का प्रयोग करते हैं। परंतु प्रचलित शब्दों को इस प्रकार बदलने से गड़बड़ के सिवा कोई लाभ नहीं। इस पुस्तक में अधिकांश पारिभाषिक शब्द 'भाषा भास्कर' से लिये गये हैं; क्योंकि निर्दोष न होने पर भी वह पुस्तक बहुत दिनों से प्रचलित है और उसके पारिभाषिक शब्द हम लोगों के लिए नये नहीं हैं।)

६६—छ्युत्पत्ति के अनुसार शब्द दो प्रकार के होते हैं—(१) रुढ़, (२) यौगिक।

(१) रुढ़ उन शब्दों को कहते हैं जो दूसरे शब्दों के योग से नहीं बने; जैसे, नाक, कान, पीला, झट, पर, इत्यादि।

(२) जो शब्द दूसरे शब्दों के योग से बनते हैं उन्हें यौगिक

शब्द कहते हैं; जैसे, कतर-नी, पीला-पन, दूध-बाला, मट-पट, घुड़-साल, इत्यादि ।

(स०—यौगिक शब्दों में ही सामासिक शब्दों का समावेश होता है ।)

अर्थ के अनुसार यौगिक शब्दों का एक भेद योगरूढ़ कहाता है जिससे कोई विशेष अर्थ पाया जाता है; जैसे, लंबादर, गिरिधारी, जलद, पंकज, इत्यादि । 'पंकज' शब्द के खंडों (पंक + ज) का अर्थ 'कीचड़ से उत्पन्न' है; पर उससे केवल कमल का विशेष अर्थ लिया जाता है ।

(स०—हिंदी व्याकरण में की कई पुस्तकों में ये सब भेद केवल संशाश्रों के माने गये हैं और उनमें उपसर्ग-युक्त संशाश्रों के उदाहरण नहीं दिये गये हैं । हिंदी में यौगिक शब्द उपसर्ग और प्रत्यय दोनों के योग से बनते हैं और उनमें संशाश्रों के सिवा दूसरे शब्द-भेद भी आते हैं (१६८ वाँ अंक) ।)

इस विषय का सविस्तर विवेचन शब्द-साधन के व्युत्पत्ति-प्रकरण में किया जायगा । (दूसरे भाग के आरंभ में)

पहला खंड ।

विकारी शब्द ।

पहला अध्याय ।

संज्ञा ।

६७—संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे प्रकृत किंवा कल्पित सूष्टि की किसी वस्तु का नाम सूचित हो; जैसे, घर, आकाश, गंगा, देवता, अङ्गर, बल, जादू, इत्यादि ।

(क) इस लक्षण में 'वस्तु' शब्द का उपयोग अत्यंत व्यापक अर्थ में किया गया है। वह केवल प्राणी और पदार्थ ही का वाचक नहीं है किंतु उनके धर्मों का भी वाचक है । साधारण भाषा में 'वस्तु' शब्द का उपयोग इस अर्थ में नहीं होता; परन्तु शास्त्रीय ग्रंथों में ड्यवहृत शब्दों का अर्थ कुछ घटा-घटाकर निरिचित कर लेना चाहिये जिससे उसमें कोई संदेह न रहे ।

[टी०—हिंदी व्याकरणों में दिये हुए सब लक्षण तर्क-सम्मत रीति से किये हुए नहीं जान पड़ते; इसलिए यहाँ तर्क-सम्मत लक्षणों के विषय में संक्षेपतः कुछ कहने की आवश्यकता है । किसी भी पद का लक्षण कहने में दो बातें बतानी पड़ती हैं—(१) जिस जाति में उस पद का समावेश होता है वह जाति; और (२) लक्ष्य पद का असाधारण धर्म, अर्थात् लक्ष्य पद के अर्थ को उस जाति की अन्य उपजातियों के अर्थ से अलग करनेवाला धर्म । किसी शब्द का अर्थ समझाने के कई उपाय हो सकते हैं; पर उन सबको लक्षण नहीं कह सकते । जिस लक्षण में लक्ष्य पद

स्पष्ट अर्थवा गुप्त रीति से आता है कि यह शुद्ध लक्षण नहीं है। इसी प्रकार एक शब्द का अर्थ दूसरे शब्द के द्वारा बताना (अर्थात् उसका पर्याय-बाची शब्द कहना) भी उस शब्द का लक्षण नहीं। यदि हम संशा का न्यायोक लक्षण कहना चाहें तो हमें उसकी जाति और असाधारण धर्म बताना चाहिये। जिस अधिक व्यापक वर्ग में संशा का समावेश होता है वही उसकी जाति है, और उस जाति की दूसरी उपजातियों से संशा के अर्थ में जो भिन्नता है वही उसका असाधारण धर्म है। संशा का समावेश विकारी शब्दों में है; इसलिए 'विकारी शब्द' संशा की जाति है और 'प्रकृत किंवा कलिपत सूष्टि' की किसी वस्तु का नाम सूचित करना' उसका असाधारण धर्म है जो विकारी शब्द की उपजातियों, अर्थात् सर्वनाम, विशेषण, आदि में नहीं पाया जाता। इसलिए ऊपर कही हुई संशा की परिभाषा, न्याय-दृष्टि से स्वीकरणीय है। लक्षण में अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष न होने चाहिए। जब लक्षण पद के असाधारण धर्म के बदले किसी ऐसे धर्म का उल्लेख किया जाता है जो उसकी जाति के सब व्यक्तियों में नहीं पाया जाता, तब लक्षण में अव्याप्ति-दोष होता है; जैसे यदि मनुष्य के लक्षण में यह कहा जाय कि "मनुष्य वह विवेकी प्राणी है जो व्यक्त भाषा बोलता है" तो इस लक्षण में अव्याप्ति-दोष है, क्योंकि व्यक्त भाषा बोलने का धर्म गौण मनुष्यों में नहीं पाया जाता। इसके विवद, जब लक्षण पद का धर्म उसकी जाति से भिन्न जातियों के व्यक्तियों में भी घटित होता है तब लक्षण में अति-व्याप्ति दोष होता है; जैसे बन का लक्षण करने में यह कहना अति-व्याप्ति-दोष है कि 'बन स्थल का वह भाग है जो सघन वृक्षों से ढँका रहता है', क्योंकि सघन वृक्षों से ढँके रहने का धर्म पर्वत और घरीचे में भी पाया जाता है।

हिंदी-ज्याकरणों में दिये गये, संशा के लक्षणों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) संशा पदार्थ के नाम को कहते हैं। (भा०-त०-ग्र०) ।

(२) संज्ञा वस्तु के नाम को कहते हैं । (भा०-भा०) ।

(३) पदार्थ-मात्र की संज्ञा को नाम कहते हैं । (भा०-त०-दी) ।

(४) वस्तु के नाम-मात्र को संज्ञा कहते हैं । (हिं०-भा० व्या०)

ये लक्षण देखने में सहज जान पड़ते हैं और छोटे-छोटे विद्यार्थियों के बोध के लिए तर्क-सम्मत लक्षणों की अपेक्षा अधिक उपयोगी हैं, परंतु ये ठीक शुद्ध या निर्दोष लक्षण नहीं हैं । इनसे केवल यही जाना जाता है कि 'संज्ञा' का पर्यायवाची शब्द 'नाम' है अथवा 'नाम' का पर्यायवाची शब्द 'संज्ञा' है । इसके सिवा इन लक्षणों में कल्पित सुष्ठि का कोई उल्लेख नहीं है । वैताल पञ्चीसी, शुकबहतरी, हितोपदेश, आदि कल्पित विषयों की पुस्तकों में तथा कल्पित नाटकों और उपन्यासों में जिस सुष्ठि का वर्णन रहता है उस सुष्ठि के प्राणियों, पदार्थों और घमों के नाम भी व्याकरण के संज्ञा-वर्ग में आ सकते हैं । इस दृष्टि से ऊपर लिखे लक्षणों में अव्याप्ति दोष भी है ।]

(ख) 'संज्ञा' शब्द का उपयोग वस्तु के लिए नहीं होता, किंतु वस्तु के नाम के लिए होता है । जिस कागज पर यह पुस्तक छपी है वह कागज संज्ञा नहीं है; किंतु पदार्थ है । पर 'कागज' शब्द जिसके द्वारा हम उस पदार्थ का नाम सूचित करते हैं, संज्ञा है ।

६८—संज्ञा दो प्रकार की होती है—(१) पदार्थवाचक, (२) भाववाचक ।

६९—जिस संज्ञा से किसी पदार्थ वा पदार्थों के समूह का बोध होता है उसे पदार्थवाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे, राम, राजा, घोड़ा, कागज, काशी, सभा, भीड़, इत्यादि ।

[सूचना—इन लक्षणों में 'पदार्थ' शब्द का प्रयोग जड़ और चेतन दोनों प्रकार के पदार्थों के लिए किया गया है ।]

१००—पदार्थवाचक संज्ञा के दो भेद हैं—(१) व्यक्तिवाचक (२) जातिवाचक ।

१०१—जिस संज्ञा से किसी एक ही पदार्थ वा पदार्थों के एक ही समूह का बोध होता है उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं; जैसे, राम, काशी, गंगा, महामंडल, हितकारिणी, इत्यादि ।

‘राम’ कहने से केवल एक ही व्यक्ति (अकेले मनुष्य) का बोध होता है; प्रत्येक मनुष्य को ‘राम’ नहीं कह सकते । यदि हम ‘राम’ को देवता मानें तो भी ‘राम’ एक ही देवता का नाम है । उसी प्रकार ‘काशी’ कहने से इस नाम के एक ही नगर का बोध होता है । यदि ‘काशी’ किसी ऊँची का नाम हो तो भी इस नाम से उस एक ही ऊँची का बोध होगा । व्यक्तिवाचक संज्ञा चाहे जिस प्राणी वा पदार्थ का नाम हो, वह उस एक ही प्राणी वा पदार्थ को छोड़कर दूसरे व्यक्ति का नाम नहीं हो सकती । नदियों में ‘गंगा’ एक ही व्यक्ति (अकेली नदी) का नाम है; यह नाम किसी दूसरी नदी का नहीं हो सकता । संसार में एक ही राम, एक ही काशी और एक ही गंगा है । ‘महामंडल’ लोगों के एक ही समूह (सभा) का नाम है; इस नाम से कोई दूसरा समूह सूचित नहीं होता । इसी प्रकार ‘हितकारिणी’ कहने से एक अकेले समूह (व्यक्ति) का बोध होता है । इसलिए राम, काशी, गंगा, महामंडल, हितकारिणी व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैं ।

व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ बहुधा अर्थ-हीन होती हैं । इनके प्रयोग से जिस व्यक्ति का बोध होता है उसका प्रायः कोई भी धर्म इनसे सूचित नहीं होता । नर्मदा नाम से एक ही नदी का अध्यवा एक ही ऊँची का या और किसी एक ही व्यक्ति का बोध हो सकता है, पर इस नाम के व्यक्ति का प्रायः कोई भी धर्म इस शब्द से सूचित नहीं होता । ‘नर्मदा’ शब्द आदि में अर्थवान् ‘मोक्ष देने वाली’ रहा हो, तथापि व्यक्तिवाचक संज्ञा में उसका वह अर्थ अप्रचलित हो गया और अब वह नाम पहचानने के लिए किसी भी व्यक्ति

को दिया जा सकता है। व्यक्तिवाचक संज्ञा किसी व्यक्ति की पहचान या सूचना के लिए केवल एक संकेत है और यह संकेत इच्छानुसार बदला जा सकता है। यदि किसी घर में मालिक और नौकर का नाम एक ही हो तो बहुत करके नौकर अपना नाम बदलने को राजी हो जायगा। एक ही नाम के कई मनुष्यों की एक दूसरे से भिन्नता सूचित करने के लिए प्रत्येक नाम के साथ बहुधा कोई संज्ञा या विशेषण लगा देते हैं; जैसे, आबू देवदत्त, इत्यादि। यदि एक ही मनुष्य के दो नाम हों तो व्यवहारी वा सरकारी कागज-पत्रों में उसे दोनों लिखने पड़ते हैं, जिसमें उसे अपने किसी एक नाम की आड़ में धोखा देने का अवसर न मिले; जैसे, मोहन उर्फ विहारी; बलदेव उर्फ रामचन्द्र, इत्यादि।

कुछ संज्ञाएँ व्यक्ति-वाचक होने पर भी अर्थवान् हैं; जैसे, ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्मांड, परब्रह्म, प्रकृति, इत्यादि।

१०२—जिस संज्ञा से किसी जाति के संपूर्ण पदार्थों वा उनके समूहों का बोध होता है उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं; जैसे, मनुष्य, घर, पहाड़, नदी, सभा, इत्यादि।

हिमालय, विध्याचाल, नीलगिरि और आबू एक दूसरे से भिन्न हैं, क्योंकि वे अलग-अलग व्यक्ति हैं; परंतु वे एक मुख्य धर्म में समान हैं, अर्थात् वे धरती के बहुत ऊँचे भाग हैं। इस साधार्य के कारण उनकी गिनती एक ही जाति में होती है और इस जाति का नाम 'पहाड़' है। हिमालय, विध्याचाल, नीलगिरि, आबू और इस जाति के दूसरे सब व्यक्तियों के लिए 'पहाड़' नाम आता है। 'हिमालय' कहने से (इस नाम के) केवल एक ही पहाड़ का बोध होता है; पर 'पहाड़' कहने से हिमालय, नीलगिरि, विध्याचाल, आबू और इस जाति के दूसरे सब पदार्थ सूचित होते हैं। इस-

लिए 'पहाड़' जातिवाचक संज्ञा है। इसी प्रकार गंगा, यमुना, सिंधु ब्रह्मपुत्र और इस जाति के दूसरे सब व्यक्तियों के लिए 'नदी' नाम का प्रयोग किया जाता है; इसलिए 'नदी' शब्द जातिवाचक संज्ञा है। लोगों के समूह का नाम 'सभा' है। ऐसे समूह कई हैं; जैसे, 'नागरी-प्रचारिणी', 'कान्यकुब्ज', 'महाजन', 'हितकारिणी', इत्यादि। इन सब समूहों को सूचित करने के लिए 'सभा' शब्द का प्रयोग होता है, इसलिये 'सभा' जातिवाचक संज्ञा है।

जातिवाचक संज्ञाएँ अर्थवान् होती हैं। यदि हम किसी स्थान का नाम 'प्रयाग' के बदले 'इलहाबाद' रख दें तो लोग उसे इसी नाम से पुकारने लगेंगे; परंतु यदि हम शहर को 'नदी' कहें तो कोई हमारी बात न समझेगा ! 'प्रयाग' और 'इलहाबाद' में केवल नाम का अंतर है, परंतु 'शहर' और 'नदी' शब्दों में अर्थ का अंतर है। 'प्रयाग' शब्द से उसके बाच्य पदार्थ का कोई भी धर्म सूचित नहीं होता; परंतु 'शहर' शब्द से हमारे मन में बड़े-बड़े घरों के समूह की भावना उत्पन्न होती है। इसी प्रकार 'सभा' शब्द सुनने से हमें उसका अर्थ-ज्ञान (मनुष्यों के समूह का बोध) सहज ही हो जाता है; परंतु 'हितकारिणी' कहने से वैसा कोई धर्म प्रकट नहीं होता ।

[स०—यद्यपि पहचान के मुमीते के लिए मनुष्यों और स्थानों को विशेष नाम देना आवश्यक है, तथापि इस बात की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक प्राणी या पदार्थ को कोई विशेष नाम दिया जाय। स्याही से लिखने के काम में आनेवाले प्रत्येक पदार्थ को हम 'कलम' शब्द से सूचित कर सकते हैं; इसलिए 'कलम' नाम से प्रत्येक अकेले पदार्थ को अलग अलग नाम देने की आवश्यकता नहीं है। यदि प्रत्येक अकेले पदार्थ (जैसे, प्रत्येक मुई) का एक अलग विशेष नाम रखा जाय तो भाषा बहुत ही जटिल हो जायगी ! इसलिए अधिकांश पदार्थों का बोध जाति-

वाचक संज्ञाओं से हो जाता है और व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग केवल भूल या गड़बड़ मिटाने के विचार से किया जाता है ।]

१०३—जिस संज्ञा से पदार्थ में पाये जानेवाले किसी धर्म का बोध होता है उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं; जैसे, लंबाई, चतुराई, बुढ़ापा, नम्रता, मिठास, समझ, चाल इत्यादि ।

प्रत्येक पदार्थ में कोई धर्म होता ही है । पानी में शीतलता, आग में उषणता, सोने में भारीपन, मनुष्य में विवेक और पशु में अविवेक रहता है । जब हम कहते हैं कि अमुक पदार्थ पानी है तब हमारे मन में उसके एक वा अधिक धर्मों की भावना रहती है और इन्हीं धर्मों की भावना से हम उस पदार्थ को पानी के बदले कोई दूसरा पदार्थ नहीं समझते । पदार्थ मानो कुछ विशेष धर्मों के मेल से बनी हुई एक मूर्ति है । प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक पदार्थ के सभी धर्मों का ज्ञान होना कठिन है, परंतु जिस पदार्थ को वह जानता है उसके एक न एक धर्म का परिचय उसे आवश्य रहता है । कोई-कोई धर्म एक से अधिक पदार्थों में भी पाये जाते हैं; जैसे, लंबाई, चौड़ाई, मुटाई, बजन, आकार, इत्यादि ।

पदार्थ का धर्म पदार्थ से अलग नहीं रह सकता; अर्थात् हम यह नहीं कह सकते कि यह धोड़ा है और वह उसका बल या रूप है । तो भी हम अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा परस्पर संबंध रखने-वाली भावनाओं को अलग कर सकते हैं । हम घोड़े के और और धर्मों की भावना न करके केवल उसके बल की भावना मन में ला सकते हैं और आवश्यकता होने पर इस भावना को किसी दूसरे प्राणी (जैसे हाथी) के बल की भावना के साथ मिला सकते हैं ।

जिस प्रकार जातिवाचक संज्ञाएँ अर्थवान् होती हैं उसी प्रकार भाववाचक संज्ञाएँ भी अर्थवान् होती हैं; क्योंकि उनके समान

इनसे भी धर्म का बोध होता है। व्यक्तिवाचक संज्ञा के समान भाववाचक संज्ञा से भी किसी एक ही भाव का बोध होता है।

‘धर्म’, ‘गुण’ और ‘भाव’ प्रायः पर्यावरणवाचक शब्द हैं। ‘भाव’ शब्द का उपयोग (व्याकरण में) नीचे लिखे अर्थों में होता है—
(क) धर्म वा गुण के अर्थ में; जैसे, ठंडाई, शीतलता, धीरज, मिठास, बल, बुद्धि, क्रोध, इत्यादि ।

(ख) अवस्था—नींद, रोग, उजेला, अँधेरा, पीड़ा, दरिद्रता, सफाई, इत्यादि ।

(ग) व्यापार—चढ़ाई, बहाव, दान, भजन, बोलचाल, दौड़, पढ़ना, इत्यादि ।

१०४—भाववाचक संज्ञाएँ बहुधा तीन प्रकार के शब्दों से बनाई जाती हैं—

(क) जातिवाचक संज्ञा से—जैसे, बुढ़ापा, लड़कपन, मित्रता, दासत्व, पंडिताई, राज्य, मौन, इत्यादि ।

(ख) विशेषण से—जैसे, गरमी, सरदी, कठोरता, मिठास, बढ़पन, चतुराई, धैर्य, इत्यादि ।

(ग) क्रिया से—जैसे, घबराहट, सजावट, चढ़ाई, बहाव, मार, दौड़, चलन, इत्यादि ।

१०५—जब व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग एक ही नाम के अनेक व्यक्तिगतों का बोध कराने के लिए अथवा किसी व्यक्ति का असाधारण धर्म सूचित करने के लिए किया जाता है तब व्यक्तिवाचक संज्ञा जातिवाचक हो जाती है; जैसे, “कहु रावण, रावण-जग केते” । (राम०) । “राम तीन हैं” । “यशोदा हमारे घर की लज्जमी है” । “कलियुग के भीम” ।

पहले उदाहरण में पहला ‘रावण’ शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा है, और दूसरा ‘रावण’ शब्द जातिवाचक संज्ञा है। तीसरे

उदाहरण में 'लक्ष्मी' संज्ञा जातिवाचक है; क्योंकि उससे विष्णु की रुपी का बोध नहीं होता, किंतु लक्ष्मी के समान एक गुणवती रुपी का बोध होता है। इसी प्रकार 'राम' और 'भीम' भी जातिवाचक संज्ञाएँ हैं। “गुप्तों की शक्ति कीण होने पर यह स्वतंत्र हो गया था”। (सर०)—इस वाक्य में “गुप्तों” शब्द से अनेक व्यक्तियों का बोध होने पर भी वह नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा है, क्योंकि इससे किसी व्यक्ति के विशेष धर्म का बोध नहीं होता, किंतु कुछ व्यक्तियों के एक विशेष समूह का बोध होता है।

१०६—कुछ जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के समान होता है; जैसे, पुरी = जगन्नाथ, देवी = दुर्गा, दाऊ = बलदेव, संबत् = विक्रमी संबत्, इत्यादि । इसी वर्ग में वे शब्द शामिल हैं जो मुख्य नामों के बदले उपनाम के रूप में आते हैं, जैसे, सितारे-हिंद = राजा शिवप्रसाद, भारतेंदु = बाबू हरिश्चंद्र, गुसाईंजी=गोस्वामी तुलसीदास, दक्षिण=दक्षिणी हिंदुस्थान, इत्यादि ।

बहुतसी योगरूप संज्ञाएँ, जैसे, गणेश, हनुमान, हिमालय, गोपाल, इत्यादि मूल में जातिवाचक संज्ञाएँ हैं; परंतु अब इनका प्रयोग जातिवाचक अर्थ में नहीं, किंतु व्यक्तिवाचक अर्थ में होता है।

१०७—कभी-कभी भाववाचक संज्ञा का प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के समान होता है; जैसे, “उसके आगे सब रूपवती खियाँ निरादर हैं”। (शक०)। इस वाक्य में “निरादर” शब्द से “निरादर-योग्य रुपी” का बोध होता है। “ये सब कैसे अच्छे पहिरावे हैं”। (सर०)। यहाँ “पहिरावे” का अर्थ “पहिनने के बख्त” है।

संज्ञा के स्थान में आनेवाले शब्द ।

१०८—सर्वनाम का उपयोग संज्ञा के स्थान में होता है; जैसे मैं (सारथी) रास खींचता हूँ । (शकु०) । यह (शकुंतला) बन में पढ़ी मिली थी । (शकु०) ।

१०९—विशेषण कभी-कभी संज्ञा के स्थान में आता है; जैसे, “इसके बड़ों का यह संकल्प है” । (शकु०) । “छोटे बड़े न हैं सके” । (सत०) ।

११०—कोई-कोई क्रियाविशेषण संज्ञाओं के समान उपयोग में आते हैं; जैसे, “जिसका भीतर-बाहर एकसा हो” । (सत्य०) । “हाँ में हाँ मिलाना” । “यहाँ की भूमि अच्छी है” । (भाषा०) ।

१११—कभी-कभी विस्मयादि-बोधक शब्द संज्ञा के समान प्रयुक्त होता है; जैसे, “वहाँ हाय-हाय मची है ।” “उनकी बड़ी बाह-बाह हुई ।”

११२—कोई भी शब्द वा अक्षर केवल उसी शब्द वा अक्षर के अर्थ में संज्ञा के समान उपयोग में आ सकता है; जैसे “मैं” सर्वनाम है । तुम्हारे लेख में कहीं बार “फिर” आया है । “का” में “आ” की मात्रा मिली है । “क्ष” संयुक्त अक्षर है । (अं०-द७-इ.)

[दी०—संज्ञा के भेदों के विषय में हिंदी-वैवाकरणों का एक-मत नहीं है । अधिकांश हिंदी-व्याकरणों में संज्ञा के पाँच भेद माने गये हैं—जाति-वाचक, व्यक्तिवाचक, गुणवाचक, भाववाचक और सर्वनाम । ये भेद कुछ तो संस्कृत व्याकरण के अनुसार और कुछ अँगरेजी व्याकरण के अनुसार हैं, तथा कुछ रूप के अनुसार और कुछ प्रयोग के अनुसार हैं । संस्कृत के ‘प्रातिपदिक’ नामक शब्द-भेद में संज्ञा, गुणवाचक (विशेषण) और सर्वनाम का समावेश होता है; क्योंकि उस भाषा में इन तीनों शब्द-भेदों

का रूपांतर प्रायः एक ही से पत्तयों के प्रयोग द्वारा होता है । कदाचित् इसी आधार पर हिंदी-व्याकरण तीनों शब्द-मेदों को संशा मानते हैं । दूसरा कारण यह जान पड़ता है कि संशा, सर्वनाम और विशेषण, इत तीनों ही से बस्तुओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष बोध होता है । सर्वनाम और विशेषण को संशा के अंतर्गत मानना चाहिये अर्थवा उससे भिन्न अलग-अलग वर्गों में रखना चाहिए, इस विषय का विवेचन आगे चलकर सर्वनाम और विशेषण-संबंधी अध्यायों में किया जायगा । यहाँ केवल संशा के उप-मेदों पर विचार किया जाता है ।

संशा के जातिवाचक, व्यक्तिवाचक और भाववाचक उपभेद संस्कृत व्याकरण में नहीं हैं । ये उपभेद अङ्गरेजी-व्याकरण में, दो अलग-अलग आधारों पर, अर्थ के अनुसार किये गये हैं । पहले आधार में इस बात का विचार किया गया है कि संपूर्ण संशाओं से या तो बस्तुओं का बोध होता है या घमों का, और इस दृष्टि से संशाओं के दो भेद माने गये हैं—(१) पदार्थवाचक, (२) भाववाचक । दूसरे आधार में केवल पदार्थवाचक संशाओं के अर्थ का विचार किया गया है कि उनसे या तो व्यक्ति (अकेले पदार्थ) का बोध होता है या जाति (अनेक पदार्थों) का, और इस दृष्टि से पदार्थवाचक संशाओं के दो भेद किये गये हैं—(१) व्यक्तिवाचक, (२) जातिवाचक । दोनों आधारों को मिलाकर संशा के तीन भेद होते हैं—(१) व्यक्तिवाचक, (२) जातिवाचक और (३) भाववाचक । (सर्वनाम और विशेषण को छोड़कर) संशाओं के ये तीन भेद हिंदी के कई व्याकरणों में पाये जाते हैं; परंतु उनमें इस वर्गोंकरण के किसी भी आधार का उल्लेख नहीं मिलता । हिंदी के सबसे पुराने (आदम साहब के लिखे हुए एक छोटे से) व्याकरण में संशा का एक और भेद 'क्रियावाचक' के नाम से दिया गया है । इमने क्रियावाचक संशा को भाववाचक संशा के अंतर्गत माना है; क्योंकि भाववाचक संशा के लक्षण में क्रियावाचक संशा भी आ जाती है । भाषा-भास्कर में यह संशा "क्रिया

का साधारण रूप” वा “क्रियार्थक संज्ञा” कही गई है। उसमें यह भी लिखा है कि यह चातु से बनती है। (अं०-१८८-अ)। यह भेद व्युत्पत्ति के अनुसार है और यदि इस प्रकार एक ही समय एक से अधिक आधारों पर वर्गोंकरण किया जाय तो कई संकीर्ण विभाग हो जायेंगे।

यहाँ अब मुख्य विचार यह है कि जब संज्ञा के ऊपर कहे हुए तीन भेद संस्कृत में नहीं हैं तब उन्हें हिंदी में मानने की क्या आवश्यकता है? यथार्थ में अर्थ के अनुसार शब्दों के भेद करना तर्कशास्त्र का विषय है; इसलिए व्याकरण में इन भेदों को केवल उनकी आवश्यकता होने पर मानना चाहिए। हिंदी में इन भेदों का काम रूपांतर और व्युत्पत्ति में पड़ता है; इसलिए ये भेद संस्कृत में न होने पर भी हिंदी में आवश्यक हैं। संस्कृत में भी परोक्ष रूप से भाववाचक संज्ञा मानी गई है। केशवराम-भट्टकृत “हिंदी-व्याकरण” में संज्ञा के भेदों में (संस्कृत की चाल पर) भाववाचक संज्ञा का नाम नहीं है; पर लिंग-निर्णय में यह नाम आया है। जब व्याकरण में संज्ञा के इस भेद का काम पड़ता है तब इसको स्वीकार करने में क्या द्वानि है ?

किसी-किसी हिंदी-व्याकरण में संज्ञा के समुदायवाचक और द्रव्यवाचक* नाम के और दो भेद माने गये हैं, पर अङ्गरेजी के समान हिंदी में इनकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके सिवा समुदायवाचक का समावेश व्यक्तिवाचक तथा जातिवाचक में और द्रव्यवाचक का समावेश जातिवाचक में हो जाता है।]

*जो पदार्थ केवल द्वेर के रूप में नापा या तौला जाता है उसे द्रव्य कहते हैं; जैसे, अनाज, दूध, धी, शकर, सोना, इत्यादि।

दूसरा अध्याय ।

सर्वनाम ।

११३—सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं जो पूर्वापर संबंध से किसी भी संज्ञा के बदले में आता है; जैसे, मैं (बोलने-चाला, तू (सुननेवाला), यह (निकटवर्ती वस्तु), वह (दूरवर्ती वस्तु), इत्यादि ।

[ठी०—हिंदी के प्रायः तभी वैयाकरण सर्वनाम को संज्ञा का एक भेद मानते हैं । संस्कृत में ‘सर्व’ (प्रातिपदिक) के समान जिन नामों (संज्ञाओं) का रूपांतर होता है उनका एक अलग थर्ड मानकर उसका नाम ‘सर्वनाम’ रखा गया है । ‘सर्वनाम’ शब्द एक और अर्थ में भी आ सकता है । वह यह है कि सर्व (सब) नामों (संज्ञाओं) के बदले में जो शब्द आता है उसे सर्वनाम कहते हैं । हिंदी में ‘सर्वनाम’ शब्द से यही (पिछला) अर्थ लिया जाता है और इसीके अनुसार वैयाकरण सर्वनाम को संज्ञा का एक भेद मानते हैं । यथार्थ में सर्वनाम एक प्रकार का नाम अर्थात् संज्ञा ही है । जिस प्रकार संज्ञाओं के उपभेद व्यक्तिवाचक जातिवाचक और भाववाचक हैं उसी प्रकार सर्वनाम भी एक उपभेद ही सकता है । परं सर्वनाम में एक विशेष विलक्षणता है जो संज्ञा में नहीं पाई जाती । संज्ञा से सदा उसी वस्तु का बोध होता है जिसका वह (संज्ञा) नाम है; परंतु सर्वनाम से, पूर्वापर संबंध के अनुसार, किसी भी वस्तु का बोध हो सकता है । ‘लड़का’ शब्द से लड़के ही का बोध होता है, घर, सड़क, आदि का बोध नहीं हो सकता; परंतु ‘वह’ कहने से पूर्वापर संबंध के अनुसार, लड़का, घर, सड़क, हाथी, घोड़ा, आदि किसी भी वस्तु का बोध हो सकता है । “मैं” बोलनेवालों के नाम के बदले आता है; इसलिए जब बोलनेवाला मोहन है तब “मैं” का अर्थ मोहन है; परंतु जब बोलनेवाला खरहा है (जैसा बहुधा कथा-कहानियों में होता है) तब “मैं” का अर्थ खरहा होता है । सर्वनाम की इसी विलक्षणता के कारण उसे हिंदी में एक

अलग शब्द-मेद मानते हैं। “भाषातत्त्वदीपिका” में भी सर्वनाम संशा से भिन्न माना गया है; परंतु उसमें सर्वनाम का जो लक्षण दिया गया है वह निर्दोष नहीं है। “नाम को एक बार कहकर फिर उसको जगह जो शब्द आता है उसे सर्वनाम कहते हैं।” यह लक्षण “मैं”, “तू”, “कौन” आदि सर्वनामों में घटित नहीं होता; इसलिए इसमें अव्याप्ति दोष है; और कही कही यह संज्ञाओं में भी घटित हो सकता है; इसलिए इसमें अविद्याप्ति दोष भी है। एक ही संज्ञा का उपयोग बार बार करने से भाषा की हीनता सूचित होती है; इसलिए एक संज्ञा के बदले उसी अर्थ की दूसरी संज्ञा का उपयोग करने की चाल है। यह बात छंद के विचार से कविता में बहुधा होती है; जैसे ‘मनुष्य’ के बदले ‘मानव’, ‘नर’ आदि शब्द लिखे जाते हैं। सर्वनाम के पूर्वोक्त लक्षण के अनुसार इन सब पर्याय-वाची शब्दों को भी सर्वनाम कहना पड़ेगा। यद्यपि सर्वनाम के कारण संज्ञा को बार बार नहीं दुहराना पड़ता, तथापि सर्वनाम का यह उपयोग उसका असाधारण धर्म नहीं है। ”

भाषाचंद्रोदय में “सर्वनाम” के लिए “संशापतिनिधि” शब्द का उपयोग किया गया है और संज्ञा तिनिधि के कई भेदों में एक का नाम “सर्वनाम” रखा गया है। सर्वनाम के भेदों की मीमांसा इस अध्याय के अंत में की जायगी, परंतु “संशापतिनिधि” शब्द के विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि हिंदी में “सर्वनाम” शब्द इतना रुद्ध हो गया है कि उसे बदलने से कोई लाभ नहीं है।)

११४—हिंदी में सब मिलाकर ११ सर्वनाम हैं—मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन, क्या।

११५—प्रयोग के अनुसार सर्वनामों के लक्षण भेद हैं—

(१) पुरुषवाचक—मैं, तू, आप (आदरसूचक)।

(२) निजवाचक—आप।

(३) निश्चयवाचक—यह, वह, सो।

(४) संबंधवाचक—जो ।

(५) प्रश्नवाचक—कौन, क्या ।

(६) अनिश्चयवाचक—कोई, कुछ ।

११६—वक्ता अथवा लेखक की हास्ति से संपूर्ण सृष्टि के तीन भाग किये जाते हैं—पहला, स्वयं वक्ता वा लेखक, दूसरा, श्रोता किंवा पाठक, और तीसरा, कथाविषय अर्थात् वक्ता और श्रोता को छोड़कर और सब । सृष्टि के इन तीनों रूपों को व्याकरण में पुरुष कहते हैं और ये क्रमशः उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्यपुरुष कहाते हैं । इन तीन पुरुषों में उत्तम और मध्यमपुरुष ही प्रधान हैं; क्योंकि इनका अर्थ निश्चित रहता है । अन्यपुरुष का अर्थ अनिश्चित होने के कारण उसमें बाकी की सृष्टि के अर्थ का समावेश होता है । उत्तमपुरुष “मैं” और मध्यमपुरुष “तू” को छोड़कर शेष सर्वनाम और सब संज्ञाएँ अन्यपुरुष में आती हैं । इस अनिश्चित वस्तु-समूह को संक्षेप में व्यक्त करने के लिए ‘वह’ सर्वनाम को अन्यपुरुष के उदाहरण के लिए ले लेते हैं ।

सर्वनामों के तीनों पुरुषों के उदाहरण ये हैं—उत्तमपुरुष—मैं, मध्यमपुरुष—तू, आप (आदरसूचक), अन्यपुरुष—यह, वह, आप (आदरसूचक), सो, जो, कौन, क्या, कोई कुछ । (सब संज्ञाएँ अन्यपुरुष हैं ।) सर्व-पुरुष-वाचक—आप (निजवाचक) ।

[सू०—(१) भाषा-भास्त्र और दूसरे हिंदी व्याकरणों में “आप” शब्द “आदर-सूचक” नाम से एक अलग वर्ग में गिना गया है; परंतु व्युत्थति के अनुसार, सं०-आत्मन्, प्रा०-आप) “आप”, यथार्थ में, निजवाचक है; और आदर-सूचकता उसका एक विशेष प्रयोग है । आदरसूचक “आप” मध्यम और अन्यपुरुष सर्वनामों के लिए आता है; इसलिए उनकी गिनती पुरुषवाचक सर्वनामों में ही होनी चाहिए । निजवाचक “आप” अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग पुरुषों के बदले

आ सकता है; इसलिए ऊपर सर्वनामों के बर्गोंकरण में यही निजवाचक न “आप” “सर्व-पुरुष-वाचक” कहा गया है। निजवाचक “आप” के समानार्थक “स्वयं” और “स्वतः” है, इनका प्रयोग बहुधा किया-विशेषण के समान होता है (अं०—१२५५ अ०) ।

(२) “मैं”, “तू” और “आप” (म० पु०) को छोड़कर सर्वनामों के जो और भेद हैं वे सब अन्यपुरुष सर्वनाम के ही भेद हैं। मैं, तू और आप (म० पु०) सर्वनामों के दूसरे भेदों में नहीं आते, इसलिए ये ही तीन सर्वनाम विशेषकर पुरुषवाचक हैं। ऐसे सो प्रायः सभी सर्वनाम पुरुषवाचक कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनसे व्याकरण के पुरुषों का वोध होता है; परंतु दूसरे सर्वनामों में उच्चम और मध्यम पुरुष नहीं होते, इसलिए उच्चम और मध्यम पुरुष ही प्रधान पुरुषवाचक हैं और बाकी सब सर्वनाम अप्रधान पुरुषवाचक हैं। सर्वनामों के अर्थ और प्रयोग का विचार करने में सुभीति के लिए कहीं-कहीं उनके रूपांतरों (लिंग, वचन, कारक) का (जो दूसरे प्रकरण का विषय है) उल्लेख करना आवश्यक है ।)

११७—मैं—उ० पु० (एकवचन) ।

(अ) जब वक्ता या लेखक केवल अपने ही संबंध में कुछ विधान करता है तब वह इस सर्वनाम का प्रयोग करता है। जैसे, भाषा-बद्ध करव मैं सोईँ । (राम०)। जो मैं ही कृतकार्य नहीं तो फिर और कौन हो सकता है ? (गुटका)। “यह थैली मुझे मिली है ।”

(आ) अपने से बड़े लोगों के साथ बोलने में अथवा देवता से प्रार्थना करने में; जैसे, “सारथी—अब मैंने भी तपोवन के चिन्ह (चिह्न) देखे” । (शकु०)। “हरि०—पितः, मैं सावधान हूँ ।” (सत्य०) ।

(इ) खी अपने लिए बहुधा “मैं” का ही प्रयोग करती है; जैसे, शकुंतला—मैं सच्ची क्या कहूँ ! (शकु०) । रा०—अरी ! आज मैंने ऐसे बुरे बुरे सपने देखे हैं कि जब से सोके उठी हूँ कलेजा कौप रहा है । (सत्य०) । (अ०-११८ ऊ) । ११८—हम—ड० पु० (बहुवचन) ।

इस बहुवचन का अर्थ संज्ञा के बहुवचन से भिन्न है । ‘लङ्के’ शब्द एक से अधिक लङ्कों का सूचक है; परंतु ‘हम’ शब्द एक से अधिक ‘मैं’ (बोलनेवालों) का सूचक नहीं है; क्योंकि एक-साथ गाने या प्रार्थना करने के सिवा (अथवा सबकी ओर से लिखे हुए लेख में दस्ताचार करने के सिवा) एक से अधिक लोग मिल-कर प्रायः कभी नहीं बोल सकते । ऐसी अवस्था में “हम” का ठीक अर्थ यही है कि वह का अपने साथियों की ओर से प्रतिनिधि होकर अपने तथा अपने साथियों के विचार एक-साथ प्रकट करता है ।

(अ) संपादक और ग्रन्थकार लोग अपने लिए बहुधा उत्तमपुरुष बहुवचन का प्रयोग करते हैं; जैसे, “हमने एकही बात को दो-दो-तीन-तीन तरह से लिखा है ।” (स्वा०) । “हम पहले भाग के आरंभ में लिख आए हैं ।” (इति०) ।

(आ) बड़े-बड़े अधिकारी और राजा-महाराजा ; जैसे, “इसलिए अब हम इश्तिहार देते हैं ।” (इति०) । “ना०—यही तो हम भी कहते हैं ।” (सत्य०) । “दुष्यंत—तुम्हारे देखने ही से हमारा सत्कार हो गया ।” (शकु०) ।

(इ) अपने कुदुंब, देश अथवा मनुष्य-जाति के संबंध में; जैसे, “हम योग पाकर भी उसे उपयोग में लाते नहीं ।”

(भारत०)। “हम बनवासियों ने ऐसे भूषण आगे कभी न देखे थे ।” (शकु०)। “हवा के बिना हम पल भर भी नहीं जी सकते ।”

(ई) कभी-कभी अभिमान अथवा क्रोध में; जैसे, “वि—हम आधी दक्षिणा लेके क्या करें ।” (सत्य०)। “माढ़ब्य—इस मृगयाशील राजा की मित्रता से हम तो बड़े दुखी हैं ।” (शकु०)।

[य०—हिंदी में “मैं” और “हम” के प्रयोग का बहुत सा अंतर आधुनिक है । देहाती लोग बहुधा ‘हम’ ही बोलते हैं, ‘मैं’ नहीं बोलते । प्रेमसागर और रामचरितमानस में ‘हम’ के सब प्रयोग नहीं मिलते । अङ्गरेजी में “मैं” के बदले “हम” का उपयोग करना भूल समझा जाता है; परंतु हिंदी में बहुधा “मैं” के बदले “हम” आता है ।

“मैं” और “हम” के प्रयोग में इतनी अस्थिरता है कि एक बार जिसके लिए “मैं” आता है उसीके लिए उसी अर्थ में किर “हम” का उपयोग होता है । जैसे, “ना०—राम राम ! भला, आपके आने से हम क्यों जायेंगे ! मैं तो जाने ही को था कि इतने में आप आ गए ।” (सत्य०)। “दुष्यंत—अच्छा, हमारा सदेशा यथार्थ भुगता दीजो । मैं तपस्वियों की रक्षा को जाता हूँ ।” (शकु०)—यह न होना चाहिये ।]

(उ) कभी-कभी एक ही वाक्य में “मैं” और “हम” एकही पुरुष के लिए क्रमशः व्यक्ति और प्रतिनिधि के अर्थ में आते हैं; जैसे, “कुंभलिक—मुझे क्या दोष है, यह तो हमारा कुलधर्म है ।” (शकु०) “मैं चाहता हूँ कि आगे को ऐसी सूरत न हो और हम सब एक-चित्त होकर रहें ।” (परी०)।

(ऊ) खी अपने ही लिए ‘हम’ का उपयोग बहुधा कम करती है ।

(अं-११७ इ) पर स्त्रीलिंग “हम” के साथ कभी-कभी पुलिंग क्रिया आती है, जैसे, “गौतमी—जो, अब निषड़क बात-चीत करो; हम जाते हैं । (शकु०) । ‘रानी—महाराज, अब हम महल में जाते हैं । (कपूर०) ।

(अ) साधु-संत अपने लिए ‘मैं’ वा ‘हम’ का प्रयोग न करके अपने लिए बहुधा “अपने राम” बोलते हैं; जैसे—अब अपने राम जानेवाले हैं ।

(अ) ‘हम’ से बहुत्व का बोध कराने के लिए उसके साथ बहुधा ‘लोग’ शब्द लगा देते हैं; जैसे, ह०—आर्य, हम लोग तो ज्ञात्रिय हैं, हम दो बात कहाँ से जानें ? (सत्य०) ।
११६—तू—मध्यमपुरुष (एकवचन) । प्राप्त्य—तैं ।

‘तू’ शब्द से निरादर वा हलकापन प्रकट होता है; इसलिए हिंदी में बहुधा एक व्यक्ति के लिए भी “तुम” का प्रयोग करते हैं। “तू” का प्रयोग बहुधा नीचे लिखे अर्थों में होता है—
(अ) देवता के लिए; जैसे, “देव, तू दयालु, दीन हाँ, तू दानि, हाँ भिखारी ।” (विनय०) । दीनबंधु, (तू) मुझ दूबते हुए को बचा । (गुटका०) ।

(आ) छोटे लड़के अथवा चेले के लिए (प्यार में); जैसे,—एक तपास्वनी—अरे हठीले बालक, तू इस बन के पशुओं को क्यों सताता है ? ” (शकु०) । “उ०—तू चल, आगे-आगे भीड़ हटाता चल ।” (सत्य०) ।

(इ) परम मित्र के लिए; जैसे, “अनम्बुद्या—सखी तू क्या कहती है ? ” (शकु०) । “दुध्यंत—सखा, तुझसे भी तो माता कहकर बोली है ।” ।

[द०—छोटी अवस्था के भाई-बहिन आपस में “तू” का प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं छोटे लड़के व्यार में माँ से “तू” कहते हैं।]

(ई) अवस्था और अधिकार में अपने से छोटे के लिए (परिचय में); जैसे, “रानी-मालती, यह रक्षा-बंधन तू सम्मालके अपने पास रख ।” (सत्य०) । “दुष्यंत-(द्वारपाल से) पर्वतायन, तू अपने काम में असावधानी मत करियो ।” (शक०) ।

(उ) तिरस्कार अथवा क्रोध में किसीसे; जैसे, “जरासंघ श्रीकृष्ण-चंद से अति अभिमान कर कहने लगा, अरे—तू मेरे सोंहीं से भाग जा, मैं तुमे क्या मारूँ !” (प्रेम०) । विं—“बोल, अभी तैने मुझे पहचाना कि नहीं ?” (सत्य०) ।

१२०—तुम—मध्यमपुरुष (बहुवचन) ।

यद्यपि ‘हम’ के समान ‘तुम’ बहुवचन है, तथापि शिष्टाचार के अनुरोध से इसका प्रयोग एकही मनुष्य से बोलने में होता है। बहुत्व के लिए ‘तुम’ के साथ बहुधा ‘लोग’ शब्द लगा देते हैं; जैसे, “मित्र, तुम बड़े निदुर हो ।” (परी०) । “तुम लोग अभी तक कहाँ थे ?”

(अ) तिरस्कार और क्रोध को छोड़कर शेष अर्थों में “तू” के बदले बहुधा “तुम” का उपयोग होता है; जैसे, “दुष्यंत-हे रैवतक तुम सेनापति को बुलाओ ।” (शक०) । “आशुतोष तुम अव-ढर दानी ।” (राम०) । “उ०—पुत्री, कहो तुम कौन-कौन सेवा करोगी ।” (सत्य०) ।

(आ) ‘हम’ के साथ ‘तू’ के बदले “तुम” आता है; जैसे, “दोनों

प्यादे—तो तू हमारा मित्र है। हम-तुम साथ-ही-साथ हाट को चलें।” (शकु०) ।

(इ) आदर के लिए ‘तुम’ के बदले ‘आप’ आता है।
(अं०—१२३)

१२१—वह—अन्यपुरुष (एकवचन) ।

(यह, जो, कोई, कौन, इत्यादि सब सर्वनाम (और सब संज्ञाएँ) अन्यपुरुष हैं। यहाँ अन्यपुरुष के उदाहरण के लिए केवल ‘वह’ लिया गया है।)

हिंदी में आदर के लिए बहुधा बहुवचन सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है। आदर का विचार छोड़कर ‘वह’ का प्रयोग नीचे लिखे अर्थों में होता है—

(अ) किसी एक प्राणी, पदार्थ वा धर्म के विषय में बोलने के लिए; जैसे, “ना०—निस्संदेह हरिश्चंद्र महाशय है। उसके आशय बहुत उदार हैं।” (सत्य०) । “जैसी दुर्दशा उसकी हुई वह सबको विदित है।” (गुटका०) ।

(आ) बड़े दरजे के आदमी के विषय में तिरस्कार दिखाने के लिए; जैसे, “वह (श्रीकृष्ण) तो गँधार ग्वाल है।” (प्रेम०) । “इ०—राजा हरिश्चंद्र का प्रसंग निकला था सो उन्होंने उसकी बड़ी सुन्ति की।” (सत्य०) ।

(इ) आदर और बहुत्व के लिए (अं०—१२२) ।

१२२—वे—अन्यपुरुष (बहुवचन) ।

कोई-कोई इसे “वह” लिखते हैं। कवायद-उद्दू में इसका रूप “वे” लिखा है जिससे यह अनुमान नहीं होता कि इसका प्रयोग उद्दू की नकल है। पुस्तकों में भी बहुधा “वे” पाया जाता है। इसलिए बहुवचन का शुद्धरूप “वे” है, “वह” नहीं।

(अ) एक से अधिक प्राणियों, पदार्थों वा धर्मों के विषय में बोलने के लिए “वे” (वा “वह”) आता है; जैसे, “लड़की तो रघुवंशियों के भी होती हैं; पर वे जिलाते कदापि नहीं ।” (गुटका०) । “ऐसी बातें वे हैं ।” (ख्वा०) । “वह सौदागर की सब दुकान को अपने घर ले जाया चाहते हैं ।” (परी०) ।

(आ) एक ही व्यक्ति के विषय में आदर प्रकट करने के लिए; जैसे, “वे (कालिदास) असामान्य वैयाकरण थे ।” (रघु०) । “क्या अच्छा होता जो वह इस काम को कर जाते ।” (रत्ना०) । ‘जो बातें मुनि के पीछे हुईं सो उनसे किसने कह दी ?’ (शकु०) ।

५८०—ऐतिहासिक पुरुषों के प्रति आदर प्रकट करने के संबंध में हिंदी में बड़ी गड़बड़ है। श्रीचरभाषा-कोष में कई कवियों के संदित्त चरित दिये गये हैं; उनमें कबीर के लिए एकवचन का और शेष के लिए बहुवचन का प्रयोग किया गया है। राजा शिवप्रसाद ने इतिहास-तिमिर-नाशक में राम, शंकराचार्य और टॉड साहब के लिए बहुवचन प्रयोग किया है और बुद्ध, अकबर, धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर के लिए एकवचन लिखा है। इन उदाहरणों से कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। तथापि यह बात जान पड़ती है कि आदर के लिए पात्र की जाति, गुण, पद और शील का विचार अवश्य किया जाता है। ऐतिहासिक पुरुषों के प्रति आजकल पढ़ते की अपेक्षा अधिक आदर दिखाया जाता है; और यह आदर-बुद्धि विदेशी ऐतिहासिक पुरुषों के लिए भी कई अंशों में पाई जाती है। आदर का प्रश्न छोड़कर, मृत ऐतिहासिक पुरुषों के लिए एक-वचन ही का प्रयोग करना चाहिए ।]

१२३—आप (‘तुम’ वा ‘वे’ के बदले)—मध्यम वा अन्य-पुरुष (बहुवचन) ।

यह पुरुषवाचक “आप” प्रयोग में निजवाचक “आप” (अं०-१२५) से भिन्न है। इसका प्रयोग मध्यम और अन्यपुरुष वहु-वचन में आदर के लिये होता है४३। प्राचीन कविता में आदरसूचक “आप” का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है।

(अ) अपने से बड़े दरजेवाले मनुष्य के लिए “तुम” के बदले “आप” का प्रयोग शिष्ट और आवश्यक समझा जाता है; जैसे, “स०—भला, आपने इसकी शांति का भी कुछ उपाय किया है ?” (सत्य०)। “तपस्वी—हे पुरुषलक्ष्मीपक, आपको यही उचित है !” (शकु०)। “आये आपु, भक्ति करी ।” (संत०)

(आ) बराबरवाले और अपने से कुछ छोटे दरजे के मनुष्य के लिए “तुम” के बदले बहुधा “आप” कहने की प्रथा है; जैसे, “इ०—भला, आप उदार वा महाशय किसे कहते हैं ?” (सत्य०)। “जब आप पूरी बात ही न सुनें तो मैं क्या जबाब दूँ” । (परी०)।

(इ) आदर के साथ बहुत्व के बोध के लिए “आप” के साथ बहुधा ‘लोग’ लगा देते हैं, जैसे “ह०—आप लोग मेरे सिर-आँखों पर हैं ।” (सत्य०)। “इस विषय में आप लोगों की क्या राय है ?”

(ई) “आप” शब्द की अपेक्षा अधिक आदर सूचित करने के लिए बड़े पदाधिकारियों के प्रति श्रीमान्, महाराज, सर-कार, हुजूर आदि शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे,

* संस्कृत में आदर-सूचक “आप” के अर्थ में “भवान्” शब्द आता है; और उसका प्रयोग केवल अन्यपुरुष एकवचन में होता है; जैसे, “भवान् अपि अवैति” (आप भी जानते हैं) ।

“सारो—मैं रास स्तीचता हूँ; महाराज उतर लें ।”

(शकु० ।) “मुझे श्रीमान के दर्शनों की लालसा थी सो आज पूरी हुई ।” “जो हुजूर की राय सो मेरी राय ।”

खियों के प्रति अतिशय आदर प्रदर्शित करने के लिए “श्रीमती”, “देवी” आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे—“तब से श्रीमती के शिक्षा-क्रम में विघ्न पढ़ने लगा ।” (हिं० को०)

(श०—जहाँ “आप” का प्रयोग होना चाहिए वहाँ “तुम” या “हुजूर” कहना और जहाँ “तुम” कहना चाहिए वहाँ “आप” या “तू” कहना अनुचित है; क्योंकि इससे श्रोता का अपमान होता है । एक ही प्रसंग में “आप” और “तुम”, “महाराज” और “आप” कहना असंगत है; जैसे, ‘जिस बात की बिंता महाराज को है सो कभी न हुई होगी; क्योंकि तपोवन के ब्रिन्द तो केवल आपके धनुष की टंकार ही से मिट जाते हैं ।’ (शकु०) । “आपने बड़े प्यार से कहा कि आ बड़े, पहले तू ही पानी भी ले । उसने तुम्हें विदेशी जान तुम्हारे हाथ से जल न पिया ।” (तथा) ।)

(उ) आदर की पराकाष्ठा सूचित करने के लिए बक्ता या लेखक अपने लिए दास, सेवक, फिद्वी (कच्छहरी की भाषा में), कमतरीन (उर्दू), आदि शब्दों में से किसी एक का प्रयोग करता है; जैसे, “सि०—कहिए यह दास आपके कौन काम आ सकता है ?” (मुद्रा०) । “हुजूर से फिद्वी की यह अज्ञाँ है ।”

(ऊ) मध्यमपुरुष “आप” के साथ अन्यपुरुष बहुवचन किया ओती है; परंतु कहीं-कहीं परिचय, बराबरी अथवा लघुता के विचार से मध्यमपुरुष बहुवचन किया का

भी प्रयोग होता है; जैसे, “ह०—आप मोल लोगे ?”

(सत्य०) । “ऐसे समय में आप साथ न दोगे तो और कौन देगा ?” (परी०) । “दो० ब्राह्मण—आप अगलों की रीति पर चलते हो !” (शकु०) । यह प्रयोग शिष्ट नहीं है ।

(छ) अन्यपुरुष में आदर के लिए “वे” के बदले कभी-कभी “आप” आता है । अन्यपुरुष “आप” के साथ किया सदा अन्यपुरुष बहुवचन में रहती है । उदा०—“श्रीमती का गत मास इन्दौर में देहान्त हो गया । आप कई वर्षों से बीमार थीं ।” (बी०)

१२४—अप्रधान पुरुषवाचक सर्वनामों के नीचे लिखे पाँच भेद हैं—

(१) निजवाचक—आप ।

(२) निष्ठयवाचक—यह, वह, सो ।

(३) अनिष्ठयवाचक—कोई, कुछ ।

(४) संबंधवाचक—जो ।

(५) प्रश्नवाचक—कौन, क्या ।

१२५—आप (निजवाचक) ।

प्रयोग में निजवाचक “आप” पुरुषवाचक (आदरसूचक) “आप” से भिन्न है । पुरुषवाचक “आप” एक का वाचक होकर भी नित्य बहुवचन में आता है; पर निजवाचक “आप” एकही रूप से दोनों वचनों में आता है । पुरुषवाचक “आप” केवल मध्यम और अन्यपुरुष में आता है; परंतु निजवाचक “आप” का प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है । आदरसूचक “आप” वाक्य में अकेला आता है; किंतु निजवाचक “आप” दूसरे सर्वनामों

के संबंध से आता है। “आप” के दोनों प्रयोगों में रूपांतर का भी भेद है। (अं०-३२४-३२५) ।

निजवाचक “आप” का प्रयोग नीचे लिखे अर्थों में होता है—
(अ) किसी संज्ञा या सर्वनाम के अवधारण के लिए; जैसे “मैं आप वहाँ से आया हूँ ।” (परी०) । “वनते कभी हम आप योगी ।” (भारत०) ।

(आ) दूसरे व्यक्ति के निराकरण के लिए; जैसे,—“श्रीकृष्णजी ने श्राद्धण को विदा किया और आप चलने का विचार करने लगे ।” (प्रेम०) । “वह अपनेको सुधार रहा है ।”

(इ) अवधारण के अर्थ में “आप” के साथ कभी-कभी “ही” जोड़ देते हैं; जैसे, “नटी—मैं तो आपही आती थी ।” (सत्य०) । “देत चाप आपहि चढ़ि गयऊ ।” (राम०) । “वह अपने पात्र के संपूर्ण गुण अपने ही में भरे हुए अनु-मान करने लगता है ।” (सर०) ।

(ई) कभी-कभी “आप” के साथ उसका रूप “अपना” जोड़ देते हैं; जैसे, “किसी दिन मैं न आप-अपनेको भूल जाऊँ ।” (शकु०) । “क्या वह अपने-आप मुका है ?” (तथा) । “राजपूत बीर अपने-आपको भूल गये ।”

(उ) “आप” शब्द कभी-कभी बाक्य में अकेला आता है और अन्यपुरुष का बोधक होता है, जैसे, “आप कुछ उपार्जन किया ही नहीं, जो था वह नाश हो गया ।” (सत्य०) । “होम करनलागे मुनि भारी । आप रहे मख की रखवारी ॥” (राम०) ।

(अ) सर्व-साधारण के अर्थ में भी “आप” आता है; जैसे आप भला तो जग भला ।” (कहा०) । अपनेसे बड़े का आदर करना उचित है !”

(ऋ) “आप” के बदले वा उसके साथ बहुधा “खुद” (लदू), “स्वयं” वा “स्वतः” (संस्कृत) का प्रयोग होता है । स्वयं, स्वतः और खुद हिंदी में अन्यथा हैं और इनका प्रयोग बहुधा क्रियाविशेषण के समान होता है । आदरसूचक ‘आप’ के साथ द्विरुक्ति के निवारण के लिए इनमें से किसी-एक का प्रयोग करना आवश्यक है; जैसे, “आप खुद यह बात समझ सकते हैं ।” “हम आज अपने आपको भी हैं स्वयं भूले हुए ।” (भारत०) “सुल्तान स्वतः बहाँ गये थे ।” (हित०) । “हर आदमी खुद अपने ही को प्रचलित रीति-रसमों का कारण बतलावे ।” (स्वा०) ।

(ष) कभी-कभी “आप” के साथ निज (विशेषण) संज्ञा के समान आता है; पर इसका प्रयोग केवल संबंध-कारक में होता है । जैसे, “हम तुम्हें एक अपने निज के काम में भेजा चाहते हैं ।” (मुद्रा०) ।

(ऐ) “आप” शब्द से बना “आपस” “परस्पर” के अर्थ में आता है । इसका प्रयोग केवल संबंध शब्द और अधिकरण-कारक में होता है; जैसे, “एक दूसरे की राय आपस में नहा मिलती ।” (स्वा०) । “आपस की फूट बुरी होती है ।”

(ओ) “आपही”, “अपने आप”, “आपसे आप” और “आपही आप” का अर्थ “मन से” वा “स्वभाव से” होता है और इनका प्रयोग क्रियाविशेषण-बाक्यांशों के समान होता है;

जैसे, “ये मानवी यंत्र आपही-आप घर बनाने लगे ।” (स्वा०) । “इं—(आपही-आप) नारदजी सारी पृथ्वी पर इधर-उधर फिरा करते हैं ।” (सत्य०) । “मेरा दिल आपसे-आप उमड़ा आता है” (परी०) ।

१२६—जिस सर्वनाम से वक्ता के पास अथवा दूर की किसी वस्तु का बोध होता है उसे निश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं । निश्चयवाचक सर्वनाम तीन हैं—यह, वह, सो ।

१२७—यह—एकवचन ।

इसका प्रयोग नीचे लिखे स्थानों में होता है—

- (अ) पास की किसी वस्तु के विषय में बोलने के लिए; जैसे, “यह किसका पराक्रमी बालक है ?” (शकु०) । “यह कोई नया नियम नहीं है ।” (स्वा०) ।
- (आ) पहले कही हुई संज्ञा या संज्ञा-बाक्यांश के बदले; जैसे, “माधवीलता तो मेरी बहिन है, इसे क्यों न सीचती !” (शकु०) । “भला, सत्य धर्म पालना क्या हँसी खेल है ! यह आप ऐसे महात्माओं ही का काम है ।” (सत्य०) ।

- (इ) पहले कहे हुए बाक्य के स्थान में; जैसे, “सिंह को मार मणि ले कोई जंतु एक अति ढरावनी औँड़ी गुका में गया; यह हम सब अपनी औँखों देख आये ।” (प्रेम०) । “मुझको आपके कहने का कभी कुछ रंज नहीं होता । इसके सिवाय सुझे इस अवसर पर आपकी कुछ सेवा करनी चाहिये थी ।” (परी०) ।

- (ई) पोछे आनेवाले बाक्य के स्थान में; जैसे, “उन्होंने अब यह चाहा कि अधिकारियों को प्रजा ही नियत किया करे ।”

(स्वा०)। “मुझे इससे बड़ा आनंद है कि भारतेंहु जी की सब से पहले छेड़ी हुई यह पुस्तक आज पूरी हो गई ।” (रत्ना०)।

[स०—ऊपर के दूसरे वाक्य में जो ‘यह’ शब्द आया है, वह यहाँ सर्वनाम नहीं, किंतु विशेषण है; क्योंकि वह ‘पुस्तक’ संज्ञा की विशेषता बताता है । सर्वनामों के विशेषणीभूत प्रयोगों का विचार आगे (तीसरे अध्याय में) किया जायगा ।]

(उ) कभी-कभी संज्ञा या संज्ञा-वाक्यांश कहकर तुरंत ही उसके बदले निश्चय के अर्थ में “यह” का प्रयोग होता है; जैसे, “राम, यह व्यक्तिवाचक संज्ञा है ।” “अधिकार पाकर कष्ट देना, यह बड़ों को शोभा नहीं देता ।” (सत्य०)। “शास्त्रों की वात में कविता का दखल समझना, यह भी धर्म के विरुद्ध है ।” (इति०) ।

[स०—इस प्रकार की (मराठी-प्रभावित) रचना का प्रचार घट रहा है ।]

(ऊ) कभी-कभी “यह” कियाविशेषण के समान आता है और उस का अर्थ “अभी” वा “अब” होता है जैसे, ‘लीजिए महाराज, यह मैं चला ।’ (मुद्रा०) । यह तो आप मुझको लजित करते हैं ।” (परी०) ।

(श्र) आदर और बहुत्व के लिए; (अं०—१२८) ।

१२८—ये—बहुवचन ।

‘ये’ ‘यह’ का बहुवचन है । कोई-कोई लेखक बहुवचन में भी ‘यह’ लिखते हैं । (अं०—१२२) । “ये” (और कभी-कभी “यह”) का प्रयोग आदर के लिए भी होता है; जैसे, “यह भी

तो उसी का गुण गाते हैं ।” (सत्य०) । “यह तेरे तप के फल
कदापि नहीं; इनको तो इस पेड़ पर तेरे अहंकार ने लगाया है ।”
(गुटका०) । “ये वेही हैं जिनसे इंद्र और बाबन-अबतार उत्पन्न
हुए ।” (शकु०) ।

(अ) “ये” के बदले आदर के लिए ‘आप’ का प्रयोग केवल बोलने
में होता है और इसके लिए आदर-पात्र की ओर हाथ बढ़ा-
कर संकेत करते हैं ।

१२६—वह (एकवचन), वे (बहुवचन) ।

हिंदी में कोई विशेष अन्यपुरुष सर्वनाम नहीं है । उसके बदले
दूरवर्ती निश्चयवाचक “वह” आता है । इस सर्वनाम के प्रयोग
अन्यपुरुष के विवेचन में बता दिये गये हैं । (अ०—१२१—१२२) ।
इससे दूर की बस्तु का बोध होता है ।

(अ) “यह” और “ये” तथा “वह” और “वे” के प्रयोग में बहुधा
स्थिरता नहीं पाई जाती । एक बार आदर वा बहुत्व के लिए
किसी एक शब्द का प्रयोग करके लेखक लोग फिर उसी अर्थ
में उस शब्द का दूसरा रूप लाते हैं; जैसे, “यह टिही-दल
की तरह इतने दाग कहाँ से आये ? ये दाग वे दुर्बचन हैं जो
तेरे मुख से निकला किये हैं । वह सब लाल लाल फल मेरे
दान से लगे हैं ।” (गुटका०) । “ये सब बातें हरिश्चंद्र
में सहज हैं ।” “अरे ! यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर
शमशान पर एकत्र हो रहे हैं ।” (सत्य०) ।

[स०—हमारी समझ में पहला रूप केवल आदर के लिए और
दूसरा रूप बहुत्व के लिए लाना ठीक है ।]

(आ) पहले कही हुई दो बस्तुओं में से पहली के लिए “वह” और

पिछली के लिए “यह” आता है; जैसे, “महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन, वचन और कर्म एक रहते हैं, इनके भिन्न भिन्न ।” (सत्य०) ।

कनक कनक तैं सौगुनी मादकता अधिकाय ।

यह खाये बौरात है यह पाये बौराय ॥—(सद०) ।

(इ) जिस वस्तु के संबंध में एक बार “यह” आता है उसीके लिए कभी-कभी लेखक लोग असाधानी से तुरंत ही “वह” लाते हैं; जैसे, “भला, महाराज, जब यह ऐसे दानी हैं तो उनको लद्दी कैसे स्थिर है ?” (सत्य०) । “जब मैं इन पैदों के पास से आया था तब तो उनमें फल-फूल कुछ भी नहीं था ।” (गुटका०)

[स०—सर्वनाम के प्रयोग में ऐसी अस्थिरता से आशय समझने में कठिनाई होती है; और यह प्रयोग दूषित भी है ।]

(ई) ‘यह’ के समान (अं०—१२७ ऊ) ‘वह’ भी, कभी-कभी क्रिया विशेषण की नाई प्रयुक्त होता है और उस समय उसका अर्थ ‘वहौँ’ वा ‘इतना’ होता है; जैसे, “नौकर वह जा रहा है” । लोगों ने चोर को वह मारा कि चेचारा अधमरा हो गया ।

१३०—सो—(दोनों वचन) ।

यह सर्वनाम बहुधा संबंधवाचक सर्वनाम “जो” के साथ आता है । (अं०—१३४); और इसका अर्थ संज्ञा के वचन के अनुसार “वहूँ” वा “वे” होता है; जैसे, जिस बात की चिंता महाराज को है सो (वह) कभी न हुई होगी “जिन पौधों को तू

सोंच चुकी है सो (वे) तो इसी प्रीष्म ऋतु में फूलेंगे ।” (शकु०) ।

“आप जो न करो सो थोड़ा है ।” (मुद्रा०) ।

(अ) “वह” वा “वे” के समान “सो” अलग बाक्य में नहीं आता और न उसका प्रयोग “जो” के पहले होता है; परंतु कविता में बहुधा इन नियमों का उल्लंघन हो जाता है; जैसे, “सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास चुम्काया” (सत०) । “सो सुनि भयड भूप डर सोचू ।” (राम०) ।

(आ) “सो” कभी-कभी समुच्छय-बोधक के समान उपयोग में आता है और उसका अर्थ “इसलिए” या “तब” होता है; जैसे, “तैने भी कभी उसका नाम नहीं लिया; सो क्या तू भी उसे मेरी ही भाँति भूल गया ?” (शकु०) । “मलयकेतु हम लोगों से लड़ने के लिए उद्यत हो रहा है; सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है ।” (मुद्रा०) ।

१३१—जिस सर्वनाम से किसी विशेष वस्तु का बोध नहीं होता उसे अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं। अनिश्चयवाचक सर्वनाम दो हैं—कोई, कुछ। “कोई” और “कुछ” में साधारण अंतर यह है कि “कोई” पुरुष के लिए और “कुछ” पदार्थ वा धर्म के लिए आता है।

१३२—कोई—(दोनों वचन) ।

इसका प्रयोग एकवचन में बहुधा नीचे लिखे अर्थों में होता है—

(अ) किसी अज्ञात पुरुष या बड़े जंतु के लिये; जैसे, “ऐसा न हो कि कोई आ जाय ।” (सत्य०) । “दरवाजे पर कोई खड़ा है ।” “नाली में कोई बोलता है ।”

(आ) बहुत से ज्ञात पुरुषों में से किसी अनिश्चित पुरुष के लिए;
जैसे, “हे ! कोई यहाँ ?” (शकू०) ।

“रघुवंशिन महँ जहँ कोउ होई ।

तेहि समाज अस कहहिं न कोई ॥”—(राम०) ।

(इ) निषेधवाचक वाक्य में “कोई” का अर्थ “सब” होता है;
जैसे, “बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता ।” (सत्य०)
“तू किसीको मत सता ।”

(ई) “कोई” के साथ “सब” और “हर” (विशेषण) आते हैं।
“सब कोई” का अर्थ “सब लोग” और “हर कोई” का अर्थ
“हर आदमी” होता है। उदा०—“सब कोउ कहत राम सुठि
साधू ।” (राम०) । “यह काम हर कोई नहीं कर सकता ।”

(उ) अधिक अनिश्चय में “कोई” के साथ “एक” जोड़ देते हैं;
जैसे, “कोई एक यह बात कहता था ।”

(ऊ) किसी ज्ञात पुरुष को छोड़ दूसरे अज्ञात पुरुष का बोध कराने
के लिए “कोई” के साथ “और” या “दूसरा” लगा देते हैं;
जैसे, “यह भेद कोई और न जाने ।” “कोई दूसरा होता
तो मैं उसे न छोड़ता ।”

(ऋ) आदर और बहुत्व के लिए भी “कोई” आता है। पिछले
अर्थ में बहुधा “कोई” की द्विरुक्ति होती है; जैसे, “मेरे घर
कोई आये हैं ।” “कोई-कोई पोप के अनुयायियों ही को
नहीं देख सकते ।” (स्वा०) । “किसी-किसी की राय में
विदेशी शब्दों का उपयोग मूर्खता है ।” (सर०) ।

(ए) अवधारण के लिए “कोई-कोई” के बीच में “न” लगा दिया
जाता है; जैसे, “यह काम कोई न कोई अवश्य करेगा ।”

(ए) कोई-कोई। इन दुहरे शब्दों से विचित्रता सूचित होती है जैसे, “कोई कहती थी यह उचका है, कोई कहती थी एक पक्षा है।” (गुटका०)। “कोई कुछ कहता है, कोई कुछ।” इसी अर्थ में “एक-एक” आता है; जैसे—

“इक प्रविशाहि इक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार।”—(राम०)।

(ओ) संख्या-वाचक विशेषण के पहले “कोई” परिमाण-वाचक क्रियाविशेषण के समान आता है; और उसका अर्थ “लगभग” होता है; जैसे, “इसमें कोई ४०० पृष्ठ हैं।” (सर०)।

१३३—कुछ—(एकवचन)।

दूसरे सर्वनामों के समान “कुछ” का रूपांतर नहीं होता। इसका प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है। जब इसका प्रयोग संज्ञा के बदले में होता है तब यह नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(अ) किसी अङ्गात पदार्थी वा धर्म के लिए; जैसे, “मेरे मन में आती है कि इससे कुछ पूछूँ।” (शकु०)। “धी में कुछ मिला है।”

(आ) छोटे जंतु वा पदार्थी के लिए; “जैसे पानी में कुछ है।”

(इ) कभी-कभी कुछ परिमाण-वाचक क्रिया-विशेषण के समान आता है। इस अर्थ में कभी-कभी उसकी द्विरूपिता भी होती है। उदा०—“तेरे शरीर का ताप कुछ घटा कि नहीं?” (शकु०)। “उसने उसके कुछ खिलाक कारंवाई की।” (स्वा०)। “लड़की कुछ छोटी है।” “दोनों की आकृति कुछ-न-कुछ मिलती है।”

- (इ) आश्चर्य, आनंद वा तिरस्कार के अर्थ में भी “कुछ” क्रियाविशेषण होता है; जैसे, “हिंदी कुछ संस्कृत तो है नहीं।” (सर०) “हम लोग कुछ लड़ते नहीं हैं।” “मेरा हाल कुछ न पूछो।”
- (उ) अवधारणा के लिए “कुछ-न-कुछ” आता है; जैसे, “आर्य-जाति ने दिशाओं का नाम कुछ-न-कुछ रख लिया होगा।” (सर०)
- (ऊ) किसी ज्ञात पदार्थ वा धर्म को छोड़कर दूसरे अज्ञात पदार्थ वा धर्म का बोध कराने के लिए “कुछ” के साथ “और” आता है; जैसे, “तेरे मन में कुछ और ही है।” (शकु०)
- (ऋ) भिन्नता या विपरीतता सूचित करने के लिए ‘कुछ का कुछ’ आता है; जैसे, “आपने कुछ का कुछ समझ लिया।” “जिनसे ये कुछ के कुछ हो गये।” (इति०)
- (ञ०) “कुछ” के साथ “सब” और “बहुत” आते हैं। “सब कुछ” का अर्थ “सब पदार्थ वा धर्म” है, और “बहुत कुछ” का अर्थ “बहुत से पदार्थ वा धर्म” अथवा “अधिकता से” है। उदा०—“हम समझते सब कुछ हैं।” (सत्य०) “लड़का बहुत कुछ दौड़वा है।” “यों भी बहुत कुछ हो रहेगा।” (सत्य०)
- (ए) कुछ-कुछ। ये दुहरे शब्द विचित्रता सूचित करते हैं; जैसे, “एक कुछ कहता है और दूसरा कुछ।” (इति०) “कुछ तेरा गुरु जानता है, कुछ मेरे से लोग जानते हैं।” (मुद्रा०)

- (ऐ) “कुछ-कुछ” कभी-कभी समुच्चय-बोधक के समान आकर दो वाक्यों को जोड़ते हैं; जैसे, “छापे की भूलें कुछ प्रेस की असावधानी से और कुछ लेखकों के आलस से होती हैं।” (सर०) । “कुछ तुम समझो, कुछ हम समझो।” (कहा०) । “कुछ हम खुले, कुछ वह खुले।”
- (ओ) “कुछ-कुछ” से कभी-कभी “अयोग्यता” का अर्थ पाया जाता है; जैसे, “कुछ तुमने कमाया कुछ तुम्हारा भाई कमावेगा।”

१३४—जो—(दोनों वचन) ।

हिंदी में संबंध-वाचक सर्वनाम एक ही है; इसलिए न्याय-शास्त्र के अनुसार इसका लक्षण नहीं बनाया जा सकता। भाषा-भास्कर को छोड़कर प्रायः सभी व्याकरणों में संबंध-वाचक सर्वनाम का लक्षण नहीं दिया गया। भाषा-भास्कर में जो लक्षण है वह भी स्पष्ट नहीं है। लक्षण के अभाव में यहाँ इस सर्वनाम के केवल विशेष प्रयोग लिखे जाते हैं।

(अ) “जो” के साथ “सो” वा “वह” का नित्य संबंध रहता है। “सो” वा “वह” निश्चयवाचक सर्वनाम है; परंतु संबंधवाचक सर्वनाम के साथ आने पर इसे नित्य-संबंधी सर्वनाम कहते हैं। जिस वाक्य में संबंध-वाचक सर्वनाम आता है उसका संबंध एक दूसरे वाक्य से रहता है जिसमें नित्य-संबंधी सर्वनाम आता है; जैसे, “जो बोले

“संबंध-वाचक सर्वनाम उसे कहते हैं जो कही हुई संशा से कुछ वर्णन मिलाता है।”

सो भी को जाय ।” (कहा०) । “जो हरिश्चंद्र ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करेगा ।” (सत्य०) ।

(आ) संबंध-बाचक और नित्य-संबंधी सर्वनाम एक ही संज्ञा के बदले आते हैं । जब इस संज्ञा का प्रयोग होता है तब वह बहुधा पहले वाक्य में आती है और संबंध-बाचक सर्वनाम दूसरे वाक्य में आता है; जैसे, “यह शिक्षा उन अध्यापकों के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती जो अपने ज्ञान की विकी करते हैं ।” (हिं० प्र०) । “यह नारी कौन है जिसका रूप बख्तों में भलक रहा है ।” (शक०) ।

(इ) जिस संज्ञा के बदले संबंध-बाचक और नित्य-संबंधी सर्वनाम आते हैं उसके अर्थ की स्पष्टता के लिए बहुधा दोनों सर्वनामों में से किसी एक का प्रयोग विशेषण के समान करके उसके पश्चात् पूर्वोक्त संज्ञा को लाते हैं; “क्या आप फिर उस परदे को ढाला चाहते हैं जो सत्य ने मेरे सामने से हटाया ?” (गुटका०) । “श्रीकृष्ण ने उन लकीरों को गिना जो उसने खैंची थीं ।” (प्रेम०) । “जिस हरिश्चंद्र ने उदय से अन्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा, उसका धर्म आध गंज कपड़े के बास्ते मत छुड़ाओ ।” (सत्य०) ।

(ई) नित्य-संबंधी “सो” की अपेक्षा “वह” का प्रचार अधिक है । कभी-कभी उसके बदले “यह,” “ऐसा,” “सब” और “कौन” आते हैं; जैसे, “जिस शकुंतला ने तुम्हारे बिना सीचे कभी जल भी नहीं पिया उसको तुम पति के घर जाने की आज्ञा दो ।” (शक०) । “संसार में ऐसी

कोई चीज़ न थी जो उस राजा के लिए अलभ्य होती ।” (रघु०) । “वह कौनसा उपाय है जिससे यह पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पावे ?” (गुटका०) । “सब लोग जो यह तमाशा देख रहे थे अचरज करने लगे ।”

(३) कभी-कभी संवंध-बाचक सर्वनाम अकेला पहले बाक्य में आता है और उसकी संज्ञा दूसरे बाक्य में बहुधा “ऐसा” वा “वह” के साथ आती है; जैसे, “जिसने कभी कोई पाप-कर्म नहीं किया था ऐसे राजा रघुने यह उत्तर दिया ।” (रघु०) । “प्रभु जो दीन्द सो वर में पावा ।” (राम०) ।

(४) “जो” कभी-कभी एक बाक्य के बदले (बहुधा उसके पीछे) समुच्चय-बोधक के समान आता है; जैसे, “आ, वेग वेग चली आ, जिससे सब एक संग चेम-कुशल से कुटी में पहुँचें ।” (शकु०) । “लोहे के बदले उसमें सोना काम में आवे जिसमें भगवान् भी उसे देखकर प्रसन्न हो जावें ।” (गुटका०) ।

(५) आदर और बहुत्य के लिए भी “जो” आता है; जैसे, “यह चारों कवित्त श्री बाबू गोपालचंद्र के बनाए हैं जो कविता में अपना नाम गिरिधरदास रखते थे ।” (सत्य०) । “यहाँ तो वे ही बड़े हैं जो दूसरे को दोष लगाना पढ़े हैं ।” (शकु०) ।

(६) “जो” के साथ कभी-कभी आगे या पीछे, फारसी का

संबंध-वाचक सर्वनाम “कि” आता है (पर अब उसका प्रचार घट रहा है)। जैसे, “किसी समय राजा हरिश्चंद्र बड़ा दानी हो गया है कि जिसकी कीर्ति संसार में अब तक छाय रही है।” (प्रेम०)। “कौन कौन से समय के फेरफार इन्हें भेजने पढ़े कि जिनसे वे कुछ के कुछ हो गए।” (इति०)। “अशोक ने उन दुखियों और घायलों को पूर्ण सहायता पहुँचाई जो कि युद्ध में घायल हुए थे।” “कलिंग उसी प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि एक पतिंगा जल जाता है।” (निबंध०)

(ऐ) समूह के अर्थ में संबंध-वाचक और नित्य-संबंधी सर्वनाम से बहुधा दोनों की अथवा एक द्विरुक्ति होती है; जैसे, “त्यों हरिश्चंद्र जू जो—जो कष्टो सो कियो लोप है करि कोटि उपाई।” (सुंदरी०)। “कन्या के विवाह में हमें जो—जो बरतु चाहिए सो—सो सब इकट्ठी करो।”

(ओ) कभी-कभी संबंध-वाचक वा नित्य-संबंधी सर्वनाम का लोप होता है; जैसे, “हुआ सो हुआ।” (शकु०)। “जो पानी पीता है आपको असीस देता है।” (गुटका०)। कभी-कभी दूसरे वाक्य ही को लोप होता है; जैसे “जो आज्ञा।” “जो हो।”

[द०—यह प्रयोग कभी-कभी संयोजक क्रियाविशेषणों के साथ भी होता है। (अं०-२१३ (२)) ।]

(ओ) “जो” कभी-कभी समुच्चय-बोधक के समान आता है; और उसका अर्थ “यदि” वा “कि” होता है; जैसे, “क्या हुआ जो अब की लड़ाई में हारे।” (प्रेम०)। “हर किसी

की सामर्थ्य नहीं जो उसका साम्हना करे।” (तथा) ।

“जो सच पूछो तो इतनी भी बहुत हुई।” (गुटका०) ।

(क) “जो” के साथ अनिश्चयवाचक सर्वनाम भी जोड़े जाते हैं ।

“कोई” और “कुछ” के अर्थों में जो अंतर है वही “जो कोई” और “जो कुछ” के अर्थों में भी है; जैसे, “जो कोई नल को घर में छुसने देगा, जान से हाथ धोएगा!” (गुटका०) । “महाराज जो कुछ कहो बहुत समझूझ कर कहियो।” (शकु०) ।

१३५—प्रश्न करने के लिए जिन सर्वनामों का उपयोग होता है उन्हें प्रश्नवाचक सर्वनाम कहते हैं । ये दो हैं—कौन और क्या ।

१३६—“कौन” और “क्या” के प्रयोगों में साधारण अंतर वही है जो “कोई” और “कुछ” के प्रयोगों में है । (अं०—१३२-१३३) । “कौन” प्राणियों के लिए और विशेषकर मनुष्यों के लिए और “क्या” जुद्र प्राणी, पदार्थ वा धर्म के लिए आता है; जैसे, “हे महाराज, आप कौन हैं?” (गुटका०) । “यह आशीर्वाद किसने दिया?” (शकु०) । “तुम क्या कर सकते हो?” “क्या समझते हो?” (सत्य०) । “क्या है?” “क्या हुआ?”

१३७—“कौन” का प्रयोग नीचे लिखे अर्थों में होता है—

(अ) निर्धारण के अर्थ में “कौन” प्राणी, पदार्थ और धर्म, तीनों के लिए आता है; जैसे;—

“ह०—तो हम एक नियम पर बिकेंगे।”

“ध०—यह कौन?” (सत्य०) ।

“इसमें पाप कौन है और पुण्य कौन है।” (गुटका०) ।

“यह कौन है जो मेरे अंचल को नहीं छोड़ता!” (शकु०) ।

इसी अर्थ में “कौन” के साथ बहुधा “सा” प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे, “मेरे ध्यान में नहीं आता कि महारानी शकुंतला कौनसी है।” (शकु०) । “तुम्हारा घर कौनसा है ?”

(आ) तिरस्कार के लिए; जैसे, “रोकनेवाली तुम कौन हो !”

(शकु०) । “कौन जाने !” “स्वर्ग कौन कहे, आपने अपने सत्यबल से ब्रह्म-पद पाया !” (सत्य०) ।

(इ) आश्चर्य अथवा दुःख में जैसे, “इसमें क्रोध की बात कौनसी है !” “अरे ! हमारी बात का यह उत्तर कौन देता है ?” (सत्य०) । “अरे ! आज मुझे किसने लूट लिया !” (तथा) ।

(ई) “कौन” कभी-कभी “क्व” के अर्थ में कियाविशेषण होता है; जैसे “आपको सत्संग कौन दुर्लभ है !” (सत्य०) ।

(उ) वस्तुओं की भिन्नता, असंख्यता और तत्संबंधी आश्चर्य दिखाने के लिए “कौन” की द्विरूपिका होती है; जैसे, “सभा में कौन-कौन आये थे ?” मैं किस-किसको बुलाऊँ !” “तूने पुण्यकर्म कौन-कौनसे किये हैं ?” (गुटका०) ।

१३८—“क्या” नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(अ) किसी वस्तु का लक्षण जानने के लिए; जैसे, “मनुष्य क्या है ?” “आत्मा क्या है ?” “धर्म क्या है ?”

[स०—इसी अर्थ में कौन का रूप “किसे” या “किसको” “कहना” किया के साथ आता है; जैसे, “नदी किसे कहते हैं ?”]

(आ) किसी वस्तु के लिए तिरस्कार वा अनादर सूचित करने में; जैसे, “क्या हुआ जो अब की लड़ाई में हारे !” (प्रेम०) ।

“भला हम दास लेके क्या करेंगे ?” (सत्य०) । “धन तो क्या इस काम में तन भी लगाना चाहिये !” “क्या जाने ?” (इ) आश्र्य में; जैसे, “ऊपा क्या देखती है कि चहुँ और बिजली चमकने लगी !” (प्रेम०) । “क्या हुआ !” “वाह ! क्या कहना है !”

[सं०—इसी अर्थ में “क्या” बहुधा क्रियाविशेषण के समान आता है; जैसे, “धोके दीके क्या हैं, उड़ आये हैं !” (शक०) । क्या अच्छी चात है !” “वह आदमी क्या राज्ञस है !”]
 (इ) धमकी में; जैसे, “तुम यह क्या करते हो !” “तुम यहाँ क्या बैठे हो !”

(उ) किसी वस्तु की दशा बताने में; जैसे, “हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी !” (भारत०) ।

(ऊ) कभी-कभी “क्या” का प्रयोग विसमयादि-बोधक के समान होता है—

(१) प्रश्न करने के लिए; जैसे, “क्या गाड़ी चली गई ?”

(२) आश्र्य सूचित करने के लिए, जैसे, “क्या तुमको चिह्न दिखाई नहीं देते !” (शक०) ।

(ऋ) अशक्यता के अर्थ में भी “क्या” क्रियाविशेषण होता है; जैसे, “हिंसक जीव मुझे क्या मारेंगे !” (रघु०) । “उसके मारने से परलोक क्या बिगड़ेगा !” (गुटका०) ।

(ऋ) निश्चय कराने में भी “क्या” क्रियाविशेषण के समान आता है; जैसे, “सरोजिनी—माँ ! मैं यह क्या बैठी हूँ !”

(सरो०) । “सिपाही वहाँ क्या जा रहा है ।” इन वाक्यों में “क्या” का अर्थ “अवश्य” वा “निसंदेह” है ।

(ए) बहुत्व वा आश्चर्य में “क्या” की द्विरुक्ति होती है; जैसे, “विष देनेवाले लोगों ने क्या-क्या किया ?” (मुद्रा०) । “मैं क्या-क्या कहूँ !”

(ट) क्या-क्या । इन दुहरे शब्दों का प्रयोग समुच्चय-बोधक के समान होता है; जैसे, “क्या मनुष्य और क्या जीवजंतु, मैंने अपना सारा जन्म इन्हींका भला करने में गँवाया ।” (गुटका०) । (अं—२४४)

१३६—इशांतिर सूचित करने के लिए “क्या से क्या” वाक्यांश आता है; जैसे, “हम आज क्या से क्या हुए ।” (भारत०) ।

१४०—पुरुषवाचक, निजवाचक और निश्चयवाचक सर्वनामों में अवधारणा के लिए “ही”, “हीं” वा “ई” प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे, मैं=मैंही; तू=तूही; हम=हमीं; तुम=तुम्हीं; आप=आपहीं; वह=वही; सो=सोई; यह=यही; वे=वेही; ये=येही । (क) अनिश्चय-वाचक सर्वनामों में “भी” अव्यय जोड़ा जाता है; जैसे, “कोई भी,” “कुछ भी ।”

[टी०—हिंदी के भिज-भिज व्याकरणों में सर्वनामों की संख्या और वर्गीकरण के संबंध में बहुत-कुछ मत-मेद है । हिंदी के जो व्याकरण (एथरिंगटन, कैलाग, ग्रीब्ज, आदि) अँगरेज विद्वानों ने लिखे हैं और जिनकी सहायता प्राप्त: सभी हिंदी व्याकरणों में पाई जाती है उनका उल्लेख करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है; क्योंकि किसी भी भाषा के संबंध में केवल वही लोग प्रमाण माने जा सकते हैं जिनकी वह भाषा है; चाहे उन्होंने अपनी भाषा का व्याकरण विदेशियों ही की सहायता से सीखा वा लिखा हो । इसके सिवा यह व्याकरण हिंदी में लिखा गया है;

इसलिए हमें केवल हिंदी में लिखे हुए व्याकरणों पर विचार करना चाहिए, यद्यपि उनमें भी कुछ ऐसे हैं जिनके लेखकों की मातृ-भाषा हिंदी नहीं है। पहले हम इन व्याकरणों में दो हुई सर्वनामों की संख्या का विचार करेंगे।

सर्वनामों की संख्या “भाषा-प्रभाकर” में आठ, “हिंदी व्याकरण” में सात और “हिंदी बाल-बोध व्याकरण” में कोई सब्रह है। ये तीनों व्याकरण औरों से पीछे के हैं; इसलिए हमें समालोचना के निमित्त इन्हींकी बातों पर विचर करना है। अधिक पुस्तकों के गुण-दोष दिखाने के लिए इस पुस्तक में स्थान की संकीर्णता है।

(१) भाषा-प्रभाकर—मैं, तू, वह, यह, जो, सो, कोई, कौन।

(२) हिंदी-व्याकरण—मैं, तू, आप, यह, वह, जो, कौन।

(३) हिंदी-बालबोध-व्याकरण—मैं, तू, वह, जो, सो, कौन, क्या, यह, कोई सब, कुछ, एक, दूसरा, दोनों, एक दूसरा, कई एक, आप।

“भाषा-प्रभाकर” में “क्या”, “कुछ” और “आप” अलग-अलग सर्वनाम नहीं माने गये हैं, यद्यपि सर्वनामों के बर्णन में इनका अर्थ दिया गया है। इनमें भी “आप” का केवल आदर-सूचक प्रयोग बताया गया है। फिर आगे अव्ययों में “क्या” और “कुछ” का उल्लेख किया गया है; परंतु वहाँ भी इनके संबंध में कोई बात स्पष्टता से नहीं लिखी गई। ऐसी अवस्था में समालोचना करना बृथा है।

“हिंदी-व्याकरण” में “सो”, “कोई”, “क्या” और “कुछ” सर्वनाम नहीं माने गये हैं। पर लेखक ने पुस्तक में सर्वनाम का जो लक्षण* दिया है उसमें इन शब्दों का अंतभाव होता है; और उन्होंने स्वयं एक स्थान में (पृ० ८१) “कोई” को सर्वनाम के समान लिखा है; फिर न जाने क्यों यह शब्द भी सर्वनामों की सूची में नहीं रखा गया? ‘क्या’ और ‘कुछ’ के विषय में अव्यय होने की संभावना है; पर “सो” और

*“सर्वनाम उसे कहते हैं जो नाम के बदले में आया हो।”

“कोई”; के विषय में किसीको भी संदेह नहीं हो सकता; क्योंकि इनके रूप और प्रयोग “वह”, “जो”, “कौन” के नमूने पर होते हैं। जान पड़ता है कि मराठी में “कोण” शब्द प्रश्नवाचक और अनिश्चयवाचक दोनों होने के कारण लेखक ने “कोई” को “कौन” के अंतर्गत माना है; परंतु हिंदी में “कौन” और “कोई” के रूप और प्रयोग अलग-अलग हैं। लेखक ने कोई १५० अव्ययों की सूची में “कुछ”, “क्या” और “सो” लिखे हैं; पर इन बहुत-से शब्दों में केवल दो या तीन के प्रयोग चताये गये हैं, और उनमें भी “कुछ”, “क्या” और “सो” का नाम तक नहीं है। यिना किसी वर्गीकरण के (चाहे वह पूर्णतया न्याय-सम्मत न हो) केवल वर्णमाला के कम से १५० अव्ययों की सूची दे देने से उनका स्मरण कैसे रह सकता है और उनके प्रयोग का क्या ज्ञान हो सकता है? यदि किसी शब्द को केवल “अव्यय” कहने से काम चल सकता है तो किर “विकारी” शब्दों के जो भेद संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया लेखक ने माने हैं, उन सबकी भी क्या आवश्यकता है?

“हिंदी-बाल-बोध व्याकरण” में सर्वनामों की संख्या सबसे अधिक है। लेखक ने “कोई” और “कुछ” के साथ “सब” को अनिश्चयवाचक सर्वनाम माना है; और “एक”, “दूसरा”, “दोनों”, “एक-दूसरा” “कई-एक” आदि को निश्चयवाचक सर्वनामों में लिखा है। ये सब शब्द यथार्थ में विशेषण हैं; क्योंकि इनके रूप और प्रयोग विशेषणों के समान होते हैं। “एक लड़का”, “दस लड़के”, और “सब लड़के”, इन वाक्यांशों में संज्ञा के अर्थ के संबंध से “एक”, “दस” और “सब” का प्रयोग व्याकरण में एक ही सा है—अर्थात् तीनों शब्द “लड़का” संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित करते हैं। इसलिए यदि “दस” विशेषण है तो “सब” भी विशेषण है। हाँ, कभी-कभी विशेष्य के लोप होने पर ऊपर लिखे शब्दों का प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है; पर प्रयोग की भिन्नता और भी कई शब्द-भेदों में पाई जाती है। हमने इन सब शब्दों को विशेषण

मानकर एक अलग ही वर्ग में रखता है। जिन शब्दों को बाल-बोध-व्याकरण के कत्ती ने निष्ठयवाचक सर्वनाम माना है वे सर्वनाम माने जाने पर भी दिक्षय-वाचक नहीं हैं। उदाहरण के लिए “एक” और “दूसरा” शब्द लीजिये। इनका प्रयोग “कोई” के समान होता है जो अनिष्ठय-वाचक है। पर जब “एक” वा “दूसरा” के बाल संख्या वा क्रम का बोधक होता है तब वह अवश्य निष्ठय-वाचक विशेषण (वा सर्वनाम) होता है; परंतु समालोचित पुस्तक में इन सर्वनामों के प्रयोगों के उदाहरण नहीं हैं; इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि लेखक ने किस अर्थ में इन्हें निष्ठय-वाचक माना है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि ऊपर कही हुई तीनों पुस्तकों में जो कई शब्द सर्वनामों की सूची में दिये गये हैं अथवा छोड़ दिये गये हैं उनके लिए कोई प्रबल कारण नहीं है। अब सर्वनामों के वर्गीकरण का कुछ विचार करना चाहिए।

“भाषा-प्रभाकर” और “हिंदी-बाल-बोध-व्याकरण” में सर्वनामों के पाँच पाँच भेद माने गये हैं, पर दोनों में निजवाचक सर्वनाम न अलग माना गया है और न किसी भेद के अंतर्गत लिखा गया है। यद्यपि सर्वनामों के विवेचन में इसका कुछ उल्लेख हुआ है, पर वहाँ भी “आदर-सूचक” के अन्यपुरुष का प्रयोग नहीं बताया गया। हम इस अध्याय में बता चुके हैं कि हिंदी में “आप” एक अलग सर्वनाम है जो मूल में निजवाचक है और उसका एक प्रयोग आदर के लिए होता है। दोनों पुस्तकों में “सो” संबंध-वाचक लिखा गया है; पर यह सर्वनाम “वह” का पर्यायवाची होने के कारण यथार्थ में निश्चय-वाचक है और कभी-कभी यह संबंध-वाचक सर्वनाम “जो” के बिना भी आता है।

“हिंदी-व्याकरण” में संस्कृत की देलादेली सर्वनामों के भेद ही नहीं किये गये हैं; पर एक-दो स्थानों में (पृ० ६०—६१) “निज-सूचक

आप” शब्द का उपयोग हुआ है जिससे सर्वनामों के किसी-न-किसी वर्गीकरण की आवश्यकता जान पड़ती है। न जाने लेखक ने इसका वर्गीकरण क्यों अनावश्यक समझा ?]

१४५—“यह,” “वह,” “सो,” “जो” और “कौन” के रूप “इस,” “उस,” “तिस,” “जिस” और “किस” के अंत्य “स” के स्थान में “तना” आदेश करने से परिमाण-वाचक विशेषण और “इ” को “ऐ” तथा “उ” को “वै” करके “सा” आदेश करने से गुणवाचक विशेषण बनते हैं। दूसरे सार्वनामिक विशेषणों के समान ये शब्द भी प्रयोग में कभी सर्वनाम और कभी विशेषण होते हैं। कभी-कभी ये क्रिया-विशेषण भी होते हैं। इनके प्रयोग आगे विशेषण के अध्याय में लिखे जायेंगे।

नीचे के कोठे में इनकी व्युत्पत्ति समझाई जाती है—

सर्वनाम	रूप	परिमाणवाचक विशेषण	गुणवाचक विशेषण
यह	इस	इतना	ऐसा
वह	उस	उतना	वैसा
सो	तिस	तितना	तैसा
जो	जिस	जितना	जैसा
कौन	किस	कितना	कैसा

सर्वनामों की व्युत्पत्ति ।

१४२—हिंदी के सब सर्वनाम प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं; जैसे,

संस्कृत	प्राकृत	हिंदी
आहम्	अम्ह	मैं, हम
त्वम्	तुम्ह	तू, तुम
एषः	एश	यह, ये
सः	सो	सो, वह वे
यः	जो	जो
कः	को	कौन
किम्	किम्	क्या
कोऽपि	कोवि	कोई
आत्मन्	आप्य	आप
किञ्चित्	किंचि	कुछ

तीसरा अध्याय ।

विशेषण ।

१४३—जिस विकारी शब्द से संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है उसे विशेषण कहते हैं; जैसे, बड़ा, काला, दयालु, भारी एक, दो, सब । विशेषण के द्वारा जिस संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है उसे विशेषण कहते हैं; जैसे, 'काला घोड़ा' वाक्यांश में 'घोड़ा' संज्ञा 'काला' विशेषण का विशेष्य है। 'बड़ा घर' में 'घर' विशेष्य है ।

[टिप्पनी—“हिंदी-व्याकरण” में संज्ञा के तीन भेद किए गये हैं—

नाम, सर्वनाम और विशेषण । दूसरे व्याकरणों में भी विशेषण संज्ञा का एक उपभेद माना गया है । इसलिए यहाँ यह प्रश्न है कि विशेषण एक प्रकार की संज्ञा है अथवा एक अलग शब्द-भेद है । इस शंका का समाधान यह है कि सर्वनाम के समान विशेषण भी एक प्रकार की संज्ञा ही है; क्योंकि विशेषण भी वस्तु का अवश्यक नाम है । पर इसको अलग शब्द-भेद मानने का यह कारण है कि इसका उपयोग संज्ञा के बिना नहीं हो सकता और इससे संज्ञा का केवल धर्म सूचित होता है, “काला” कहने से घोड़ा, कपड़ा, दाग, ‘आदि किसी भी वस्तु के धर्म की भावना मन में उत्पन्न हो सकती है; परंतु उस धर्म का नाम “काला” नहीं है; किंतु “कालापन” है । जब विशेषण अकेला आता है तब उससे पदार्थ का बोध होता है और उसे संज्ञा कहते हैं । उस समय उसमें संज्ञा के समान विकार भी होते हैं; जैसे, “इसके बड़ों का यह संकल्प है ।” (शकु०) । “भले भलाई पै लाइहि । (राम०) ।

सब विशेषण विकारी शब्द नहीं हैं; परंतु विशेषणों का प्रयोग संज्ञाओं के समान हो सकता है; और उस समय इनमें रूपांतर होता है । इसलिए विशेषण को “विकारी शब्द” कहना उचित है । इसके सिवा कोई-कोई लेखक संस्कृत की चाल पर विशेष्य के अनुसार विशेषण का भी रूपांतर करते हैं; जैसे, “मूर्तिमती यह सुंदरता है ।” (क० क०) । “पुरवासिनी लियाँ ।” (रघु०) ।

विशेषण संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित करता है—इस उक्ति का अर्थ यह है कि विशेषण-रहित संज्ञा से जितनी वस्तुओं का बोध होता है उनकी संख्या विशेषण के बोग से कम हो जाती है । “घोड़ा” शब्द से जितने प्राणियों का बोध होता है उतने प्राणियों का बोध “काला घोड़ा,” शब्दों से नहीं होता । “घोड़ा” शब्द जितना व्यापक है उतना “काला घोड़ा” शब्द नहीं है । “घोड़ा” शब्द की व्याप्ति (विस्तार) “काला” शब्द से मर्यादित (संकुचित) होती है; अर्थात् “घोड़ा” शब्द अधिक

प्राणियों का बोधक है और “काला घोड़ा” शब्द उससे कम प्राणियों का बोधक है ।

“हिंदी-बाल-बोध-व्याकरण” में विशेषण का यह लक्षण दिया हुआ है—“संज्ञावाचक शब्द के गुणों को जतानेवाले शब्द को गुणवाचक शब्द कहते हैं ।” इस परिभाषा में अव्याप्ति दोष है; क्योंकि कोई-कोई विशेषण केवल संख्या और कोई-कोई केवल दशा प्रगट करते हैं । किर “गुण” शब्द से इस लक्षण में अतिव्याप्ति दोष भी आ सकता है; क्योंकि भाववाचक संज्ञा भी “गुण” जतानेवाली है । इसके सिवा इस लक्षण में “संज्ञा” के लिए व्यर्थ ही “संज्ञा-वाचक शब्द” और “सिशेषण” के लिए “गुणवाचक” के लिए “गुणवाचक शब्द” लाया गया है । जान पड़ता है कि लेखक ने “संज्ञा” शब्द का, प्रयोग, मराठी के अनुकरण पर, नाम के अर्थ में किया है ।]

१४४—व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ जो विशेषण आता है वह उस संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित नहीं करता केवल उसका अर्थ स्पष्ट करता है; जैसे, पतिव्रता सीता, प्रतापी भोज, दयालु ईश्वर, इत्यादि । इन उदाहरणों में विशेषण संज्ञा के अर्थ स्पष्ट करते हैं । “पतिव्रता सीता” वही व्यक्ति है जो ‘सीता’ है । इसी प्रकार “भोज” और “प्रतापी भोज” एक ही व्यक्ति के नाम हैं । किसी शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिये जो शब्द आते हैं वे समानाधिकरण कहाते हैं (अं०-५६०) । ऊपर के वाक्यों में “पतिव्रता,” “प्रतापी” और “दयालु” समानाधिकरण विशेषण हैं ।

१४५—जातिवाचक संज्ञा के साथ उसका साधारण धर्म वित्त करनेवाला विशेषण समानाधिकरण होता है; जैसे, मूक पशु, अबोध बचा, काला कौआ, ठंडी बफ़, इत्यादि ।

इन उदाहरणों में विशेषणों के कारण संज्ञा की व्यापकता कम नहीं होती ।

१४६—विशेष्य के साथ विशेषण का प्रयोग दो प्रकार से होता है—(१) संज्ञा के साथ, (२) किया के साथ । पहले प्रयोग को विशेष्य-विशेषण और दूसरे को विशेष्य-विशेषण कहते हैं । विशेष्य-विशेषण विशेष्य के पूर्व और विशेष्य-विशेषण किया के पहले आता है; जैसे, “ऐसी सुडौल चीज़ कहीं नहीं बन सकतो ।” (परी०) । “हमें तो संसार सूना देख पड़ता है ।” (सत्य०) । “यह बात सच है ।”

(क) विशेष्य-विशेषण समानाधिकरण होता है; जैसे, “यह ब्राह्मण चपल है ।” इस वाक्य में ‘यह’ शब्द के कारण “ब्राह्मण” संज्ञा की व्यापकता घटती है; परंतु “चपल” शब्द उस व्यापकता को और कम नहीं करता । उससे ब्राह्मण के विषय में केवल एक नहीं बात—चपलता—जानी जाती है ।

१४७—विशेषण के मुख्य तीन भेद किये जाते हैं—(१) सार्वनामिक, विशेषण, (२) गुणवाचक विशेषण और (३) संख्यावाचक विशेषण ।

[य०—यह वर्गोंकरण न्याय-दृष्टि से नहीं, किंतु उपर्योगिता की दृष्टि से किया गया है । सार्वनामिक विशेषण सर्वनामों से बनते हैं; इसलिए दूसरे विशेषणों से उनका एक अलग वर्ग मानना उचित है । किंतु इयवहार गुण और संख्या भिन्न-भिन्न धर्म हैं; इसलिए इन दोनों के विचार से विशेषण के और दो भेद—गुणवाचक और संख्यावाचक किये गये हैं ।]

(१) सार्वनामिक विशेषण ।

१४८—पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामों को छोड़कर शेष सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के समान होता है। जब ये शब्द अकेले आते हैं तब सर्वनाम होते हैं और जब इनके साथ संज्ञा आती है तब ये विशेषण होते हैं; जैसे “नौकर आया है; वह बाहर खड़ा है।” इस वाक्य में ‘वह’ सर्वनाम है; क्योंकि वह “नौकर” संज्ञा के बदले आया है “वह नौकर नहीं आया”—यहाँ “वह” विशेषण है; क्योंकि “वह” “नौकर” संज्ञा को व्याप्ति मर्यादित करता है; अर्थात् उसका निश्चय बताता है। इसी तरह “किसीको बुलाओ” और “किसी ब्राह्मण को बुलाओ”—इन वाक्यों में “किसी” क्रमशः सर्वनाम और विशेषण है।

१४९—पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनाम (मैं, तू, आप) संज्ञा के साथ आकर उसकी व्याप्ति मर्यादित नहीं करते; जैसे, “मैं मोहनलाल इकरार करता हूँ।” इस वाक्य में “मैं” शब्द विशेषण के समान “मोहनलाल” संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित नहीं करता, किंतु यहाँ “मोहनलाल” शब्द “मैं” के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये आया है। कोई-कोई यहाँ “मैं” को विशेषण कहेंगे; परंतु यहाँ मुख्य विधान “मैं” के विषय में है और किया भी उसी के अनुसार है। जो विशेषण विशेष्य के साथ आता है उस विशेषण के विषय में विधान नहीं किया जा सकता। इसलिए यहाँ “मैं” और “मोहनलाल” समानाधिकरण शब्द हैं; विशेषण और विशेष्य नहीं हैं। इसी तरह “लड़का आप आया था”—इस वाक्य में “आप” शब्द विशेषण नहीं है; किंतु “लड़का” संज्ञा का समानाधिकरण शब्द है।

१५०—सार्वनामिक विशेषण व्युत्पत्ति के अनुसार दो प्रकार के होते हैं—

(१) मूल सर्वनाम, जो बिना किसी रूपांतर के संज्ञा के साथ आते हैं; जैसे, यह घर, वह लड़का, कोई नौकर, कुछ काम, इत्यादि । (अं०—११४) ।

(२) यौगिक सर्वनाम (अं०—१४१), जो मूल सर्वनामों में प्रत्यय लगाने से बनते हैं और संज्ञा के साथ आते हैं; जैसे—ऐसा आदमी, कैसा घर, उतना काम, जैसा देश वैसा भेष, इत्यादि ।

१५१—मूल सर्वनामिक विशेषणों का अर्थ बहुधा सर्वनामों ही के समान होता है; परंतु कहीं—कहीं उनमें कुछ विशेषता पाई जाती है ।

(अ) “वह” “एक” के साथ आकर अनिश्चय-वाचक होता है; जैसे, “वह एक मनिहारिन आ गई थी ।” (सत्य०) ।

[स०—गद में ‘सो’ का प्रयोग बहुधा विशेषण के समान नहीं होता ।]

(आ) “कौन” और “कोई” प्राणी, पदार्थ वा धर्म के नाम के साथ आते हैं; जैसे, कौन मनुष्य ? कौन जानवर ? कौन कपड़ा, कौन बात ? कोई मनुष्य । कोई जानवर । कोई कपड़ा । कोई बात । इत्यादि ।

(इ) आश्चर्य में “क्या” प्राणी, पदार्थ वा धर्म तीनों के नाम के साथ आता है; जैसे, “तुम भी क्या आदमी हो !” यह क्या लकड़ी है !” “क्या बात है !” इत्यादि ।

(ई) प्रश्न में “क्या” बहुधा भाववाचक संज्ञाओं के साथ आता है; जैसे, क्या काम ? क्या नाम ? क्या दशा ? क्या सहायता ? इत्यादि ।

(उ) “कुछ” संख्या, परिमाण और अनिश्चय का बोधक है। संख्या और परिमाण के प्रयोग आगे लिखे जायेंगे (अ०—१८४—१८५)। अनिश्चय के अर्थ में “कुछ” “क्या” के समान बहुता भाववाचक संज्ञाओं के साथ आता है; जैसे, कुछ बात, कुछ डर, कुछ विचार, कुछ उपाय, इत्यादि ।

१५२—यौगिक सार्वनामिक विशेषणों के साथ जब विशेष्य नहीं रहता तब उनका प्रयोग प्रायः संज्ञाओं के समान होता है; जैसे, “जैसा करोगे वैसा पावोगे ।” “जैसे को तैसा मिले ।” “इतने” से काम न होगा ।”

(अ) “ऐसा” और “इतना” का प्रयोग कभी-कभी “यह” के समान वाक्य के बदले में होता है; जैसे, “ऐसा कथ हो सकता है कि मुझे भी दोष लगे ।” (गुटका०)। “ऐसा क्यों कहते हो कि मैं वहाँ नहीं जा सकता ?” “बह इतना कर सकता है कि तुम्हें छुट्टी मिल जाय ।”

(आ) “ऐसा-वैसा” तिरस्कारके अर्थमें आता है; जैसे, “मैं ऐसे-वैसे को कुछ नहीं समझता ।” “राजा दिलीप कुछ ऐसा-वैसा न था ।” (रघु०)। “ऐसो-वैसी कोई चीज नहीं खानी चाहिए ।”

१५३—(१) यौगिक संबंध-वाचक सार्वनामिक विशेषणों के साथ उनके नित्य-संबंधी विशेषण आते हैं; “जैसे, जैसा देश वैसा भेष ।” “जितनी चादर देखो उतना पैर फैलाओ ।”

(अ) कभी-कभी किसी एक विशेषण के विशेष्य का लोप होता है; जैसे, “जितना मैंने दान दिया उतना तो कभी किसी के ध्यान में न आया होगा ।” (गुटका०)। “जैसी बात आप

कहते हैं वैसी कोई न कहेगा ।” “हमारे ऐसे पदाधिकारियों
को शशु उतना संवाप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति
और कीर्ति ।”

(आ) दोनों विशेषणों की द्विरुक्ति से उत्तरोत्तर घटती-बढ़ती का
बोध होता है; जैसे, “जितना-जितना नाम बढ़ता है
उतना-उतना मान बढ़ता है ।” “जैसा जैसा काम करोगे
वैसे वैसे दाम मिलेंगे ।”

(इ) कभी-कभी “जैसा” और “ऐसा” का उपयोग “समान”
(संबंध-सूचक) के सदृश होता है; जैसे, “प्रबाह उन्हें
तालाब का जैसा रूप दे देता है ।” (सर०) । “यह आप
ऐसे महात्माओं का काम है ।” (सत्य०) ।

(ई) “जैसा का तैसा”—यह विशेषण-वाक्यांश “पूर्ववत्” के
अर्थ में आता है; जैसे, “वे जैसे के तैसे बने रहे ।”

(२) यौगिक प्रश्न-वाचक (सार्वनामिक) विशेषण (कैसा
और कितना) नीचे लिखे अर्थों में आते हैं—

(अ) आश्चर्य में; जैसे “मनुष्य कितना धन देगा और याचक
कितना लेंगे ।” (सत्य०) । “विद्या पाने पर कैसा
आनंद होता है ।”

(आ) “ही” (भी) के साथ अनिश्चय के अर्थ में; जैसे, “खी
कैसी ही सुशीलता से रहे, फिर भी लोग चबाव करते
हैं ।” (शक०) । “(वह) कितना भी दे, पर संतोष
नहीं होता ।” (सत्य०) ।

१५४—परिमाणवाचक सार्वनामिक विशेषण बहुवचन में संख्यावाचक होते हैं; जैसे, “इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं।” (सत्य०) । “मेरे जितने प्रजा-जन हैं उनमें से किसीको अकाल मृत्यु नहीं आती।” (रघु०) ।

(अ) “कितने ही” का प्रयोग “कई” के अर्थ में होता है; जैसे, “पृथ्वी के कितनेही अंश धीरे धीरे उठते जाते हैं।” (सर०) । “कितने” के साथ कभी कभी “एक” जोड़ा जाता है; जैसे, “कितने एक दिन पीछे फिर जरासंध उतनी ही सेना ले चढ़ आया।” (प्रेम०) ।

१५५—यौगिक सार्वनामिक विशेषण कभी-कभी क्रिया-विशेषण होते हैं; जैसे, “तू मरने से इतना क्यों ढरता है ?” “बैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखें तौ भी उनके अच्छे नहीं होते।” (मुद्रा०) । “मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि विना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे।” (सत्य०) । “मृग-छौने कैसे निघटक घर रहे हैं।” (शकु०) ।

(अ) “इतने में” क्रिया-विशेषण-बाक्यांश है; और उसका अर्थ “इस समय में” होता है; जैसे “इतने में ऐसा हुआ।”

१५६—“निज” और “पराया” भी सर्वनामिक विशेषण हैं; क्योंकि इनका प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है; ये दोनों अर्थ में एक दूसरे के उलटे हैं। “निज” का अर्थ “अपना” और “पराया” का अर्थ “दूसरे का” है; जैसे, निज देश, निज भाषा, पराया घर, पराया माल, इत्यादि ।

(२) गुणवाचक विशेषण ।

१५७—गुणवाचक विशेषणों की संख्या और सब विशेषणों

की अपेक्षा अधिक रहती है। इनके कुछ मुख्य अर्थ नीचे दिये जाते हैं—

काल—नया, पुराना, ताजा, भूत, वर्तमान, भविष्य, प्राचीन, अगला, पिछला, मौसमी, आगामी, टिकाऊ, इत्यादि ।

स्थान—लंबा, चौड़ा, ऊँचा, नीचा; गहरा, सीधा, सकरा, तिरछा, भीतरी, बाहरी, ऊज़द, स्थानीय, इत्यादि ।

आकार—गोल, चौकोर, सुडौल, समान, पोला, सुंदर, नुकीला, इत्यादि ।

रंग—लाल, पीला, नीला, हरा, सफेद, काला, बैगनी, सुनहरी, चमकीला, धुँधला, फीका, इत्यादि ।

दशा—दुबला, पतला, मोटा, भारी, पिघला, गाढ़ा, गोला, सुखा, घना, गरीब, उद्यमी, पालतू, रोगी, इत्यादि ।

गुण—भला, बुरा, उचित, अनुचित, सच, मूठ; पापी, दानी, न्यायी, दुष्ट, सीधा, शान्त, इत्यादि ।

१५५—गुणवाचक विशेषणों के साथ हीनता के अर्थ में “सा”; प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे, “बड़ासा पेड़” “ऊँचीसी दीवार” “यह चांदी खोटीसी दिखती है।” “उसका सिर कुछ भारीसा हो गया।”

[सूचना—सा = प्राकृत, सरिसो, संस्कृत, सहरा :]

१५६—“नाम” (वा “नामक”), “संबंधी” और “रूपी” संज्ञाओं के साथ मिलकर विशेषण होते हैं; जैसे, “बाहुक-नाम सारथी,” “परंतप-नामक राजा,” “घर-संबंधी काम,” “तुण्णा-रूपी नदी,” इत्यादि ।

१६०—“सरीखा” संज्ञा और सर्वनाम के साथ संबंध-सूचक होकर आता है, जैसे, “हरिश्चंद्र सरीखा दानी,” “मुझ सरीखे लोग”। इसका प्रयोग कुछ कम हो चला है।

१६१—“समान” (सहश) और “तुल्य” (बराबर) का प्रयोग कभी-कभी संबंध-सूचक के समान होता है। जैसे, “उसका ऐन घड़े के समान बड़ा था ।” (रघु०)। “लड़का आदमी के बराबर दौड़ा ।”

(आ) “योग्य” (लायक) संबंध-सूचक के समान आकर भी बहुधा विशेषण ही रहता है; जैसे, मेरे योग्य काम-काज लिखिएगा ।”

१६२—गुणवाचक विशेषण के बदले बहुधा संज्ञा का संबंध-कारक आता है; जैसे, “घरू भगड़ा” = घर का भगड़ा, “जंगली जानवर” = जंगल का जानवर। “बनारसी साड़ी” = बनारस की साड़ी।

१६३—जब गुणवाचक विशेषणों का विशेष्य लुप्त रहता है तब उनका प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है (अं०—१५२); जैसे, “बड़ों ने सच कहा है ।” (सत्य०)। “दीनों को मत सताओ ।” “सहज में,” “ठंडे में,”।

(आ) कभी-कभी विशेषण अकेला आता है और उसका लुप्त विशेष्य अनुमान से समझ लिया जाता है; जैसे—“महाराज जी ने खटिया पर लंबी तानी ।” “बापुरे बटोही पर बड़ी कड़ी बीती ।” (टेठ०)। “जिसके समक्ष न एक भी विजयी सिकन्दर की चली ।” (भारत०)।

(३) संख्यावाचक विशेषण ।

१६४—संख्यावाचक विशेषण के मुख्य तीन भेद हैं—(१) निश्चित संख्यावाचक, (२) अनिश्चित संख्यावाचक और (३) परिमाण-बोधक ।

(१) निश्चित संख्या-वाचक विशेषण ।

१६५—निश्चित संख्यावाचक विशेषणों से वस्तुओं की निश्चित संख्या का बोध होता है; जैसे, एक लड़का, पचीस रुपये दसवाँ भाग, दूना मोल, पाँचों इंद्रियों, हर आदमी, इत्यादि ।

१६६—निश्चित संख्या-वाचक विशेषणों के पाँच भेद हैं—
(१) गणनावाचक, (२) क्रमवाचक, (३) आवृत्तिवाचक,
(४) समुदायवाचक और (५) प्रत्येक-बोधक ।

१६७—गणनावाचक विशेषणों के दो भेद हैं—

- (अ) पूर्णांक-बोधक; जैसे, एक, दो, चार, सौ, हजार ।
(आ) अपूर्णांक-बोधक; जैसे, पाच, आठां, पौन, सवा ।

(अ) पूर्णांक-बोधक ।

१६८—पूर्णांक-बोधक विशेषण दो प्रकार से लिखे जाते हैं—
(१) शब्दों में, (२) अंकों में । बड़ी-बड़ी संख्याएँ अंकों में लिखी जाती हैं; परंतु छोटी-छोटी संख्याएँ और अनिश्चित बड़ी संख्याएँ बहुधा शब्दों में लिखी जाती हैं । तिथि और संवत् को अंकों में ही लिखते हैं । उदा०—“सन् १६०० तक तोले भर सोने की दस तोले चाँदी मिलती थी । सन् १७०० में अर्थात् सौ बरस बाद तोले भर सोने की चौदह तोले मिलने लगी ।”
(इति०) “सात वर्ष के अंदर १२ करोड़ रुपये सात जंगी जहाजों और छः जंगी क्रूजर्स के बनाने में और खर्च किये जायेंगे ।”
(सर०) ।

१६६—पूर्णांक-बोधक विशेषणों के नाम और अंक नीचे दिये जाते हैं—

एक	१	छुव्वीस	२६	इक्यावन	५१	छुहत्तर	७६
दो	२	सत्ताईस	२७	बावन	५२	सतहत्तर	७७
तीन	३	अठाईस	२८	तिरपन	५३	अठहत्तर	७८
चार	४	उंतीस	२९	चौबन	५४	उनासी	७९
पाँच	५	तीस	३०	पचपन	५५	अस्सी	८०
छः	६	इकतीस	३१	छुपन	५६	इक्यासी	८१
सात	७	बत्तीस	३२	सत्ताबन	५७	बयासी	८२
आठ	८	तैनीस	३३	अडाबन	५८	तिरासी	८३
नौ	९	चौंतीस	३४	उनसठ	५९	चौरासी	८४
दस	१०	पैंतीस	३५	साठ	६०	पचासी	८५
ग्यारह	११	छुत्तीस	३६	इकसठ	६१	छियासी	८६
बारह	१२	सैंतीस	३७	बासठ	६२	सतासी	८७
तेरह	१३	अड़तीस	३८	तिरसठ	६३	अठासी	८८
चौदह	१४	उंतालीस	३९	चौंसठ	६४	नवासी	८९
पंद्रह	१५	चालीस	४०	पैंसठ	६५	नव्वे	९०
सोलह	१६	इकतालीस	४१	छियासठ	६६	इक्यानवे	९१
सत्रह	१७	बयालीस	४२	सङ्सठ	६७	बानवे	९२
अठारह	१८	तैनालीस	४३	अडसठ	६८	तिरानवे	९३
उच्चीस	१९	चौंबालीस	४४	उनहत्तर	६९	चौरानवे	९४
बीस	२०	पैंतालीस	४५	सच्चर	७०	पंचानवे	९५
इक्कीस	२१	छियालीस	४६	इकहत्तर	७१	छियानवे	९६
बाईस	२२	सैंतालीस	४७	बहत्तर	७२	सत्तानवे	९७
तेईस	२३	अडवालीस	४८	तिहत्तर	७३	अडानवे	९८
चौधीस	२४	उनचास	४९	चौहत्तर	७४	निजानवे	९९
पचास	२५	पचास	५०	पचहत्तर	७५	सौ	१००

१७०—दहाई की संख्याओं में एक से लेकर आठ तक अंकों का उचारण दहाइयों के पहले होता है; जैसे, “चौ-दह,” “चौ-बीस,” “पैं-तीस,” “पैं-तालीस” इत्यादि ।

(क) दहाई की संख्या सूचित करने में इकाई और दहाई के अंकों का उचारण कुछ बदल जाता है; जैसे,

एक = इक ।

दस = रह ।

दो = वा, व ।

बीस = ईस ।

तीन = ते, तिर, ति ।

तीस = तीस ।

चार = चौ, चौं ।

चालीस = तालीस ।

पाँच = पंद, पच,
पैं, पंच ।

पचास = वन, पन ।
साठ = सठ ।

छः = सो, छु ।

सत्तर = हत्तर ।

सात = सत, सैं, सड़ ।

अस्सी = आसी ।

आठ = अठ, अड़ ।

नव्वे = नवे ।

१७१—बीस से लेकर अस्सी तक प्रत्येक दहाई के पहले की संख्या सूचित करने के लिये उस दहाई के नाम के पहले “उन” शब्द का उपयोग होता है; जैसे, “उन्नीस,” “उंतीस,” “उनसठ”, इत्यादि । यह शब्द संस्कृत के “ऊन” शब्द का अपभ्रंश है। “नवासी” और “निनानवे” में क्रमशः और “नव” और “निना” जोड़े जाते हैं । संस्कृत में इन संख्याओं के रूप “नवाशीति” और “नवनवति” हैं ।

१७२—सौ के ऊपर की संख्या जाताने के लिये एक से अधिक शब्दों का उपयोग किया जाता है; जैसे, १२५ = “एक सौ पश्चीस” २७५ = “दो सौ पचहत्तर” इत्यादि ।

(अ) सौ और दो सौ के बीच की संख्याएँ प्रगट करने के लिये कभी छोटी संख्या को पहले कहकर फिर बड़ी संख्या बोलते

हैं। इकाई के साथ “ओतर” (सं०—उत्तर = अधिक) और दहाई के साथ “आ” जोड़ा जाता है; जैसे, “अठोतर सौ” = १०८—“चालीसा सौ” = १४०, इत्यादि । इनका प्रयोग बहुधा गणित और पहाड़ों में होता है ।

१७३—नीचे लिखी संख्याओं के लिए अलग अलग नाम हैं—
१००० = हजार (सं० सहस्र) ।

१०० हजार = लाख ।

१०० लाख = करोड़ ।

१०० करोड़ = अर्ब ।

१०० अर्ब = खर्ब ।

(अ) खर्ब से उत्तरोत्तर सौ सौ गुनी संख्याओं के लिये क्रमशः नील, पद्म, शंख आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है । इन संख्याओं से बहुधा असंख्यता का बोध होता है ।

(आ) अपूर्णांक-बोधक विशेषण ।

१७४—अपूर्णांक-बोधक विशेषण से पूर्ण-संख्या के किसी भाग का बोध होता है; जैसे, पाव = चौथाई भाग; पौन = तीन भाग; सवा = एक पूर्णांक और चौथाई भाग; अढाई = दो पूर्णांक और आधा, इत्यादि ।

(अ) दूसरे पूर्णांक-बोधक शब्द अंश (सं०), भाग वा हिस्सा

(का०) शब्द के उपयोग से सूचित होते हैं; जैसे, तृतीयांश वा तीसरा हिस्सा वा तीसरा भाग, दो पंचमांश (पाँच भागों में से दो भाग), इत्यादि । तीसरे हिस्से को “तिहाई” और चौथे हिस्से को “चौथाई” भी कहते हैं ।

१७५—अपूर्णांक-बोधक विशेषणों के नाम और अंक नीचे लिखे जाते हैं—

पाव = । , ३२

ओधा = ॥ , ३

पौन = ॥। , ३

अढाई या ढाई = २॥ . २३

सवा = १। , १२

डेड = ॥। , १२

पौने दा = १॥। , १२

साडे तीन = ३॥ , ३२

(अ) एक से अधिक संख्याओं के साथ पाव और पौन सूचित करने के लिए पूर्णांक-बोधक शब्द के पहले क्रमशः “सवा” (सं० सपाद) और “पौने” (सं० पादोन) शब्दों का उपयोग किया जाता है; जैसे, “सवा दो” = २३; “पौने तीन” = २४; इत्यादि ।

(आ) तीन और उससे ऊपर की संख्याओं में आधे की अधिकता सूचित करने के लिए “साडे” (सं०-सार्ध) का उपयोग होता है; जैसे, “साडे चार” = ४२; “साडे दस” = १०२; इत्यादि ।

[स०—“पौने” और “साडे” शब्द कभी अकेले नहीं आते । “सवा अकेला १२” के लिए आता है ।]

१७६—सौ, हजार, लाख, इत्यादि संख्याओं में भी अपूर्णांक-बोधक शब्द जोड़े जाते हैं; जैसे, “सवा सौ” = १२५; ढाई सौ = २५०; “साडे तीन हजार” = ३५००; “पौने पाँच लाख” = ४७५०००; इत्यादि ।

१७७—अपूर्णांक-बोधक शब्द माप-तौल-बाचक संज्ञाओं के साथ भी आते हैं; जैसे, “सवा सेर” “डेड गज” “पौने तीन कोस,” इत्यादि ।

१७८—कभी कभी अपूर्णांक-बोधक संज्ञा आनों के हिसाब से भी सूचित की जाती है; जैसे, “इस साल चौदह आने कसल हुई है ।” “इस व्यापार में मेरा चार आने हिस्सा है ।” इत्यादि ।

१७६—गणनावाचक विशेषणों के प्रयोग में नीचे लिखी विशेषताएँ हैं—

(अ) पूर्णांक-बोधक विशेषण के साथ “एक” लगाने से ‘लगभग’ का अर्थ पाया जाता है; जैसे, दस-एक आदमी,” “चालीस-एक गायें,” इत्यादि ।

“सौ-एक” का अर्थ “सौ के लगभग” है; परंतु “एक-सौ-एक” का अर्थ “सौ और एक” है ।

अनिश्चय अथवा अनादर के अर्थ में “ठो” जोड़ा जाता है; जैसे, दोठो रोटियाँ, पचासठो आदमी ।

(स०—कविता में “एक” के बदले बहुधा ‘क’ जोड़ा जाता है; जैसे, चली छ-सातक हाथ, “दिन छैक तें” । (सत०) ।)

(अ) एक के अनिश्चय के लिये उसके साथ आद या आध लगाते हैं; जैसे एक-आद टोपी; एक-आध कविता ।

एक और आद (आध) में बहुधा संबंध भी हो जाती है; जैसे, एकाद, एकाध ।

(इ) अनिश्चय के लिए कोई भी वो पूर्णांक-बोधक विशेषण साथ साथ आते हैं; जैसे, “दो-चार दिन में,” “दस-बीस रुपये” “सौ-दो-सौ आदमी,” इत्यादि ।

“डेढ़-दो”, “अद्वाई-तीन” आदि भी बोलते हैं। “उच्चीस-बीस” कहने से कुछ कमी समझी जाती है; जैसे, ‘बीमारी अब उच्चीस-बीस है’ । “तीन-पाँच” का अर्थ “लद्वाई” है और “तीन-तेरह” का अर्थ “तितर-वितर” है ।

(ई) “बीस”, “पचास”, “सैकड़ा”, “हजार”, “लाख” और “करोड़” में ओं जोड़ने से अनिश्चय का बोध होता है;

जैसे “बीसों आदमी”, “पचासों घर”, “सैकड़ों रुपये”
“हजारों बरस” “करोड़ों पंडित”, इत्यादि।

(स०—एक लेखक हिंदी “करोड़” शब्द के साथ “ओ” के बदले फारसी का “हा”, प्रत्यय जोड़कर “करोड़हा” लिखते हैं, जो अशुद्ध है ।)

१८०—क्रम-वाचक विशेषण से किसी वस्तु की क्रमानुसार गणना का बोध होता है; जैसे, पहला, दूसरा, पाँचवाँ, बीसवाँ, इत्यादि।

(अ) क्रम-वाचक विशेषण पूर्णांक-चोदक विशेषणों से बनते हैं। पहले चार क्रम-वाचक विशेषण नियम-रहित हैं; जैसे,

दो = दूसरा चार = चौथा

(आ) पाँच से लेकर आगे के शब्दों में “वाँ” जोड़ने से क्रम-वाचक विशेषण बनते हैं; जैसे,

पाँच = पाँचवाँ

आठ = आठवाँ **पचास = पचासवाँ**

(इ) सौ से ऊपर की संख्याओं में पिछले शब्द के अंत में बाँ
लगाते हैं; जैसे, एक सौ तीनवाँ, दो सौ अठवाँ, इत्यादि।

(ई) कभी-कभी संस्कृत क्रम-वाचक विशेषणों का भी उपयोग होता है; जैसे प्रथम (पहला), द्वितीय (दूसरा), तृतीय (तीसरा), चतुर्थी (चौथा), पंचम (पाँचवा), षष्ठ (छठा), दशम (दसवाँ) । “षष्ठम्” अशुद्ध है ।

(उ) तिथियों के नामों में हिंदी शब्दों के सिवा कभी-कभी संस्कृत शब्दों का भी उपयोग होता है; जैसे, हिंदी—दूज (दोज),

तीज, चौथ, पाँचें, छठ, इत्यादि । संस्कृत-द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, इत्यादि ।

१८२—आवृत्तिवाचक विशेषण से जाना जाता है कि उसके विशेष्य का बाच्य पदार्थ के गुना है; जैसे, दुगुना, चौगुना, दस-गुना, सौगुना, इत्यादि।

(अ) पूर्णांक-बोधक विशेषण के आगे “गुना” शब्द लगाने से आवृत्ति-बाचक विशेषण बनते हैं। “गुना”, शब्द लगाने के पहले दो से लेकर आठ तक संख्याओं के शब्दों में आद्य स्वर का कुछ विकार होता है; जैसे,

चार = चौगुना **आठ = आठगुना**

पाँच = पचगना बी = बैगना

(आ) परत वा प्रकार के अर्थ में 'हरा' जोड़ा जाता है; जैसे, इकहरा, दुहरा, तिहरा, चौहरा, इत्यादि।

(इ) कभी-कभी संस्कृत के आवृत्ति-वाचक विशेषणों का भी उपयोग होता है; जैसे, द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण, इत्यादि।

(ई) पहाड़ों में आवृत्ति-वाचक और अपूर्ण-संख्या-वोधक विशेषणों के रूपों में कुछ अंतर हो जाता है, जैसे,

दून—दूने, दूनी । सवा—सवाम ।

तिगुना—तिया, तिरिक | देव—डेवदे |

चौगुना—चौक। अदाई—अहाम्।

पंचगुना—पंचे ।

ଅୟନା—ଦ୍ରକ ।

सतगुना—सते ।

અઠગુના—અછે ।

नीयना—नवा, नवे ।

दसगुना—दहाम ।

[सू०—इन शब्दों का उचारण मिज-मिज प्रदेशों में मिज-मिज प्रकार का होता है ।]

१८२—समुदाय—वाचक विशेषणों से किसी पूर्णांक-बोधक संख्या के समुदाय का बोध होता है; जैसे, दोनों हाथ, चारों पाँव, आठों लड्के, चालीसों चोर, इत्यादि।

(अ) पूर्णक-बोधक विशेषणों के आगे 'ओ', जोड़ने से समुदाय बाचक विशेषण बनते हैं; जैसे, चार—चारों, दस—दसों, सोलह—सोलहों, इत्यादि। छः का रूप 'छओं' होता है।

(आ) “दो” से “दोनों” बनता है। ‘एक’ का समुदाय-वाचक रूप “अकेला” है। “दोनों” का प्रयोग बहुधा सर्वनाम के समान होता है; जैसे, “दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम !” “अकेला” कभी-कभी किया-विशेषण के समान आता है; जैसे, “विपिन अकेलि फिरहु केहि हैतु !” (राम०) ।

[यत्तना—“ओ” प्रत्यय अनिश्चय में भी आता है (अं—१७६—८) ।]

(इ) कभी-कभी अवधारणा के लिए समुदायबाचक विशेषण की द्विरुक्ति भी होती है, जैसे, “पाँचों के पाँचों आदमी चले गये ।” “दोनों के दोनों लड़के मूर्ख निकले ।”

कोड़ी, बीसा, बीसी = बीस । चालीसा = चालीस ।

बत्तीसी = बत्तीस । सैकड़ा = सौ ।

छक्का = छः । दर्जन (अँ०) = बारह ।

(उ) युग्म (दो), पंचक (पाँच), अष्टक (आठ) आदि संस्कृत समुदाय-वाचक संज्ञाएँ भी प्रचार में हैं ।

१८३—प्रत्येक-बोधक विशेषण से कई वस्तुओं में से प्रत्येक का बोध होता है; जैसे, “हर घड़ी”, “हर-एक आदमी”, “प्रति-जन्म”, “प्रत्येक बालक”, “हर आठवें दिन”, इत्यादि ।

“हर” उद्भू शब्द है । “हर” के बदले कभी-कभी उद्भू “की” आता है; जैसे, कीमत की जिल्द ।) ।

(अ) गणना-वाचक विशेषणों की द्विरुक्ति से भी यही अर्थ निकलता है; जैसे, एक-एक लड़के को आधा-आधा फल मिला । ” “दबा दो-दो घंटे के बाद दी जावे । ”

(आ) अपूर्णांक-बोधक विशेषणों में सुख्य शब्द की द्विरुक्ति होती है; जैसे, “सवा-सवा गज”, “ढाई-ढाई सौ रुपये”, “पाँने दो-दो मन”, “साड़े पाँच-पाँच हजार”, इत्यादि

(२) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण ।

१८४—जिस संख्या-वाचक विशेषण से किसी निश्चित संख्या का बोध नहीं होता उसे अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं, जैसे, एक, दूसरा, (अन्य, और) सब (सर्व, सकल, समस्त, कुल) बहुत (अनेक, कई, नाना) अधिक (ज्यादा), कम, कुछ, आदि, (इत्यादि, बगैरह), अमुक, (फलाना), कै ।

अनिश्चित संख्या के अर्थ में इनका प्रयोग बहुवचन में होता है । और-और विशेषणों के समान ये विशेषण भी (विना

विशेष्य के) संज्ञा के समान उपयोग में आते हैं; और इनमें से कोई-कोई परिमाण-बोधक विशेषण भी होते हैं।

(१) “एक” पूरणीक-बोधक विशेषण है; परंतु इसका प्रयोग बहुधा अनिश्चय के लिए होता है।

(अ) “एक” से कभी-कभी “कोई” का अर्थ पाया जाता है; जैसे, “एक दिन ऐसा हुआ”। “हमने एक बात सुनी है।”

(आ) जब “एक” संज्ञा के समान आता है तब उसका प्रयोग कभी-कभी बहुवचन के अर्थ में होता है; और दूसरे वाक्य में उसकी द्विरुक्ति भी होती है; जैसे, “एक रोता है और एक हँसता है।” “इक प्रविशाहि इक निर्गमहि।”

(राम०) ।

(इ) “एक” कभी-कभी ‘केवल’ के अर्थ में क्रिया-विशेषण होता है; जैसे, “एक आधा सेर आटा चाहिए”। एक तुम्हारे ही दुख से हम दुखी हैं।”

(ई) “एक” के साथ “सा” प्रत्यय लगाने से “समान” का अर्थ पाया जाता है; जैसे, “दोनों का रूप एकसा है।”

(उ) अनिश्चय के अर्थ में “एक” कुछ सर्वनामों और विशेषणों में जोड़ा जाता है; जैसे, कोई-एक, कुछ-एक, दस-एक, कई-एक, कितने-एक, इत्यादि।

(ऊ) “एक—एक” कभी-कभी “यह—वह” के अर्थ में निश्चय-बाचक सर्वनाम के समान आता है; जैसे,

“पुनि बन्दौं शारद सुर-सरिता ।
युगल पुनीत मनोहर चरिता ॥

मज्जन पान पाप हर एका ।

कहत-सुनत इक हर अविवेका ॥”—(राम०) ।

(२) “दूसरा” “दो” का क्रम-बाचक विशेषण है । यह “प्रकृत प्राणी या पदार्थ से भिन्न” के अर्थ में आता है; जैसे, “यह दूसरी बात है ।” “द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ।” (तु० स०) । “दूसरा” के पर्यायबाची “अन्य” और “आँर” हैं; जैसे, “अन्य पदार्थ”, “आँर जाति ।”

(अ) कभी-कभी “दूसरा” “एक” के साथ विमिन्नता (तुलना) के अर्थ में (संज्ञा के समान) आता है; जैसे “एक जलता मांस मारे तुष्णा के मुँह में रख लेता है..... और दूसरा उसीको फिर झट से खा जाता है ।” (सत्य०) ।

(आ) “एक—एक” के समान “एक—दूसरा” अथवा “पहला—दूसरा” पहले कही हुई दो वस्तुओं का क्रमानुसार निश्चय सूचित करता है; जैसे, “प्रतिष्ठा के लिये दो विद्याएँ हैं, एक शास्त्रविद्या और दूसरी शास्त्रविद्या । पहली बुढ़ापे में हँसी कराती है, परंतु दूसरी का सदा आदर होता है ।”

(इ) “एक—दूसरा” यौगिक शब्द है और इसका प्रयोग “आपस” के अर्थ में होता है । यह बहुधा सर्वनाम के समान (संज्ञा के बदले में) आता है, जैसे, “लड़के एक-दूसरे से लड़ते हैं ।”

(ई) “आँर” कभी-कभी “अधिक संख्या” के अर्थ में भी आता है; जैसे, “मैं और आम लूँगा ।”

- (च) “ओर का ओर” विशेषण-वाक्यांश है और उसका अर्थ ‘भिन्न’ होता है, जैसे; “उसने ओर का ओर काम कर दिया ।”
- (झ) “ओर” समुच्चय-बोधक भी होता है; जैसे, “हवा चली ओर पानी गिरा ।” (अं०—२४४) ।
- (झ०) “कोई”, “कुछ”, “कौन” और “क्या” के साथ भी “ओर” आता है; जैसे, “असल चोर कोई ओर है ।” “मैं कुछ ओर कहूँगा ।” “तुम्हारे साथ ओर कौन है ?” “मरने के सिवा ओर क्या होगा ।”
- (३) “सब” पूरी संख्या सूचित करता है, परंतु अनिश्चित रूप से । “सब” में पाँच भी शामिल है और पचास भी । इसका प्रयोग बहुधा बहुवचन संज्ञा के साथ होता है; जैसे “सब लड़के ।” “सब कपड़े ।” “सब भीड़ ।” “सब प्रकार ।”
- (अ) संज्ञा-रूप में इसका प्रयोग “संपूर्ण प्राणी वा पदार्थ” के अर्थ में आता है; जैसे, “सब यही बात कहते हैं ।” “सब के दाता राम ।” “आत्मा सब में व्याप्त है ।” “मैं सब जानता हूँ ।”
- (आ) “सब” के साथ “कोई” और “कुछ” आते हैं । “सब-कोई” और “सब-कुछ” के अर्थ का अंतर “कोई” और “कुछ” (सर्वनामों) के ही समान है; जैसे, सब कोई अपनी बढ़ाई चाहते हैं ।” (शक०) “हम समझते सब कुछ हैं ।” (सत्य०) ।
- (इ) “सब का सब” विशेषण वाक्यांश है; और इसका प्रयोग

“समस्तता” के अर्थ में होता है, जैसे, “सब के सब” लड़के लौट आये ।”

(इ) “सब” के पर्यायवाची “सर्व”, “सकल”, “समस्त” और उन्हीं “कुल” हैं । इन शब्दों का उपयोग बहुधा विशेषण ही के समान होता है ।

(४) “बहुत” “थोड़ा” का उलटा है । “जैसे मुख्लमान थे बहुत और हिंदू थे थोड़े ।” (सर०) ।

(अ) “बहुत” के साथ “से” और “सारे” जोड़ने से कुछ अधिक संख्या का बोध होता है; जैसे, बहुससे लोग ऐसा समझते हैं । “बहुत-सारे लड़के ।” यह पिछला प्रयोग प्रांतीय है ।

(आ) “बहुत” के साथ “कुछ” भी आता है । “बहुत कुछ” का अर्थ प्रायः “बहुतसे” के समान होता है; जैसे, ‘बहुत कुछ आदमी आये थे ।’

(इ) “अनेक” (अन् + एक) “एक” का उलटा है । इसका प्रयोग कम अनिश्चित संख्या के लिए होता है । “अनेक” “कई” प्रायः समानार्थी हैं । उदा०—“अनेक जन्म”, “कई रंग”, इत्यादि । “अनेक” में विविधता के अर्थ में बहुधा “ओं” जोड़ देते हैं; जैसे, “अनेकों रोग”, “अनेकों मनुष्य” इत्यादि ।

(ई) “कई” के साथ बहुधा “एक” आता है । “कई एक” का अर्थ प्रायः “कई प्रकार का” है और उसका पर्यायवाची “नाना” है; जैसे, कई-एक प्राणीण”, “नाना वृक्ष” इत्यादि ।

(५) “अधिक” और “ज्यादा” तुलना में आते हैं; जैसे, “अधिक रुपया”, “ज्यादा दिन”, इत्यादि ।

(६) “कम” “ज्यादा” का उलटा है और इसीके समान तुलना में आता है; जैसे, “हम यह कपड़ा कम दामों में बेचते हैं ।”

(७) “कुछ” अनिश्चय-वाचक सर्वनाम होने के सिवा (अं०—१३३, १५१—३) संख्या का भी योतक है। यह “बहुत” का उलटा है; जैसे, “कुछ लोग”, “कुछ फल”, “कुछ तारे”, इत्यादि ।

(८) “आदि” का अर्थ “और ऐसे ही दूसरे” है। इसका प्रयोग संज्ञा और विशेषण दोनों के समान होता है; जैसे, “आप मेरी देवी और मानुषी आदि सभी आपत्तियों के नाश करनेवाले हैं ।” (रघु०)। “विद्यानुरागिता, उपकारप्रियात, आदि गुण जिसमें सहज हों ।” (सत्य०)। “इस युक्ति से उसको टोपी, रूमाल घड़ी, छड़ी, आदि का बहुधा फायदा हो जाता था ।” (परी०)। “आदि” के पर्याय-वाचक “इत्यादि” और “बगैरह” हैं। “बगैरह” उदू (अरबी) शब्द है; हिंदी में इसका प्रयोग कम होता है। “इत्यादि” का प्रयोग बहुधा किसी विषय के कुछ उदाहरणों के पश्चात् होता है; जैसे, “क्या हुआ, क्या देखा, इत्यादि ।” (भाषा-सार०)। पठन, मनन, धोषणा, इत्यादि सब शब्द यही गवाही देते हैं ।” (इति०)।

स०—“आदि”, “यत्यादि” और “बगैरह” शब्दों का उपयोग बार बार करने से लेखक की असावधानी और अर्थ की अनिश्चय सूचित होता है। एक उदाहरण के पश्चात् आदि, और एक से अधिक के बाद

इत्यादि लाना चाहिए; जैसे, घर आदि की व्यवस्था; कपड़े, भोजन, इत्यादि का प्रबंध ।

(६) “अमुक” का प्रयोग “कोई-एक” (अं०-१३२-३) के अर्थ में होता है; जैसे, “आदमी यह नहीं कहते कि अमुक बात, अमुक राय या अमुक सम्मति निर्दोष है ।” (स्था०) । “अमुक” का पर्यायवाची “फलाना” (उदौ—कलाँ) है ।

(७) “कै” का अर्थ प्रश्नवाचक विशेषण “कितने” के समान है । इसका प्रयोग संज्ञा की नाइ किंचित् होता है; जैसे, “कै लड़के”, “कै आम”, इत्यादि ।

(३) परिमाण-बोधक विशेषण ।

१८५—परिमाण-बोधक विशेषणों में किसी वस्तु की नाप या तौल का बोध होता है; जैसे, और, सब, सारा, समूचा, अधिक (ज्यादा), बहुत, बहुतेरा, कुछ (अल्प, किंचित्, ज्ञारा), कम, थोड़ा, पूरा, अधूरा, यथेष्ट, इत्यादि ।

(अ) इन शब्दों से केवल अनिश्चित परिमाण का बोध होता है; जैसे, “और धी लाखों”, “सब धान”, “सारा कुड़ंच”, “बहुतेरा काम”, “थोड़ी बात”, इत्यादि ।

(आ) ये विशेषण एकवचन संज्ञा के साथ परिमाण-बोधक और बहुवचन संज्ञा के साथ अनिश्चित संख्यावाचक होते हैं; जैसे,

परिमाण-बोधक

अनिश्चित संख्यावाचक

बहुत दूध

बहुत आदमी

सब जंगल

सब पेड़

सारा देश

सारे देश

परिमाण-बोधक	अनिश्चित संख्यावाचक
बहुतेरा काम	बहुतेरे उपाय
पूरा आनंद	पूरे दुकड़े

“अल्प”, “किंचित्” और “जरा” केवल परिमाण-वाचक हैं।

(इ) निश्चित परिमाण बताने के लिए संख्यावाचक विशेषण के साथ परिमाण-बोधक संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है; जैसे, “दो सेर धी,” चार गज मलमल”, “दस हाथ जगह”, इत्यादि ।

(ई) परिमाण-बोधक संज्ञाओं में “ओ” जोड़ने से उनका प्रयोग अनिश्चित-परिमाण-बोधक विशेषणों के समान होता है; जैसे, ढेरों इलायची, मनों धी, गाड़ियों फल, इत्यादि ।

(उ) एक का परिमाण सूचित करने के लिए परिमाण-बोधक संज्ञा के साथ “भर” प्रत्यय जोड़ देते हैं; जैसे,
एक गज कपड़ा = गज-भर कपड़ा ।

एक तोला सोना = तोले-भर सोना ।

एक हाथ जगह = हाथ-भर जगह ।

(ऊ) कोई-कोई परिमाण-बोधक विशेषण एक दूसरे से मिलकर आते हैं; जैसे,

“बहुत-सारा काम”, “बहुत-कुछ आशा”

“थोड़ा-बहुत लाभ,” “कम-ज्यादा आमदनी” ।

(ऋ) “बहुत”, “थोड़ा”, “जरा”, “अधिक” (ज्यादा) के साथ निश्चय के अर्थ में “सा” प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे,

“बहुतसा लाभ”, “थोड़ीसी विद्या”, “जरासी बात”
“अधिकसा बल” ।

(ए) कोई—कोई परिमाणवाचक विशेषण कियाविशेषण भी होते हैं; “नल ने दमयंती को बहुत समझाया ।” (गुटका०) । “यह बात तो कुछ ऐसी बड़ी न थी ।” (शकु०) । “जिनको और सारे पदार्थों की अपेक्षा यश ही अधिक प्यारा है ।” (रघु०) “लकीर और सीधी करो ।” ‘यह सोना थोड़ा खोटा है ।’ “थोड़े” का अर्थ प्रायः “नहीं” के बराबर होता है; जैसे, हम लड़ते “थोड़े हैं ।”

संख्या-वाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति ।

१८६—हिंदी के सब संख्यावाचक विशेषण प्राकृत के द्वारा संरकृत से निकले हैं; जैसे,

सं०	प्रा०	हिं०	सं०	प्रा०	हिं०
एक	एक	एक	विंशति	बीसहै	बीस
द्वि	दुवे	दो	त्रिंशत्	तीसश्चा	तीस
त्रि	तिरिल्ला	तीन	चत्वारिंशत्	चचालीसा	चालीस
चतुर्	चत्तारि	चार	पञ्चाशत्	परण्णासा	पचास
पञ्चम्	पञ्च	पांच	षष्ठि	सट्टि	साठ
पठ्	छ	छः	सप्तसति	सत्तरी	सत्तर
सप्तम्	सत्त	सात	आशीति	आसीहै	आस्ती
अष्टम्	अष्ट	आठ	नवति	नउए	नव्वे
नवम्	नअ	नौ	शत	सश्च	सौ
दशम्	दस	दस	सहस्र	सहस्र	सहस्र

प्रथम	पठमो	पहला	चतुर्थ	चउत्ये	चौथा
द्वितीय	दुइअ	दूसरा	पञ्चम	पंचमो	पाँचवा
तृतीय	तइअ	तीसरा	षष्ठि	छट्ठो	छठा

[टी०—हिंदी के अधिकांश व्याकरणों में विशेषणों के मेद और उपमेद नहीं किये गये । इसका कारण कदाचित् वर्गों-करण के न्याय-सम्मत आधार का अभाव हो । विशेषणों के वर्गों-करण का कारण हम इस अध्याय के आरंभ में (अं०-१४७-८०) लिख आये हैं । इनका वर्गों-करण केवल “भाषातत्त्वदीपिका” में पाया जाता है, इसलिए हम अपने किये हुए मेदों का मिलान इसी पुस्तक में दिये गए मेदों से करते हैं । इस पुस्तक में “संख्या-विशेषण” के पाँच मेद किये गए हैं—(१) संख्यावाचक (२) समूहवाचक (३) क्रमवाचक (४) आवृत्तिवाचक और (५) संख्यावाचक । इनमें “संख्या-विशेषण” और “संख्या-वाचक” एक ही अर्थ के दो नाम हैं जो क्रमशः जाति और उसकी उपजाति को दिये गये हैं । इसमें नामों की गड़बड़ के सिवा कोई लाम नहीं है । फिर “संख्या-वाचक” नाम का जो एक मेद है उसका समावेश “संख्या-वाचक” में हो जाता है, क्योंकि दोनों मेदों के प्रयोग समान है । जिस प्रकार एक, दो, तीन, आदि शब्द वस्तुओं की संख्या सूचित करते हैं उसी प्रकार आधा, पौन, सबा, आदि भी संख्या सूचित करनेवाले हैं । इसके सिवा अनिहित संख्यावाचक विशेषण “भाषा-तत्त्व-दीपिका” में स्वीकार ही नहीं किया गया । उसके कुछ उदाहरण इस पुस्तक में “सामान्य सर्वनाम” के नाम से आये हैं, परंतु उनके विशेषणीभूत प्रयोग का कहीं उल्लेख ही नहीं है । प्रत्येक-घोषक विशेषण के विषय में भी “भाषा-तत्त्वदीपिका” में कुछ नहीं कहा गया । हमने संख्या-वाचक विशेषण के सब मिलाकर सात मेद नीचे लिखे अनुसार किये हैं—

(१५४)

संख्यावाचक				
निश्चित संख्या-वा०	अनिश्चित संख्या-वा०			परिमाण-बो०
गणना-वा० (१)	क्रम-वा० (२)	आकृति-वा० (३)	समुदाय-वा० (४)	प्रत्येक-बो० (५)
पूर्णक-बो० (६)	अपूर्णक-बो० (७)			

यह वर्गीकरण भी विलक्षण निर्दोष नहीं है, परंतु इसमें प्रायः सभी संख्या-वाचक विशेषण आ गये हैं; और रूप तथा अर्थ में एक वर्ग दूसरे से बहुधा भिन्न है।)

चौथा अध्याय ।

क्रिया ।

१८७—जिस विकारी शब्द के प्रयोग से हम किसी वस्तु के विषय में कुछ विधान करते हैं क्रिया कहते हैं; जैसे, “हरिण भागा,” “राजा नगर में आये” “मैं जाऊँगा,” “घास हरी होती है”। पहले वाक्य में हरिण के विषय में “भागा” शब्द के द्वारा विधान किया गया है; इसलिए “भागा” शब्द क्रिया है। इसी प्रकार दूसरे वाक्य में “आये”, तीसरे वाक्य में “जाऊँगा” और चौथे वाक्य में “होती है” शब्द से विधान किया गया है; इसलिए “आये” “जाऊँगा” और “होती है” शब्द क्रिया हैं।

१८—जिस मूल शब्द में विकार होने से क्रिया बनती है उसे धातु कहते हैं; जैसे, "भाग" क्रिया में "आ" प्रत्यय है जो "भाग" मूल शब्द में लगा है; इसलिए "भाग" क्रिया का धातु "भाग" है। इसी तरह "आये" क्रिया का धातु "आ", "जाऊँगा" क्रिया का धातु "जा", और "होती है" क्रिया का धातु "हो" है।

(अ) धातु के अंत में "ना" जोड़ने से जो शब्द बनता है उसे क्रिया का साधारण रूप कहते हैं; जैसे "भाग-ना", "आ-ना", "जा-ना", "हो-ना," इत्यादि। कोई-कोई भूल से इसी साधारण रूप को धातु कहते हैं। कोश में भाग, आ, जा, हो, इत्यादि धातुओं के बदले क्रिया के साधारण रूप, भागना, आना, जाना, होना, इत्यादि लिखने की चाल है।

(आ) क्रिया का साधारण रूप क्रिया नहीं है; क्योंकि उसके उपयोग से हम किसी वस्तु के विषय में विधान नहीं कर सकते। विधि-काल के रूप का छोड़कर क्रिया के साधारण रूप का प्रयोग संज्ञा के समान होता है। कोई कोई इसे क्रियार्थक संज्ञा कहते हैं; यह क्रियार्थक संज्ञा भाव-वाचक संज्ञा के अंतर्गत है। उदा०—"पढ़ना एक गुण है।" "मैं पढ़ना सीखता हूँ।" "छुट्टी में अपना पाठ पढ़ना।" अंतिम वाक्य में "पढ़ना" क्रिया (विधि-काल में) है।

(इ) कई-एक धातुओं का प्रयोग भी भाववाचक संज्ञा के समान होता है, जैसे, "हम नाच नहीं देखते।" "आज घोड़ों की दौड़ हुई।" "तुम्हारी जाँच ठीक नहीं निकली।"

(ई) किसी वस्तु के विषय में विचान करनेवाले शब्दों को क्रिया इसलिए कहते हैं कि अधिकांश धातु जिनसे ये शब्द बनते हैं क्रियावाचक हैं; जैसे, पढ़, लिख, उठ, बैठ, चल, फौंक, काट, इत्यादि । कोई-कोई धातु स्थितिदर्शक हैं, जैसे, सो, गिर, मर, हो, इत्यादि और कोई-कोई विकारदर्शक हैं; जैसे, बन, दिख, निकल, इत्यादि ।

(ठी० — क्रिया के जो लक्षण हिंदी व्याकरणों में दिये गये हैं उनमें से प्राप्त: सभी लक्षणों में क्रिया के अर्थ का विचार क्रिया गया है; जैसे,—“क्रिया काम को कहते हैं ।” अर्थात् “जिस शब्द से करने अथवा होने का अर्थ किसी काल, पुरुष और वचन के साथ पाया जाय ।” (भाषा-प्रभाकर) । व्याकरण में शब्दों के लक्षण और वर्गीकरण के लिए उनके रूप और ग्राहण के साथ कभी-कभी अर्थ का भी विचार क्रिया जाता है; परंतु केवल अर्थ के अनुसार लक्षण करने से विवेचन में गड़बड़ होती है । यदि क्रिया के लक्षण में केवल “करना” या “होना” का विचार क्रिया जाय तो “जाना”, “जाता हुआ” “जानेवाला” आदि शब्दों को भी “क्रिया” कहना पड़ेगा । भाषा-प्रभाकर में दिये हुए लक्षण में जो काल, पुरुष और वचन की विशेषता बताई गई है वह क्रिया का असाधारण घर्म नहीं है और वह लक्षण एक प्रकार का वर्णन है ।

क्रिया का जो लक्षण यहाँ लिखा गया है उस पर भी यह आचेप हो सकता है कि कोई-कोई क्रियाएँ अकेली विचान नहीं कर सकती—जैसे, “राजा दयालु है ।” “पक्षी घोसले बनाते हैं ।” इन उदाहरणों में “है” और “बनाते हैं” क्रियाएँ अकेली विचान नहीं कर सकतीं । इनके साथ क्रमशः “दयालु” और “घोसले” शब्द रखने की आवश्यकता हुई है । इस आचेप का उत्तर यह है कि इन वाक्यों में “है” और “बनाते हैं” विचान करनेवाले मुख्य शब्द हैं [और उनके बिना काम नहीं चल सकता];

चाहे उनके साथ कोई शब्द रहे या न रहे । किया के साथ किसी दूसरे शब्द का रहना या न रहना उसके अर्थ की विशेषता है ।]

१६६—धातु मुख्य दो प्रकार के होते हैं—(१) सकर्मक और (२) अकर्मक ।

१६०—जिस धातु से सूचित होनेवाले व्यापार का फल कर्ता से निकलकर किसी दूसरी वस्तु पर पड़ता है उसे सकर्मक धातु कहते हैं । जैसे, “सिपाही चोर को पकड़ता है ।” ‘नौकर चिट्ठी लाया ।’ पहले वाक्य में “पकड़ता है” किया के व्यापार का फल “सिपाही” कर्ता से निकलकर “चोर” पर पड़ता है; इसलिए “पकड़ता है” किया (अथवा “पकड़” धातु) सकर्मक है; दूसरे वाक्य में “लाया” किया (अथवा “ला” धातु) सकर्मक है; क्योंकि उसका फल “नौकर” कर्ता से निकलकर “चिट्ठी” कर्म पर पड़ता है ।

(अ) कर्ता का अर्थ “करनेवाला” । किया के व्यापार का करनेवाला (प्राणी वा पदार्थी) “कर्ता” कहलाता है । जिस शब्द से इस करनेवाले का बोध होता है उसे भी (व्याकरण में) “कर्ता” कहते हैं; पर यथार्थ में शब्द कर्ता नहीं हो सकता । शब्द को कर्ता-कारक अथवा कर्तृपद कहना चाहिए । जिन क्रियाओं से स्थिति वा विकार का बोध होता है उनका कर्ता वह पदार्थ है जिसकी स्थिति वा विकार के विषय में विधान किया जाता है; “स्त्री चतुर है ।” “मंत्री राजा हो गया ।”

(आ) धातु से सूचित होनेवाले व्यापार का फल कर्ता से निकलकर जिस वस्तु पर पड़ता है उसे कर्म कहते हैं; जैसे, “सिपाही चोर को पकड़ता है ।” “नौकर चिट्ठी लाया ।”

पहले वाक्य में “पकड़ता है” किया का फल कर्ता से निकल करं चोर पर पड़ता है; इसलिए “चोर” कर्म है। दूसरे वाक्य में “लाया” किया का फल चिट्ठी पर पड़ता है; इसलिए “चिट्ठी” कर्म है। “सकर्मक” का अर्थ है “कर्म के सहित” और कर्म के साथ आने ही से “सकर्मक” कहलाती है।

१६१—जिस धातु से सूचित होनेवाला व्यापार और उसका फल कर्ता ही पर पड़े उसे अकर्मक धातु कहते हैं; जैसे; “गाड़ी चली।” “लड़का सोता है।” पहले वाक्य में “चली” किया का व्यापार और उसका फल “गाड़ी” कर्ता ही पर पड़ता है; इसलिए “चली” किया अकर्मक है। दूसरे वाक्य में “सोता है” किया भी अकर्मक है, क्योंकि उसका व्यापार और फल “लड़का” कर्ता ही पर पड़ता है। “अकर्मक” शब्द का अर्थ “कर्म-रहित” और कर्म के न होने ही से किया “अकर्मक” कहाती है।

(अ) “लड़का अपने को सुधार रहा है”—इस वाक्य में यद्यपि किया के व्यापार का फल कर्ता ही पर पड़ता है, तथापि “सुधार रहा है” किया सकर्मक है; क्योंकि इस किया के कर्ता और कर्म एक ही व्यक्ति के वाचक होने पर भी अलग-अलग शब्द हैं। इस वाक्य में “लड़का” कर्ता और “अपने को” कर्म है, यद्यपि ये दोनों शब्द एक ही व्यक्ति के वाचक हैं।

१६२—कोई कोई धातु प्रयोग के अनुसार सकर्मक और अकर्मक दोनों होते हैं; जैसे, सुजलाना, भरना, लजाना, भूलना, चिसना, बदलना, ऐठना, ललचाना, घबराना, इत्यादि। उदाहरण—“मेरे हाथ खुजलाते हैं।” (अ०) । (शक०) । “उसका बदन

खुजलाकर उसकी सेवा करने में उसने कोई कसर नहीं की ।” (स०) । (रघ०) । “खेल-तमाशे की चीजें देखकर भोले भाले आदमियों का जी ललचाता है ।” (अ०) । (परी०) । “ब्राइट अपने असबाब की खरीदारी के लिये मदनमोहन को ललचाता है ।” (स०) । (तथा) । “बूँद बूँद करके तालाब भरता है ।” (अ०) । (कहा०) । “प्यारी ने आँखें भरके कहा ।” (स०) । (शक०) । इनको उभय-विध धातु कहते हैं ।

१६३—जब सकर्मक क्रिया के व्यापार का फल किसी विशेष पदार्थ पर न पड़कर सभी पदार्थों पर पड़ता है तब उसका कर्म प्रकट करने की आवश्यकता नहीं होती; जैसे, “ईश्वर की कृपा से बहरा सुनता है और गूँगा बोलता है ।” “इस पाठशाला में कितने लड़के पढ़ते हैं ?”

१६४—कुछ अकर्मक धातु ऐसे हैं जिनका आशय कभी-कभी अकेले कर्त्ता से पूर्णतया प्रकट नहीं होता । कर्त्ता के विषय में पूर्ण विधान होने के लिए इन धातुओं के साथ कोई संज्ञा या विशेषण आता है । इन क्रियाओं को अपूर्ण अकर्मक क्रिया कहते हैं और जो शब्द इनका आशय पूरा करने के लिए आते हैं उन्हें पूर्ति कहते हैं । “होना,” “रहना,” “बनना,” “दिखना,” “निकलना,” “ठहरना,” इत्यादि अपूर्ण अकर्मक क्रियाएँ हैं । उदा०—“लड़का चतुर है ।” “साधु चोर निकला ।” “नौकर बीमार रहा ।” “आप मेरे मित्र ठहरे ।” “यह मनुष्य विदेशी दिखता है ।” इन वाक्यों में “चतुर”, “चोर”, “बीमार”, आदि शब्द पूर्ति हैं । (अ) पदार्थों के स्वाभाविक धर्म और प्रकृति के नियमों को प्रकट

करने के लिए बहुधा “है” या “होता है” क्रिया के साथ संज्ञा या विशेषण का उपयोग किया जाता है; जैसे, “सोना भारी धातु है।” “बोड़ा चौपाया है।” “चांदी सफेद होती है।” “हाथी के कान बड़े होते हैं।”

(आ) अपूर्ण क्रियाओं से साधारण अर्थ में पूरा आशय भी पाया जाता है; जैसे, “ईश्वर है”, “सबेरा हुआ”, “सूरज निकला”, “गाड़ी दिखाई देती है”, इत्यादि ।

(इ) सकर्मक क्रियाएँ भी एक प्रकार की अपूर्ण क्रियाएँ हैं; क्योंकि उनसे कर्म के बिना पूरा आशय नहीं पाया जाता । तथापि अपूर्ण अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं में यह अंतर है कि अपूर्ण अकर्मक क्रिया की पूर्ति से उसके कर्ता ही की स्थिति वा विकार सूचित होता है और सकर्मक क्रिया की पूर्ति (कर्म) कर्ता से भिन्न होती है; जैसे, “मंत्री राजा बन गया”, “मंत्री ने राजा को बुलाया।” सकर्मक क्रिया की पूर्ति (कर्म) को बहुधा पूरक कहते हैं ।

१६५—देना, बतलाना, कहना, सुनाना और इन्हीं अर्थों के दूसरे कई सकर्मक धातुओं के साथ दो दो कर्म रहते हैं । एक कर्म से बहुधा पदार्थ का बोध होता है और उसे मुख्य कर्म कहते हैं; और दूसरा कर्म जो बहुधा प्राणि-वाचक होता है, गौण कर्म कहलाता है; जैसे, “गुरु ने शिष्य को (गौण कर्म) पोथी (मुख्य कर्म) दी।” “मैं तुम्हे उपाय बताता हूँ।” इत्यादि ।

(अ) गौण कर्म कभी-कभी लुप्त रहता है; जैसे “राजा ने दान दिया।” “प्रंदित कथा सुनाते हैं।”

१६६—कभी-कभी करना, बनाना, समझना, पाना, मानना, आदि सकर्मक धातुओं का आशय कर्म के रहते भी पूरा नहीं होता; इसलिए उनके साथ कोई संज्ञा या विशेषण पूर्ति के रूप में आता है; जैसे, “अहल्याबाई ने गंगाधर को अपना दीवान बनाया।” “मैंने चोर को साधु समझा।” इन क्रियाओं को अपूर्ण सकर्मक क्रियाएँ कहते हैं और इनकी पूर्ति कर्म-पूर्ति कहलाती है। इससे भिन्न अकर्मक अपूर्ण क्रिया की पूर्ति को उद्देश्य-पूर्ति कहते हैं।

(अ) साधारण अर्थ में सकर्मक अपूर्ण क्रियाओं को भी पूर्ति की आवश्यकता नहीं होती; जैसे, “कुम्हार घड़ा बनाता है।” “लड़के पाठ समझते हैं।”

१६७—किसी-किसी अकर्मक और किसी-किसी सकर्मक धातु के साथ उसी धातु से बनी हुई भावबाचक संज्ञा कर्म के समान प्रयुक्त होती है; जैसे, “लड़का अच्छी चाल चलता है।” “सिपाही कई लड़ाइयाँ लड़ा।” “लड़कियाँ खेल रही हैं।” “पक्की अनोखी बोली बोलते हैं।” “किसान ने चोर को बड़ी मार मारी।” इस कर्म को सजातीय कर्म और क्रिया को सजातीय क्रिया कहते हैं।

यौगिक धातु ।

१६८—व्युत्पति के अनुसार धातुओं के दो भेद होते हैं—(१) मूलधातु और (२) यौगिक धातु।

१९९—मूल-धातु वे हैं जो किसी दूसरे शब्द से न बने हों; जैसे, करना, बैठना, चलना, लेना।

२००—जो धातु किसी दूसरे शब्द से बनाये जाते हैं वे यौगिक धातु कहाते हैं; जैसे, “चलाना” से “चलाना”, “रंग” से “रँगना”, “चिकना” से “चिकनाना”, इत्यादि।

(अ) संयुक्त धातु यौगिक धातुओं का एक भेद है।

(स०—जो धातु हिंदी में मूल-धातु माने जाते हैं उनमें बहुत से प्राकृत के द्वाया संस्कृत धातुओं से बने हैं; जैसे, स०—कृ, प्रा०—कर, हि०—कर। स०—भू, प्रा०—हो, हि०—हो। संस्कृत अथवा प्राकृत के धातु चाहे यौगिक हो चाहे मूल, परंतु उनसे निकले हुए हिंदी धातु मूल ही माने जाते हैं; क्योंकि व्याकरण में, दूसरी भाषा से आए हुए शब्दों की मूल व्युत्पत्ति का विचार नहीं किया जाता। यह विषय कोष का है। हिंदी ही के शब्दों से अथवा हिंदी प्रत्ययों के योग से जो धातु बनते हैं उन्हीं को, हिंदी में, यौगिक मानते हैं।)

२०१—यौगिक धातु तीन प्रकार से बनते हैं—(१) धातु में प्रत्यय जोड़ने से सकर्मक तथा प्रेरणार्थक धातु बनते हैं, (२) दूसरे शब्द-भेदों में प्रत्यय जोड़ने से नाम-धातु बनते हैं और (३) एक धातु में एक या दो धातु जोड़ने से संयुक्त धातु बनते हैं।

(स०—यद्यपि यौगिक धातुओं का विवेचन व्युत्पत्ति का विषय है यथापि मुझे जो लिए हम प्रेरणार्थक धातुओं का और नाम-धातुओं का विचार इसी अध्याय में, और संयुक्त धातुओं का विचार किया के रूपांतर-प्रकरण में करेंगे।

(१) प्रेरणार्थक धातु

२०२—मूल धातु के जिस विकृत रूप से किया के व्यापार में कर्त्ता पर किसी की प्रेरणा समझी जाती है उसे प्रेरणार्थक धातु

कहते हैं; जैसे, “बाप लड़के से चिढ़ी लिखवाता है।” इस वाक्य में मूल धातु “लिख” का विकृत रूप “लिखवा” है जिससे जाना जाता है कि लड़का लिखने का व्यापार बाप की प्रेरणा से करता है; इसलिए “लिखवा” प्रेरणार्थक धातु है और “बाप” प्रेरक कर्ता तथा “लड़का” प्रेरित कर्ता है। “मालिक नौकर से गाही चलवाता है।” इस वाक्य में “चलवाता है” प्रेरणार्थक किया, “मालिक” प्रेरक कर्ता और “नौकर” प्रेरित कर्ता है।

२०३—आना, जाना, सकना, होना, रुचना, पाना आदि धातुओं से अन्य प्रकार के धातु नहीं बनते। शेष सब धातुओं से दो दो प्रकार के प्रेरणार्थक धातु बनते हैं, जिनका पहला रूप बहुधा सकर्मक किया ही के अर्थ में आता है और दूसरे रूप से यथार्थ प्रेरणा समझी जाती है; जैसे, गिरता है। “कारीगर घर गिरता है।” “कारीगर नौकर से घर गिरवाता है।” “लोग कथा सुनते हैं।” “पंडित लोगों को कथा सुनाते हैं।” “पंडित शिष्य से श्रोताओं को कथा सुनवाते हैं।”

(अ) सब प्रेरणार्थक कियाएँ सकर्मक होती हैं; जैसे, “दबी बिल्ली चूहों से कान कटाती है।” “लड़के ने कपड़ा सिलवाया।” पीना, खाना, देखना, समझना, देना, सुनना आदि कियाओं के दोनों प्रेरणार्थक रूप द्विकर्मक होते हैं; जैसे “प्यासे को पानी पिलाओ।” “बाप ने लड़के को कहानी सुनाई।” “बचे को रोटी खिलाओ।”

२०४—प्रेरणार्थक कियाओं के बनाने के नियम नीचे दिये जाते हैं—

१—मूल धातु के अंत में “आ” जोड़ने से पहला प्रेरणार्थक और “वा” जोड़ने से दूसरा प्रेरणार्थक रूप बनता है; जैसे,

मू० धा०	प० प्रे०	दू० प्रे०
उठना	उठाना	उठवाना
आटना	आटाना	आटवाना
गिरना	गिराना	गिरवाना
चलना	चलाना	चलवाना
पढ़ना	पढ़ाना	पढ़वाना
फैलना	फैलाना	फैलवाना
सुनना	सुनाना	सुनवाना

(आ) दो अज्ञरों के धातु में ‘ऐ’ वा ‘ओ’ को छोड़कर आदि का अन्य दीर्घ स्वर हस्त हो जाता है; जैसे,

मू० धा०	प० प्रे०	दू० प्रे०
ओढ़ना	उढ़ाना	उढ़वाना
जागना	जगाना	जगवाना
जीतना	जिताना	जितवाना
हूबना	हुबाना	हुबवाना
बोलना	बुलाना	बुलवाना
भीगना	भिगाना	भिगवाना
भूलना	भुलाना	भुलवाना
लेटना	लिटाना	लिटवाना

(१) “हूबना” का रूप “हुबोना” और “भीगना” का रूप “भिगोना” भी होता है।

(२) प्रेरणार्थक रूपों में बोलना का अर्थ बदल जाता है।

(आ) तीन अज्ञर के धातु में पहले प्रेरणार्थक के दूसरे अज्ञर का “अ” अनुच्चरित रहता है; जैसे,

मू० धा०	प० प्र०	दू० प्र०
चमक-ना	चमका-ना	चमकवा-ना
पिघल-ना	पिघला-ना	पिघलवा-ना
बदल-ना	बदला-ना	बदलवा-ना
समझ-ना	সমজা-না	সমজবা-না

२—एकाक्षरी धातु के अंत में “ला” और “लवा” लगाते हैं, और दीर्घ स्वर को हस्त कर देते हैं; जैसे,

खाना	খিলানা	খিলবানা
कूला	ছुलाना	ছুলবানা
देना	দিলানা	দিলবানা
धोना	ধুলানা	ধুলবানা
पीना	পিলানা	পিলবানা
सीना	সিলানা	সিলবানা
सोना	সুলানা	সুলবানা
जीना	জিলানা	জিলবানা

(अ) “खाना” में आद्य स्वर “इ” हो जाता है। इसका एक प्रेरणार्थक “खिलाना” भी है। “खिलाना” अपने अर्थ के अनुसार “खिलना” (ফুলনা) का भी सकर्मक रूप हो सकता है।

(आ) कुछ सकर्मक धातुओं से केवल दूसरे प्रेरणार्थक रूप (१—अ नियम के अनुसार) बनते हैं, जैसे, गाना-गवाना, खेना-खिलाना, खोना-खोआना, बोना-बोआना, लेना-लिलाना, इत्यादि।

३—कुछ धातुओं के पहले प्रेरणार्थक रूप “ला” अथवा “ला” लगाने से बनते हैं, परंतु दूसरे प्रेरणार्थक में “बा” लगाया जाता है; जैसे—

कहना	कहाना वा कहलाना	कहवाना
दिखना	दिखाना वा दिखलाना	दिखवाना
सीखना	सिखाना वा सिखलाना	सिखवाना
सुखना	सुखाना वा सुखलाना	सुखवाना
बैठना	बिठाना वा बिंठलाना	बिठवाना

(अ) “कहना” के पहले प्रेरणार्थिक रूप अपूर्ण अकर्मक भी होते हैं; जैसे, “ऐसे ही सज्जन ग्रन्थकार कहलाते हैं।” “विभक्ति-सहित शब्द पद कहाता है।”

(आ) “कहलाना” के अनुकरण पर दिखाना वा दिखलाना को कुछ लेखक अकर्मक क्रिया के समान उपयोग में लाते हैं, जैसे, “बिना तुम्हारे यहाँ न कोई रक्तक अपना दिखलाता।” (क० क०) यह प्रयोग अशुद्ध है।

(इ) “कहवाना” का रूप “कहलवाना” भी होता है।

(ई) “बैठना” के कई प्रेरणार्थिक रूप होते हैं; जैसे, बैठाना, बैठालना, बिठालना, बैठवाना।

२०५—कुछ धातुओं से बने हुए दोनों प्रेरणार्थिक रूप एकार्थी होते हैं; जैसे,

कटना—कटाना वा कटवाना

खुलना—खुलाना वा खुलवाना

गड़ना—गड़ाना वा गड़वाना

देना—दिलाना वा दिलवाना

बैधना—बैधाना वा बैधवाना

रहना—रखाना वा रखवाना

सिलना—सिलाना वा चिलेवाना

२०६—कोई कोई धातु स्वरूप में प्रेरणार्थिक हैं, परंथार्थीमें

वे मूल अकर्मक (वा सकर्मक) हैं; जैसे, कुम्हलाना, घबराना, मचलाना, इठलाना, इत्यादि ।

(क) कुछ प्रेरणार्थिक धातुओं के मूल रूप प्रचार में नहीं हैं; जैसे, जताना (वा जतलाना) फुसलाना, गँवाना, इत्यादि ।

२७—अकर्मक धातुओं से नीचे लिखे नियमों के अनुसार सकर्मक धातु बनते हैं—

१—धातु के आद्य स्वर को दीर्घी करने से; जैसे,

कटना—काटना	पिसना—पीसना
------------	-------------

दबना—दाबना	लुटना—लूटना
------------	-------------

धूंधना—धौंधना	मरना—मारना
---------------	------------

पिटना—पीटना	पटना—पाटना
-------------	------------

(अ) “सिलना” का सकर्मक रूप “सीना” होता है ।

२—तीन अक्षरों के धातु में दूसरे अक्षर का स्वर दीर्घ होता है; जैसे,
निकलना—निकालना उखड़ना—उखाड़ना
सम्हलना—सम्हालना बिगड़ना—बिगाड़ना

३—किसी किसी धातु के आद्य इ वा उ को गुण करने से; जैसे,
फिरना—फेरना खुलना—खोलना
दिखना—देखना घुलना—घोलना
छिदना—छेदना मुडना—मोडना

४—कई धातुओं के अंत्य ट के स्थान में इ हो जाता है; जैसे,

जुटना—जोड़ना	टूटना—तोड़ना
--------------	--------------

बूटना—छोड़ना	फटना—फाड़ना
--------------	-------------

फूटना—फोड़ना	
--------------	--

(आ) “बिकना” का सकर्मक “बेचना” और “रहना” का “रखना” होता है ।

२०७—कुछ धातुओं का सकर्मक और पहला प्रेरणार्थक रूप अलग-अलग होता है और दोनों में अर्थ का अंतर रहता है; जैसे, “गड़ना” का सकर्मक रूप “गाड़ना” और पहला प्रेरणार्थक “गड़ाना” है। “गाड़ना” का अर्थ “धरती के भीतर रखना” है “गड़ना” का एक अर्थ “चुभाना” भी है। ऐसे ही “दावना” और “दबाना” में अंतर है।

(२) नाम-धातु ।

२०८—धातु को छोड़ दूसरे शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से जो धातु बनाये जाते हैं उन्हें नाम-धातु कहते हैं। ये संज्ञा विशेषण के अंत में “ना” जोड़ने से बनते हैं।

(अ) संस्कृत शब्दों से; जैसे,

उद्धार—उद्धारना, स्वीकार—स्वीकारना (व्यापार में “सकरना”), घिकार—घिकारना, अनुराग—अनुरागना, इत्यादि। इस प्रकार के शब्द कभी-कभी कविता में आते हैं और ये शिष्ट-सम्मति से ही बनाये जाते हैं।

(आ) अरबी, फारसी शब्दों से; जैसे,

गुजर = गुजरना,

खरीद = खरीदना,

बदल = बदलना,

दाग = दागना,

खर्च = खर्चना,

आजमा = आजमाना

फर्मा = फर्माना,

इस प्रकार के शब्द अनुकरण से नये नहीं बनाये जा सकते।

(इ) हिंदी शब्दों से (शब्द के अंत में ‘आ’ करके और आद्य “आ” को हस्त कर के) जैसे,

दुख—दुखाना,

बात—बतियाना, बताना ।

चिकना—चिकनाना,

हाथ—हथियाना ।

अपना—अपनाना, पानी—पनियाना ।
लाठी—लठियाना, रिस—रिसाना ।

विलग—विलगाना ।

इस प्रकार के शब्दों का प्रचार आधिक नहीं है । इनके बदले बहुधा संयुक्त क्रियाओं का उपयोग होता है; जसे, दुखाना—दुख देना; वियाना—बात करना, अलगाना—अलग करना, इत्यादि ।

२१०—किसी पदार्थ की ध्वनि के अनुकरण पर जो धातु बनाये जाते हैं उन्हें अनुकरण-धातु कहते हैं । ये धातु ध्वनि-सूचक शब्द के अंत में “आ” करके “ना” जोड़ने से बनते हैं । जैसे,

बड़बड़—बड़बड़ाना,	खटखट—खटखटाना,
थरथर—थरथराना,	टर्ट—टर्टाना,
मचमच—मचमचाना,	भनभन—भनभनाना ।

(अ) नाम धातु और अनुकरण-धातु अकर्मक और सकर्मक दोनों होते हैं । ये धातु शिष्ट-सम्मति के बिना नहीं बनाये जाते ।

(३) संयुक्त धातु ।

(द०—संयुक्त धातु कुछ कुदंतो (धातु से बने हुए शब्दों) की सहायता से बनाये जाते हैं, इसलिए इनका विवेचन किया के रूपांतर-प्रकरण में किया जायगा ।)

(टी०—हिंदी-व्याकरणों में प्रेरणार्थक धातुओं के संबंध में बड़ी गढ़बड़ है । “हिंदी-व्याकरण” में स्वरांत धातुओं से सकर्मक बनाने का जो सर्वव्यापी नियम दिया है उनमें कई अपवाद हैं; जैसे “बोआना”, “खोआना”, “गँवाना”, “लिखाना”, इत्यादि । लेखक ने इनका विचार ही नहीं किया । फिर उसमें केवल “बुलना”, “चलना” और “दबाना” से दो-दो सकर्मक रूप माने गये हैं; पर हिंदी में इस प्रकार के

धातु अनेक हैं, जैसे, कटना, सुलना, गड़ना, लुटना, पिसना, इत्यादि। यद्यपि इन धातुओं के दो-दो सकर्मक रूप कहे जाते हैं, पर यथार्थ में एक रूप सकर्मक और दूसरा प्रेरणार्थक है, जैसे, सुलना, घोड़ना, खुलाना, कटना-काटना, कटाना, पिसना—पीसना, पिसाना, इत्यादि। “भाषा-भास्तकर” में इन दुहरे रूपों का नाम तक नहीं है। “बालबोध-व्याकरण” में कई-एक प्रेरणार्थक कियाओं के जो रूप दिये गये हैं वे हिंदी में प्रचलित नहीं हैं; जैसे, “सुलाना” (सुलाना), “बोलवाना” (बुलवाना), “बैठलाना” (बिठाना), इत्यादि। “भाषा-चंद्रोदय” में प्रेरणार्थक धातुओं को त्रिकर्मक लिखा है; पर उनका जो एक उदाहरण दिया गया है उसमें लेखक ने यह बात नहीं समझाई और न उसमें एक से अधिक कर्म ही पाये जाते हैं; जैसे, “देवदत्त यशदत्त से पोथी लिवाता है ।”)

दूसरा खंड

अब्द्यय ।

पहला अध्याय ।

क्रिया-विशेषण ।

२१—जिस अब्द्यय से क्रिया की कोई विशेषता जानी जाती है उसे क्रिया-विशेषण कहते हैं; जैसे, यहाँ, बहाँ, जल्दी, धीरे, अभी, बहुत, कम, इत्यादि ।

(स०—“विशेषता” शब्द से स्थान, काल, रीति और परिमाण का अभिप्राय है ।)

(१) क्रिया-विशेषण को अब्द्यय (अविकारी) कहने में दो शंकाएँ हैं—(क) कुछ विभक्त्यंत शब्दों का प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है; जैसे, “अंत में”, इतने पर”, “ध्यान से”, “रात को” इत्यादि । (ख) कई एक क्रिया-विशेषणों में विभक्तियों के द्वारा रूपांतर होता है; जैसे, “यहाँ का”, “कब से”, “आगे को”, “किधर से” इत्यादि ।

इनमें से पहली शंका का उत्तार यह है कि यदि कुछ विभक्त्यंत शब्दों का प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है तो इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि क्रिया-विशेषण अब्द्यय नहीं होते । फिर इन विभक्त्यंत शब्दों के आगे कोई दूसरा विकार भी नहीं होता; इससे इनको भी अब्द्यय मानने में कोई बाधा नहीं है ।

संस्कृत में भी कुछ विभक्त्यंत शब्द (जैसे, सत्यम्, सुखेन, बलात्) क्रिया-विशेषण के समान उपयोग में आते हैं और अव्यय माने जाते हैं। हिंदी में भी कई एक शब्द (जैसे, आगे, पीछे, सामने, सबेरे, इत्यादि) जिन्हें क्रिया-विशेषण और अव्यय मानने में किसी को शंका नहीं होती, यथार्थ में विभक्त्यंत संज्ञाएँ हैं; परंतु उनके प्रत्ययों का लोप हो गया है। दूसरी शंका का समाधान यह है कि जिन क्रिया-विशेषणों में विभक्ति का योग होता है उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। उनमें से कुछ तो सर्वनामों से बने हैं और कुछ संज्ञाएँ हैं जो अधिकरण की विभक्ति का लोप हो जाने से क्रिया-विशेषण के समान उपयोग में आती हैं। फिर उनमें भी केवल संप्रदान, अपादान, संबंध और अधिकरण की एकवचन विभक्तियों का ही योग होता है; जैसे, इधर से, इधर को, इधर का, यहाँ पर, इत्यादि। इसलिए इन उदाहरणों को अपवाद मानकर क्रिया-विशेषणों को अव्यय मानने में कोई दोष नहीं है।

(२) जिस प्रकार क्रिया की विशेषता बतानेवाले शब्दों को क्रिया-विशेषण कहते हैं उसी प्रकार विशेषण और क्रिया-विशेषण की विशेषता बतानेवाले शब्दों को भी क्रिया-विशेषण कहते हैं। ये शब्द बहुधा परिमाण-वाचक क्रिया-विशेषण हैं और कभी-कभी क्रिया की भी विशेषता बतलाते हैं। क्रिया-विशेषण के लक्षण में विशेषण और दूसरे क्रिया-विशेषण की विशेषता बताने का उल्लेख इसलिए नहीं किया गया है कि यह बात सब क्रिया-विशेषणों में नहीं पाई जाती और परिमाणवाचक क्रिया-विशेषणों की संख्या दूसरे क्रिया-विशेषणों की अपेक्षा बहुत कम है। कहीं-कहीं रीति-चालक क्रिया-विशेषण भी विशेषण और दूसरे क्रिया-विशेषण की विशेषता बताते हैं; परंतु वे परोक्ष रूप से परिमाणवाचक ही

हैं; जैसे, “ऐसा सुन्दर बालक” = “इतना सुन्दर बालक !” “गाढ़ी ऐसे धीरे चलती है” = “गाढ़ी इतने धीरे चलती है।

२१२—क्रिया-विशेषणों का वर्गीकरण तीन आधारों पर हो सकता है—(१) प्रयोग, (२) रूप और (३) अर्थ ।

[टी०—क्रिया-विशेषणों का ठीक-ठीक विवेचन करने के लिए उनका वर्गीकरण एक से अधिक आधारों पर करना आवश्यक है; क्योंकि हिंदी में बहुत से क्रिया-विशेषण यौगिक हैं और केवल रूप से उनकी पहचान नहीं हो सकती; जैसे, अन्धा, मन से, इतना, केवल, धीरे इत्यादि । किस कई एक शब्द कभी क्रिया-विशेषण और कभी दूसरे प्रकार के होते हैं; जैसे, “आगे हमने जान लिया ।” (शकु०) । “मानियों के आगे प्राण और घन तो कोई बस्तु ही नहीं है ।” (सत्य०) । “राजा ने ब्राह्मण को आगे से लिया ।” इन उदाहरणों में आगे शब्द कमशः क्रिया-विशेषण, संबंधसूचक और संक्षा है ।]

२१३—प्रयोग के अनुसार क्रिया-विशेषण तीन प्रकार के होते हैं—(१) साधारण, (२) संयोजक और (३) अनुबद्ध ।

(१) जिन क्रिया-विशेषणों का प्रयोग किसी वाक्य में स्वतंत्र होता है उन्हें साधारण क्रिया-विशेषण कहते हैं; जैसे, “हाय ! अब मैं क्या करूँ !” “बेटा, जल्दी आओ ।” “अरे ! वह सौंप कहाँ गया ?” (सत्य०) ।

(२) जिनका संबंध किसी उपवाक्य के साथ रहता है उन्हें संयोजक क्रिया-विशेषण कहते हैं; जैसे, ‘जब रोहिताश ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूँगी ।’ (सत्य०) । “जहाँ अभी समुद्र है वहाँ पर किसी समय जंगल था ।” (सर०) ।

[स०—संयोजक क्रिया-विशेषण—जब, जहाँ, जैसे, ज्यो, जितना

संबंधवाचक सर्वनाम “जो” से बनते हैं और उसी के अनुसार दो उप-वाक्यों को मिलाते हैं। (अं० — १३४)]

(३) अनुबद्ध क्रिया-विशेषण वे हैं जिनका प्रयोग अवधारण के लिए किसी भी शब्द-भेद के साथ हो सकता है; जैसे, “यह तो किसी ने धोखा ही दिया है।” (मुद्रा०) । “मैंने उसे देखा तक नहीं।”, “आपके आने भर की देरी है।”, “अब मैं भी तुम्हारी सखी का बृत्तान्त पूछता हूँ।” (शकु०) ।

२१४—रूप के अनुसार क्रिया-विशेषण तीन प्रकार के होते हैं—(१) मूल, (२) यौगिक और (३) स्थानीय ।

२१५—जो क्रिया-विशेषण किसी दूसरे शब्द से नहीं बनते वे मूल क्रिया-विशेषण कहलाते हैं, जैसे, ठीक, दूर, अचानक, फिर, नहीं, इत्यादि ।

२१६—जो क्रिया-विशेषण दूसरे शब्दों में प्रत्यय वा शब्द जोड़ने से बनते हैं उन्हें यौगिक क्रिया-विशेषण कहते हैं । वे नीचे लिखे शब्द-भेदों से बनते हैं—

(अ) संज्ञा से; जैसे, सबेरे, मन से, क्रमशः, आगे, रात को, प्रेम-पूर्वक, दिन-भर, रात-तक, इत्यादि ।

(आ) सर्वनाम से; जैसे, यहाँ, वहाँ, अब, जब, जिससे, इसलिए तिस पर, इत्यादि ।

(इ) विशेषण से; जैसे, धीरे, चुपके, भूल से; इतने में, सहज में, पहले, दूसरे, ऐसे, वैसे, इत्यादि ।

(ई) धातु से, जैसे, आते, करते, देखते हुए, चाहे, लिये, मानो, बैठे हुए, इत्यादि ।

(उ) अव्यय से; जैसे, यहाँ तक, कब का, ऊपर को, भट से, वहाँ पर, इत्यादि ।

- (ऊ) क्रिया-विशेषणों के साथ निश्चय जानने के लिए बहुधाँ हैं वा ही लगाते हैं; जैसे, अब-अभी, यहाँ-यहाँ, आते-आतेही, पहले—पहलेही, इत्यादि ।
- २१७—संयुक्त क्रिया-विशेषण नीचे लिखे शब्दों के मेल से बनते हैं—
- (अ) संज्ञाओं की द्विरुक्ति से ; घर-घर, घड़ी-घड़ी, बीचो-बीच, हाथों-हाथ, इत्यादि ।
- (आ) दो भिन्न भिन्न संज्ञाओं के मेल से ; जैसे, रात-दिन, सांझ-सबेरे, घर-बाहर, देश-विदेश, इत्यादि ।
- (इ) विशेषणों की द्विरुक्ति से ; जैसे, एका-एक, ठीक-ठीक, साफ-साफ, इत्यादि ।
- (ई) क्रिया-विशेषणों की द्विरुक्ति से ; जैसे, धीरे-धीरे, जहाँ-जहाँ, कब-कब, कहाँ-कहाँ, बकते-बकते, बैठे-बैठे, पहले-पहल, इत्यादि ।
- (उ) दो भिन्न भिन्न क्रिया-विशेषणों के मेल से जैसे, जहाँ-तहाँ, जहाँ-कहीं, जब-तब, जब-कभी, कल-परसों, तले-ऊपर, आस-पास, आमने-सामने, इत्यादि ।
- (ऊ) दो समान अथवा असमान क्रिया-विशेषणों के बीच में 'न' रखने से ; जैसे, कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं, कुछ-न-कुछ इत्यादि ।
- (ऋ) अनुकरणवाचक शब्दों की द्विरुक्ति से ; जैसे, गटगट, तड़तड़, सटासट, घड़ाघड़, इत्यादि ।
- (ए) संज्ञा और विशेषण के मेल से ; जैसे, एक-साथ, एक-बार, दो-बार, हर-घड़ी, जबरदस्ती, लगातार, इत्यादि ।

(ऐ) अव्यय और दूसरे शब्दों के मेल से; जैसे, प्रतिदिन, यथाक्रम, अनजाने, सदेह, वे-कायदा, आजन्म, इत्यादि ।

(ओ) पूर्वकालिक कुदंत (करके) और विशेषण के मेल से; जैसे, मुख्य-हरके, विशेष-हरके, बहुत-हरके, एक-एक-करके, इत्यादि ।

२१८—दूसरे शब्द-भेद जो बिना किसी रूपांतर के क्रियाविशेषण के समान उपयोग में आते हैं उन्हें स्थानीय क्रिया-विशेषण कहते हैं । ये शब्द किसी विशेष स्थान ही में क्रिया-विशेषण होते हैं; जैसे,

(अ) संझा—“तुम मेरी मदद पत्थर करोगे !” “वह अपना सिर पढ़ेगा !”

(आ) सर्वनाम—“लीजिये महाराज, मैं यह चला !” (मुद्रा०) ।

“कोतवाल जी तो वे आते हैं ।” (शकु०) “हिंसक जीव मुझे क्या मारेंगे !” (रघु०) । “तुम्हें यह बात कौन कठिन है ?” इत्यादि ।

(इ) विशेषण—“बो सुंदर सीती है ।” “मनुष्य उदास बैठा है ।” “लड़का कैसा कूदा ।” “सब लोग सोये पढ़े ये ।” “चोर पकड़ा हुआ आया ।” “हमने इतना पुकारा ।” (सत्य०) । इत्यादि ।

(ई) पूर्वकालिक कुदंत—“तुम दौड़कर चलते हो ।” “लड़का उठकर भागा ।” इत्यादि ।

२१९—हिंदी में कई एक संस्कृत और कुछ चर्दू क्रियाविशेषण भी आते हैं । ये शब्द तत्सम और तद्वच दोनों प्रकार के होते हैं ।

(१) संस्कृत क्रियाविशेषण ।

तत्सम—अकस्मात्, अन्यत्र, कदाचित्, प्रायः, बहुधा, पुनः, वृथा, व्यर्थी, वस्तुतः, सम्प्रति, शनैः, सहसा, सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा, साज्ञात्, इत्यादि ।

तद्धव—आज (सं०—अद्य), कल (सं०—कल्य), परसों (सं०—परश्व), वारंवार (सं०—वारं वारं), आगे (सं०—अप्रे), साथ (सं०—सार्थम्), सामने (सं०—सम्मुखम्), सतत (सं०—सततम्), इत्यादि ।

(२) उर्दू क्रियाविशेषण ।

तत्सम—शायद, जरूर, चिलकुल, अकसर, कौरन, बाला-बाला, इत्यादि ।

तद्धव—हमेशा (फा०—हमेशह), सही (अ०—सहीह) नगीच (फा०—नज़्दीक), जल्दी (फा०—जल्द), खूब (फा०—खूब), आखिर (अ०—आखिर), इत्यादि ।

२१०—अर्थ के अनुसार क्रियाविशेषणों के नीचे लिखे चार भेद होते हैं—

(१) संख्यावाचक, (२) कालवाचक, (३) परिमाणवाचक और (४) रीतिवाचक ।

२२१—स्थानवाचक क्रियाविशेषण के दो भेद हैं—(१) स्थितिवाचक और (२) दिशावाचक ।

(१) स्थितिवाचक—

यहाँ, वहाँ, जहाँ, कहाँ, तहाँ, आगे, पीछे,ऊपर, नीचे, तले, सामने, साथ, बाहर, भीतर, पास (निकट, समीप), सर्वत्र, अन्यत्र, इत्यादि ।

(२) दिशावाचक—इधर, उधर, किधर, जिधर, तिधर, दूर, परे, अलग; दाहिने, बाएँ, आरपार, इस तरफ, उस जगह, चारों ओर, इत्यादि ।

२२२—कालवाचक क्रियाविशेषण तीन प्रकार के होते हैं—

(१) समयवाचक, (२) अवधिवाचक, (३) पौनःपुन्यवाचक ।

(१) समयवाचक—

आज, कल, परसों, तरसों, नरसों, अब, जब, कब, तब, अभी, कभी, जभी, तभी, फिर, तुरंत, पबेरे, पहले, पीछे, प्रथम, निदान, आखिर, इतने में, इत्यादि ।

(२) अवधिवाचक—

आजकल, नित्य, सदा, सतत (कविता में), निरंतर, अवधारक, कभी कभी, कभी न कभी, अब भी, लगातार, दिन भर, कब का, इतनी देर, इत्यादि ।

(२) पौनःपुन्यवाचक—

बार-बार (बारंबार), बहुधा (अकसर), प्रतिदिन (हररोज), घड़ी-घड़ी, कई बार, पहले—फिर, एक—दूसरे—तीसरे—इत्यादि, हरबार, हरदफे, इत्यादि ।

२२३—परिमाणवाचक क्रियाविशेषणों से अनिवित संख्या या परिमाण का बोध होता है । इनके ये भेद हैं—

(अ) अधिकतावोधक—बहुत, अति, बड़ा, भारी, बहुतायत से, बिलकुल, सर्वथा, निरा, खूब, पूर्णतया, निपट, अत्यंत, अतिशय, इत्यादि ।

(आ) न्यूनतावोधक—कुछ, लगभग, थोड़ा, डुक, प्रायः, जरा, किंचित्, इत्यादि ।

(इ) पर्याप्तिवाचक—केवल, वस, काफी, यथेष्ट, चाहे, बराबर, ठीक, अस्तु, इति, इत्यादि ।

(ई) तुलना-वाचक—अधिक, कम, इतना, उतना, जितना, कितना बढ़कर, और, इत्यादि ।

(उ) श्रेणीवाचक—थोड़ा-थोड़ा, कम-कम से, बारी-बारी से, तिल-तिल, एक-एक-करके, यथाक्रम, इत्यादि ।

२२४—रीतिवाचक किया-विशेषणों की संख्या गुणवाचक विशेषणों के समान अनंत है । किया-विशेषणों के न्यायसम्मत वर्गीकरण में कठिनाई होने के कारण, इस वर्ग में उन सब किया-विशेषणों का समावेश किया जाता है । जिनका अन्तर्भूत पहले कहे हुए वर्गों में नहीं हुआ है । रीतिवाचक किया-विशेषण नीचे लिखे हुए अर्थों में आते हैं—

(अ) प्रकार—ऐसे, वसे, कैसे, जैसे-तैसे, मानों, यथा-तथा, धीरे, अचानक, सहसा, अनायास, वृथा, सहज, साज्जात्, सेंत, सेंतमेंत, योंही, हौले, पैदल, जैसे-तैसे, स्वयं, स्वतः, परंत्पर, आपही आप, एक-साथ, एकाएक, मन से, ध्यान-पूर्वक, सदैह, सुखेन, रीत्यनुसार, क्योंकर, यथाशक्ति, हँसकर, फटाफट, तड़तड़, फटसे, उलटा, येन-केन-प्रकारेण, अक्सात, किम्बहुना, प्रत्युत ।

(आ) निश्चय—अवश्य, सही, सचमुच, निःसंदेह, बेशक, जरूर अलवत्ता, मुख्य-करके, विशेष-करके, यथार्थ में, बस्तुतः; दर-असल ।

(इ) अनिश्चय—कदाचित् (शायद), बहुत करके, यथा-संभव ।

(ई) स्वीकार—हाँ, जी, ठीक, सच ।

(उ) कारण—इसलिए, क्यों, काहे को ।

(ऊ) निषेध—न, नहीं, मत ।

(ऋ) अवधारणा—तो, ही, भी, मात्र, भर, तक, सा ।

२२५—यौगिक क्रियाविशेषण दूसरे शब्दों में नीचे लिखे शब्द अथवा प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं—

संस्कृत क्रियाविशेषण ।

पूर्वक—ध्यान-पूर्वक, प्रेम-पूर्वक, इत्यादि ।

वश—विधि-वश, भय-वश ।

इन (आ)—सुखेन, येन-केन-प्रकारेण, मनसा-वाचा-कर्मणा ।

या—कृपया, विशेषतया ।

अनुसार—रीत्यनुसार, शक्त्यनुसार ।

तः—स्वभावतः, वस्तुतः, स्वतः ।

दा—सर्वदा, सदा, यदा, कदा ।

धा—बहुधा, शतधा, नवधा ।

शः—क्रमशः, अन्तरशः ।

त्र—एकत्र, सर्वत्र, अन्यत्र ।

था—सर्वथा, अन्यथा ।

वत्—पूर्ववत्, तद्वत् ।

चित्—कदाचित्, किंचित्, कचित् ।

मात्र—पल-मात्र, नाम-मात्र, लेश-मात्र ।

(२) हिंदी क्रियाविशेषण ।

ता, ते—दौड़ता, करता, खोलता, चलते, आते, मारते ।

आ, ए—बैठा, भागा, लिए, उठाए, बैठे, चढ़े ।

को—इधर को, दिन को, रात को, अंत को ।

से—धर्म से, मन से, प्रेम से, इधर से, तब से ।

में—संज्ञेप में, इतने में, अंत में ।

का—सबेरे का, कब का ।

तक—आज तक, यहाँ तक, रात तक, घर तक ।

कर, करके—दौड़कर, उठकर, देखकर के, धर्म करके, भक्ति करके, क्योंकर ।

भर—रातभर, पलभर, दिनभर ।

(अ) नीचे लिखे प्रत्ययों और शब्दों से सार्वनामिक क्रियाविशेषण बनते हैं—

ए—ऐसे, कैसे, जैसे, वैसे, तैसे, थोड़े ।

हाँ—यहाँ, वहाँ, कहाँ, जहाँ, तहाँ ।

धर—इधर, उधर, जिधर, तिधर ।

यो—यों, त्यों, डयों, क्यों ।

लिए—इसलिए, जिसलिए, किसलिए ।

ब—अब, तब, कब, जब ।

(३) उद्दू क्रियाविशेषण ।

अन—जागरन, फौरन, मसलन, इत्यादि ।

२२६—सामासिक क्रियाविशेषण अर्थात् अव्ययीभाव समासों का कुछ विचार व्युत्पत्ति-प्रकरण में किया जायगा । यहाँ उनके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) संस्कृत अव्ययीभाव समाप्त ।

प्रति—प्रतिदिन, प्रतिपल, प्रत्यक्ष ।

यथा—यथाशक्ति, यथाक्रम, यथासंभव ।

निः—निःसंदेह, निर्भय, निःशंक ।

यावत्—यावज्जीवन ।

आ—आजन्म, आमरण ।

सम्—समक्ष, सम्मुख ।

स—सदेह, सपरिवार ।

अ, अन्—अकारण, अनायास ।

वि—व्यर्थ, विशेष ।

(२) हिंदी अव्ययीभाव समाप्ति ।

अन—अनजाने, अनपूछे ।

नि—निधङ्क, निहर ।

(३) उर्दू अव्ययीभाव समाप्ति ।

हर—हररोञ्ज, हरसाल, हरबक्त ।

दर—दरअसल, दरहङ्कीकत ।

ब—बज़िंस, बदस्तूर ।

वे—वेकार, वेकायदा, वेशक, वेतरह, वेहद ।

(४) मिश्रित अव्ययीभाव समाप्ति ।

हर—हरघड़ी, हरदिन, हरजगह ।

वे—वेकाम, वेसुर ।

२७—कुछ क्रियाविशेषणों के विशेष अर्थों और प्रयोगों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

अब, अभी—यद्यपि इनका अर्थी वर्तमान काल का है, तो भी ये 'तब' और 'तभी' के समान बहुधा भूत और भविष्यत कालों में भी आते हैं; जैसे, "अब एक नई घटना हुई ।" "वे अब वहाँ न जायेंगे ।" "अभी पौ भी नहीं फट्टी थी कि सेना ने नगर घेर लिया ।" "हम अभी जायेंगे ।"

परसों, कल—इनका प्रयोग भूत और भविष्य दोनों कालों में होता है। इसकी पहचान किया के रूप से होती है; जैसे, "लड़का कल आया और परसों जायगा ।"

आगे, पीछे, पास, दूर—ये और इनके समानार्थी स्थान-वाचक कियाविशेषण कालवाचक भी हैं; जैसे, “आगे राम अनुज पुनि पाछे !” (राम०) । (स्थान०) । “आगे पीछे सब चल बसेंगे !” (कहा०) । (काल०) ! “गाँव पास है या दूर ?” (स्थान०) । “दिवाली पास आ गई !” “विवाह” का समय अभी दूर है । (काल०) । ‘आगे’ का कालवाचक अर्थ कभी-कभी ‘पीछे’ के साथ बदल जाता है; जैसे, “ये सब बातें जान पड़ेंगी आगे ।” (सर०) । (पीछे) ।

तब, फिर—इनका प्रयोग बहुधा भूत और भविष्यत् कालों में होता है। भाषा-रचना में ‘तब’ की द्विनक्ति मिटाने के लिए उसके बदले बहुधा ‘फिर’ की योजना करते हैं; जैसे, तब (मैंने) समझा कि इसके भीतर कोई अभागा बंद है। फिर जो कुछ हुआ सो आप जानते ही हैं। (विचित्र०) । कभी-कभी ‘तब’ और ‘फिर’ एक ही अर्थ में साथ साथ आते हैं; जैसे, “तब फिर आप क्या करेंगे ?”

कहीं-कहीं “तब” का प्रयोग पूर्वकालिक कृदन्त (अं० ३८०) के पश्चात् योंही कर दिया जाता है; जैसे, “सबेरे स्नान और पूजन करके तब भोजन करना चाहिए ।”

कभी—इससे अनिश्चित काल का बोध होता है; जैसे, “हमसे कभी मिलना ।” “कभी” और “कदापि” का प्रयोग बहुधा निषेध-वाचक शब्दों के साथ होता है; जैसे, “ऐसा काम कभी मत करना ।” “मैं वहाँ कदापि न जाऊँगा ।” दो या अधिक

बाक्यों में “कभी” में क्रमागत काल का बोध होता है; जैसे, “कभी नाव गाढ़ी पर, कभी गाढ़ी नाव पर !” “कभी सुष्ठी-भर चना, कभी वह भी मना !” “कभी” का प्रयोग आश्रय वा तिरस्कार में भी होता है; जैसे, “तुमने कभी कलकत्ता देखा था !”

कहाँ—दो अलग-अलग बाक्यों में ‘कहाँ’ से बड़ा अंतर सूचित होता है, जैसे, “कहाँ कुँभज कहाँ सिंधु अपारा !” (राम०)। “कहाँ राजा भोज कहाँ गंगा तेली !”

कहाँ—अनिश्चित स्थान के अर्थ के सिवा यह “अत्यंत” और “कदाचित्” के अर्थ में भी आता है; जैसे, “पर मुझे से वह कहाँ सुखी है !” (हिंदी ग्रंथ०)। “सखी ने व्याह की बात कहाँ हँसी से न कही हो !” (शकु०)। अलग अलग बाक्यों में “कहाँ” से विरोध सूचित होता; जैसे, “कहाँ धूप, कहाँ छाया !” “कहाँ शरीर आधा जला है, कहाँ बिलकुल कथा है !” (सत्य०)। आश्रय में “कहाँ” का प्रयोग “कभी” के समान होता है; “कहाँ दूबे तिरे है !” “पथर भी कहाँ पसीजता है !”

परे—इसका प्रयोग बहुधा तिरस्कार में होता है, जैसे, “परे हो !” “परे हट !”

इधर-उधर (यहाँ)—वहाँ—इन दुहरे क्रियाविशेषणों से विचित्रता का बोध होता है; जैसे, “इधर तो तपस्वियों का काम, उधर बड़ों की आङ्गा !” (शकु०)। “सुत-सनेह इत बचन उत,

संकट परेड नरेश !” (राम०) : “तुम यहाँ यह भी कहते हो,
वहाँ वह भी कहते हो !”

योही—ऐसे ही, वैसे ही—इनका अर्थ ‘अकारण’ अथवा
“सेतमेत” है; जैसे, “यह पुस्तक सुनके वैसे ही मिली ।” “लड़का”
योही किरा करता है ।” “वह ऐसे ही रोता है ।”

जब तक—यह बहुधा निषेधवाचक वाक्य में आता है; जैसे,
“जब तक मैं न आऊँ तुम यहाँ रहना ।”

तब तक—इसका अर्थ भी कभी कभी “इतने में” होता है;
जैसे, “ये दुख तो ये ही, तब तक एक नया घाव और हुआ ।”
(शक०) ।

जहाँ—इसका अर्थ कभी कभी “जब” होता है; जैसे, “जहाँ
अस दशा जड़न की बरनी । को कहि सकै सचेतन करनी ।”
(राम०) ।

जहाँ-तक—इसका अर्थ बहुधा परिमाणवाचक होता है; जैसे,
“जहाँ तक हो सके, टेढ़ी गलियाँ सीधी कर दी जावें ।”

“यहाँ तक” और “कहाँ तक” भी परिमाणवाचक होते हैं;
जैसे, “करूँ कहाँ तक वर्णन उसकी अतुल दया का भाव ।”
(एकांत०) । “एक साल ब्यापार में टोटा पड़ा यहाँ तक कि
उनका घर द्वार, सब जाता रहा ।” “यहाँ तक” बहुधा “कि” के
साथ ही आता है ।

कब का—इसका अर्थ “बहुत समय से” है। इसका लिंग
और वचन कर्ता के अनुसार बदलता है, जैसे, “माँ कब की

पुकार रही है।” (सत्य०) । “कथ को टेरत दीन रटि।”
(सत०) ।

क्योंकर—इसका अर्थ “कैसे” होता है, जैसे, “यह काम
क्योंकर होगा ?” “ये गड़े क्योंकर पड़ गये ?” (गुटका०) ।

इसलिए—यह कभी क्रियाविशेषण और कभी समुच्चय-
बोधक होता है; जैसे, “वह इसलिए नहाता है कि प्रहण लगा
है।” (क्रि०-वि०) । “तू दुर्दशा में है, इसलिए मैं तुमें दान
दिया चाहता हूँ।” (स०-बो०) ।

न, नहीं, मत—‘न’ स्वतंत्र शब्द है, इसलिए वह शब्द और
प्रत्यय के बीच में नहीं आ सकता। “देशोपालंभ” नामक कविता
में कवि ने सामान्य भविष्यत के प्रत्यय के पहले “न” लगा दिया
है; जैसे, “लावो न गे बचन जो मन में हमारा।” यह प्रयोग
दृष्टित है। जिन क्रियाओं के साथ “न” और “नहीं” ढाँचों आ
सकते हैं, वहाँ “न” से केवल निषेद्ध और “नहीं” से निषेद्ध का
निश्चय स्वचित होता है; जैसे, “वह न आया”, “वह नहीं आया।”
“मैं न जाऊँगा,” “मैं नहीं जाऊँगा।” “न” प्रश्नवाचक अव्यय
भी है; जैसे, “सब करेगा न ?” (सत्य०) । ‘न’ कभी कभी निश्चय
के अर्थ में आता है। जैसे, “मैं तुमें अभी देखता हूँ न।”
(सत्य०) । न—न समुच्चयबोधक होते हैं; जैसे, “न उन्हें नींद
आती थी न भूख-प्यास लगती थी।” (प्रेम०) । प्रश्न के उत्तर
में ‘नहीं’ आता है; जैसे, तुमने उसे रुपया दिया था ? नहीं।
कविता में बहुधा “नहीं” के बदले “न” का प्रयोग कर देते हैं; पर
यह भूल है; जैसे, “लिखा मुझे न आता है।” (सर०) । “मत”
का उपयोग निषेद्धात्मक आज्ञा में होता है जैसे, “अब मत

बको” (अं०—६००) । पुरानी कविता में बहुधा “मत” के बदले “न” आता है; जैसे, दीरघ सौंस न लेहि दुख, सुख साईहि न भूल । (सत०) ।

केवल——वह अर्थ के अनुसार कभी विशेषण, कभी क्रियाविशेषण और कभी समुच्चयबोधक होता है; जैसे, “रामहिं केवल प्रेम पियारा ।” (राम०) । “लङ्का केवल चिल्लाता है ।” “केवल एक तुम्हारी आशा प्राणों को अटकाती है ।”—(क० क०) ।

बहुधा, प्रायः—ये शब्द सर्वव्यापक विधानों को परिमित करने के लिए आते हैं। “बहुधा” से जितनी परिमिति होती है उसका अपेक्षा “प्रायः” से कम होती है; जैसे, “वे सब बहुधा बलवान शत्रुओं से सब तरफ विरे रहते थे ।” (स्वा०) । “इसमें प्रायः सब शांक चंडकौशिक से उद्धृत किये गये हैं ।” (सत्य०) ।

तो——इससे निश्चय और आग्रह सूचित होता है। यह किसी भी शब्द-भेद के साथ आ सकता है; जैसे, “तुम वहाँ गये तो थे ।” “किताब तुम्हारे पास तो थी ।” इसके साथ “नहीं” और “भी” आते हैं; और ये संयुक्त शब्द (“नहीं तो,” “तो भी”) समुच्चय बोधक होते हैं। (अं०—२४४-५) “यदि” के साथ दूसरे वाक्य में आकर “तो” समुच्चय बोधक होता है; जैसे, “यदि ठंड न लगे तो यह हवा बहुत दूर चली जाती है ।”

ही——यह भी “तो” के समान किसी भी शब्द-भेद के साथ आकर निश्चय सूचित करता है। कहीं-कहीं यह पहले शब्द के साथ संयोग के द्वारा मिल जाता है; जैसे, अब + ही = अभी, कब + ही = कभी, तुम + ही = तुम्ही, सब + ही = सभी, किस +

ही = किसी । उदा०—“एक ही दिन में,” “दिन ही में,” “दिन में ही,” “पास ही “आ ही गया,” “जाता ही था ।” न, तो और ही समान शब्दों के बीच भी आते हैं, जैसे, “एक न एक,” “कोई न कोई,” “कभी न कभी,” “बात ही बात में,” “पास ही पास,” “आते ही आते,” “लड़का गया तो गया ही गया,” “दाग तो दाग, पर ये गढ़े क्योंकर पंड गये ?” (गुटका०) । “ही” सामान्य भविष्यत्-काल के प्रत्यय के पहले भी लगा दिया जाता है; जैसे, “हम अपना धर्म तो प्राण रहे तक निवाहें—ही-गे ।” (नील०) ।

मात्र, भर, तक—ये शब्द कभी—कभी संज्ञाओं के साथ प्रत्ययों के रूप में आकर उन्हें क्रियाविशेषण-वाक्यांश बना देते हैं । (अं०—२२५) । इस प्रयोग के कारण कोई-कोई इनकी गिनती संबंध-सूचकों में करते हैं । कभी—कभी इनका प्रयोग दूसरे ही अर्थों में होता है—

- (अ) “मात्र” संज्ञा और विशेषण के साथ “ही” (केवल) के अर्थ में आता है, जैसे, “एक लज्जा मात्र बची है ।” (सत्य०) । “राम मात्र लघु नाम इमारा ।” (राम०) । “एक साधन मात्र आपका शरीर ही अब अवशिष्ट है ।” (रघु०) । कभी—कभी “मात्र” का अर्थ “सब” होता है, “शिवजी ने साधन मात्र को कील दिया है ।” (सत्य०) । “हिंदी—भाषा—भाषी मात्र उनके चिर-कृतज्ञ भी रहेंगे ।” (विभक्ति०) ।

(आ) “भर” परिमाणवाचक संज्ञाओं के साथ आकर विशेषण होता है, जैसे, “सेर-भर धी,” “मुढ़ी भर अनाज,” “कटोरे भर खून,” इत्यादि । कभी कभी यह “मात्र” के समान “सब” के अर्थ में होता है, जैसे, “मेरी अमलदारी भर में जहाँ जहाँ सइक हैं ।” (गुटका०) । “कोई उसके राज्य भर में भूखा न सोता ।” (तथा) । कहीं कहीं इसका अर्थ “केवल” होता है, जैसे, “मेरे पास कपड़ा भर है ।” “उतना भर में उसे फिर देक़ूँगा ।” “नौकर लड़के के साथ भर रहा है ।”

(इ) “तक” अधिकता के अर्थ में आता है, जैसे, “कितनी ही पुस्तकों का अनुबाद तो अँगरेजी तक में हो गया है ।” “बंग-देश में कमिशनर तक अपनी भाषा में पुस्तकशृंचना करते हैं ।” (सर०) । इस अर्थ में यह प्रत्यय बहुधा “भी” (समुच्चय बोधक) का पर्यायवाचक होता है । कभी-कभी यह “सीमा” के अर्थ में आता है, जैसे, “इस काम के दस रुपये तक मिल सकते हैं ।” “बालक से लेकर बृद्ध तक यह बात जानते हैं ।” “बंवाई तक के सौदागर यहाँ आते हैं ।” निषेधार्थक वाक्यों में “तक” का अर्थ बहुधा “ही” होता है, जैसे, “मैंने उसे देखा तक नहीं है ।” “ये लोग हिंदी में चिढ़ी तक नहीं लिखते ।”

भी—यह शब्द अर्थ में “ही” के विरुद्ध है और “तक” के समान अधिकता के अर्थ में आता है; जैसे, “यह भी देखा, वह भी देखा ।” (कहा०) । दो वाक्यों या शब्दों के बीच में और रहने पर इससे अवधारणा का बोध होता है; जैसे, “मैंने उसे देखा और

बुलाया भी ।” कहीं—कहीं “भी” अवधारणा-बोधक होता है; जैसे, “इस काम को कोई भी कर सकता है” कभी—कभी इस से आश्र्य वा संदेह सूचित होता है; जैसे, “तुम वहाँ गये भी थे ।” “पथर भी कहीं पसीजदा है ।” कहीं—कहीं इससे आग्रह का बोध होता है; जैसे, “उठो भी ।” “तुम वहाँ जाओगी भी ।”

सा—पूर्वोक्त अठ्ययों के समान यह शब्द भी कभी प्रत्यय, कभी संवंध सूचक और कभी क्रियाविशेषण होकर आता है। यह किसी भी विकारी शब्द के साथ लगा दिया जाता है, जैसे, फूलसा शरीर, मुक्खसा दुखिया, कौनसा मनुष्य, कियों का सा बोल, अपना सा कुटिल हृदय, मृगसा चंचल। गुणवाचक विशेषणों के साथ यह हीनता सूचित करता है, जैसे, कालासा कपड़ा, कंचीसी दीवार, अच्छासा नौकर, इत्यादि। परिमाणवाचक विशेषणों के साथ यह अवधारणा-बोधक होता है, जैसे, बहुतसा धन, थोड़े से कपड़े, जरासी बात, इत्यादि। इस प्रत्यय का रूप (सा-से-सी) विशेष्य के लिंगवचनानुसार बदलता है। कभी—कभी यह संज्ञा के साथ केवल हीनता सूचित करता है, जैसे, “बन में विद्या सी छाई जाती है ।” (शक०)। “एक जोत सी उतरी चली आती है ।” (गुटका०)। “जल—कण इतने अधिक उड़ते हैं कि भुआँ सा दिखाई देता है ।”

अथ, इति—ये अठ्यय क्रमशः पुस्तक वा उसके खंड अथवा कथा के आरंभ और अंत में आते हैं। जैसे, “अब कथा आरंभ ।” (प्रेम०)। “इति प्रस्तावना ।” (सत्य०)। “अथ”, का प्रयोग आजकल घट रहा है, परंतु पुस्तकों के अंत में बहुधा “इति,” (अथवा “सम्पूर्ण,” “समाप्त” व संस्कृत “समाप्तम्”)

लिखा जाता है। “इत्यादि” शब्द में “इति” और “आदि” का संयोग है। “इति” कभी-कभी संहा के समान आता है और उसके साथ बहुधा “आ” जोड़ देते हैं, जैसे, “इस काम की इतिश्री हो गई।” राम-चरित-मानस में एक जगह “इति” का प्रयोग संस्कृत की चाल पर स्वरूपवाचक समुद्दयबोधक के समान हुआ है; जैसे, “सोहमस्मि इति वृत्त अखंडा।”

२२८—अब कुछ संयुक्त और द्विरुक्त क्रियाविशेषणों के अर्थों और प्रयोगों के विषय में लिखा जाता है।

कभी-कभी — बीच बीच में—कुछ कुछ दिनों में, जैसे, “कभी-कभी इस दुखिया की भी सुष निज मन में लाना”। (सर०) ।

कब-कब — इनके प्रयोग से “बहुत कम” की ध्वनि पाई जाती है, जैसे “आप” मेरे यहाँ कब कब आते हैं ? ”

जब-जब — तब तब — जिस जिस समय — उस उस समय ।

जब-तब — एक न एक दिन, जैसे; ‘जब तब बीर विनासा ।’ (सत०) ।

अब-तब — इनका प्रयोग बहुधा संहा वा विशेषण के समान होता है। जैसे, अब तब करना = टालना। अब तब होना = मरनहार होना।

कभी भी — इनसे ‘कभी’ को अपेक्षा अधिक निश्चय पाया जाता है। जैसे, “यह काम आप कभी भी कर सकते हैं।”

कभी-न-कभी, कभी तो, कभी भी, प्रायः पर्यायवाचक हैं।

जैसे-जैसे — तैसे-तैसे, ज्यों-ज्यों — त्यों-त्यों — ये उत्तरोत्तर

बहुती-घटतो सूचित करते हैं; जैसे, “ज्यों ज्यों भीजौ कामरी त्यों त्यों भारी होय ।”

ज्यों का त्यों—पूर्व दशा में। इस वाक्यांश का प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है और “का” प्रत्यय के लिंग-वचनानुसार बदलता है। जैसे, “किला अभी तम ज्यों का त्यों खड़ा है ।”

जहाँ का तहाँ—पूर्व स्थान में; जैसे, “पुस्तक जहाँ की तहाँ रखकी है ।” इसमें भी विशेष्य के अनुसार विकार होता है।

जहाँ तहाँ—सर्वत्र; जैसे, “जहाँ तहाँ मैं देखाँ दोड भाई ।”
(राम०) ।

जैसे-तैसे, ज्यों त्यों करके—किसी न किसी प्रकार से उदाह—“जैसे-तैसे यह काम पूरा हुआ ।” “ज्यों त्यों करके रात काटो ।” इसी अर्थी में “कैसा भी करके” और संस्कृत “येन-केन-प्रकारेण” आते हैं।

वैसे तो—“दूसरे विचार से” अथवा “स्वभाव से” उदाह—“वैसे तो सभी मनुष्य भाई-भाई हैं ।” “वैसे तो राजा भी प्रजा का सेवक है ।” “सूर्य-कान्त-मणि का स्वभाव है कि वैसे तो कूने में ठंडी लगती है ।” (शकु०) ।

आपही, आपही आप, अपने-आप, आपसे आप—इनका अर्थ “मन से” वा “अपने ही चल से” होता है। (अं० १२५ ओ) ।

होते-होते-कम कम से, जैसे, “यह काम होते होते होगा ।”

बैठे-बैठे-विना परिश्रम के; जैसे, लड़का बैठे बैठे खाता है।

खड़े-खड़े—हुरंत; जैसे, “यह रुपया खड़े खड़े बसूल हो सकता है।”

काल पाकर—कुछ समय में; जैसे, “वह काल पाके अशुद्ध हो गया।” (इति०) ।

क्यों नहीं—इस वाक्यांश का प्रयोग “हीं” के अर्थ में होता है; परंतु इससे कुछ तिरस्कार पाया जाता है। उदा०—“क्या तुम वहाँ जाओगे ?” “क्यों नहीं !”

सच पूछिये तो—यह एक वाक्य ही कियाविशेषण के समान आता है। इसका अर्थ है “सचमुच।” उदा०—“सच पूछिये तो मुझे वह स्थान उदास दिखाई पहा।”

[टी०—पहले कहा जा चुका है कि कियाविशेषणों का न्याय-सम्मत वर्गीकरण करना कठिन है, क्योंकि कई शब्दों (जैसे, ही, तो, केवल, हाँ, नहीं, इत्यादि) के विषय में निश्चयपूर्वक वह नहीं कहा जा सकता कि ये कियाविशेषण हो हैं। पहले इस बात का भी उल्लेख हो चुका है कि कोई-कोई वैयाकरण अव्यय के मेद नहीं मानते; परंतु उन्हें भी कई एक अव्ययों का प्रयोग वा अर्थ अलग-अलग बताने की आवश्यकता होती है। कियाविशेषणों का यथासाध्य व्यवस्थित विवेचन करने के लिए इमने उनका वर्गीकरण तीन प्रकार से किया है। कुछ कियाविशेषण वाक्य में स्वतंत्रतापूर्वक आते हैं और कुछ दूसरे वाक्य वा शब्द की अपेक्षा रखते हैं। इसलिए प्रयोग के अनुसार उनका वर्गीकरण करने की आवश्यकता हुई। प्रयोग के अनुसार जो तीन मेद किये गये हैं उनमें से अनुषद कियाविशेषणों के संबंध में यह शंका हो सकती है कि जब इनमें से कुछ शब्द एक बार (वौगिक कियाविशेषणों में) प्रत्यय माने गये हैं तब किर उनको अलग से कियाविशेषण मानने का क्या कारण है ? इस प्रश्न का

उत्तर यह है कि इन शब्दों का प्रयोग दो प्रकार से होता है। एक तो ये शब्द बहुधा संज्ञा के साथ आकर किया जा दूसरे शब्द से उसका संबंध जोड़ते हैं; जैसे, रात भर, ज्ञान मात्र, नगर तक, इत्यादि; और दूसरे ये किया जा विशेषण अथवा कियाविशेषण के साथ आकर उसीकी विशेषता बताते हैं; जैसे, एक मात्र उपाय, बड़ा ही सुंदर, जाओ तो, आते ही, खड़का चलता तक नहीं, इत्यादि। इस दूसरे प्रयोग के कारण ये शब्द कियाविशेषण माने गये हैं। यह दुहरा प्रयोग आगे, पीछे, साथ, ऊपर, पहले, इत्यादि कालवाचक और स्थानवाचक कियाविशेषणों में भी पाया जाता है जिसके कारण इनकी गणना संबंध-सूचकों में भी होती है। जैसे “घर के आगे” “समय के पहले” “पिता के साथ” इत्यादि। कोई, कोई इन अव्ययों का एक अलग भेद (“अवधारणाबोधक” के नाम से) मानते हैं; और कोई कोई इनको केवल संबंध-सूचकों में गिनते हैं। हिंदी के अधिकांश व्याकरणों में इन शब्दों का व्यवस्थित विवेचन ही नहीं किया गया है।

रूप के अनुसार कियाविशेषणों का वर्गीकरण करने की आवश्यकता हस्तिए है कि हिंदी में यौगिक कियाविशेषणों की संख्या अधिक है जो बहुधा संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण वा कियाविशेषणों के अंत में विभक्तियों के ज्ञाने से बनते हैं; जैसे, इतने में, सहज में, मन से, रात को, यहाँ पर, जिसमें इत्यादि। यहाँ अब यह प्रश्न हो सकता है कि घर में, जंगल से, कितने में, पेड़ पर आदि विभक्त्यंत शब्दों को भी कियाविशेषण क्यों न कहें? इस का उत्तर यह है कि यदि कियाविशेषण में विभक्ति का योग होने से उसके प्रयोग में कुछ अंतर नहीं पड़ता तो उसे कियाविशेषण मानने में कोई बाधा नहीं है। उदाहरणार्थ, “यहाँ” कियाविशेषण है; और विभक्ति के योग से इसका रूप “यहाँ से” अथवा “यहाँ पर” होता है। ये दोनों विभक्त्यंत कियाविशेषण किसी भी किया की विशेषता बताते हैं; इसलिए इन्हें कियाविशेषण ही मानना उचित है। इनमें विभक्ति

का योग होने पर भी इनका प्रयोग कर्त्ता या कर्म-कारक में नहीं होता। जिसके कारण इनकी मानना संशा वा सर्वनाम में नहीं हो सकती। यौगिक क्रियाविशेषण दूसरे शब्दों में प्रत्यय लगाने से बनते हैं; जैसे, ध्यानपूर्वक, क्रमशः, नाम-मात्र, संचेपतः, इसलिए जिन विभक्तियों से इन प्रत्ययों का अर्थ पाया जाता है उन्हीं विभक्तियों के योग से बने हुए शब्दों को क्रियाविशेषण मानना चाहिये, और वे को नहीं; जैसे ध्यान से, क्रम से, नाम के लिए, संचेप में, इत्यादि। फिर कई एक विभक्त्यंत शब्द क्रियाविशेषणों के पर्यायवाचक भी होते हैं; जैसे, निदान=अंत में, क्यों=काहे को, काहे से, कैसे=किस रीति से, सबेरे=भोर को, इत्यादि। इस प्रकार के विभक्त्यंत शब्द भी क्रियाविशेषण माने जा सकते हैं। इन विभक्त्यंत शब्दों को क्रियाविशेषण न कहकर कारक कहने में भी कोई हानि नहीं है। पर “जंगल में” पद को केवल वाक्य-पृथकरण की दृष्टि से, क्रियाविशेषण के समान, विधेय-वर्द्धक कह सकते हैं; तो भी व्याकरण की दृष्टि से वह क्रियाविशेषण नहीं है, क्योंकि वह किसी मूल क्रियाविशेषण का अर्थ सूचित नहीं करता। विभक्त्यंत वा संबंध-सूचकात् शब्दों को कोई-कोई वैयाकरण क्रियाविशेषण-वाक्यांश कहते हैं।

हिंदी में कई एक संस्कृत और कुछ उन्हीं विभक्त्यंत शब्द भी क्रियाविशेषण के समान प्रयोग में आते हैं; जैसे, सुखेन, कृपया, विशेषतया, हठात्, जबरन, इत्यादि। इन शब्दों को क्रियाविशेषण ही मानना चाहिये; क्योंकि इनकी विभक्तियाँ हिंदी में अपरिचित होने के कारण हिंदीव्याकरण से इन शब्दों की व्युत्पत्ति नहीं हो सकती। हिंदी में जो सामासिक क्रियाविशेषण आते हैं उनके अव्यय होनेमें कोई संदेह नहीं है, क्योंकि उनके पञ्चात् विभक्ति का योग नहीं होता और उनका प्रयोग भी बहुधा क्रियाविशेषण के समान होता है; जैसे, यथाशक्ति, यथासाध्य, निःसंशय, निष्ठात्, दरहकीकृत, घरोपर, हाथोहाथ, इत्यादि।

क्रियाविशेषणों का तीसरा वर्गोंकरण अर्थ के अनुसार किया गया है।

क्रिया के संबंध से काल और स्थान की सूचना वही महत्व की होती है। किसी भी घटना का वर्णन काल और स्थान के ज्ञान के बिना अधूरा ही रहता है। किर जिस प्रकार विशेषणों के दो भेद—गुणवाचक और संख्यावाचक—मानने की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार क्रिया के विशेषणों के भी ये दो भेद मानना आवश्यक है; क्योंकि व्यवहार में गुण और संख्या का अंतर सदैव माना जाता है। इस तरह अर्थ के अनुसार क्रियाविशेषणों के चार भेद—कालवाचक, स्थानवाचक, परिमाणवाचक और रीतिवाचक माने गये हैं। परिमाणवाचक क्रियाविशेषण बहुधा विशेषण और दूसरे क्रियाविशेषणों की विशेषता बतलाते हैं जिससे क्रियाविशेषण के लक्षण में विशेषण और क्रियाविशेषण की विशेषता का उल्लेख करना आवश्यक समझा जाता है। कालवाचक, स्थानवाचक और परिमाणवाचक और शब्दों की संख्या रीतिवाचक क्रियाविशेषणों की अपेक्षा बहुत थोड़ी है; इसलिए उनको छोड़ शेष शब्द विना अधिक सोच विचार के पहले वर्ग में रख दिये जा सकते हैं। इन चारों वर्गों के उपभेद भी अर्थ की सूचना बताने के लिये यथास्थान बताये गये हैं।

अंत में “हौं”, “नहीं” और “क्या” के संबंध में कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। इनका प्रयोग प्रश्न करने के संबंध में किया जाता है। प्रश्न करने के लिए “क्या”, स्वीकार के लिए “हौं” और निषेध के लिए “नहीं” आता है; जैसे, “यदा तुम बाहर चलोगे ?” “हौं” या “नहीं !” इन शब्दों को कोई कोई विस्मयादिव्योधक अवयव मानते हैं, परंतु इनमें इन दोनों शब्द-भेदों के लक्षण पूरे पूरे घटित नहीं होते। “नहीं” का प्रयोग विषेय के साथ क्रियाविशेषण के समान होता है, और “हौं” शब्द “सच” “ठीक” और “अवश्य,” के पर्याय में आता है, इसलिए इन दोनों (हौं और नहीं) को इमने क्रियाविशेषणों के वर्ग में रखा है। “क्या” संवेदन के अर्थ में आता है, इसलिए इसकी गणना विस्मयादिव्योधकों में की गई है।] (३०-३-४६)

दूसरा अध्याय ।

संबंध-सूचक ।

२२६—जो अव्यय संज्ञा (अथवा संज्ञा के समान प्रयोग में आनेवाले शब्द) के बहुधा पीछे आकर उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ मिलता है उसे संबंधसूचक कहते हैं; जैसे, “धन के बिना किसीका नाम नहीं चलता । ” “नौकर गाँव तक गया, ” “रात भर जागना अच्छा नहीं होता । ” इन वाक्यों में ‘बिना’, ‘तक’ और ‘भर’ संबंधसूचक हैं। “बिना”, शब्द “धन” संज्ञा का संबंध “चलता” किया से मिलता है। “तक” “गाँव” का संबंध “गया” से मिलता है; और “भर” “रात” का संबंध “जागना” कियार्थक संज्ञा के साथ जोड़ता है।

[२०—विभक्तियों और थोड़े से अव्ययों को छोड़ हिंदी में मूल संबंध-सूचक कोई नहीं है जिससे कोई-कोई वैषाकरण (हिंदी में) यह शब्द-मेदही नहीं मानते। “संबंधसूचक” शब्द-मेद के विषय में इस अध्याय के अंत में विचार किया जायगा। यहाँ केवल इतना लिखा जाता है कि जिन अव्ययों को सुनीते के लिए संबंधसूचक मानते हैं उनमें से अधिकांश संज्ञाएँ हैं जो अपनी विभक्तियों का लोप हो जाने से अव्यय के समान प्रयोग में आती हैं ।]

२३०—कोई-कोई कालवाचक और स्थानवाचक अव्यय क्रियाविशेषण भी होते हैं और संबंधसूचक भी। जब वे स्वतंत्र रूप से क्रिया की विशेषता बताते हैं तब उन्हें क्रियाविशेषण कहते हैं; परंतु जब उनका प्रयोग संज्ञा के साथ होता है तब वे संबंध-सूचक कहाते हैं, जैसे—

नौकर यहाँ रहता है । (क्रियाविशेषण) ।

नौकर मालिक के यहाँ रहता है । (संबंधसूचक) ।

वह काम पहले करना चाहिए । (कि० वि०) ।

यह काम जाने से पहले करना चाहिए । (सं० स०) ।

२३१—प्रयोग के अनुसार संबंधसूचक दो प्रकार के होते हैं—

(१) संबद्ध (२) अनुबद्ध ।

२३२—(क) संबद्ध संबंधसूचक संज्ञाओं की विभक्तियों के पीछे आते हैं; जैसे, धन के विना, नर की नाई, पूजा से पहले, इत्यादि ।

(स०)—संबंधसूचक अव्ययों के पूर्व विभक्तियों के आने का कारण यह जान पड़ता है कि संस्कृत में भी कुछ अव्यय संज्ञाओं की अलग-अलग विभक्तियों के पीछे आते हैं, जैसे, दीनं प्रति (दीन के प्रति), यत्नं-यत्नेन-यत्नात् विना (यत्र के विना), रामेण सह (राम के साथ), (वृक्षत्योपरि (वृक्ष के ऊपर), इत्यादि । इन अलग-अलग विभक्तियों के बदले हिंदी में बहुधा संबंध-कारक की विभक्तियाँ आती हैं; पर कहीं कहीं करण और अपादान कारकों की विभक्तियाँ भी आती हैं ।)

(ख) अनुबद्ध संबंधसूचक संज्ञा के विकृत रूप (अ०-३०६) के साथ आते हैं; जैसे, किनारे तक, सखियों सहित, कटोरे भर, पुत्रों समेत, लड़के सरीखा, इत्यादि ।

(ग) ने, को, से, का-के-की, में (कारक-चिह्न) भी अनुबद्ध संबंधसूचक हैं; परंतु नीचे लिखे कारणों से इन्हें संबंधसूचकों में नहीं मानते—

(अ) इनमें से प्रायः सभी संस्कृत के विभक्ति-प्रत्ययों के अप-भ्रंश हैं । इसलिए हिंदी में भी ये प्रत्यय माने जाते हैं ।

(आ) ये स्वतंत्र शब्द न होने के कारण अर्थात् हैं; परंतु दूसरे संबंधबाचक बहुधा स्वतंत्र शब्द होने के कारण सार्थक हैं ।

(इ) इनको संबंधसूचक मानने से संज्ञाओं की प्रचलित कारक-रचना की रीति में हेरफेर करना पड़ेगा जिससे विवेचन में अव्यवस्था उत्पन्न होगी ।

२३३—संबद्ध संबंधसूचकों के पहले बहुधा “के” विभक्ति आती है; जैसे, धन के लिए, भूख के मारे, स्वामी के विरुद्ध, उसके पास, इत्यादि ।

(अ) नीचे लिखे अवधयों के पहले (खीलिंग के कारण) “की” आती है—अपेक्षा, और, जगह, नाईं, खातिर, तरह-तरफ; मारकत, बदौलास, इत्यादि ।

(य०—जब “ओर” (“तरफ”) के साथ संख्यावाचक विशेषण आता है तब “की” के बदले “के” का प्रयोग होता है; जैसे, “नगर के चारों ओर (तरफ) ।”

(आ) आकारांत संबंधसूचकों का रूप विशेष्य के लिंग और वचन के अनुसार बदलता है और उनके पहले यथायोग्य का, के, की अथवा विकृत रूप आता है; जैसे, “प्रवाह उन्हें तालाब का जैसो रूप दे देता है ।” (सर०) “विजली की सी चमक ।” “सिंह के से गुण ।” (भारत०) “हरिश्चंद्र ऐसा पति ।” (सत्य०) । “भोज सरीखे राजा ।” (इति०) ।

२३४—आगे, पीछे, तले, बिना आदि कई-एक संबंधसूचक कभी-कभी बिना विभक्ति के आते हैं; जैसे, पाँव तले, पीठ पीछे, कुछ दिन आगे, शकुंतला बिना, (शकु०) ।

(अ) कविता में बहुधा पूर्वोक्त विभक्तियों का लोप होता है; जैसे, “मातु-समीप कहत सकुचाहीं ।” (राम०) । सभामध्य, (क० क०) । पिता-पास, (सर०) । तेज़-सम्मुख (भारत०) ।

(आ) सा, ऐसा और जैसा के पहले जब विभक्ति नहीं आती तब उनके अर्थ में बहुधा अंतर पढ़ जाता है, जैसे,

“रामचंद्र” “से” पुत्र” और “रामचंद्र” के से पुत्र ।”

पहले वाक्यांश में “से” “रामचंद्र” और “पुत्र” का एकार्थ सूचित करता है; पर दूसरे वाक्यांश में उससे दोनोंका भिन्नार्थ सूचित होता है ।

[स०—इन सादृश्यवाचक संबंधसूचकों का विशेष विचार इसी अध्याय के अंत में किया जायगा ।]

२३५—“परे” और “रहित” के पहले “से” आता है । “पहले,” “पीछे,” “आगे,” और “बाहर” के साथ “से” विकल्प से लाया जाता है । जैसे, समय से (वा समय के) पहले, सेना के (वा सेना से) पीछे, जाति से (वा जाति के) बाहर, इत्यादि ।

२३६—“मारे,” “बिना” और “सिवा” कभी-कभी संज्ञा के पहले आते हैं, जैसे, मारे भूख के, सिवा पत्तों के, बिना हथा के, इत्यादि । “बिना,” “अनुसार,” और “पीछे” बहुधा भूत-कालिक कुदंत के विकृत रूप के आगे, (बिना विभक्ति के) आते हैं, जैसे, “ब्राह्मण का ऋण दिये बिना ।” (सत्य०) । “नीचे लिखे अनुसार” । “रोशनी हुए पीछे ।” (परी०) ।

[स०—संबंधसूचक को संज्ञा के पहले लिखना उद्दूरचना की शीति है जिसका अनुकरण कोई-कोई उद्दूर-प्रेमी करते हैं; जैसे, यह काम साथ होशियारी के करो । हिंदी में यह रचना कम होती है ।]

२३७—“योग्य” (लायक) और “बमूजिव” बहुधा क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप के साथ आते हैं, जैसे, “जो पदार्थ देखने योग्य हैं ।” (शकु०) । “याद रखने लायक ।” (सर०) । “लिखने बमूजिव ।” (इति०) ।

[स०—‘इस,’ ‘उस,’ ‘जिस’ और ‘किस’ के साथ “लिए” का प्रयोग संज्ञा के समान होता है; जैसे, इसलिए, किसलिए, आदि । ये

संयुक्त शब्द बहुधा कियाविशेषण वा समुच्चयवोचक के समान आते हैं। ऐसा ही प्रयोग उद्दृ “बास्ते” का होता है।]

२३८—अर्थ के अनुसार संबंधसूचकों का वर्गीकरण करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इससे कोई व्याकरण-संबंधी नियम सिद्ध नहीं होता। यहाँ केवल स्मरण की सहायता के लिए इनका वर्गीकरण दिया जाता है—

कालवाचक ।

आगे, पीछे, बाद, पहले, पूर्व, अनन्तर, पश्चात्, उपरांत, लगभग।

स्थानवाचक ।

आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, तले, सामने, रुबरु, पास, निकट, समीप, नज़दीक (नगोच), यहाँ, बीच, बाहर, परे, दूर, भीतर।

दिशावाचक ।

ओर, तरफ, पार, आरपार, आसपास, प्रति।

साधनवाचक ।

द्वारा, जरिये, हाथ, मारफत, बल, करके, जबानी, सहारे।

हेतुवाचक ।

लिए, निमित्त, बास्ते, हेतु, हित (कथिता में) खातिर, कारण सबब, मारे।

विषयवाचक ।

बाबत, निस्बत, विषय, नाम (नामक), लेखे, जान, भरोसे, मढ़े।

व्यतिरेकवाचक ।

सिवा (सिवाय), अलावा, बिना, बगैर, अतिरिक्त, रहित।

विनिमयवाचक ।

पलटे, बदले, जगह, पर्वज ।

साहश्यवाचक ।

समान, सम, (कविता में), तरह, भाँति, नाईँ, घराबर, तुल्य, योग्य, लायक, सहश, अनुसार, अनुरूप, अनुकूल, देखादेखी, सरीखा, सा; ऐसा, जैसा, बमूजिब, मुताबिक ।

विरोधवाचक ।

विरुद्ध, खिलाक, उलटा, बीपरीत ।

सहचारवाचक ।

संग, साथ, समेत, सहित, पूर्वक, अधीन, स्वाधीन, वश ।

संग्रहवाचक ।

तक, लौं, पर्यंत, सुझां, भर, मात्र ।

तुलनावाचक ।

अपेक्षा, अनिस्थत, आगे, सामने ।

(द०—ऊपर की सूची में जिन शब्दों को कालवाचक संबंधसूचक लिखा है वे किसी-किसी प्रसंग में स्थानवाचक अर्थया दिशावाचक भी होते हैं । इसी प्रकार और भी कई-एक संबंधसूचक अर्थ के अनुसार एक से अधिक वर्गों में आ सकते हैं ।)

२३६—व्युत्पत्ति के अनुसार संबंधसूचक दो प्रकार के हैं—(१) मूल और (२) यौगिक ।

हिंदी में मूल संबंधसूचक बहुत कम हैं; जैसे, विना, पर्यत, नाईँ, पूर्वक, इत्यादि ।

यौगिक संबंधसूचक दूसरे शब्द-भेदों से बने हैं; जैसे,

(१) संज्ञा से—पलटे, बास्ते, ओर, अपेक्षा, नाम, लेखे,
विषय, मारकत, इत्यादि ।

(२) विशेषण से—तुल्य, समान, उलटा, जबानी, सरीखा,
योग्य, ढौसा, ऐसा, इत्यादि ।

(३) क्रिया विशेषण से—ऊपर, भीतर, यहाँ, बाहर, पास,
परे, पीछे, इत्यादि ।

(४) क्रिया से—लिए, मारें, करके, जान ।

(च०—अव्यय के रूप में “लिये” को बहुधा “लिए”
लिखते हैं ।)

२४०—हिंदी में कई-एक संबंधसूचक उर्दू भाषा से और
कई-एक संस्कृत से आये हैं। इसमें से बहुत से शब्द हिंदी के
संबंधसूचकों के पर्यायवाची हैं। कितने-एक संस्कृत संबंधसूचकों
का विचार हिंदी के गद्य-काल से आरंभ हुआ है। तीनों
भाषाओं के कई-एक पर्यायवाची संबंधसूचकों के उदाहरण नीचे
दिये जाते हैं—

हिंदी	उर्दू	संस्कृत
सामने	رہ بڑھ	समच्छ, सम्मुख
पास	نजदीک	निकट, समीप
मारे	سबب, بردیلات	कारण
पीछे	बांद	पश्चात्, अनंतर, उपरांत
तक	تا (कचित्)	पर्यंत
से	बनिस्वत	अपेक्षा
नाईं	तरह	भाँति
उलटा	खिलाक	विरुद्ध, विपरीत
लिए	बास्ते, खातिर	निमित्त, देतु
से	जरिये	द्वारा

हिंदी	उर्दू	संस्कृत
मढ़े	बाबत, निस्वत	विषय
×	बरार	विना
पलटे	बदले, एवज़	×
×	सिवा, अलावा	अतिरिक्त

२४५—नीचे और कुछ संबंधसूचक अव्ययों के अर्थ और प्रयोग लिखे जाते हैं—

आगे, पीछे, भीतर, भर, तक और इनके पर्यायवाची शब्द अर्थ के अनुसार कभी कालवाचक और कभी स्थानवाचक होते हैं; जैसे, घर के आगे, विवाह के आगे, दिन भर, गाँव भर, इत्यादि । (अं०-२२७) ।

आगे, पीछे, पहले, परे, ऊपर, नीचे और इनमें से किसी-किसी के पर्यायवाची शब्दों के पूर्व जब “से” विभक्ति आती है तब इनसे तुलना का बोध होता है; जैसे, “कल्पुआ खरहे से आगे निकल गया” । “गाड़ी समय से पहले आइं ।” “बह जाति में मुझसे नीचे हैं ।”

आगे—यह संबंधसूचक नीचे लिखे अर्थों में भी आता है—
 (अ) तुलना में-उसके आगे सब क्षी निरादर हैं । (शकु०) ।
 (आ) विचार में-मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है । (सत्य०) ।

(ई) विद्यमानता में-काले के आगे चिराग नहीं जलता ।

(कहा०) ।

(द०—प्राणः इन्हीं अर्थों में “सामने” का प्रयोग होता है ।

पीछे—इससे प्रत्येकता का भी बोध होता है; जैसे, थान पीछे एक रूपया मिला ।

ऊपर, नीचे—इनसे पद की छुटाइ-बड़ाई भी सूचित होती है; सबके ऊपर एक सरदार रहता है और उसके नीचे कई जमादार काम करते हैं ।

निकट—इसका प्रयोग विचार के अर्थ में भी होता है; जैसे, उसके निकट भूत और भविष्यत दोनों वर्तमान से हैं (गुटका०) ।

पास—इससे अधिकार भी सूचित होता है, जैसे, मेरे पास एक घड़ी है ।

यहाँ—दिल्लीवाले बहुधा इसे “हाँ” लिखते हैं; जैसे, “तुम्हारे हाँ कुछ रकम जमा की गई है ।” (परी०) । राजा शिवप्रसाद इसे “यहाँ” लिखते हैं; जैसे, “और भी हिंदुओं को अपने यहाँ बुलाता है ।” (इति०) । “परीक्षा-गुरु” में भी कई जगह “यहाँ” भी आया है । यह शब्द यथार्थ में “यहाँ” (कियाविशेषण) है; परंतु बोलने में कदाचित् कहीं-कहीं “हाँ” हो जाता है । “यहाँ” का अर्थ “पास” के समान अधिकार का भी है । कभी-कभी “पास” और “यहाँ” का लोप हो जाता है और केवल “के” (संबंध-कारक) से इनका अर्थ सूचित होता है; जैसे, “इस महाजन के बहुत धन है ।” “उनके एक लड़का है ।” मेरे कोई बहिन न हुई ।” (गुटका०) ।

सिवा—कोई-कोई इसे अपभ्रंश-रूप में “सिवाय” लिखते हैं । खाटूस साहब के “हिंतुस्तानी व्याकरण” में दोनों रूप दिये गये

हैं । साधारण अर्थ के सिवा इसका प्रयोग कई-एक अपूर्ण उक्तियों की पूर्ति के लिए भी होता है; जैसे, “इन भाटों की बनाई बंशावली की कदर इससे बखूबी मालूम हो जाती है । सिवाय इसके जो कभी कोई ग्रंथ लिखा भी गया, (तो) छापे की विद्या मालूम न होने के कारण वह काल पाके अशुद्ध हो गया ।” (इति०) । निषेधवाचक वाक्य में इसका अर्थ “छोड़कर” या “बिना” होता है; जैसे, “उसके सिवाय और कोई भी यहाँ नहीं आया ।” (गुटका०) ।

साथ—यह कभी-कभी “सिवा” के अर्थ में आता है; जैसे, “इन बातों से सूचित होता है कि कालिदास ईसवी सन् के तीसरे शतक के पहले के नहीं । इसके साथ ही यह भी सूचित होता है कि वे ईसवी सन् के पाँचवें शतक के बाद के भी नहीं ।” (रघु०) ।

अनुसार, अनुरूप, अनुकूल—ये शब्द स्वरादि होने के कारण तूर्बवर्ती संस्कृत शब्दों के साथ संधि के नियमों से मिल जाते हैं और इनके पूर्व “के” का लोप हो जाता है जैसे, आज्ञानुसार, इच्छानुसार, धर्मानुकूल । इस प्रकार के शब्दों को संयुक्त संबंधसूचक मानना चाहिए और इनके पूर्व समास के लिंग के अनुसार संबंध-कारक की विभक्ति लगानी चाहिए । जैसे, “सभा के अनुसार ।” (भाषासार०) । कोई-कोई लेखक खीलिंग संज्ञा के पूर्व “की” लिखते हैं; जैसे, ‘आपकी आज्ञानुसार यह बर माँगता हूँ ।’ (सत्य०) । अनुरूप और अनुकूल प्रायः समानार्थी हैं ।

सदृश, समान, तुल्य, योग्य—ये शब्द विशेषण हैं और

संवधसूचक के समान आकर भी संज्ञा, की विशेषता बदलते हैं, जैसे, “मुकुट योग्य सिर पर तुण क्यों रखा है !” (सत्य०) । “यह रेखा उस रेखा के तुल्य है ।” “मेरी दशा ऐसे ही वृक्षों के सदृश हो रही है ।” (रघु०) ।

सरीखा—इसके लिंग और वचन विशेष्य के अनुसार बदलते हैं और इसके पूर्व बहुधा विभक्ति नहीं आती, जैसे, “मुझ सरीखे लोग ।” (सत्य०) । यह “सदृश” आदि का पर्यायवाची है और पूर्वे शब्द के साथ मिलकर विशेषण का काम देता है । (अं०—१६०) ।

ऐसा, जैसा, सा—ये “सरीखा” के पर्यायवाची हैं । आज-कल “सरीखा” के बदले “जैसा” का प्रचार बढ़ रहा है । “सरीखा” के समान “जैसा”, “ऐसा” और “सा” का रूप विशेष्य के लिंग और वचन के अनुसार बदल जाता है । इनका प्रयोग भी विशेषण और संवधसूचक, दोनों के समान होता है ।

ऐसा—इसका प्रयोग बहुधा संज्ञा के विकृत रूप के साथ होता है । (अं०—२३२-ख) । ‘ऐसा’ का प्रचार पहले की अपेक्षा कुछ कम है । भारतेंदुजी के समय की पुस्तकों में इसके उदाहरण मिलते हैं; जैसे, “आचार्य जी पागल ऐसे हो गये हैं ।” (सरो०) । “विशेष करके आप ऐसे ।” (सत्य०) । “काश्मीर ऐसे एक-आद इलाके का ।” (इति०) । कोई-कोई इसका एक प्रांतिक रूप “कैसा” लिखते हैं; जैसे, अग्नि कैसी लाल-लाल जीभ निकाल ।” (प्रणयि०) ।

जैसा—इसका प्रचार आज कल के ग्रंथों में अधिकता से होता है । यह विभक्ति-सहित और विभक्ति-रहित दोनों प्रयोगों में आता

है; जैसे, “पहले शतक में कालिदास के ग्रंथों की जैसी परिमार्जित संस्कृत का प्रचार ही न था।” (रघु०) । “बीजगणित जैसे किट्ठ विषय को समझाने की चेष्टा की गई है।” (सर०) । इन दोनों प्रयोगों में यह अंतर है कि पहले वाक्य में “जैसी” “ग्रंथों” और “संस्कृत” का संबंध सूचित नहीं करता, किंतु “की” के पश्चात् लुप्त “संस्कृत” शब्द का संबंध दूसरे “संस्कृत” शब्द से सूचित करता है। दूसरे वाक्य में “बीज-गणित” का संबंध “विषय” के साथ सूचित होता है; इसलिए वहाँ संबंध-कारक की आवश्यकता नहीं है। इसी कारण आगे दिये हुए उदाहरण में भी “के” नह। आया है—“शिवकुमार शास्त्री जैसे धुरंधर महामहोपाध्याय।” (शिव०) ।

सा—इस शब्द का कुछ विचार क्रियाविशेषण के अध्याय में किया गया है। (अं०-२२७) । इसका प्रयोग “जैसा” के समान दो प्रकार से होता है और दोनों प्रयोगों में वैसा ही अर्थ-भेद पाया जाता है। जैसे, “डील पहाड़ सा और बल हाथी का सा है।” (शकु०) । इस वाक्य में डील को पहाड़ की उपमा दी गई है; इसलिए “सा” के पहले “का” नहीं आया; परंतु दूसरा “सा” अपने पूर्व लुप्त “बल” का संबंध पहले कहे हुए “बल” से मिलता है, इसलिए इस “सा” के पहले “का” लाने की आवश्यकता हुई है। “हाथी सा बल” कहना असंगत होता। मुद्राराज्ञस में “मेरे से लोग” आया है; परंतु इसमें समता कहनेवाले से की गई है न कि उसकी संबंधिनी किसी वस्तु से, इसलिए शुद्ध प्रयोग “मुझसे लोग” होना चाहिये। कोई-कोई इसे केवल प्रत्यय मानते हैं; परंतु प्रत्यय का प्रयोग विभक्ति के पश्चात् नहीं होता। जब यह संज्ञा या सर्वनाम के साथ विभक्ति के चिना आता है तब इसे प्रत्यय कह

सकते हैं और सांत शब्द को विशेषण मान सकते हैं; जैसे, फूलसा शरीर, चमेली से अंग पर, इत्यादि ।

भर, तक, मात्र—इनका भी विचार क्रियाविशेषण के अध्याय में हो चुका है । जब इनका प्रयोग संबंधसूचक के समान होता है तब ये बहुधा कालवाचक, स्थानवाचक, वा परिमाणवाचक शब्दों के साथ आकर उनका संबंध किया से वा दूसरे शब्दों से मिलाते हैं और इनके परे कारक की विभक्ति नहीं आती; जैसे, “बह रात भर जागता है ।” “लड़का नगर तक गया ।” “इसमें तिल मात्र संदेह नहीं है ।” “तक” के अर्थ में कभी-कभी संस्कृत का “पर्यंत” शब्द आता है; जैसे, “उसने समुद्र पर्यंत राज्य बढ़ाया ।” “भर” और “तक” के योग से संज्ञा का विकृत रूप आता है; पर “मात्र” के साथ उसका मूल रूप ही प्रयुक्त होता है; जैसे, “चौमासेभर ।” (इति०) । ‘समुद्र के तटों तक ।’ (रघु०) । एक पुस्तक का नाम “कटोरा-भर खून” है; पर “कटोरा-भर” शब्द अशुद्ध है । यह “कटोरे-भर” होना चाहिए । “मात्र” शब्द का प्रयोग केवल कुछ संस्कृत शब्दों के साथ (संबंधसूचक के समान) होता है; जैसे, “ज्ञान-मात्र यहाँ ठहरो”, पल-मात्र, लेश-मात्र, इत्यादि । “भर” और “मात्र” बहुधा बहुवचन संज्ञा के साथ नहीं आते । जब “तक” “भर” और “मात्र” का प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है तब इनके परचात् विभक्तियाँ आती हैं; जैसे, “उसके राज भर में ।” (गुटका०) । “छोटे बड़े लाटों तक के नाम आप चिढ़ियाँ भेजते हैं ।” (शिव०) । “अब हिंदुओं को खाने मात्र से काम ।” (भा० दु०) ।

विना—यह कभी कभी कुदंत अव्यय के साथ आकर क्रिया-विशेषण होता है; जैसे; “विना किसी कार्य का कारण जाने हुए ।” (सर०) । “विना अंतिम परिणाम सोचे हुए ।” (इति०) । कभी कभी यह संबंध-कारक की विशेषता बताता है; जैसे, “आपके नियोग की खबर इस देश में विना मेघ की वर्षा की भाँति अचानक आ गिरी ।” (शिव०) । इन प्रयोगों में “विना” बहुधा संबंधी शब्द के पहले आता है ।

उलटा—यह शब्द यथार्थ में विशेषण है; पर कभी-कभी इसका प्रयोग “का” विभक्ति के आगे संबंध-सूचक के समान होता है; जैसे, “टापू का उलटा भील है ।” विरोध के अर्थ में बहुधा “विरुद्ध;” “खिलाफ़” आदि आते हैं ।

कर, करके—यह संबंधसूचक बहुधा “द्वारा,” “समान” वा “नामक” के अर्थ में आता है; जैसे, “मन, बचन, कर्म, करके यति किसी जीव की हिंसा न करे ।” “अग जग नाथ मनुज करि जाना ।” (रामा०) । “संसार के त्वामी, (भगवान्) को मनुष्य करके जाना ।” (पीयूष०) । “तुम हरिको पुत्र कर मत मानो ।” (प्रेम०) । “परिहृतजी शास्त्री करके प्रसिद्ध हैं ।” “बछरा करि हम जान्यो याही ।” (ब्रज०) ।

अपेक्षा बनिस्वत—पहला शब्द संस्कृत संज्ञा है और दूसरा शब्द उर्दू संज्ञा “निस्वत” में “ब” उपसर्ग लगाने से बना है। एक तुलना के पूर्व “की” और दूसरे के पूर्व “के” आता है। इनका प्रयोग तुलना में होता है और दोनों एक दूसरे के पर्याय-बाची हैं। जिस वस्तु की हीनता बतानी हो उसके वाचक शब्द

के आगे “अपेक्षा” या “बनिस्वत्” लगाते हैं; जैसे, “उनको अपेक्षा और प्रकार के मनुष्य कम हैं।” (जीविका०) । “आर्यों के बनिस्वत् ऐसी ऐसी अस्थ्र जाति के लोग रहते थे।” (इति०) । “परीक्षा-गुरु” में “बनिस्वत्” के बदले “निस्वत्” आया है; जैसे, “उसकी निस्वत् उदारता की ज्यादा कदर करते हैं।” यथार्थ में “निस्वत्” “विषय” के अर्थ में आता है; जैसे, “चंदे की निस्वत् आपकी क्या राय है।” कभी-कभी “अपेक्षा” का भी अर्थ “निस्वत्” के समान “विषय” होता है, जैसे, “सब धंधेवालों की अपेक्षा ऐसा ही ख्याल करना चाहिए।” (जीविका०) ।

लौं—कोई-कोई इसे “तक” के अर्थ में गश में भी लिखते हैं; परंतु यह शिष्ट प्रयोग नहीं है। पुरानी कविता में “लौं”, “समान”, के अर्थ में भी आया है, जैसे, “जानत कल्पु जल-थंभ-विधि दुर्जीधन लौं लाल।” (सत०) ।

[टी०—पहले कहा गया है कि हिंदी के अधिकांश वैयाकरण अव्ययों के मेद नहीं मानते। अव्ययों के और-और मेद तो उनके अर्थ और प्रयोग के कारण बहुत करके निश्चित हैं चाहे उनको माने या न माने; परंतु संबंधसूचक को एक अलग शब्द-मेद मानने में कई वाधाएँ हैं। हिंदी में कई-एक संशाओं, विशेषणों और कियाविशेषणों को केवल संबंधकारक अथवा कभी-कभी दूसरे कारक के विभक्ति के पश्चात् आने शी के कारण संबंधसूचक मानते हैं; परन्तु इनका एक अलग वर्ग न मानकर एक विशेष प्रयोग मानने से भी काम चल सकता है, जैसा कि संस्कृत में उपरि, विना, पृथक, पुरः, अग्रे, आदि अव्ययों के सम्बन्ध में होता है; जैसे, “एहस्योपरि,” “रामेण विना।” दूसरी कठिनाई यह है कि जिस अर्थ में कोई-कोई संबंधसूचक आते हैं उसी अर्थ में कारक-

प्रत्यय अर्थात् विभक्तियाँ भी आती हैं; जैसे, घर में, घर के भीतर, तलावार से, तलावार के द्वारा, पेड़ पर, पेड़ के ऊपर। तब इन विभक्तियों को भी सम्बन्धसूचक क्यों न माने? इनके सिवा एक और अद्वचन यह है कि कई एक शब्दों—जैसे, तक, भर, सुदां, रहित, पूर्वक, मात्र, सा, आदि—के विषय में निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि ये प्रत्यय हैं अथवा संबंधसूचक। हिंदी की वर्तमान लिखावट पर से इसका निर्णय करना और भी कठिन है। उदाहरणार्थ, कोई “तक” को पूर्व शब्द से मिलाकर और कोई अलग लिखते हैं। ऐसी अवस्था में संबंधसूचक का निर्दोष लक्षण बताना सहज नहीं है।

संबंधसूचक के पश्चात् विभक्ति का लोप हो जाता है और विभक्ति के पश्चात् कोई दूसरा प्रत्यय नहीं आता; इसलिए जो शब्द विभक्ति के पश्चात् आते हैं उनको प्रत्यय नहीं कह सकते और जिन शब्दों के पश्चात् विभक्ति आती है वे संबंधसूचक नहीं कहे जा सकते। उदाहरणार्थ, “हाथी का साथल” में “सा” प्रत्यय नहीं, किंतु संबंधसूचक है; और “संसार भर के ग्रन्थ-गिरि” में “भर” संबंधसूचक नहीं, किंतु प्रत्यय अथवा क्रियाविशेषण है। इस दृष्टि से केवल उन्हीं को संबंधसूचक मानना चाहिये जिनके पश्चात् कभी विभक्ति नहीं आती और जिनका प्रयोग संज्ञा के बिना कभी नहीं हो सकता। इस प्रकार के शब्द केवल “नाहै,” “प्रति,” “पर्यंत,” “पूर्वक,” “सहित” और “रहित” हैं। इनमें से अंत के पांच शब्दों के पूर्व कभी-कभी सम्बन्ध-कारक की विभक्ति नहीं आती। उस समय इन्हें प्रत्यय कह सकते हैं। तब केवल एक “नाहै” शब्द ही सम्बन्धसूचक कहा जा सकता है; पर वह भी प्रायः अप्रचलित है। पिर तक, भर, मात्र और सुदां के पश्चात् कभी-कभी विभक्तियाँ आती हैं; इसलिए और-और शब्द-मेदों के समान ये केवल स्थानीय रूप से सम्बन्धसूचक हो सकते हैं। ये शब्द कभी सम्बन्धसूचक, कभी प्रत्यय और कभी दूसरे शब्द-मेद भी होते हैं। (इनके भिन्न-

भिन्न प्रयोगों का उल्लेख कियाविशेषण के अध्याय में तथा इसी अध्याय में किया जा चुका है ।) इससे जाना जाता है कि हिंदी में नूल-सम्बन्ध-सूचकों की संख्या नहीं के बराबर है, परन्तु भिन्न-भिन्न शब्दों के प्रयोग संबंधसूचक के समान होते हैं, इसलिए इसको एक अलग शब्द-मेद मानने की आशयकता है । भाषा में बहुधा कोई भी आवश्यकता के अनुसार संबंधसूचक बना लिया जाता है तब उसके बदले दूसरा शब्द उपयोग में आने लगता है । हिंदी के “अतिरिक्त,” “अपेक्षा,” “विषय,” “विरुद्ध” आदि संबंधसूचक पुरानी पुस्तकों में नहीं मिलते और पुरानी पुस्तकों के “तहे,” “छुट,” “संती,” “लौ” आदि आजकल अपचलित हैं ।]

[स०—संबंधसूचकों और विमिक्तियों का विशेष अंतर कारक-प्रकरण में चताया जायगा ।]

तीसरा अध्याय ।

समुच्चय-बोधक ।

२४२—जो अध्यय (किया की विशेषता न बतलाकर) एक वाक्य का संबंध दूसरे वाक्य से मिलाता है उसे समुच्चय-बोधक कहते हैं; जैसे, और, यदि, तो, क्योंकि, इसलिए ।

“हवा चली और पानी गिरा”—यहाँ “और” समुच्चय-बोधक है; क्योंकि वह पूर्व वाक्य का संबंध उत्तर वाक्य से मिलाता है । कभी, कभी समुच्चय-बोधक से जोड़े जानेवाले वाक्य पूर्णतया स्पष्ट नहीं रहते; जैसे, “कृष्ण और बलराम गये ।” इस प्रकार के वाक्य देखने में पक्की से जान पड़ते हैं; परन्तु दोनों वाक्यों में किया एक ही होने के कारण संलेप के लिए

उसका प्रयोग केवल एक ही बार किया गया है। ये दोनों वाक्य स्पष्ट रूप से यों लिखे जायेंगे—“कुछ गये और बलराम गये।” इसलिए यहाँ “और” दो वाक्यों को मिलाता है। “यदि सूर्य न हो तो कुछ भी न हो।” (इति०)। इस उदाहरण में “यदि” और “तो” दो वाक्यों को जोड़ते हैं।

(अ) कभी-कभी कोई-कोई समुच्चय-बोधक वाक्य में शब्दों को भी जोड़ते हैं; जैसे, “दो और दो चार होते हैं।” यहाँ “दो चार होते हैं और दो चार होते हैं”, ऐसा अर्थ नहीं हो सकता, अर्थात् “और” समुच्चय-बोधक दो संचिप्त वाक्यों को नहीं मिलाता, किंतु दो शब्दों को मिलाता है। तथापि ऐसा प्रयोग सब समुच्चय-बोधकों में नहीं पाया जाता; और “क्योंकि”, “यदि”, “तो”, “यथापि”, “तोभी”, आदि कई समुच्चय-बोधक केवल वाक्यों ही को जोड़ते हैं।

(टी०—समुच्चय-बोधक का लक्षण भिन्न-भिन्न व्याकरणों में भिन्न-भिन्न प्रकार का पाया जाता है। यहाँ हम केवल “हिं० बा० बो० व्या० करण”^३ में दिये गये लक्षण पर विचार करते हैं। वह लक्षण यह है— “जो शब्द दो पदों, वाक्यों वा वाक्यों के अंशों के मध्य में आकर प्रत्येक पद वा वाक्यांश के भिन्न-भिन्न क्रिया-संहित अन्वय का संयोग या विभाग करते हैं उनको समुच्चय-बोधक अव्यय कहते हैं; जैसे—राम और लक्ष्मण आये।” इस लक्षण में सबसे पहला दोष यह है कि इसकी भाषा स्पष्ट नहीं है। इसमें शब्दों की योजना से यह नहीं जान पड़ता कि “भिन्न-भिन्न” शब्द “क्रिया” का विशेषण है अथवा “अन्वय” का। फिर समुच्चय-बोधक सदैव दो वाक्यों के मध्य ही में नहीं आता, बरन कभी कभी-प्रत्येक जुड़े हुए वाक्य के आदि में भी आता है; जैसे, “यदि सूर्य न हो तो कुछ भी न हो।” इसके सिवा पदों वा वाक्यांशों को

सभी समुच्चय-बोधक नहीं जोड़ते । इस तरह से इस लक्षण में अस्पष्टता, अव्याप्ति और शब्द-जाल का दोष पाया जाता है । लेखक ने यह लक्षण “भाषा-भास्कर” से जैसा का तैसा लोकर उसमें इधर-उधर कुछ शाब्दिक परिवर्तन कर दिया है; परंतु नूल के दोष जैसे के तैसे बने रहे । “भाषा-प्रभाकर” में भी “भाषा-भास्कर” ही का लक्षण दिया गया है; और उसमें भी प्रायः येही दोष हैं ।

हमारे किये हुए समुच्चय-बोधक के लक्षण में जो वाक्यांश—“किया की विशेषता न बतलाकर”—आया है उसका कारण यह है कि वाक्यों को जिस प्रकार समुच्चय-बोधक जोड़ते हैं उसी प्रकार उन्हें दूसरे शब्द भी जोड़ते हैं । संबंध-वाचक और नित्य-संबंधी सर्वनामों के द्वारा भी दो वाक्य जोड़े जाते हैं; जैसे, “जो गरजते हैं वह घरसते नहीं ।” (कहा० ।) इस उदाहरण में “जो” और “वह” दो वाक्यों का संबंध मिलाते हैं । इसी तरह “जैसा तैसा” और “जितना-उतना” संबंध-वाचक विशेषण तथा “जब-तब”, “जहाँ-तहाँ”, “जैसे-तैसे”, आदि संबंध-वाचक क्रिया-विशेषण भी एक वाक्य का संबंध दूसरे वाक्य से मिलाते हैं । इस पुस्तक में दिये हुए समुच्चय-बोधक के लक्षण से इन तीनों प्रकार के शब्दों का विराकरण होता है । संबंध-वाचक सर्वनाम और विशेषण को समुच्चय-बोधक इसलिए नहीं कहते कि वे अव्यय नहीं हैं; और संबंध-वाचक क्रिया-विशेषण को समुच्चय-बोधक न मानने का कारण यह है कि उसका मुख्य धर्म क्रिया की विशेषता बताना है । इन तीनों प्रकार के शब्दों पर समुच्चय-बोधक की अतिव्याप्ति बचाने के लिए ही उक्त लक्षण में “अव्यय” शब्द और “क्रिया की विशेषता न बतलाकर” वाक्यांश लाया गया है ।)

२४३—समुच्चय-बोधक अव्ययों के मुख्य दो भेद हैं—(१) समानाधिकरण (२) व्यधिकरण ।

२४४—जिन अव्ययों के द्वारा मुख्य वाक्य जोड़े जाते हैं उन्हें

समानाधिकरण समुच्चय-बोधक कहते हैं। इनके चार उप-मेद हैं:—(अ) संयोजक—और, व, तथा, एवं, भी। इनके द्वारा दो वा अधिक मुख्य वाक्यों का संग्रह होता है; जैसे, “बिल्ली के पंजे होते हैं और उनमें नख होते हैं”।

व—यह उद्गू शब्द “और” का पर्यायवाचक है। इसका प्रयोग बहुधा शिष्ट लेखक नहीं करते, क्योंकि वाक्यों के बीच में इसका उचारण कठिनाई से होता है। उद्गू-प्रेमी राजा साहब ने भी इसका प्रयोग नहीं किया है। इस “व” में और संस्कृत “व” में जिसका अर्थ “व” का उलटा है, बहुधा गड़वड़ और ऋम भी हो जाता है। अधिकांश में इसका प्रयोग उद्गू सामासिक शब्दों में होता है; परंतु उनमें भी यह उचारण की सुगमता के लिये संघि के अनुसार पूर्व शब्द में मिला दिया जाता है; जैसे, नामो-निशान, आबो-हवा, जानो-माल। इस प्रकार के शब्दों को भी लेखक, हिंदी-समास के अनुसार, बहुधा “आब-हवा”, “जान-माल”, “नाम निशान”, इत्यादि बोलते और लिखते हैं; जैसे, “बुतपरस्ती (मूर्ति-पूजा) का नाम-निशान न बाकी रहने दिया”। (इति०)।

तथा—यह संस्कृत संबंधवाचक क्रिया-विशेषण “यथा” (जैसे) का नित्य-संबंधी है और इसका अर्थ “वैसे” है। इस अर्थ में इसका प्रयोग कभी-कभी कविता में होता है; जैसे, “रह गई अति विस्मित सी तथा। चकित चंचल चारु मृगी यथा”। गद्य में इसका प्रयोग बहुधा “और” के अर्थ में होता है; जैसे, “पहले पहला बहाँ भी अनेक क्रूर तथा भयानक उपचार किये जाते थे”। (सर०) इसका अधिकतर प्रयोग “और” शब्द की द्विरूपिका का निवारण करने के लिए होता है, जैसे, “इस बात की पुष्टि में चैटर्जी महाशय ने रघुवंश के तेरहवें सर्ग का एक पद

और रघुवंश तथा कुमार-सम्भव में व्यवहृत “संघात” शब्द भी दिया है । (रघु०) ।

और—इस शब्द के सर्वनाम, विशेषण और क्रिया-विशेषण होने के उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं । (अं०—१८४, १८५, २२३ ई०) । समुच्चय-बोधक होने पर इसका प्रयोग साधारण अर्थ के सिवा नीचे लिखे विशेष अर्थों में भी होता है (प्लाट्स-कृत “हिंदुस्तानी ध्याकरण ”)—

(अ) दो क्रियाओं की समकालीन घटना; जैसे, “तुम उठे और खराबी आई ” ।

(आ) दो विषयों का नित्य-संबंध; जैसे, “मैं हूँ और तुम हो ”
(= मैं तुम्हारा साथ न छोड़ूँगा) ।

(ई) धमकी वा तिरस्कार; जैसे, “फिर मैं हूँ और तुम हो ”
(= मैं तुमको खूब समझूँगा) ।

शब्दों के बीच में बहुधा “और” का लोप हो जाता है; जैसे, “भले-बुरे की पहचान,” “सुख-दुख का देनेवाला”, “बलो, देखो,” “मेरे हाथ-पाँव नहीं चलते” । यथार्थ में ये सब उदाहरण द्वंद्व-समाप्त के हैं ।

एवं—“तथा” के समान इसका भी अर्थ “वैसे” वा “ऐसे” होता है, परंतु उच्च हिंदी में यह केवल “और” के पर्याय में आता है; जैसे, “लोग उपमायें देखकर विस्मित एवं मुग्ध हो जाते हैं ।” (सर०) ।

(आ) विभाजक—या, वा, अथवा, किंवा, कि, या —या, चाहे—चाहे, क्या—क्या, न—न, न कि, नहीं तो ।

इन अध्ययों से दो या अधिक वाक्यों वा शब्दों में से किसी एक का प्रहण अथवा दोनों का त्याग होता है ।

या, वा, अथवा, किंवा—ये चारों शब्द प्रायः पर्यायवाची हैं। इन में से “या” उदूँ और शेष तीन संस्कृत हैं। “अथवा” और “किंवा” में दूसरे अव्ययों के साथ “वा” मिला है। पहले तीन शब्दों का एक-साथ प्रयोग द्विरुक्ति के निवारण के लिए होता है; जैसे, “किसी पुस्तक की अथवा किसी ग्रंथकार या प्रकाशक की एक से अधिक पुस्तकों की प्रशंसा में किसीने एक प्रस्ताव पास कर दिया” (सर०)। “या” और “वा” कभी-कभी पर्यायवाची शब्दों को मिलाते हैं जैसे, धर्मनिष्ठा या धार्मिक विश्वास ।” (स्वा०)। इस प्रकार के शब्द कभी-कभी कोष्टक में ही रख दिये जाते हैं; जैसे, “श्रुति (वेद) में । ।” (रघु०) लेखक-गण कभी-कभी भूल से “या” के बदले “ओर” तथा “और” के बदले “या” लिख देते हैं, जैसे, “मुर्दे जलाये और गाढ़े भी जाते थे और कभी-कभी जलाके गाढ़ते थे ।” (इति०)। यहाँ दोनों “ओर” के स्थान में “या”, “वा” और “अथवा” में से कोई भी दो अलग-अलग शब्द होने चाहिए। किंवा का प्रयोग बहुधा कविता में होता है; जैसे, “नृप अभिमान मोह बस किंवा ।” (राम०)। “वे हैं नरक के दूत किंवा सूत हैं कलिराज के ।” (भारत०)।

कि—यह (विभाजक) “कि” उद्देशवाचक और स्वरूपवाचक “कि” से भिन्न है। (अ०-२४५-आ, ई)। इसका अर्थ “या” के समान है, परंतु इसका प्रयोग बहुधा कविता ही में होता है; जैसे, “रखिहिं भवन कि लैहिं साथा ।” (राम०)। “कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि श्याम घनमंडल में दामिनी की धारा है”। (क० क०)। “कि” कभी-कभी दो शब्दों को भी मिलाता

है; जैसे, “यद्यपि कृपण कि अपव्ययी ही हैं धनी-मानी यहाँ”
(भारत०)। परंतु ऐसा प्रयोग कवित् होता है ।

या—या ये शब्द जोड़े से आते हैं और अकेले “या” की अपेक्षा विभाग का अधिक निश्चय सूचित करते हैं; जैसे, “या तो इस पेड़ में फौसी लगाकर मर जाऊँगी या गंगा में कूद पहूँगी”। (सत्य०)। कभी-कभी “कहाँ—कहाँ” के समान इनसे “महत् अंतर” सूचित होता है; जैसे, “या वह रौनक थी या सुनसान हो गया”। कविता में “या-या” के अर्थ में ‘कि-कि’ आते हैं, जैसे; “की तनु प्रान कि केवल प्राना”। (राम०)।

कानूनी हिंदी में पहले “या” के बदले “आया” लिखते हैं जैसे, आया मर्द या औरत। “आया” भी उदूँ शब्द है।

प्रायः इसी अर्थ में “चाहे—चाहे” आते हैं; जैसे, “चाहे सुमेरु को राई करै रचि राई को चाहे सुमेरु बनावै।” (पद्मा०)। ये शब्द “चाहना” क्रिया से बने हुए अव्यय हैं।

क्या—क्या—ये प्रश्नवाचक सर्वनाम समुच्चय-बोधक के समान उपयोग में आते हैं। कोई इन्हें संयोजक और कोई विभाजक मानते हैं। इनके प्रयोग में यह विशेषता है कि ये बाक्य दो वा अधिक शब्दों का विभाग बताकर उन सबका इकट्ठा उल्लेख करते हैं; जैसे, “क्या मनुष्य और क्या जीवजंतु, मैंने अपना सारा जन्म इन्हींका भला करने में गँवाया।” (गुटका०)। “क्या स्त्री क्या पुरुष, सब ही के मन में आनन्द छाय रहा था।” (प्रेम०)। न—न—ये दुहरे क्रियाविशेषण समुच्चय-बोधक होकर आते

हैं। इनसे दो वा अधिक शब्दों में से प्रत्येक का त्याग सूचित होता है; जैसे, “न उन्हें नींद आती थी न भूख व्यास लगती थी”। (प्रेम०)। कभी-कभी इनसे अशक्यता का बोध होता है; जैसे, “न ये अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेगे न कहीं जायेंगे”। (सत्य०)। “न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेंगो”। (कहा)। कभी-कभी इनका प्रयोग कार्य-कारण सूचित करने में होता है, जैसे, “न तुम आते न यह उपद्रव खड़ा होता”।

न कि—यह “न” और “कि” से मिलकर बना है। इससे बहुधा दो बातों में से दूसरी का निषेध सूचित होता है; जैसे, “अँगरेज लोग व्यापार के लिए आये थे न कि देश जीतने के लिए”।

नहीं तो—यह भी संयुक्त क्रियाविशेषण है, और समुच्चय-बोधक के समान उपयोग में आता है। इससे किसी बात के त्याग का फल सूचित होता है; जैसे, “उसने सुँद पर घूंघट सा डाल लिया है, नहीं तो राजा की आँखें कब उस पर ठहर सकती थीं”। (गुटका०)।

(इ) विरोधदर्शक—पर, परन्तु, किंतु, लेकिन, मगर, बरन, बल्कि। ये अव्यय दो बाक्यों में से पहले का निषेध वा परिमिति सूचित करते हैं।

पर—“पर” ठेठ हिंदी शब्द है, “परन्तु” तथा “किंतु” संस्कृत शब्द हैं और “लेकिन” तथा “मगर” उर्दू हैं। “पर”, “परन्तु” और “लेकिन” पर्यायवाची हैं। “मगर” भी इनका पर्यायवाची है; परन्तु इनका प्रयोग हिंदी में क्वचित् होता है। “प्रेमसागर” में केवल “पर” का प्रयोग पाया जाता है; जैसे,

“मूठ-सच की तो भगवान् जाने; पर मेरे मन में एक बात आई है।”

किंतु, वरन्—ये शब्द भी प्रायः पर्यायवाची हैं और इनका प्रयोग बहुधा निषेधवाचक वाक्यों के पश्चात् होता है; जैसे, “कामनाओं के प्रबल होने से आदमी दुराचार नहीं करते, किंतु अंतःकरण के निर्वल हो जाने से बैसा करते हैं।” (स्वा०)। “मैं केवल संपेरा नहीं हूँ; किंतु भाषा का कवि भी हूँ”। (मुद्रा०)। “इस सन्देश का इतने काल बीतने पर यथोचित समाधान करना कठिन है, वरन् बड़े-बड़े विद्वानों की मति भी इसमें विरुद्ध है।” (इति०)। “वरन्” बहुधा एक बात को कुछ दबाकर दूसरी को प्रधानता देने के लिए भी आता है; “जैसे पारस्पर देशवाले भी आर्य थे, वरन् इसी कारण उस देश को अब भी ईरान कहते हैं।” (इति०)। “वरन्” के पर्यायवाची “वरञ्च” (संस्कृत) और “वलिक” (उदू०) हैं।

(ई) परिणामदर्शक—इसलिए, सो, अतः, अतएव ।

इन अव्ययों से यह जाना जाता है कि इनके आगे के वाक्य का अर्थ पिछले वाक्य के अर्थ का फल है, जैसे, “अब भोर होने लगा था, इसलिए दोनों जन अपनी-अपनी ठौरों से उठे।” (ठेठ०)। इस उदाहरणमें “दोनों जन अपनी-अपनी ठौरों से उठे” यह वाक्य परिणाम सूचित करता है और “अब भोर होने लगा था”, यह कारण बतलाता है; इस कारण “इसलिए” परिणामदर्शक समुच्चय-बोधक है। यह शब्द मूल समुच्चय-बोधक नहीं है, किंतु “इस” और “लिए” के मेल से बना है, और समुच्चय-बोधक तथा कभी कियाविशेषण के समान उपयोग में आता है।) अं०—

२३७—सू०) । “इसलिए” के बदले कभी कभी “इससे”, “इस-वास्ते” वा “इस कारण” भी आता है ।

(स०—(१) “इसलिए” के और अर्थ आगे लिखे जायेंगे । (२) अवधारणा में “इसलिए” का रूप “इसीलिए” हो जाता है ।)

अतएव, अतः—ये संकृत शब्द “इसलिए” के पर्यायवाचक हैं और इनका प्रयोग उच्च हिंदौ में होता है ।

सो—यह निश्चयवाचक सर्वनाम (अ०—१३०) “इसलिए” के अर्थ में आता है, परंतु कभी-कभी इनका अर्थ “तब” वा “परंतु” भी होता है । जैसे, “मैं घर से बहुत दूर निकल गया था; सो मैं बड़े खेद से नीचे उतरा ” । “कंस ने अवश्य यशोदा की कन्या के प्राण लिये थे, सो वह असुर था ।” (गुटका०) ।

[स०—कानूनी हिंदी में “इसलिए” के बदले “लिहाजा” लिखा जाता है ।]

[८०—समानाधिकरण समुच्चय-बोधक अठयों से मिले हुए साधारण वाक्यों को कोई-कोई लेखक अलग-अलग लिखते हैं; जैसे, “भारतवासियों को अपनी दशा की परवा नहीं है । पर आपकी इजत का उन्हें बड़ा ख्याल है ।” (शिव०) । “उस समय लियों को पढ़ाने की जरूरत न समझी गई होगी, पर अब तो है । अतएव पढ़ाना चाहिये ।” (सर०) । इस प्रकार की रचना अनुकरणीय नहीं है ।]

२४५—जिन अठयों के योग से एक सुख्य वाक्य में एक वा अधिक आश्रित वाक्य जोड़े जाते हैं उन्हें व्याधिकरण समुच्चय-बोधक कहते हैं । इनके चार उपभेद हैं—

(अ) कारण-वाचक—क्योंकि, जोकि, इसलिए-कि ।

इन अठयों से आरंभ होनेवाले वाक्य पूर्ववाक्य का समर्थन करते हैं—अर्थात् पूर्व वाक्य के अर्थ का कारण उत्तर वाक्य

के अर्थ से सूचित होता है; जैसे, “इस नाटिका का अनुवाद करना मेरा काम नहीं था, क्योंकि मैं संस्कृत अच्छी नहीं जानता ।” (रत्ना०) । इस उदाहरण में उत्तर वाक्य पूर्व वाक्य का कारण सूचित करता है। यदि इस वाक्य को उलटकर ऐसा कहें कि “मैं संस्कृत अच्छी नहीं जानता, इसलिए (अतः, अतएव) इस नाटिका का अनुवाद करना मेरा काम नहीं था” तो पूर्व वाक्य से कारण और उत्तर वाक्य से उसका परिणाम सूचित होता है, और “इसलिए” शब्द परिणाम-बोधक है।

[टी०—यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब “इसलिए” को समानाधिकरण समुच्चय-बोधक मानते हैं, तब “क्योंकि” को इस बग्न में क्यों नहीं गिनते ? इस विषय में वैयाकरणों का एक मत नहीं है। कोई-कोई दोनों अव्ययों को समानाधिकरण कोई-कोई उन्हें व्यधिकरण समुच्चय-बोधक मानते हैं। इसके विरुद्ध किसी-किसी के मत का स्पष्टीकरण अगले उदाहरण से होगा—“गर्म हवा ऊपर उठती है, क्योंकि वह साधारण हवा से हल्की होती है ।” इस वाक्य में वक्ता का मुख्य अभिप्राय यह चात भताना है कि “गर्म हवा ऊपर उठती है;” इसलिए वह दूसरी चात का उल्लेख केवल पहली चात के समर्थन में करता है। यदि इसी चात को यों कहें कि “गर्म हवा साधारण हवा से हल्की होती है; इसलिए वह ऊपर उठती है”—तो जान परेगा कि यहाँ वक्ता का अभिप्राय दोनों चाँड़ प्रधानता-पूर्वक बताने का है। इसके लिए वह दोनों वाक्यों को इस तरह भी कह सकता है कि “गर्म हवा साधारण हवा से हल्की होती है और वह ऊपर उठती है ।” इस हित से “क्योंकि” व्यधिकरण समुच्चय-बोधक है; अर्थात् उससे आरंभ होनेवाला वाक्य आधित होता है और “इसलिए” समानाधिकरण समुच्चय-बोधक है—अर्थात् वह मुख्य वाक्यों को मिलाता है ।]

“क्योंकि” के बदले कभी कभी “कारण” शब्द आता है वह समुच्चय-बोधक का काम देता है। “काहे से कि” समुच्चय बोधक वाक्यांश है।

कभी-कभी कारण के अर्थ में परिमाण-बोधक “इसलिए” आता है और तब उसके साथ बहुधा “कि” रहता है; जैसे,

“दुष्यंत—क्यों माढ़व्य, तुम लाठी से क्यों दुरा कहा चाहते हो?

माढ़व्य—इसलिये कि मेरा अंग तो टेढ़ा है, और यह सीधी बनी है। (शकु०) ।

कभी-कभी पूर्व वाक्य में “इसलिए” क्रियाविशेषण के समान आता है और उत्तर वाक्य “कि” समुच्चय-बोधक से आरंभ होता है; जैसे, “कोई बात केवल इसीलिए मान्य नहीं है कि वह बहुत काल से मानी जाती है।” (सर०) । “(मैंने) इसलिये रोका था कि इस यंत्र में बड़ी शक्ति है।” (शकु०) । “कुछों, इसलिए कि वह पत्थरों से बना हुआ था, अपनी जगह पर शिखर की नाई खड़ा रहा।” (भाषासार०) ।

जोकि—यह उदौ “चूँकि” के बदले कानूनी भाषा में कारण सूचित करने के लिए आता है; जैसे, “जोकि यह अमर करीन मस्लहत है……इसलिए नीचे लिखे मुताबिक हुक्म होता है।” (एकट०) ।

इस उदाहरण में पूर्व वाक्य आश्रित है, क्योंकि उसके साथ कारणवाचक समुच्चय-बोधक आया है। दूसरे स्थानों में पूर्ववाक्य के साथ बहुधा कारणवाचक अव्यय नहीं आता; और वहाँ वह वाक्य मुख्य समझा जाता है। वैयाकरणों का मत है कि पहले

कारण और पीछे परिणाम कहने से कारणवाचक वाक्य आश्रित और परिणामबोधक वाक्य स्वतंत्र रहता है ।

(आ) उद्देशवाचक—कि, जो, ताकि, इसलिए कि ।

इन अव्ययों के पश्चात् आनेवाला वाक्य दूसरे वाक्य का उद्देश वा हेतु सूचित करता है । उद्देशवाचक वाक्य बहुधा दूसरे (मुख्य) वाक्य के पश्चात् आता है; पर कभी-कभी वह उसके पूर्व भी आता है । उदा०—“हम तुम्हें बुंदाबन भेजा चाहते हैं कि तुम उनका समाधान कर आओ” । (प्रेम०) । “किया क्या जाय ज्ञा देहातियों की प्राणरक्षा हो” । (सर०) । “लोग अकस्ट अपना हक पका करने के लिये दस्तावेजों की रजिस्टरी करा लेते हैं ताकि उनके दावे में किसी प्रकार का शक न रहे” । (चौ०पु०) । “मङ्गुआ मछली मारने के लिये हर घड़ी मिहनत करता है इसलिए कि उसको मछली का अच्छा मोल मिले ।” (जीविका०) ।

जब उद्देशवाचक वाक्य मुख्य वाक्य के पहले आता है तब उसके साथ कोई समुच्चय-बोधक नहीं रहता; परंतु मुख्य वाक्य “इसलिए” से आरंभ होता है; जैसे, “तपोबनवासियों के कार्य में विघ्न न हो, इसलिए रथ को यहीं रखिये ।” (शकु०) । कभी-कभी मुख्य वाक्य “इसलिए” के साथ पहले आता है और उद्देश-वाचक वाक्य ‘कि’ से आरंभ होता है; जैसे, “इस बात की चर्चा हमने इसलिए की है कि उसकी शंका दूर हो जावे ।

“जो” के बदले कभी-कभी जिसमें वा जिससे आता है; जैसे, “बेग बेग चली आ जिससे सब एक-संग चैम-कुशल से कुटी में पहुँचे ।” (शकु०) । “यह विस्तार इसलिये किया गया है

जिसमें पढ़नेवाले कालिदास का भाव अच्छी तरह समझ जायें ।"

(रघु०) ।

[स०—“ताकि” को छोड़कर शेष उद्देशवाचक सम्बन्धयोग्यक दूसरे अर्थों में भी आते हैं । “जो” और “कि” के अन्य अर्थों का विचार आगे होगा । कहीं-कहीं “जो” और “कि” पर्यायवाचक होते हैं; जैसे, “बाबा से समझायकर कहो जो वे मुझे खाली के संग पठाय दें ।” (प्रेम०) । इस उदाहरण में “जो” के बदले “कि” उद्देशवाचक का प्रयोग हो सकता है । “ताकि” और “कि” उद्दृश्य हैं और “जो” हिंदी है । “इसलिए” की व्युत्पत्ति पहले लिखी जा चुकी है । (अ०—२४४-ई) ।]

(इ) संकेतवाचक—जो—तो, यदि—तो, यद्यपि—तथापि (तोभी), चाहे—परंतु, कि ।

इनमें से ‘कि’ को छोड़कर शेष शब्द, संबंधवाचक और नित्य-संबंधी सर्वनामों के समान, जोड़े से आते हैं । इन शब्दों के द्वारा जुड़नेवाले वाक्यों में से एक में “जो”; “यदि”, “यद्यपि” या “चाहे” आता है और दूसरे वाक्य में क्रमशः “तो”, “तथापि” (तोभी) अथवा “परंतु” आता है । जिस वाक्य में “जो”, “यदि” “यद्यपि” या “चाहे” का प्रयोग होता है उसे पूर्व वाक्य और दूसरे को उत्तर वाक्य कहते हैं । इन अव्ययों को “संकेत-वाचक” कहने का कारण यह है कि पूर्व वाक्य में जिस घटना का वर्णन रहता है उससे उत्तर वाक्य की घटना का संकेत पाया जाता है ।

जो—तो—जब पूर्व वाक्य में कही हुई शर्त पर उत्तर वाक्य की घटना निर्भर होती है तब इन शब्दों का प्रयोग होता है । इसी अर्थ में “यदि-तो” आते हैं । “जो” साधारण भाषा में और ‘यदि’ शिष्ट अथवा पुस्तकी भाषा में आता है । उदा०—“जो तू अपने

मन से सच्चो है तो पति के घर में दासी होकर भी रहना अच्छा है ।” (शकु०) । “यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी अच्छी बात है ।” (सत्य०) । कभी-कभी “जो” से आतंक पाया जाता है, जैसे, “जो मैं राम तो कुल सहित कहाहि दसानन जाय ।” (राम०) “जो हरिश्चंद्र का तेजोभष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं ।” (सत्य०) । अबधारण में “तो” के बदले “तोभी” आता है; जैसे, जो (कुदुंब) होता तोभी मैं न देता ।” (मुद्रा०) ।

कभी-कभी कोई बात इतनी स्पष्ट होती है कि उसके साथ किसी शर्त की आवश्यकता नहीं रहती, जैसे “पथर पानी में ढूब जाता है” । इस वाक्य को बढ़ाकर यों लिखना कि “यदि पथर को पानी में डालें तो वह ढूब जाता है”, अनावश्यक है ।

“जो” कभी-कभी “जब” के अर्थ में आता है, जैसे “जो वह स्नेह ही न रहा तो अब सुधि दिलाये क्या होता है ।” (शकु०) । “जो” के बदले कभी-कभी “कदाचित्” (क्रियाविशेषण) आता है; जैसे, “कदाचित् कोई कुछ पूछे तो मेरा नाम बता देना ।” कभी-कभी “जो” के साथ (‘तो’ के बदले) “सो” समुच्चयबोधक आता है, जैसे “जो आपने रूपयों के बारे में लिखा सो अभी उसका बंदोबस्त होता कठिन है ।”

“यदि” से संबंध रखनेवाली एक प्रकार की वाक्यरचना हिंदी में अँगरेजी के सहवास से प्रचलिन हुई है जिसमें पूर्व वाक्य की शर्त का उल्लेख कर तुरंत ही उसका मंदन कर देते हैं, परंतु उच्चर वाक्य ज्यों का त्यों रहता है; जैसे, “यदि यह बात सत्य हो

(जो निसंदेह सत्य ही है) तो हिंदुओं को संसार में सब से बड़ी जाति मानना ही पड़ेगा । (भारत०) । “यदि” का पर्यायवाची उद्दृश्य शब्द “अगर” भी हिंदी में प्रचलित है ।

यद्यपि—तथापि (तोभी)—ये शब्द जिन वाक्यों में आते हैं उनके निश्चयात्मक विधानों में परस्पर विरोध पाया जाता है; जैसे, “यद्यपि यह देश तब तक जंगलों से भरा हुआ था तथापि अयोध्या अच्छी बस गई थी ।” (इति०) । “तथापि” के बदले बहुधा “तोभी” और कभी-कभी “परंतु” आता है; “यद्यपि हम बनवासी हैं तोभी लोक के व्यवहारों को भली भाँति जानते हैं ।” (शकु०) । “यद्यपि गुरु ने कहा है.....पर यह तो बहा पाप सा है ।” (मुद्रा०) ।

कभी-कभी “तथापि” एक स्वतंत्र वाक्य में आता है; और वहाँ उसके साथ “यद्यपि” की आवश्यकता नहीं रहती; जैसे, “मेरा भी हाल ठीक ऐसे ही बोने का जैसा है । तथापि एक बात अवश्य है ।” (रघु०) । इसी अर्थ में “तथापि” के बदले “तिस-पर-भी” वाक्यांश आता है ।

चाहे-परंतु-जब “यद्यपि” के अर्थ में कुछ संदेह रहता है तब उसके बदले “चाहे” आता है; जैसे, “उसने चाहे अपनी सखियों की ओर ही देखा हो; परंतु मैंने यही जाना ।” (शकु०) ।

“चाहे” बहुधा संबंधवाचक सर्वनाम, विशेषण वा क्रिया-विशेषण के साथ आकर उनकी विशेषता बतलाता है, और प्रयोग के अनुसार बहुधा क्रिया-विशेषण होता है; जैसे, “यहाँ चाहे जो कह लो; परन्तु अदालत में तुम्हारी गीदङ्ग-भभकी नहीं चल

सकती ।” (परी०) । “मेरे रनवास में चाहे जितनी रानी (रानियाँ) हों मुझे दो ही (चस्तुएँ) संसार में प्यारी होंगी ।” (शकु०) । “मनुष्य बुद्धि-विषयक ज्ञान में चाहे जितना पारंगत हो जाय, परन्तु... उसके ज्ञान से विशेष लाभ नहीं हो सकता ।” (सर०) । “चाहे जहाँ से अभी सब दे ।” (सत्य०) ।

दुहरे संकेतवाचक समुच्चयबोधक अव्ययों में से कभी-कभी किसी का लोप हो जाता है; जैसे, () “कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ता ।” (सत्य०) । () “इन सभ वातों से हमारे प्रभु के सब काम सिद्ध हुए प्रतीत होते हैं तथापि मेरे मन को धैर्य नहीं है ।” (रत्ना०) । “यदि कोई धर्म, न्याय, सत्य, प्रीति पौरुष का हमसे नमूना चाहे, () हम यही कहेंगे, “राम, राम, राम ।” (इति०) । “वैदिक लोग () कितना भी अच्छा लिखें तौभी उनके अचर अच्छे नहीं बनते ।” (मुद्रा०) ।

कि—जब यह संकेतवाचक होता है, तब इसका अर्थ “त्योहारी” होता है, और यह दोनों वाक्यों के बीच में आता है; जैसे, “अक्टोबर चला कि उसे नींद ने सताया ।” (सर०) । “शैव्या रोहिताश्व का मृत कंबल फाढ़ा चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है ।” (सत्य०) ।

कभी-कभी “कि” के साथ उसका समानार्थी वाक्यांश “इतने में” आता है जैसे, “मैं तो जाने ही को था कि इतने में आप आगये ।” (सत्य०) ।

(ई) स्वरूपवाचक—कि, जो, अर्थात्, याने, मानो ।

इन अव्ययों के द्वारा जुड़े हुए शब्दों वा वाक्यों में से पहले

शब्द वा वाक्य का स्वरूप (स्पष्टीकरण) पिछले शब्द वा वाक्य से जाना जाता है; इसलिए इन अव्ययों को स्वरूपवाचक कहते हैं ।

कि—इसके और-और अर्थ तथा प्रयोग पहले कहे गये हैं । जब यह अव्यय स्वरूपवाचक होता है तब इससे किसी बात का केवल आरंभ वा प्रस्तावना सूचित होती है, जैसे, “श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, अब आगे कथा सुनिए ।” (प्रेम०) । “मेरे मन में आती है कि इससे कुछ पूछूँ ।” (शकु०) । “बात यह है कि लोगों की रुचि एकसी नहीं होती ।” (रघु०) ।

जब आश्रित वाक्य मुख्य वाक्य के पहले आता है तब “कि” का लोप हो जाता है, परन्तु मुख्य वाक्य में आश्रित वाक्य का कोई समानाधिकरण शब्द आता है; जैसे, परमेश्वर एक है, यह धर्म की बात है । “रबर काहे का बनता है यह बात बहुतेरों को मालूम नहीं है ।”

[स०—इस प्रकार की उल्लटी रचना का प्रचार हिंदी में बहुधा बँगला और मराठी की देखादेखी होने लगा है; परंतु वह सार्वत्रिक नहीं है । प्राचीन हिंदी कविता में ‘कि’ का प्रयोग नहीं पाया जाता । आजकल के गव्य में भी कहीं कहीं इसका लोप कर देते हैं । जैसे, “क्या जाने, किसी के मन में क्या भरा है ।”]

जो—यह स्वरूपवाचक “कि” का समानार्थी है, परंतु उसकी अपेक्षा अब व्यवहार में कम आता है । प्रेमसागर में इसका प्रयोग कहीं जगह हुआ है; जैसे, “यही विचारों जो मधुरा और बृन्दावन में अंतर ही क्या है ।” “विसने बड़ी भारी चूक की जो तेरी मौँग श्रीकृष्ण को दी ।” जिस अर्थ में भारतेंदु जी ने “कि” का प्रयोग किया है उसी अर्थ में द्विवेदीजी बहुधा “जो” लिखते

हैं; जैसे, “ऐसा न हो कि कोई आ जाय।” (सत्य०) । “ऐसा न हो जो इन्द्र यह समझे।” (रघु०)

[टी०—बँगला, उडिया, मराठी, आदि आयं-भाषायों में “कि” वा “जो” के संबंध से दो प्रकार की रचनाएँ पाई जाती हैं जो संस्कृत के “यत्” और “इति” अव्ययों से निकली हैं। संस्कृत के “यत्” के अनुसार उनमें “जे” आता है और “इति” के अनुसार बँगला में “वलिया,” उडिया में “बोली,” मराठी में “मदणून” और नैपाली में (कैलाग के अनुसार) “भनि” है। इन सब का अर्थ “कहकर” होता है। हिंदी में “इति” के अनुसार रचना नहीं होती; परंतु “यत्” के अनुसार इसमें “जो” (स्वरूपवाचक) आता है। इस “जो” का प्रयोग उद्दूँ “कि” के समान होने के कारण “जो” के बदले “कि” का प्रचार हो गया है और “जो” कुछ चुने हुए स्थानों में रह गया। मराठी और गुजराती में “कि” क्रमशः “की” और “के” के रूप में आता है। दक्षिणी हिंदी में “इति” के अनुसार जो रचना होती है; उसमें “इति” के लिए “करके” (समुच्चय-चोबक के समान) आता है, जैसे,, “मैं जाऊँगा करके नौकर मुझसे कहता था” = नौकर मुझसे कहता था कि मैं जाऊँगा ।]

कभी-कभी मुख्य वाक्य में “ऐसा” “इतना,” “यहाँ तक” अथवा कोई विशेषण आता है और उसका स्वरूप (अर्थ) स्पष्ट करने के लिए “कि” के पश्चात् आश्रित वाक्य आता है; जैसे, “क्या और देशों में इतनी सर्दी पड़ती है कि पानी जमकर पत्थर की चट्टान की नाई हो जाता है ?” (भाषासार०) । “चोर ऐसा भागा कि उसका पता ही न लगा ।” कैसी छलांग भरी है कि घरती से ऊपर ही दिखाई देता है !” (शक०) । “कुछ लोगों ने आदमियों के इस विश्वास को यहाँ तक उत्तेजित

कर दिया है कि वे अपने मनोविकारों को तर्कशास्त्र के प्रमाणों से भी अधिक बलवान मानते हैं ।” (स्वा०) । “कालचक बड़ा प्रबल है कि किसी को एक ही अवस्था में नहीं रहने देता ।” (मुद्रा०) । “तू बड़ा मूर्ख है जो हमसे ऐसी बात कहता है ।” (प्रेम०) ।

(द०—इस अर्थ में “कि” (या “जो”) केवल स्वरूपवाचक ही नहीं किंतु परिणामबोधक भी हैं । समानाधिकरण समुच्चय-बोधक “इसलिए” से जिस परिणाम का बोध होता है उससे “कि” के द्वारा सूचित होनेवाला परिणाम भिन्न है, क्योंकि इस में परिणाम के साय स्वरूप का अर्थ मिला हुआ है । इस अर्थ में केवल एक समुच्चय-बोधक “कि” आता है; इसलिए उसके इस एक अर्थ का विवेचन यहीं कर दिया गया है ।)

कभी-कभी “यहाँ तक” और “कि” साथ साथ आते हैं और केवल वाक्यों ही को नहीं, किंतु शब्दों को भी जोड़ते हैं; जैसे “बहुत आदमी उन्हें सच मानने लगते हैं; यहाँ तक कि कुछ दिनों में वे सर्वसम्मत हो जाते हैं ।” (स्वा०) । “इसपर तुम्हारे बड़े अन्न, रस्सियाँ, यहाँ तक कि उपले लादकर लाते थे ।” (शिव०) । “क्या यह भी संभव है कि एक के काव्य के पद के पद, यहाँ तक कि प्रायः श्लोकाद्व॑ के श्लोकाद्व॑ तद्वत् दूसरे के दिमाग से निकल पड़े ?” (रघु०) । इन उदाहरणों में “यहाँ तक कि” समुच्चय-बोधक वाक्यांश है ।

अर्थात्—यह संकृत विभक्त्यंत संज्ञा है; पर हिंदी में इसका प्रयोग समुच्चय-बोधक के समान होता है । यह अन्यथा किसी शब्द वा वाक्य का अर्थ समझाने में आता है; जैसे, “धातु के दुकड़े ठप्पेके होनेसे सिक्का अर्थात् मुद्रा कहाते हैं ।” (जीविका०) ।

“गौतम बुद्ध अपने पाँचों चेलों समेत चौमासे भर अर्थात् वरसात भर बनारस में रहा।” (इति०) । “इनमें परस्पर सजातीय भाव है, अर्थात् ये एक दूसरी से जुदा नहीं हैं।” (स्वा०) । कभी-कभी “अर्थात्” के बदले “अथवा,” “बा,” “या” आते हैं; और तब यह बताना कठिन हो जाता है कि ये स्वरूपवाचक हैं या विभाजक; अर्थात् ये एक ही अर्थवाले शब्दों को मिलाते हैं या अलग-अलग अर्थवाले शब्दों को; जैसे, “वस्ती अर्थात् जनस्थान या जनपद का तो नाम भी मुश्किल से मिलता था।” (इति०) । “तुम्हारी हैसियत या स्थिति चाहे जैसी हो।” (आदर्श०) ।” किसी और तरीके से सज्जान, बुद्धिमान् या अक्लमंद होना आदमी के लिए मुमकिन ही नहीं।” (स्वा०) ।

[दू०—किसी वाक्य में कठिन शब्द का अर्थ समझाने में अपवा एक वाक्य का अर्थ दूसरे वाक्य के द्वारा स्पष्ट करने में विभाजक तथा स्वरूपबोधक अव्ययों के अर्थ के अंतर पर ध्यान न रखने से भाषा में सरलता के बदले कठिनता आ जाती है और कहीं-कहीं अर्थहीनता भी उत्पन्न होती है ।]

कानूनी भाषा में दो नाम सूचित करने के लिए “अर्थात्” का पर्याय-चाची उद्भू “उक्त” लाया जाता है और साधारण बोल-चाल में “याने” आता है ।]

मानो—यह “मानना” क्रिया के विधि-काल का रूप है; पर कभी-कभी इसका प्रयोग “ऐसा” के साथ उपमा (उत्पेक्षा) में समुच्चय-बोधक के समान होता है; जैसे, यह चित्र ऐसा सुहावना लगता है मानो साज्जात् सुंदरावा आगे खड़ा हो। (शक्त०) । आगे देखि जरति रिस भारी। मनहुँ रोष तरबार उधारी ॥ (राम०) ।

२४६—अब हम “जो” के एक ऐसे प्रयोग का उदाहरण देते हैं जिसका समावेश पहले कहे हुए समुच्चयबोधकों के किसी वर्ग में नहीं हुआ है। “मुझे मरना नहीं जो तेरा पक्ष करूँ ।” (प्रेम०)। इस उदाहरण में “जो” न संकेतवाचक है, न उद्देश्यवाचक, न स्वरूपवाचक। यहाँ “जो” का अर्थ “जिसलिए” है और “जिसलिए” कभी-कभी “इसलिए” के पर्याय में आता है; जैसे, “यहाँ एक सभा होनेवाली है, जिसलिए (इसलिए) सब लोग इकट्ठे हैं ।” इस हांठि से दूसरा वाक्य परिणाम-दर्शक मुख्य वाक्य हो सकता है।

२४७—संस्कृत और उर्दू शब्दों को छोड़कर (जिनकी व्युत्पत्ति हिंदी व्याकरण को सोमा के बाहर है) हिंदी के अधिकांश समुच्चय-बोधकों की व्युत्पत्ति दूसरे शब्दभेदों से है और कई एक का प्रचार आधुनिक है। “और” सार्वनामिक विशेषण है। “जो” संबंध-वाचक सर्वनाम और “सो” निश्चयवाचक सर्वनाम है। यदि, परंतु, किंतु आदि शब्दों का प्रयोग “रामचरितमानस” और “प्रेमसागर” में नहीं पाया जाता ।

[टी०—संबंध-सूचकों के समान समुच्चयबोधकों का वर्गीकरण भी व्याकरण की हांठि से आवश्यक नहीं है। इस वर्गीकरण से केवल उनके भिन्न-भिन्न अर्थ वा प्रयोग जानने में सहायता मिल सकती है। पर समुच्चय-बोधक अव्ययों के जो मुख्य वर्ग माने गये हैं उनकी आवश्यकता वाक्य-पृथक्-करण के विचार से होती है, क्योंकि वाक्य-पृथक्-करण वाक्य के अवयवों तथा वाक्यों का परस्पर संबंध जानने के लिए बहुत ही आवश्यक है।

समुच्चय-बोधकों का संबंध वाक्य-पृथक्-करण से होने के कारण यहाँ इसके विषय में सचेष्टः कुछ कहने की आवश्यकता है।

वाक्य बहुधा तीन प्रकार के होते हैं—साधारण, मिश्र और संयुक्त। इनमें से साधारण वाक्य इकहरे होते हैं, जिनमें वाक्य-संयोग की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यह आवश्यकता केवल मिश्र और संयुक्त वाक्यों

में होती है। मिथ वाक्य में एक मुख्य वाक्य रहता है और उसके साथ एक या अधिक आंशिक वाक्य आते हैं। संयुक्त वाक्य के अंतर्गत सब वाक्य मुख्य होते हैं। मुख्य वाक्य अर्थ में एक दूसरे से स्वतंत्र रहता है, परंतु आंशिक वाक्य मुख्य वाक्य के ऊपर अवलंबित रहता है। मुख्य वाक्यों को जोड़नेवाले समुच्चय-बोधकों को समानाधिकरण कहते हैं, और मिथ वाक्य के उपवाक्यों को जोड़नेवाले अव्यय व्यधिकरण कहाते हैं।

जिन हिंदी-व्याकरणों में समुच्चय-बोधकों के भेद माने गये हैं उनमें से प्रायः सभी दो भेद मानते हैं—(१) संयोजक और (२) विभाजक। इन दोनों भेदों में आ सकते हैं। इसलिए यहाँ इन भेदों पर विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

“भाषातत्वदीपिका” में समुच्चय-बोधकों के केवल पाँच भेद माने गये हैं जिनमें और कई अव्ययों के सिवा “इसलिए” का भी ग्रहण नहीं किया गया। यह अव्यय आदम के व्याकरण को छोड़ और किसी व्याकरण में नहीं आया जिससे अनुमान होता है कि इसके समुच्चय-बोधक होने में संदेह है। इस शब्द के विषय में हम पहले लिख चुके हैं कि यह नूल अव्यय नहीं है, किंतु संबंध-सूचकांत सर्वनाम है; परंतु इसका प्रयोग समुच्चय-बोधक के समान होता है और दो-तीन संस्कृत अव्ययों को छोड़ हिंदी में इस अर्थ का और कोई अव्यय नहीं है। ‘इसलिए,’ ‘अतएव,’ ‘अतः’ और (उर्दू) ‘लिहाजा’ से परिणाम का बोध होता है और यह अर्थ दूसरे अव्ययों से नहीं पाया जाता, इसलिए इन अव्ययों के लिए एक अलग भेद मानने की आशयकता है।

हमारे किये हुए वर्गोंकरण में यह दोष हो सकता है कि एक ही शब्द कहीं-कहीं एक से अधिक वर्गों में आया है। यह इसलिए हुआ है कि कुछ शब्दों के अर्थ और प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, परंतु केवल वे ही शब्द एक वर्ग में नहीं आये, और भी दूसरे शब्द उस वर्ग में आये हैं।]

चौथा अध्याय ।

विस्मयादि-बोधक ।

२४८—जिन अव्ययों का संबंध वाक्य से नहीं रहता और जो वक्ता के केवल हर्ष-शोकादि भाव सूचित करते हैं उन्हें विस्मयादि-बोधक अव्यय कहते हैं; जैसे, “हाय ! अब मैं क्या करूँ ?” (सत्य०)। “हैं ! यह क्या कहते हो ?” (परी०)। इन वाक्यों में “हाय” दुःख और “हैं” आश्चर्य तथा क्रोध सूचित करता है और जिन वाक्यों में ये शब्द हैं उनसे इनका कोई संबंध नहीं है ।

व्याकरण में इन शब्दों का विशेष महत्व नहीं, क्योंकि वाक्य का मुख्य काम जो विधान करना है उसमें इनके योग से कोई आवश्यक सहायता नहीं मिलती । इसके सिवा इनका प्रयोग केवल वहीं होता है जहाँ वाक्य के अर्थ की अपेक्षा अधिक तीव्र भाव सूचित करने की आवश्यकता होती है । “मैं अब क्या करूँ ?” इस वाक्य से शोक पाया जाता है, परंतु यदि शोक की अधिक तीव्रता सूचित करनी हो तो इसके साथ “हाय” जोड़ देंगे; जैसे, “हाय ! अब मैं क्या करूँ ?” विस्मयादि-बोधक अव्ययों में अर्थ का अत्यंताभाव नहीं है, क्योंकि इनमें से प्रत्येक शब्द से पूरे वाक्य का अर्थ निकलता है; जैसे अकेले “हाय” के उचारण से यह भाव जाना जाता है कि “मुझे बड़ा दुःख है ।” तथापि जिस प्रकार शरीर वा स्वर की चेष्टा से मनुष्य के मनोविकारों का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार विस्मयादि-बोधक अव्ययों से भी इन मनोविकारों का अनुमान होता है; और जिस प्रकार चेष्टा को व्याकरण में व्यक्त भाषा नहीं मानते उसी प्रकार विस्मयादि-बोधकों की गिनती वाक्य के अव्ययों में नहीं होती ।

२४९—भिन्न-भिन्न मनोविकार सूचित करने के लिए भिन्न-भिन्न विस्मयादि-बोधक उपयोग में आते हैं; जैसे,

हृषीबोधक—आह ! बाह वा ! धन्य धन्य ! शाशाश ! जय !
जयति !

शोकबोधक—आह ! ऊह ! हा हा ! हाय ! दइया रे ! बाप
रे ! त्राहि त्राहि ! राम राम ! हा राम !

आश्चर्यबोधक—बाह ! हैं ! ऐ ! ओहो ! बाह वा ! क्या !

अनुमोदनबोधक—ठीक ! बाह ! अच्छा ! शाशाश ! हैं हैं !

(कुछ अभिमान में) भला !

तिरस्कारबोधक—छिः ! हट ! अरे ! दूर ! घिक ! चुप !

स्वोकारबोधक—हैं ! जी हैं ! अच्छा ! जी ! ठीक ! बहुत
अच्छा !

सम्बोधनयोतक—अरे ! रे ! (छोटों के लिए), अजी ! लो !
हे ! हो ! क्या ! अहो ! क्यों !

[२५०—खी के लिए “अरे” का रूप “अरी” और “रे” का रूप
“री” होता है। आदर और बहुत्व के लिए दोनों लिंगों में “अहो”,
“अजी” आते हैं।

“हे”, “हो” आदर और बहुत्व के लिए दोनों लिंगों में आते हैं।
“हो” बहुधा संज्ञा के आगे आता है।

“सत्य-हरिचंद्र” में खीलिंग संज्ञा के साथ “रे” आया है; जैसे,
“बाह रे ! महानुभावता !” यह प्रयोग अशुद्ध है।)

२५०—कई-एक क्रियाएँ, संज्ञाएँ, विशेषण और क्रियाविशेषण
भी विस्मयादि-बोधक हो जाते हैं; जैसे, भगवान ! राम राम !
अच्छा ! लो ! हट ! चुप ! क्यों ! खैर ! अस्तु !

२५१—कभी-कभी पूरा वाक्य अथवा वाक्यांश विस्मयादि-बोधक हो जाता है; जैसे, क्या बात है ! बहुत अच्छा ! सर्वनाश हो गया ! धन्य महाराज ! क्यों न हो ! भगवान न करे ! उन वाक्यों और वाक्यांशों से मनोविकार अवश्य सूचित होते हैं, परंतु इन्हें विस्मयादि-बोधक मानना ठीक नहीं है। इनमें जो वाक्यांश हैं उनके अध्याहृत शब्दों को व्यक्त करने से वाक्य सहज ही बन सकते हैं। यदि इस प्रकार के वाक्यों और वाक्यांशों को विस्मयादि-बोधक अव्यय मानें तो फिर किसी भी मनोविकारसूचक वाक्य को विस्मयादि-बोधक अव्यय मानना होगा; जैसे, “अपराधी निर्देश है, पर उसे कौसी भी हो सकती है !” (शिव०) ।

(क) कोई-कोई लोग बोलने में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनको न तो वाक्य में कोई आवश्यकता होती है और न जिनका वाक्य के अर्थ से कोई संबंध रहता है; जैसे, “जो है सो,” “राम-आसरे,” “क्या कहना है,” “क्या नाम करके,” इत्यादि। कविता में लु, सु, हि, अही, इत्यादि शब्द इसी प्रकार से आते हैं जिनको पादपूरक कहते हैं। “अपना” (“अपने”) शब्द भी इसी तरह उपयोग में आता है; जैसे, “तू पढ़-लिखकर होशयार हो गया अपना कमाला ।” (सर०) । ये सब एक प्रकार के व्यर्थी अव्यय हैं, और इनको अलग कर देने से वाक्यार्थ में कोई बाधा नहीं आती ।

दूसरा भाग

शब्द-साधन

दूसरा परिच्छेद ।

रूपांतर ।

पहला अध्याय ।

लिंग ।

२५२—अलग-अलग अर्थ सूचित करने के लिए शब्दों में जो विकार होते हैं उन्हें रूपांतर कहते हैं । (अं०—६१) ।

[८०—इस भाग के पहले तीन अध्यायों में संज्ञा के रूपांतरों का विवेचन किया जायगा ।]

२५३—संज्ञा में लिंग, वचन और कारक के कारण रूपांतर होता है ।

२५४—संज्ञा के जिस रूप से वस्तु की (पुरुष वा स्त्री) जाति का बोध होता है उसे लिंग कहते हैं । हिंदी में दो लिंग होते हैं—(१) पुँजिंग शुद्ध शब्द “पुँलिंग” वा पुँजिंग है पर हिंदी में इसी प्रकार लिखने का प्रचार है । और (२) स्त्रीलिंग ।

[८०—सृष्टि की संपूर्ण वस्तुओं की मुख्य दो जातियाँ—चेतन और जड़—हैं । चेतन वस्तुओं (जीवधारियों) में पुरुष और स्त्री-जाति का भेद होता है; परंतु जड़ पदार्थों में यह भेद नहीं होता । इसलिए संपूर्ण वस्तुओं की एकत्र तीन जातियाँ होती

है—पुरुष, स्त्री और जड़ । इन तीन जातियों के विचार से व्याकरण में उनके वाचक शब्दों को तीन लिंगों में बांटते हैं—(१) पुलिंग (२) स्त्रीलिंग और (३) नपुंसक-लिंग । अंगरेजी व्याकरण में लिंग का निर्णय बहुधा इसी व्यवस्था के अनुसार होता है । संस्कृत, मराठी, गुजराती, आदि भाषाओं में भी तीन-तीन लिंग होते हैं; परंतु उनमें कुछ जड़ पदार्थों को उनके कुछ विशेष गुणों के कारण सचेतन मान लिया है । जिन पदार्थों में कठोरता, बल, अद्वितीयता आदि गुण दिखते हैं उनमें पुरुषत्व की कल्पना करके उनके वाचक शब्दों को पुलिंग, और जिनमें नम्रता, कोमलता, सुन्दरता आदि गुण दिखाई देते हैं, उनमें स्त्रीत्व की कल्पना करके उनके वाचक शब्दों को स्त्रीलिंग कहते हैं । शेष अपार्थिवाचक शब्दों को बहुधा नपुंसक-लिंग कहते हैं । हिंदी में लिंग के विचार से सब जड़ पदार्थों को सचेतन मानते हैं, इसलिए इसमें नपुंसक-लिंग नहीं है । यह लिंग न होने के कारण हिंदी की लिंग-व्यवस्था पूर्वोक्त भाषाओं की, अपेक्षा कुछ सहज है; परंतु जड़ पदार्थों में पुरुषत्व या स्त्रीत्व की कल्पना करने के लिए कुछ शब्दों के रूपों को तथा दूसरी भाषाओं के शब्दों के मूल लिंगों को छोड़कर और कोई आधार नहीं है ।]

२५५—जिस संज्ञा से (यथार्थ वा कलिपत) पुरुषत्व का बोध होता है उसे पुलिंग कहते हैं; जौसे, लड़का, बैल, पेड़; नगर इत्यादि । इन उदाहरणों में “लड़का” और “बैल” यथार्थ पुरुषत्व सूचित करते हैं; और “पेड़” तथा “नगर” से कलिपत पुरुषत्व का बोध होता है, इसलिए ये सब शब्द पुलिंग हैं ।

२५६—जिस संज्ञा से (यथार्थ वा कलिपत) स्त्रीत्व का बोध होता है उसे स्त्रीलिंग कहते हैं; जैसे, लड़की, गाय, लता, पुरी, इत्यादि । इन उदाहरणों में “लड़की” और “गाय” से यथार्थ स्त्रीत्व का और “लता” “पुरी” से कलिपत स्त्रीत्व का बोध होता है; इसलिए ये शब्द स्त्रीलिंग हैं ।

लिंग निर्णय ।

२५७—हिंदी में लिंग का पूर्ण निर्णय करना कठिन है। इसके लिए व्यापक और पूरे नियम नहीं बन सकते, क्योंकि इनके लिए भाषा के निश्चित व्यवहार का आधार नहीं है। तथापि हिंदी में लिंग-निर्णय दो प्रकार से किया जा सकता है—(१) शब्द के अर्थ से और (२) उसके रूप से। बहुधा प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार और अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग रूप के अनुसार निश्चित करते हैं। शेष शब्दों का लिंग केवल व्यवहार के अनुसार माना जाता है; और इसके लिए व्याकरण से पूर्ण सहायता नहीं मिल सकती।

२५८—जिन प्राणिवाचक संज्ञाओं से जोड़े का ज्ञान होता है उनमें पुरुषबोधक संज्ञाएँ पुङ्गिंग और स्त्रीबोधक संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं; जैसे, पुरुष, घोड़ा, मोर इत्यादि पुङ्गिंग हैं; और स्त्री, घोड़ी; मोरनी, इत्यादि स्त्रीलिंग हैं।

अप०—“संतान” और “सवारी” (यात्री) स्त्रीलिंग हैं।

[**स०—**शिष्ट लोगों में स्त्री के लिए “धर के लोग”—पुङ्गिंग शब्द—बोला जाता है। संस्कृत में “दार” (स्त्री) शब्द का प्रयोग पुङ्गिंग, बहुवचन में होता है।]

(क) कहै एक मनुष्येतर प्राणिवाचक संज्ञाओं से दोनों जातियों का बोध होता है; पर वे व्यवहार के अनुसार नित्य पुङ्गिंग वा स्त्रीलिंग होती हैं; जैसे,

पु०—पक्षी, उल्लू, कौश्रा, भेड़िया, चीता, खटमल, केंचुआ, इत्यादि ।

स्त्री०—चील, कोयल, चटेर, मैना, गिलहरी, जोक, तितली, मक्खी, मछुली, इत्यादि ।

स०—इन शब्दों के प्रयोग में लोग इस बात की चिंता नहीं करते कि इनके बाब्य प्राणी पुरुष हैं वा स्त्री। इस प्रकार के उदाहरणों को एकलिंग कह सकते हैं। कहीं-कहीं “हाथी” को स्त्रीलिंग में बोलते हैं, पर यह प्रयोग अशुद्ध है।

(ख) प्राणियों के समुदाय-वाचक नाम भी व्यवहार के अनुसार पुलिंग वा स्त्रीलिंग होते हैं; जैसे,

पु०—समूह, झुँड, कुदुंच, संघ, दल, मंडल, इत्यादि ।

खी०—भीड़, फौज, सभा, प्रजा, सरकार, टोली, इत्यादि ।]

२५६—हिंदी में अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग जानना विशेष कठिन है, क्योंकि यह बात अधिकांश व्यवहार के अधीन है। अर्थ और रूप, दोनों ही साधनों से इन शब्दों का लिंग जानने में कठिनाई होती है। नीचे लिखे उदाहरणों से यह कठिनाई स्पष्ट जान पड़ेगी ।

(अ) एक ही अर्थ के कई अलग-अलग शब्द अलग-अलग लिंग के हैं, जैसे; नेत्र (पु०), आँख (खी०), मार्ग (पु०), बाट (खी०) ।

(आ) एक ही अंत के कई एक शब्द अलग-अलग लिंगों में आते हैं। जैसे, कोदों (पु०), सरसों (खी०), खेल (पु०), दौड़ (खी०), आलू (पु०), लायू (खी०) ।

(इ) कई शब्दों को भिन्न-भिन्न लेखक भिन्न-भिन्न लिंगों में लिखते हैं; जैसे, उसकी चर्चा, (खी०) । (परी०) । इसका चर्चा, (पु०) । (इति०) । सीरी पवन, (खी०) । (नील०) । पवन चल रहा था, (रघु०) । मेरे जान, (पु०) । (परी०) । मेरी जान में, (खी०) । (गुटका०) ।

(ई) एकही शब्द एकही लेखक की पुस्तकों में अलग-अलग लिंगों में आता है; जैसे, देह “ठंठी पड़ गई” (ठेठ०, पृष्ठ ३३), “डसके सब देह में” (ठेठ०, पृष्ठ ५०)। “कितने” संतान हुए (इति०, पृ० १), “रघुकुल-भूपण की संतान” (गुटका० ती० भा०, पृ० ४)। “बहुत बरसें हो गईं” (भ्रा०, पृष्ठ ०१)। “सबा सौ बरस हुए” (सर०, भाग १५, पृष्ठ ६४०)।

(श०—अंत के दो (इ और ई) उदाहरणों की लिंग-भिन्नता शिष्ट प्रयोग के अनादर से अर्थवा छापे की भूल से उत्पन्न हुई है ।)

२६०—किसी-किसी ढौयाकरण ने अप्राणिवाचक संज्ञाओं के अर्थ के अनुसार लिंग-निर्णय करने के लिए कहीं नियम बनाये हैं; पर ये अव्यापक और अपूर्ण हैं । अव्यापक इसलिए कि एक नियम में जितने उदाहरण हैं प्रायः उतने ही अपवाद हैं; और अपूर्ण इसलिए कि ये नियम थोड़े ही प्रकार के शब्दों पर बने हैं, शेष शब्दों के लिए कोई नियम ही नहों है । इन अव्यापक और अपूर्ण नियमों के कुछ उदाहरण हम अन्यान्य व्याकरणों से यहाँ लिखते हैं—

(१) नीचे लिखे अप्राणिवाचक शब्द अर्थ के अनुसार पुङ्किंग हैं—

(अ.) शरीर के अवयवों के नाम—बाल, सिर, मस्तक, तालु, औंठ, दाँत, मुँह, कान, गाल, हाथ, पाँव, नख, रोम, इत्यादि ।

अप०—आंख, नोक, जीभ, जाँघ, खाल, नस, इत्यादि ।

(आ) धातुओं के नाम—सोना, रूपा; ताँचा, पीतल, लोहा, सीसा, टीन, कॉसा, इत्यादि ।

अप०—चाँदी, मिट्टी, धातु, इत्यादि ।

(इ) रब्डों के नाम—हीरा, मोती, माणिक, मूँगा, पन्ना, इत्यादि ।

अप०—मणि, चुनी, लालडी, इत्यादि ।

(ई) पेड़ों के नाम—पीपल, बड़, सागौन; शीशम, देवदार, अशोक, इत्यादि ।

अप०—नीम, जामुन, कचनार, इत्यादि ।

(उ) अनाजों के नाम—जी, गेहूँ, चावल, बाजरा, मटर, उड्डद, चना, तिल, इत्यादि ।

अप—मक्का, जुआर, मूँग, अरहर, इत्यादि ।

(ऊ) द्रव-पदार्थों के नाम—घी, तेल, पानी, दही, मही, शर्वत, सिरका, अतर, आसव, अबलेह, इत्यादि ।

अप०—छाछ, स्याही, मसि, इत्यादि ।

(ऋ) जल और स्थल के भागों के नाम—देश, नगर, ढीप, पहाड़, समुद्र, सरोवर, आकाश, पाताल, घर, इत्यादि ।

अप०—नदी, झील, घाटी, इत्यादि ।

(ए) प्रह्लों के नाम—सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, शनि, राहु, केतु, इत्यादि ।

अप०—पृथ्वी ।

(ऐ) वर्णमाला के अक्षरों के नाम—जैसे, अ, औ, क, प, य, श, इत्यादि ।

अप०—इ, ई, औ ।

(२) अर्थ के अनुसार नीचे लिखे शब्द स्त्रीलिंग हैं—

(अ) नदियों के नाम—गंगा, यमुना, नर्मदा, तापी, कृष्णा, इत्यादि ।

अप०—सोन, सिंधु, ब्रह्मपुत्र ।

(आ) तिथियों के नाम—परिवा, दूज, तीज, चौथ इत्यादि ।

(इ) नक्त्रों के नाम—अश्वनी, मरणी, कृतिका, रोहिणी इत्यादि ।

(ई) किराने के नाम—लौंग, इलायची, सुपारी, जावित्री, (जाय-पत्री) दालचीनी, इत्यादि ।

अप०—तेजपात, कपूर, इत्यादि ।

(उ) भोजनों के नाम—पूरी, कचौरी, खीर, दाल, रोटी, तर-कारी, खिचड़ी, कढ़ी, इत्यादि ।

अप०—भात, रायता, हलुआ, मोहनभोग, इत्यादि ।

(ऊ) अनुकरण-वाचक शब्द; जैसे, भक्तक, बहवह, भंकट, इत्यादि ।

२६१—अब संज्ञाओं के रूप के अनुसार लिंगनिर्णय करने के कुछ नियम लिखे जाते हैं। ये नियम भी अपूर्ण हैं, परंतु बहुधा निरपवाद हैं। हिंदी में संस्कृत और उद्घूर शब्द भी आते हैं, इसलिए इन भाषाओं के शब्दों का अलग-अलग विचार करने में सुभीता होगा—

१—हिंदी-शब्द ।

पुर्णिंग

(अ) ऊनवाचक संज्ञाओं को छोड़ शेष अकारांत संज्ञाएँ जैसे, कगड़ा, गन्ना, पैसा, पहिया, आटा, चमड़ा, इत्यादि ।

(आ) जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में ना, आव, पन वा पा होता है; जैसे, आना, गाना, बहाव, चढ़ाव, बढ़प्पन, बुढ़ापा इत्यादि ।

(इ) कुदंत की आनांत संज्ञाएँ; जैसे, लगान, मिलान, खान पान, नहान, उठान, इत्यादि ।

खीलिंग ।

(अ) ईकारांत संज्ञाएँ; जैसे, नदी, चिट्ठी, रोटी, टोपी, उदासी, इत्यादि ।

अप०—पानी, घो, जी, मोती, दही, मही ।

[स०—कही-कही “दही” को खीलिंग में बोलते हैं; पर यह अशुद्ध है ।]

(आ) ऊनवाचक याकारांत संज्ञाएँ; जैसे, फुड़िया, खटिया, डिविया; पुड़िया, ठिलिया, इत्यादि ।

(इ) तकारांत संज्ञाएँ; जैसे, रात, बात, लात, छत, भीत, पत, इत्यादि ।

अप०—भात, खेत, सूत, गात, दाँत इत्यादि ।

(ई) ऊकारांत संज्ञाएँ; जैसे, बालू, लू, दारू, गेरू, आफू, ब्यालू, भाङू, इत्यादि ।

अप०—आँसू, आलू, रतालू, टेसू ।

(उ) अनुस्वारांत संज्ञाएँ; जैसे, सरसों, जोखों, खड़ाऊँ, गों, दों, चूँ, इत्यादि ।

अप०—कोदों, गेरूँ ।

(ऊ) सकारांत संज्ञाएँ; जैसे—प्यास, मिठास, निदास, रास, (लगाम), बास, सौस, इत्यादि ।

अप०—निकास, कॉस, रास (नृत्य) ।

(ऋ) कुदंत की नकारांत संज्ञाएँ; जिनका उपांत्य वर्ण अकारांत हो, अथवा जिनका धातु नकारांत हो; जैसे, रहन, सूजन, जलन, उलझन, पहचान, इत्यादि ।

अप०—चलन और चाल-चलन उभयलिंग हैं ।

(ए) कुदंत की अकारांत संज्ञाएँ; जैसे, लूट, मार, समझ, दौड़, सँभाल, रगड़, चमक, छाप पुकार इत्यादि ।

अप०—खेल, नाच, मेल, विगाह, बोल, उतार, इत्यादि ।

(ऐ) जिन भावबाचक संज्ञाओं के अंत में ट, टट वा हट होता है; जैसे, सजावट, बनावट, घबराहट, चिकनाहट, झंझट, आहट, इत्यादि ।

(ओ) जिन संज्ञाओं के अंत में ख होता है, जैसे, ईख, भूख, राख, चीख, कौख, कोख, साख, देख-रेख, लाख (लाढ़ा), इत्यादि ।

अप०—पाख रुख ।

२—संस्कृत-शब्द ।

पुलिंग ।

(अ) जिन संज्ञाओं के अंत में त्र होता है; जैसे, चित्र, त्रेत्र, पात्र, नेत्र, गोत्र, चरित्र, शत्र, इत्यादि ।

(आ) नांत संज्ञाएँ; जैसे, पालन, पोषण, दमन, वचन, नयन, गमन, हरण, इत्यादि ।

अप०—‘पवन’ उभयलिंग है ।

(इ) “ज” प्रत्ययांत संज्ञाएँ जैसे, जलज, स्वेदज, पिंडज, सरोज, इत्यादि ।

(ई) जिन भावबाचक संज्ञाओं के अंत में त्व, त्य, व, र्य होता है; जैसे, सतीत्व, बहुत्व, नृत्य, कृत्य, लाघव, गौरव, माधुर्य, धैर्य, इत्यादि ।

(उ) जिन शब्दों के अंत में “आर,” “आय” वा “आस” हो; जैसे, विकार, विस्तार, संसार, अध्याय, उपाय, समुदाय, उज्जास, विकास, हास, इत्यादि ।

अप०—सहाय (उभयलिंग), आय (ऊलिंग) ।

(ऊ) “अ” प्रत्ययांत संज्ञाएँ; जैसे, क्रोध, मोह, पाक, त्याग, दोष, स्पर्श इत्यादि ।

अप०—‘जय’ स्त्रीलिंग और ‘विनय’ उभयलिंग हैं ।

(शृ) ‘तु’ प्रत्ययांत संज्ञाएँ; जैसे, चरित, फलित, गणित, मत, गीत, स्वागत, इत्यादि ।

(ए) जिनके अंत में ‘ख’ होता है; जैसे, नख, मुख, सुख, दुःख, लेख, मख, शंख, इत्यादि ।

स्त्रीलिंग ।

(अ) आकारांत संज्ञाएँ; जैसे, दया, माया, कृपा, लज्जा, चमा, शोभा, सभा, इत्यादि ।

(आ) नाकारांत संज्ञाएँ; जैसे, प्रार्थना, वेदना, प्रस्तावना, वेदना, रचना, घटना, इत्यादि ।

(इ) “उ” प्रत्ययांत संज्ञाएँ; जैसे, वायु, रेणु, रञ्जु, जानु, मृत्यु, आयु, वस्तु, धातु, अहतु, इत्यादि ।

अप०—मधु, अशु, तालु, मेरु, हेतु, सेतु, इत्यादि ।

(ई) जिनके अंत में “ति” वा “नि” होती है; जैसे, गति, मति, जाति, रीति, हानि, ग्लानि, योनि, बुद्धि, च्छद्धि, सिद्धि, इत्यादि ।

[स०—अंत के तीन शब्द “ति” प्रत्ययांत हैं; पर संधि के कारण उनका कुछ रूपांतर हो गया है ।]

(उ) “ता” प्रत्ययांत भाववाचक संज्ञाएँ; जैसे, नम्रता, लघुता, सुंदरता, प्रभुता, जड़ता, इत्यादि ।

(ऊ) इकारांत संज्ञाएँ; जैसे, निधि, विधि (रीति), परिधि, राशि, अग्नि (आग), छवि, केलि, रुचि, इत्यादि ।

अप०—वारि, जलधि, पाणि, गिरि, आदि, बलि, इत्यादि ।

(शृ) “इमा” प्रत्ययांत शब्द; जैसे, महिमा, गरिमा, कालिमा, लालिमा, इत्यादि ।

३—उद्दू-शब्द

पुलिंग ।

(अ) जिनके अंत में “आव” होता है; जैसे, गुलाव, जुलाव, हिसाव, जवाव, कवाव, इत्यादि ।

अप०—शराव, मिहराव, किताव, कमखाव, ताव, इत्यादि ।

(आ) जिनके अंत में “आर” या “आन” होता है; जैसे, बाजार, इकरार, इश्तहार, इनकार, अहसान, मकान, सामान, इम्तहान, इत्यादि ।

अप०—दूकान, सरकार (शासक-बर्ग), तकरार ।

(इ) जिनके अंत में “ह” होता है। हिंदी में “ह” बहुधा “आ” होकर अंत्य स्वर में मिल जाता है; जैसे, परदा, गुस्सा, किस्सा, रास्ता, चश्मा, तगमा, (अप० तगमा), इत्यादि ।
अप०—दफा ।

स्त्रीलिंग ।

(अ) इकारांत भाववाचक संज्ञाएँ; जैसे, गरीबी, गरमी, सरदी, बीमारी, चालाकी, तैयारी, नवाची, इत्यादि ।

(आ) शकारांत संज्ञाएँ; जैसे, नालिश, कोशिश, लाश, तलाश, बारिश, मालिश, इत्यादि ।

अप०—ताश, होश ।

(इ) तकारांत संज्ञाएँ; जैसे, दीलत, कसरत, अदालत, हजामत, कीमत, मुलाकात, इत्यादि ।

अप०—शरवत, दस्तखत, बंदोबस्त, दरखत, बक्त, तखत ।

(ई) आकारांत संज्ञाएँ जैसे, हवा, दवा, सजा, जमा, दुनिया, बला (अप० बलाय), इत्यादि ।

अप०—‘मजा’ उभयलिंग और ‘दगा’, पुलिंग है ।

(उ) "तफईल" के बजन की संज्ञाएँ; जैसे—तसवीर, तामील,
जागीर, तहसील, तफसील, इत्यादि ।

अप०—तावीज़ ।

(ऊ) हकारांत संज्ञाएँ; जैसे, सुबह, तरह, राह, आह, सकाह,
सुलह, इत्यादि ।

अप०—कोई—कोई संज्ञाएँ दोनों लिंगों में आती हैं। इनके
उदाहरण पहले आ चुके हैं। और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।
इन संज्ञाओं को उभयलिंग कहते हैं—

आत्मा, कलम, गढ़वड, गेंद, घास, चलन, चाल-चलन,
तमाख़ू, दरार, पुस्तक, पबन, बर्फ, बिनय, श्वास, समाज, सहाय,
इत्यादि ।

२६३—हिंदी में तीन-चौथाई शब्द संस्कृत के हैं और तत्सम
तथा तद्धव रूपों में पाये जाते हैं। संस्कृत के पुङ्गिंग वा नपुंसक-
लिंग हिंदी में बहुधा पुङ्गिंग, और स्त्रीलिंग शब्द बहुधा स्त्रीलिंग
होते हैं। तथापि कई एक तत्सम और तद्धव शब्दों का मूल लिंग
हिंदी में बदल गया है, जैसे—

तत्सम शब्द ।

शब्द	सं० लिं०	हिं० लिं०
अग्नि (आग)	पु०	खी०
आत्मा	पु०	उभल०
आयु	न०	खी०
जय	"	खी०
तारा (नक्षत्र)	खी०	पु०
देवता	"	"
देह	पु०	खी०

शब्द	सं० लिं०	हिं० लिं०
पुस्तक	न०	उभय०
पवन	पु०	"
वस्तु	न०	खी०
राशि	पु०	"
व्यक्ति	खी०	पु०
शपथ	पु०	खी०

तद्वय शब्द ।

तत्सम	सं० लिं०	तद्वय	हिं० लिं०
आौषध	पु०	आौषधि	खी०
आौषधि	खी०		
शपथ	पु०	सौँह	"
बाहु	"	बाँह	"
बिंदु	"	बूद	"
तन्तु	"	ताँत	"
अचि	"	आँख	"

[स०—इन शब्दों का प्रयोग शाखी, पंडित, आदि विद्वान् बहुधा संस्कृत के लिंगानुसार ही करते हैं ।]

२६४—“अरबी, फारसी, आदि उद्दू भाषाओं के शब्दों में भी इस हिंदी लिंगांतर के कुछ उदाहरण पाये जाते हैं; जैसे, अरबी का “मुहावरत” (खोलिंग) हिंदुस्थानी में ‘मुहावरा’ (पुलिंग) हो गया है । ” (प्लाट्स-हिंदुस्तानी-व्याकरण, पृ० २८) ।

२६५—अगरेजी शब्दों के संबंध में लिंग-निर्णय के लिए रूप और अर्थ, दोनों का विचार किया जाता है ।

(अ) कुछ शब्दों को उसी अर्थ के हिंदी शब्दों का लिंग प्राप्त हुआ है; जैसे,

कंपनी—मण्डली—स्त्री०	नंबर—अंक—पु०
कोट—अँगरखा—पु०	कमेटी—सभा—खी०
बूट—जूता—पु०	लेक्चर—व्याख्यान—पु०
चैन—सॉकल—खी०	बारंट—चालान—पु०
लैम्प—दिया—पु०	फीस—दक्षिणा—खी०

(आ) कहै एक शब्द अकारांत होने के कारण पुर्णिंग और ईकारांत होने के कारण स्त्रीलिंग हुए हैं; जैसे, पु०—सोडा, डेल्टा, केमरा, इत्यादि ।

खी०—चिमनी, गिनां, म्युनिसिपैलटी, लायब्रेरी, हिस्ट्री, डिक्शनरी, इत्यादि ।

(इ) कहै एक अँगरेजी शब्द दोनों लिंगों में आते हैं; जैसे, स्टेशन, प्लेग, मेल, मोटर, पिस्टौल ।

(ई) कॉम्प्रेस, कॉसिल, रिपोर्ट और अपोल खीलिंग हैं ।

२६६—अधिकांश सामासिक शब्दों का लिंग अंत्य शब्द के लिंग के अनुसार होता है; जैसे, रसोई-घर (पु०), धर्म-शाला (खी०), मा-धाप (पु०), इत्यादि ।

[२६०—कहै व्याकरणों में यह नियम व्यापक माना गया है; पर दो-एक समासों में यह नियम नहीं लगता; जैसे, “मंद-मति” शब्द के बल कर्मधार्य में खीलिंग है, परन्तु बहुब्रीह में पूरे शब्द का लिंग विशेष्य के अनुसार होता है, जैसे, “मंदमति बालक” ।]

२६७—सभा, पत्र, पुस्तक और स्थान के मुख्य नामों का लिंग बहुधा शब्द के रूप के अनुसार होता है; जैसे, “महासभा” (स्त्री०), “महामण्डल” (पु०), “मर्यादा” (खी०), “शिक्षा” (खी०), “प्रताप” (पु०), “इंदु” (पु०), “रामकहानी” (खी०), “रघुवंश” (पु०), दिल्ली (खी०), आगरा (पु०), इत्यादि ।

खी-प्रत्यय ।

२६८—अब उन विकारों का वर्णन किया जाता है जो संज्ञाओं में लिंग के कारण होते हैं। हिंदी में पुलिंग से खीलिंग बनाने के लिए नीचे लिखे प्रत्यय आते हैं—

ई, इया, इन, नी, आनी, आइन, आ ।

१—हिंदी-शब्द ।

२६९—प्राणिवाचक आकारांत पुलिंग संज्ञाओं के अंत्य स्वर के बदले “ई” लगाई जाती है; जैसे—

लड़का—लड़की

बेटा—बेटी

पुतला—पुतला

चेला—चेला

घोड़ा—घोड़ी

बकरा—बकरी

गधा—गधी

चीटा—चीटी

(अ) संबंधवाचक शब्द इसी वर्ग में आते हैं; जैसे—

काका—काकी

मामा—मामी, माई

दादा—दादी

आज्ञा—आज्ञी

नाना—नानी

साला—साली

भतीजा—भतीजी

भानजा—भानजी

(स०—“मामा” का खीलिंग “मुमानी” मुसलमानों में प्रचलित है ।)

(आ) निरादर या प्रेम में कहीं कहीं “ई” के बदले “इया” आता है, और यदि अंत्याक्षर का द्वितीय हो तो पहले व्यंजन का लाप हो जाता है; जैसे,

कुत्ता—कुत्तिया

बच्छा—बछिया

बुद्धा—बुद्धिया

बेटा—बिटिया

(इ) मनुष्येतर प्राणिवाचक अ्यक्षरी शब्दों में; जैसे—

‘दर—बंदरी हिरन—हिरनी कूकर—कूकरी
 गीदड़—गीदड़ी मेड़क—मेड़की सीतर—सीतरी
 [स०—यह प्रत्यय संस्कृत शब्दों में भी आता है।]

२७०—ब्राह्मणेतर वर्णवाचक तथा व्यवसायवाचक और
 मनुष्येतर कुछ प्राणिवाचक संज्ञाओं के अंत स्वर में “इन”
 लगाया जाता है; जैसे—

सुनार—सुनारिन	नाती—नातिन	लुहार—लुहारिन
अहीर—अहीरिन	धोबी—धोबिन	बाघ—बाघिन (राम०)
तेली—तेलिन	कुञ्जड़ा—कुञ्जड़िन	सौप—सौपिन (राम०)

(अ) कई एक संज्ञाओं में “नी” लगती है; जैसे—

ऊँट—ऊँटनी	बाघ—बाघनी	हाथी—हथनी
मोर—मोरनी	रीछ—रीछनी	सिंह—सिंहनी
टहलुआ—टहलनी (सर०)		स्यार—स्यारनी
हिंदू—हिंदुनी (सत०)		

२७१—उपनाम-वाचक पुलिंग शब्दों के अंत में “आइन”
 आदेश होता है; और जो आदि अक्षर का स्वर ‘आ’ हो तो उसे
 हस्त कर देते हैं; जैसे—

पाँडे = पँडाइन	बाबू—बबुआइन	दूबे—दुबाइन
ठाकुर—ठकुराइन	पाठक—पठकाइन	बनिया—बनियाइन
मिसिर—मिसिराइन	लाला—ललाइन	सुकुल—सुकुलाइन

(अ) कई एक शब्दों के अंत में “आनी” लगाते हैं; जैसे—

खत्री—खत्रानी	देवर—देवराइनी	सेठ—सेठानी
जेठ—जिठानी	मिहतर—मिहतरानी	चौधरी—चौधरानी
पंडित—पंडितानी	नौकर—नौकरानी	

[स०—यह प्रत्यय संस्कृत का है।]

(आ) आजकल विवाहिता स्त्रियों के नामों के साथ कभी-कभी

पुरुषों के (पुलिंग) उपनाम लगाये जाते हैं; जैसे, श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू । (हिं० को०) । कुमारी स्त्रियों के नाम के साथ उपनाम का स्त्रीलिंग रूप आता है; जैसे, “कुमारी सत्यवती शास्त्रिणी । (सर०) ।

२७२—कभी-कभी पदार्थबाचक अकारांत वा आकारांत शब्दों में सूहमता के अर्थ में “ई” वा “इया” प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग बनाते हैं; जैसे—

रसा—रस्सी	गगरा—गगरी, गगरिया
घंटा—घंटो	डिव्हा—डिव्ही, डिविया
टोकना—टोकनी	फोड़ा—फुड़िया
लोटा—लुटिया	लठ—लठिया

(क) पूर्वोक्त नियम के विरुद्ध पदार्थबाचक अकारांत वा ईकारांत शब्दों में विनोद के लिए स्थूलता के अर्थ में ‘आ’ जोड़कर पुलिंग बनाते हैं; जैसे—

घड़ी—घड़ा	डाल—डाला
गठरी—गठरा	लहर—लहरा (भाषासार०)
चिढ़ी—चिढ़ा	गुदड़ी—गुदड़ा

२७३—कोई-कोई पुलिंग शब्द स्त्रीलिंग शब्दों में प्रत्यय लगाने से बनते हैं; जै—

भेड़—भेड़ा	बहिन—बहनोई	रँड—रँडुआ
भैंस—भैंसा	ननद—ननदोई	जीजी—जीजा

२७४—कई एक स्त्री-प्रत्ययांत (और स्त्रीलिंग) शब्द अर्थ की दृष्टि से केवल स्त्रियों के लिए आते हैं, इसलिए उनके जोड़े के पुलिंग शब्द भाषा में प्रचलित नहीं हैं। जैसे, सती, गाभिन, गभे-बती, सौत, सुहागिन, अहिवाती, धाय, इत्यादि । प्रायः इसी प्रकार के शब्द छाइन, चुड़ैल, अप्सरा, आदि हैं ।

२७५—कुछ शब्द रूप में परस्पर जोड़े के जान पड़ते हैं, पर यथार्थ में उनका अर्थ अलग-अलग है; जैसे—

सौँड (बैल), सौँडनी (ऊटनी), सौँडिया (ऊट का बचा)।

डाकू (चोर), डाकिन, डाकिनी (चुड़ैल)।

भेड़ (भेड़ की मादा), भेड़िया (एक हिंसक जीवधारी, बृक)।

२—संस्कृत-शब्द ।

२७६—कुछ पुलिंग संज्ञाओं में “ई” प्रत्यय लगता है—

(अ) व्यंजनांत संज्ञाओं में; जैसे—

हिं०	सं०—म०	स्त्री०	हिं०	सं०—म०	स्त्री०
राजा	राजन्	राज्ञी	विद्वान्	विद्वस्	विदुषी

युवा	युवन्	युवती	महान्	महत्	महती
------	-------	-------	-------	------	------

भगवान्	भगवत्	भगवती	मानी	मानिन्	मानिनी
--------	-------	-------	------	--------	--------

श्रीमान्	श्रीमत्	श्रीमती	हितकारी	हितकारिन्	हितकारिणी
----------	---------	---------	---------	-----------	-----------

(आ) आकारांत संज्ञाओं में; जैसे—

ब्राह्मण—ब्राह्मणी	सुंदर—सुंदरी
--------------------	--------------

पुत्र—पुत्री	गौर—गौरी
--------------	----------

देव—देवी	पंचम—पंचमी
----------	------------

कुमार—कुमारी	नद—नदी
--------------	--------

दास—दासी	तरुण—तरुणी
----------	------------

(ई) अकारांत पुलिंग संज्ञाएँ हिंदी में आकारांत हो जाती हैं,

अर्थात् वे संस्कृत प्रातिपदकों से नहीं, किंतु प्रथमा विभक्ति के एकवचन से आई हैं; जैसे—

हिं०	सं०—म०	स्त्री०	हिं०	सं०—म०	स्त्री०
कर्ता	कर्तृ	कर्त्री	ग्रंथकर्ता	ग्रंथकर्तृ	ग्रंथकर्त्री

धाता	धातृ	धात्री	जनयिता	जनयितृ	जनयित्री
------	------	--------	--------	--------	----------

दाता	दातृ	दात्री	कवयिता	कवयितृ	कवयित्री
------	------	--------	--------	--------	----------

२५७—कहੇ एक संज्ञाओं और विशेषणों में “आ” प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे—

सुत	सुता	पंडित	पंडिता
बाल	बाला	शिव	शिवा
प्रिय	प्रिया	शूद्र	शूद्रा
महाशय	महाशया	चैश्य	चैश्या

(अ) “अक” प्रत्ययांत शब्दों में “अ” के स्थान में “इ” हो जाती है; जैसे—

पाठक—पाठिका	चालक—चालिका
उपदेश—उपदेशिका	पुत्रक—पुत्रिका

नायक—नायिका

२७८—किसी-किसी देवता के नाम के आगे “आनी” प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे—

भव—भवानी	वरुण—वरुणानी
रुद्र—रुद्राणी	शर्व—शर्वाणी

इंद्र—इंद्राणी

२७९—किसी किसी शब्द के दो-दो वा तीन-तीन स्त्रीलिंग रूप होते हैं; जैसे—

मातुल—मातुली, मातुलानी । उपाध्याय—उपाध्यायानो, उपाध्यायी (उसकी स्त्री); उपाध्याया (स्त्री-शिङ्गक) ।
आचार्य—आचार्या (वेद-मंत्र सिखानेवाली), आचार्याणी (आचार्य की स्त्री)

क्षत्रिय—क्षत्रियी (उसकी स्त्री), क्षत्रिया, क्षत्रियाणी (उस वर्ण की स्त्री) ।

२८०—कोई-कोई स्त्रीलिंग नियम-विरुद्ध होते हैं; जैसे—

पु०	स्त्री०
सखि (हिं०—सखा)	सखी
पति :	पत्नी, पतिवर्तनी (सधवा)

३—उद्भू—शब्द।

२८१—अधिकांश उद्भू पुङ्गिंग शब्दों में हिंदी प्रत्यय लगाये जाते हैं; जैसे—

ई—शाहजादा—शाहजादी; मुर्गा—मुर्गी

नी—शेर—शेरनी;

आनी—मिहतर—मिहतरानी, मुझा—मुझानी

२८२—कई एक अरबी शब्दों में अरबी प्रत्यय “ह” जोड़ा जाता है जो हिंदी में “आ” हो जाता है; जैसे—

बालिद—बालिदा

खाल—खाला

मलिक—मलिका

साहब—साहबा

मुहई—मुहइया

(क) “खान” का स्त्रीलिंग “खानम” और “बेग” का “बेगम” होता है।

२८३—कुछ अँगरेजी शब्दों में ‘इन’ लगाते हैं; जैसे,

मास्टर—माल्टरिन

डाक्टर—डाक्टरिन

इंस्पेक्टर—इंस्पेक्टरिन

२८४—हिंदी में कई एक पुङ्गिंग शब्दों के स्त्रीलिंग शब्द दूसरे ही होते हैं; जैसे—

राजा—रानी

पुरुष—स्त्री

पिता—माता

मर्द, आदमी—ओरत

ससुर—सास

पुत्र—कन्या

साला—साली, सरहज
भाई—बहिन, भावज
लोग—लुगाई
नर—मादा

वर—वधू
वेटा—बहू, पतोहू
साहब—मेम (अँगरेजी)
बाबा—बाई, (कचित्)

[स०—जिन पुलिंग शब्दों के दो-दो रूपिंग रूप हैं उनमें बहुधा अर्थ का अंतर पाया जाता है। कारण यह है कि रूपिंग से केवल रूपी-जाति ही का बोध नहीं होता, बरन उससे किसी की खाका भी अर्थ सूचित होता है। “चेलो” कहने से केवल दीक्षिता रूपी ही का बोध नहीं होता, बरन चेले की खो भी सूचित होती है, चाहे उस रूपी ने दीक्षा न भी ली हो। जहाँ एक ही रूपिंग शब्द से ये दोनों अर्थ सूचित नहीं होते वहाँ रूपिंग में बहुधा दो शब्द आते हैं। “साली” शब्द से केवल रूपी की बहिन का बोध होता है, साले की रूपी का नहीं; इसलिए इस प्रियाले अर्थ में “सरहज” शब्द आता है इसी प्रकार “भाई” शब्द का दूसरा रूपिंग “भावज” है जो भाई की खो का बोधक है। यह शब्द संस्कृत “भ्रातृ-जाया” से बना है। “भावज” के दूसरे रूप “भौजाई” और “भामी” हैं। “वेटी” का पंति “दामाद” या “जँवाई” कहलाता है।]

२८५—एकलिंग प्राणिवाचक शब्दों में पुरुष और रूपी जाति का भेद करने के लिए उनके पूर्व क्रमशः “पुरुष” और “रूपी” तथा मनुष्येतर प्राणिवाचक शब्दों के पहले “नर” और “मादा” लगाते हैं; जैसे, पुरुष-छात्र, रूपी-छात्र; नर-चील, मादा-चील; नर-भेड़िया, मादा-भेड़िया; हस्तादि। “मादा” शब्द को कोई कोई “मादी” बोलते हैं। यह शब्द उद्धृत का है।

दूसरा अध्याय ।

वचन ।

२८६—संज्ञा (और दूसरे विकारी शब्दों) के जिस रूप से संख्या का बोध होता है उसे वचन कहते हैं । हिंदी में दो वचन होते हैं—

(१) एकवचन

(२) बहुवचन ।

२८७—संज्ञा के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध होता है उसे एकवचन कहते हैं; जैसे, लड़का, कपड़ा, टोपी, रंग, रूप, इत्यादि ।

२८८—संज्ञा के जिस रूप से एक से अधिक वस्तुओं का बोध होता है उसे बहुवचन कहते हैं; जैसे, लड़के, कपड़े, टोपियाँ, रंगों में, रूपों से, इत्यादि ।

(अ) आदर के लिए भी बहुवचन आता है; जैसे, “राजा के बड़े बेटे आये हैं ।” “करव अृषि तो ब्रह्मचारी हैं ।” (शकु०) । “तुम बचे हो ।” (शिव०) ।

[टी०—हिंदी के कई एक व्याकरणों में वचन का विचार कारक के साथ किया गया है जिसका कारण यह है कि बहुत से शब्दों में बहुवचन के प्रत्यय विभक्तियों के बिना नहीं लगाये जाते । “नूल रंग तीन हैं”—इस वाक्य में “रंग” शब्द बहुवचन है, पर यह बात केवल किया से तथा विद्येय-विशेषण “तीन” से जानी जाती है; पर स्वयं “रंग” शब्द में बहुवचन का कोई चिह्न नहीं है; क्योंकि यह शब्द विभक्ति-रहित है । विभक्ति के योग से “रंग” शब्द का बहुवचन रूप “रंगों” होता है; जैसे, “इन रंगों में कौन आच्छा है ?” वचन का विचार कारक के साथ करने का दूसरा कारण यह है कि कई शब्दों का विभक्ति-रहित बहुवचन रूप

विभक्ति-सहित बहुवचन रूप से भिन्न होता है ; जैसे, “ये टोपियाँ उन टोपियों से छोड़ी हैं ।” इस उदाहरण में विभक्ति-रहित बहुवचन “टोपियाँ” और विभक्ति-सहित बहुवचन “टोपियों” रूप एक-दूसरे से भिन्न हैं । इसके सिवा संस्कृत में वचन का विचार विभक्तियों ही के साथ होता है ; इसलिए हिंदी में भी उसी चाल का अनुकरण किया जाता है ।

अब यहाँ यह प्रश्न है कि जब वचन और विभक्तियाँ एक दूसरे से इस प्रकार निली रुई हैं तब हिंदी में संस्कृत के अनुसार ही उनका एकत्र विचार क्यों म किया जाय ? इस प्रश्न का संवित उत्तर यह है कि हिंदी में वचन और विभक्ति का अलग विचार अधिकांश में सुभीते की इष्टि से किया जाता है । संस्कृत में प्रातिरिदिक (संशा का मूल रूप) प्रथमा विभक्ति के एक वचन से भिन्न रहता है और इसी प्रातिरिदिक में एक-वचन, द्विवचनक्षि और बहुवचन के प्रत्यय जोड़े जाते हैं ; परन्तु हिंदी (और मराठी, गुजराती, अंगरेजी आदि भाषाओं) में संशा का मूल रूप हो प्रथमा विभक्ति (कर्त्ता-कारक) में आता है । इसी मूल रूप में प्रत्यय लगाने से प्रथमा का बहुवचन बनता है ; जैसे, घोड़ा—घोड़े ; लड़की लड़कियाँ, आदि । दूसरे (विभक्ति-सहित) कारकों में बहुवचन का जो रूप हाता है वह प्रथमा (विभक्ति-रहित कर्त्ता-कारक) के बहुवचन रूप से भिन्न रहता है ; और उस (रूप) में इस रूप का कुछ काम नहीं पड़ता ; जैसे, घोड़े, घोड़ों ने, घोड़ों को, इत्यादि । इसलिए प्रथमा (विभक्ति-रहित कर्त्ता) के दोनों वचनों का विचार दूसरे कारकों से अलग ही करना पड़ेगा, चाहे वह वचन के साथ किया जाय, चाहे कारक के साथ । विभक्ति-रहित बहुवचन का विचार इस अव्याय में करने से वह सुभीता

*संस्कृत, जैद, अरबी, इब्रानी, यूनानी लैटिन आदि भाषाओं में तीन वचन होते हैं, (१) एकवचन (२) द्विवचन (३) बहुवचन । द्विवचन से दो का और बहुवचन से दो से अधिक संख्या का बोध होता है ।

होगा कि विभक्तियों के कारण संज्ञाओं में जो विकार होते हैं वे कारक के अध्याय में स्पष्टतया बताये जा सकेंगे ।]

स०—यहाँ विभक्ति-रहित बहुवचन के नियम सुनीते के लिए लिंग के अमुसार अलग-अलग दिये जाते हैं ।

विभक्ति-रहित बहुवचन बनाने के नियम ।

१—हिंदी और संस्कृत-शब्द ।

(क) पुङ्गिंग

२८६—हिंदी आकारांत पुङ्गिंग शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए अंत्य “आ” के स्थान में “ए” लगाते हैं; जैसे—

लड़का—लड़के	लोटा—लोटे	बचा—बचे
बीघा—बीघे	घोड़ा—घोड़े	कपड़ा—कपड़े
दूधबाला—दूधबाले		

अप०—(१) साला, भानजा, भतीजा, बेटा, पोता आदि शब्दों को छोड़कर शेष संबंधवाचक, उपनामवाचक, और प्रतिष्ठावाचक आकारांत पुङ्गिंग शब्दों का रूप दोनों वचनों में एक ही रहता है; जैसे, काका—काका, आजा—आजा, मामा—मामा, लाला—लाला, बाबा, नाना, दादा, राना, पंडा (उपनाम), सूरमा, इत्यादि ।

[स०—“बाप-दादा” शब्द का रूपांतर वैकल्पिक है, जैसे, “उनके बाप-दादे हमारे बापदादे के आगे हाथ जोड़के बातें किया करते थे ।” (गुट्का०) । “बापदादे जो कर गये हैं वही करना चाहिए ।” (ठेठ०) । “जिनके बापदादा भैड़ की आवाज सुनकर ढर जाते थे ।” (शिव०) । मुखिया, अगुआ और पुरखा शब्दों के भी रूप वैकल्पिक हैं ।]

अप०—(२) संस्कृत की श्रुकारांत और नकारांत संज्ञाएँ

जो हिंदी में आकारांत हो जाती हैं वहुवचन में अविकृत रहती हैं, जैसे, कर्ता, पिता, योद्धा, राजा, युवा, आत्मा, देवता, जामाता।

कोई-कोई लेखक “राजा” शब्द का वहुवचन “राजे” लिखते हैं, जैसे, “तीन प्रथम राजे ।” (इंग्लैण्ड) । हिंदी-व्याकरणों में वहुवचन रूप “राजा” ही पाया जाता है और कुछ स्थानों को छोड़ थोल-चाल में भी सर्वत्र “राजा” ही प्रचलित है। हम यहाँ इस शब्द के शिष्ट प्रयोग के कुछ उदाहरण देते हैं:—“सब राजा अपनी अपनी सेना ले आन पहुँचे ।” (प्रेम) । “हम सुनते हैं कि राजा बहुत रानियों के प्यारे होते हैं ।” (शकु) । “छप्पन राजा तो उसके बंश में गही पर बैठ चुके ।” (इति) । “सिंहासन के ऊपर सैकड़ों राजा बैठे हुए हैं ।” (रघु) ।

“योद्धा” शब्द का वहुवचन हिंदी-रघुवंश में एक जगह “योद्धे” आया है, जैसे, “मंत्री को बहुत से योद्धे देकर;” परंतु अन्य लेखकों ने वहुवचन में “योद्धा” ही लिखा है; जैसे, “जितने घायल योधा बचे थे” । (प्रेम) । “बड़े-बड़े योधा खड़े ।” (साखी) । “महाभारत” में भी “योद्धा” शब्द वहुवचन में लिखा गया है; जैसे, “अर्जुन ने कौरवों के अनगिनत योद्धा और सैनिक मार गिराये ।”

(६०—यदि यौगिक शब्दों का पूर्व-शब्द हिंदी का और आकारांत पुङ्किंग हो तो उत्तर-शब्द के साथ वहुवचन में उसका भी रूपांतर होता है; जैसे, लड़का-बचा—लड़के-बचे, छापालाना—छापेलाने, इत्यादि । अप०—“बालालाना” का वहुवचन “बालालाने” होता है ।]

अप०—(३) व्यक्तिवाचक आकारांत पुङ्किंग संज्ञाएं वहु-

बचन में (अं०—२६८) अविकृत रहती हैं ; जैसे, सुदामा, शतधन्वा, रामबोला, इत्यादि ।

२६०—हिंदी आकारांत पुङ्गिंग शब्दों को छोड़ शेष हिंदी और संस्कृत पुङ्गिंग शब्द दोनों बचनों में एक-रूप रहते हैं ; जैसे—

ब्यंजनांत संज्ञाएँ—हिंदी में व्यंजनांत संज्ञाएँ नहीं हैं । संस्कृत की अधिकांश व्यंजनांत संज्ञाएँ हिंदी में आकारांत पुङ्गिंग हो जाती हैं ; जैसे, मनस् = मन, नामन् = नाम, कुमुद् = कुमुद, पंथिन्-पंथ, इत्यादि । जो इने-गिने संस्कृत व्यंजनांत शब्द (जैसे, विद्वान्, सुहृद्, भगवान्, श्रीमान्, आदि) हिंदी में जैसे के तौसे आते हैं, उनका भी रूपांतर आकारांत पुङ्गिंग शब्दों के समान होता है ।

अकारांत संज्ञाएँ—(हिंदी) घर—घर

(संस्कृत) बालक—बालक

इकारांत—हिंदी-शब्द नहीं है ।

(संस्कृत) मुनि—मुनि

ईकारांत—(हिंदी) भाई—भाई

(संस्कृत) पत्ती—पत्ती

[स०—हिंदी में संस्कृत की इन्हंत संज्ञाएँ ईकारांत (प्रथमा एक-बचन) रूप में आती हैं । जैसे, पश्चिन्=पत्ती, स्वामिन्=स्वामी, योगिन्=योगी, इत्यादि । राम० में “करिन्” का रूप “करि” आया है ; जैसे, “संय लाइ करिनी करि लेही” । संस्कृत के नूज़ ईकारांत पुङ्गिंग शब्द हिंदी में केवल गिनती के हैं ; जैसे, सेनानी ।]

उकारांत—हिंदी शब्द नहीं है ।

—(संस्कृत) साधु—साधु

ऊकारांत—(हिंदी) डाकू—डाकू

—संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं ।

आकारांत—हिंदी-शब्द नहीं हैं ।

—संस्कृत-शब्द हिंदी में आकारांत हो जाते हैं और दोनों वचनों में एक-रूप रहते हैं । (अं०-२६६ अप०-२) ।

एकारांत—(हिंदी) चौबे—चौबे

—संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं ।

ओकारांत—(हिंदी) रासो—रासो,

—संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं ।

औकारांत—(हिंदी) जौ—जौ

—संस्कृत-शब्द हिंदी में नहीं हैं

सानुस्वार ओकारांत—(हिंदी) कोदो—कोदो

—संस्कृत शब्द हिंदी में नहीं हैं ।

[द०—पिछले चार प्रकार के शब्द हिंदी में बहुत ही कम हैं ।]

(ख) स्त्रीलिंग ।

२६१—अकारांत स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन अंत्य स्वर के बदले यैं करने से बनता है; जैसे—

बहिन—बहिनें

आँख—आँखें

गाय—गायें

रात—रातें

बात—बातें

भील—भीलें

[द०—संस्कृत में अकारांत स्त्रीलिंग शब्द नहीं हैं; पर हिंदी में संस्कृत के जो थोड़े से व्यंजनात स्त्रीलिंग शब्द आते हैं वे बहुधा अकारांत

हो जाते हैं; जैसे, समिध् = समिध, सरित् = सरित, आशिस् = आशिस, इत्यादि ।]

२६२—इकारांत और ईकारांत संज्ञाओं में “ई” को हस्त करके अंत्य स्वर के पश्चात् “यौ” जोड़ते हैं; जैसे—

टोपी—टोपियाँ	तिथि—तिथियाँ
थाली—थालियाँ	शक्त—शक्तियाँ
रानी—रानियाँ	रीति—रीतियाँ
नदी—नदियाँ	राशि—राशियाँ

[स०—(१) हिंदी में इकारांत खीलिंग संज्ञाएँ संस्कृत की हैं, और ईकारांत संज्ञाएँ संस्कृत और हिंदी दोनों की हैं ।]

[स०—(२) ‘परीक्षां-गुरु’ में ईकारांत संज्ञाओं का बहुवचन “यौ” लगाकर बनाया गया है; जैसे, “टोपियौ” । यह रूप आजकल अप्रचलित है ।

(अ) याकारांत (ऊनवाचक) संज्ञाओं के अंत में केवल अनुस्वार लगाया जाता है; जैसे—

लठिया—लठियाँ	डिबिया—डिबियाँ
लुटिया—लुटियाँ	गुडिया—गुडियाँ
बुढिया—बुढियाँ	खटिया—खटियाँ

[स०—कई लोग इन शब्दों का बहुवचन यौ वा एँ लगाकर बनाते हैं, जैसे, चिडियाएँ, कुंडलियाएँ, इत्यादि । ये रूप अशुद्ध हैं । इनका बहुवचन उन्हीं ईकारांत शब्दों के समान होता है जिनसे ये बने हैं ।]

२६३—शेष खीलिंग शब्दों में अंत्य स्वर के परे एँ लगाते हैं और “ऊ” को हस्त कर देते हैं; जैसे—

लता—लताएँ	बस्तु—बस्तुएँ
कथा—कथाएँ	बहू—बहुएँ
माता—माताएँ	लू—लुएँ (सत०)

गौ—गौएँ

[स०—हिंदी में प्रचलित आकारांत और उकारांत स्त्रीलिंग शब्द संस्कृत के हैं। संस्कृत की कुछ अकारांत और व्यंजनांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ हिंदी में आकारांत हो जाती हैं; जैसे, मातृ-माता, दुहिता—दुहिता, सीमन्—सीमा, अप्सरस्—अप्सरा, इत्यादि ।]

(१) आकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में विकल्प से “ये” लगाते हैं; जैसे, शाला—शालायें, माता—मातायें, अप्सरा—अप्सरायें, इत्यादि ।

(२) सानुस्वार ओकारांत और ओकारांत संज्ञाएँ बहुवचन में बहुधा अविकृत रहती हैं; जैसे, दौं, जोखों, सरसों, गौं, इत्यादि । हिंदी में ये शब्द बहुत कम हैं ।

२६४—कोई-कोई लेखक ओकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं को छोड़ शेष स्त्रीलिंग संज्ञाओं को दोनों वचनों में एकही रूप में लिखते हैं; जैसे, “कई देशों में ऐसी वस्तु उपजती हैं ।” (जीविका०) “ठौर-ठौर हिंगोट कूटने की चिकनी शिला रक्खी हैं ।” (शक०) “पाती हैं दुख जहाँ राजकुल ही में नारी ।” (क० ज०) । ये प्रयोग अनुकरणीय नहीं हैं ।

२—उदू-शब्द ।

२६५—हिंदी-गत उदू शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए उनमें बहुधा हिंदी प्रत्यय लगाये जाते हैं; जैसे, शाहजादा—शाहजादे, बेगम—बेगमें, इत्यादि; परंतु कानूनी हिंदी के लेखक उदू शब्दों और कभी-कभी हिंदी शब्दों में भी उदू प्रत्यय लगाकर भाषा को किंष्ट कर देते हैं । उदू भाषा के बहुवचन के कुछ नियम यहाँ लिखे जाते हैं—

(१) फारसी प्राणिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन बहुधा “आन”

लगाने से बनता है; जैसे, साहब—साहबान, मालिक—मालिकान, काश्तकार—काश्तकारान, इत्यादि ।

(अ) अंत्य “ह” के बदले “ग” और “ई” के बदले “इय” हो जाता है; जैसे, बंदह—बंदगान, बांशिदह—बांशिदगान, पटवारी—पटवारियान, मुत्सदी—मुत्सदियान, इत्यादि ।

(२) कारसी अप्राणिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन “हा” लगाकर बनाते हैं; जैसे, बार—बारहा, कूचह—कूचहा, इत्यादि ।

(३) कारसी अप्राणिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन अरबी की नकल पर बहुधा “आत” लगाकर भी बनाते हैं; जैसे, कागज—कागजात, दिह (गाँव)—दिहात, इत्यादि ।

(अ) अंत्य “ह” के बदले “ज” हो जाता है; जैसे, परवानह—परवानजात, नामह—नामजात, इत्यादि ।

(४) अरबी व्याकरण के अनुसार बहुवचन दो प्रकार का होता है—(क) नियमित (ख) अनियमित ।

(क) नियमित बहुवचन शब्द के अंत में “आत” लगाने से बनता है; जैसे, ख्याल—ख्यालात, इख्लियार—इख्लियारात, मकान—मकानात, मुकदमा—मुकदमात, इत्यादि ।

(ख) अनियमित बहुवचन बनाने के लिए शब्द के आदि, मध्य और अंत में रूपांतर होता है; जैसे, हुक्म—अहकाम, हाकिम—हुक्माम, कायदा—कवाइद, इत्यादि ।

(५) अरबी अनियमित बहुवचन कई “बज्जों” पर बनता है—

(अ) अफआल; जैसे,

हुक्म—अहकाम

खक्त—अखाकात

हाल—अहवाल

(आ) फुक्ल; जैसे, हक—हुक्क

तरक—अतराक

खबर—अखबार

शरीक—अशराक

- (इ) फुअला; जैसे, अमीर-उमरा
- (ई) अफ़इला; जैसे, बली-ओलिया
- (उ) फुअआल; जैसे, हाकिम-हुक्माम
- (ऊ) फवाइल; जैसे, अजीब-अजाइब
- (ऋ) फवाइल; जैसे, कायदा-कवाइद
- (ए) फआलिल; जैसे, जौहर-जवाहिर
- (ऐ) फआलील; जैसे, तारीख-तवारीख

(६) कभी-कभी एक अरबी एकवचन के दुहरे बहुवचन बनते हैं; जैसे, जौहर-जवाहिरात, हुक्म-अहकामात, दबा-अदबियात, इत्यादि ।

(७) कुछ अरबी बहुवचन शब्दों का प्रयोग हिंदी में एक-वचन में होता है; जैसे, वारिदात, तहकीकात, अखबार, अशराफ, कवाइद, तवारीख (इतिहास), ओलिया, ओकात (स्थिति), अहवाल, इत्यादि ।

(८) कई एक उर्दू आकारांत पुलिंग शब्द, संस्कृत और हिंदी शब्दों के समान, बहुवचन में अविकृत रहते हैं, जैसे, सौदा, दरिया, मिर्याँ, मौला, दारोगा, इत्यादि ।

२६६—जिन मनुष्यवाचक पुलिंग शब्दों के रूप दोनों वचनों में एकसे होते हैं उनके बहुवचन में बहुधा “लोग” शब्द का प्रयोग करते हैं, जैसे, “ये ऋषि लोग आपके सम्मुख चले आते हैं ।” (शकु०) “आर्य लोग सूर्य के उपासक थे ।” (इति०)। “योद्धा लोग यदि चिन्हाकर अपने-अपने स्वामियों का नाम न बताते ।” (रघु०) ।

(अ) “लोग” शब्द मनुष्यवाचक पुलिंग संज्ञाओं के विकृत बहुवचन के साथ भी आता है । जैसे, “लड़के लोग,” “चेहे लोग,” “बनिये लोग,” इत्यादि ।

(आ) भारतेंदु जी “लोग” शब्द का प्रयोग मनुष्येतर प्राणियों के नामों के साथ भी करते हैं, जैसे, “पक्षी लोग !” (सत्य०)। “चिङ्गटी लोग !” (मुद्रा०) । यह प्रयोग एकदेशीय है ।

२६५—“लोग” शब्द के सिवा, गण, जाति, उन, वर्ग आदि समूह-वाचक संकृत-शब्द बहुवचन के अर्थ में आते हैं । इन शब्दों का प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकार का है—

गण—यह शब्द बहुधा मनुष्यों, देवताओं और प्रहों के नामों के साथ आता है, जैसे, देवतागण, अप्सरागण, बालकगण, शिवाक-गण, तारागण, प्रहगण, इत्यादि । “पक्षिगण” भी प्रयोग में आता है । “रामचरितमानस” में “इंद्रियगण” आया है ।

वर्ग, जाति—ये शब्द “जाति” के बोधक हैं, और बहुधा प्राणिवाचक शब्दों के साथ आते हैं; जैसे, मनुष्यजाति, खीजाति (शकु०), जनकजाति (राम०), पशुजाति, बंधुवर्ग, पाठक-वर्ग, इत्यादि । इन संयुक्त शब्दों का प्रयोग बहुधा बहुवचन में होता है ।

जन—इसका प्रयोग बहुधा मनुष्यवाचक शब्दों के साथ है; जैसे, भक्तजन, गुरुजन, खीजन, इत्यादि ।

(अ) कविता में इन समूहवाचक शब्दों का प्रयोग बहुतायत से होता है और उसमें इनके कई पर्यायवाची शब्द आते हैं; जैसे, मुनि-वृद्ध, मृग-निकर, जंतु-संकुल, अघ-ओघ, इत्यादि । समूहवाचक शब्दों के और उदाहरण—बरूथ, पुंज, समुदाय, समूह, निकाय ।

२६६—संज्ञाओं के तीन भेदों में से बहुधा जातिवाचक संज्ञाएँ ही बहुवचन में आती हैं; परंतु जब व्यक्तिवाचक और भाववाचक संज्ञाओं का प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के समान होता

है, तब उसका भी बहुवचन होता है; जैसे, “कहु रावण, रावण जग केते ।” (राम०) । “ठठती बुरी हैं भावनाएँ हाय ! मम हङ्घाम में ।” (क० क०) । (अ०—१०५, १०७) ।

(आ) जब ‘पन’ प्रत्ययांत भाववाचक संज्ञाओं का बहुवचन बनाना होता है तब उनके आकारांत मूल शब्द में ‘आ’ के स्थान में ‘ए’ आदेश कर देते हैं; जैसे, सीधापन—सीधेपन, आदि ।

२६६—बहुधा द्रव्यवाचक संज्ञाओं का बहुवचन नहीं होता; परंतु जब किसी द्रव्य की भिन्न-भिन्न जातियाँ सूचित करने की आवश्यकता होती है तब इन संज्ञाओं का प्रयोग बहुवचन में होता है; जैसे, “आजकल बाजार में कई तेल बिकते हैं ।” “दोनों सोने चोखे हैं ।”

३००—पदार्थों की बड़ी संख्या, परिमाण वा समूह सूचित करने के लिए जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग बहुधा एकवचन में होता है; जैसे, “मेले में केवल शहर का आदमी आया ।” “उसके पास बहुत रूपया मिला ।” “इस साल नारंगी बहुत हुई है ।”

३०१—कई एक शब्द (बहुत्व की भावना के कारण) बहुधा बहुवचन ही में आते हैं; जैसे, समाचार, प्राण, दाम, लोग, होश, हिले, भाग्य, दर्शन । उदा०—“रिपु के समाचार ।” (राम०) । “आश्रमके दर्शन करके ।” (शक०) । मलयकेतु के प्राण सूख गये ।” (मुद्रा०) । “आम के आम, गुठलियों के दाम ।” (कहा०) । “तेरे भाग्य खुल गए ।” (शक०) । “लोग कहते हैं ।”

३०२—आदरार्थ बहुवचन में व्यक्तिवाचक अथवा उपनाम-वाचक संज्ञाओं के आगे महाराज, साहब, महाशय, महोदय, बहादुर, शास्त्री, स्वामी, देवी, इत्यादि लगाते हैं। इन शब्दों का प्रयोग अलग-अलग है—

जी—यह शब्द, नाम, उपनाम, पद, उपपद, इत्यादि के साथ आता है और साधारण नौकर से लेकर देवता तक के लिए इसका प्रयोग होता है; जैसे, गयाप्रसादजी, मिश्रजी, बाबूजी, पटवारीजी, चौधरीजी, रानीजी, सीताजी, गणेशजी। कभी-कभी इसका प्रयोग नाम और उपनाम के बीच में होता है; जैसे, मथुराप्रसादजी मिश्र।

महाराज—इसका प्रयोग साधु, ब्राह्मण; राजा और देवता के लिए होता है। यह शब्द नाम अथवा उपनाम के आगे जोड़ा जाता है और बहुधा “जी” के पश्चात् आता है, जैसे, देवदत्त महाराज, पांडेजी महाराज, रणजीतसिंह महाराज, इंद्र महाराज, इत्यादि।

साहब—यह उदूँ शब्द बहुधा “जी” के पर्याय में आता है। इसका प्रयोग नामों के साथ अथवा उपनामों वा पदों के साथ होता है; जैसे, रमालाल-साहब, बकील-साहब, डाकुर-साहब, रायबहादुर-साहब। इसका प्रयोग बहुधा ब्राह्मणों के नामों वा उपनामों के साथ नहीं होता। स्त्रियों के लिए प्रायः स्त्रीलिंग “साहबा” शब्द आता है; जैसे, मेम-साहबा, रानी-साहबा, इत्यादि।

महाशय, महोदय—इन शब्दों का अर्थ प्रायः “साहबा” के समान है। “महाशय” बहुधा साधारण लोगों के लिए और “महोदय” बड़े लोगों के लिए आता है; जैसे, शिवदत्त महाशय, सर जेस्टन महोदय, इत्यादि।

बहादुर—यह शब्द राजा-महाराजाओं तथा बड़े-बड़े हाकिमों के नामों वा उपनामों के साथ आता है; जैसे, कमलानंदसिंह बहादुर, महाराजा बहादुर, सरदार बहादुर। अँगरेजी नामों और पदों के साथ “बहादुर” के पहले साहब आता है; जैसे, हैमिल्टन साहब बहादुर, लाट साहब बहादुर, इत्यादि ।

शास्त्री—यह शब्द संस्कृत के विद्वानों के नामों में लगाया जाता है; जैसे, रामप्रसाद शास्त्री ।

स्वामी, सरस्वती—ये शब्द साधु महात्माओं के नामों के आगे आते हैं; जैसे, तुलसीराम स्वामी, दयानंद सरस्वती। “सरस्वती” शब्द स्त्रीलिंग है, तथापि यहाँ उसका प्रयोग पुरुष में होता है। यह शब्द विद्वत्ता-सूचक भी है ।

देवी—ब्राह्मण और कुलीन सधवा स्त्रियों के नामों के साथ बहुधा “देवी” शब्द आता है; जैसे, गायत्री देवी। किसी-किसी प्रांत में “बाई” शब्द प्रचलित है; जैसे, मथुरा बाई ।

३०३—आदर के लिए कुछ शब्द नामों और उपनामों के पहले भी लगाये जाते हैं; जैसे, श्री, श्रीयुक्त, श्रीयुत, श्रीमान्, श्रीमती, कुमारी, माननीय, महात्मा, अब्रभवान्। महाराज, स्वामी, महाशय, आदि भी कभी-कभी नामों के पहले आते हैं। जाति के अनुसार पुरुषों के नामों के पहले पंडित; बाबू, ठाकुर, लाला, संत शब्द लगाये जाते हैं। ‘श्रीयुक्त’ वा ‘श्रीयुत’ की अपेक्षा ‘श्रीमान्’ अधिक प्रतिष्ठा का बाचक है ।

[३०३—इन आदरसूचक शब्दों का बचन से कोई विशेष संबंध नहीं है; क्योंकि ये स्वतंत्र शब्द हैं और इनके कारण नूल शब्दों में कोई संपादितर भी नहीं होता। तथापि जिस प्रकार लिंग में “पुरुष”, “स्त्री”, “नर”, “मादा” और बचन में “लोग”, “गण”, “जाति” आदि स्वतंत्र शब्दों

को प्रत्यय मान लेते हैं, उसी प्रकार इन आदरसूचक शब्दों को आदरार्थ बहुवचन के प्रत्यय मानकर इनका संक्षिप्त विचार किया गया है। इनका विशेष विवेचन साहित्य का विषय है।]

तीसरा अध्याय ।

कारक

३०४—संज्ञा (या सर्वनाम) के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है उस रूप को कारक कहते हैं; जैसे, “रामचंद्रजी ने खारी जल के समुद्र पर बंदरों से पुल बैधवा दिया ।” (रघु०) ।

इस वाक्य में “रामचंद्रजी ने,” “समुद्र पर”, “बंदरों से” और “पुल” संज्ञाओं के रूपांतर हैं जिनके द्वारा इन संज्ञाओं का संबंध “बैधवा दिया” किया के साथ सूचित होता है। “जल के” “जल” संज्ञा का रूपांतर है और उससे “जल” का संबंध “समुद्र” से जाना जाता है। इसलिए “रामचंद्रजी ने, “समुद्र पर,” “जल के,” “बंदरों से” और “पुल” संज्ञाओं के कारक कहलाते हैं। कारक सूचित करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें विभक्तियाँ कहते हैं। विभक्ति के योग से बने हुए रूप विभक्त्यंत शब्द वा पद कहलाते हैं।

[टी०—जिस अर्थ में “कारक” शब्द का प्रयोग संस्कृत-व्याकरणों में होता है उस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यहाँ नहीं हुआ है और न वह अर्थ अधिकांश हिंदी-व्याकरणों में माना गया है। केवल “भाषातत्त्व-दीपिका” और “हिंदी-व्याकरण” में जिनके लेखक महाराष्ट्र हैं, मराठी व्याकरण की रुदि के अनुसार, “कारक” और “विभक्ति” शब्दों का

प्रयोग प्रायः संस्कृत के अनुसार किया गया है। संस्कृत में किया के साथ ० संशा (सर्वनाम और विशेषण) के अन्वय (संबंध) को कारक कहते हैं और उनके जिस रूप से यह अन्वय सूचित होता है उसे विभक्ति कहते हैं। विभक्ति में जो प्रत्यय लगाये जाते हैं वे विभक्ति-प्रत्यय कहते हैं। संस्कृत में सात विभक्तियाँ और छः कारक माने जाते हैं। अष्टी विभक्ति को संस्कृत व्याकरण कारक नहीं मानते, क्योंकि उसका संबंध किया से नहीं है।

संस्कृत में कारक और विभक्ति को अलग मानने का सबसे बड़ा और मुख्य कारण यह है कि एकही विभक्ति कई कारकों में आती है। यह बात हिंदी में भी है; जैसे, घर गिरा, किसान घर बनाता है, घर बनाया जाता है, लड़का घर गया। इन वाक्यों में घर शब्द (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) एकही रूप (विभक्ति) में आकर किया के साथ अलग-अलग संबंध (कारक) सूचित करता है। इस दृष्टि से कारक और विभक्ति अवश्य ही अलग-अलग हैं और संस्कृत-सरीली रूपांतर-शील और पूर्ण भाषा में इनका मेद मानना सहज और उचित है।

हिंदी में कारक और विभक्ति को एक मानने की चाल कदाचित् औँग-रेजी व्याकरण का फल है, क्योंकि सबसे प्रथम हिंदी-व्याकरणों पादरी आदम साहब ने लिखा था। इस व्याकरण में “कारक” शब्द आया है; परंतु “विभक्ति” शब्द का नाम पुस्तक भर में कहीं नहीं है। दो एक लेखकों के लिखने पर भी आजतक के हिंदी-व्याकरणों में कारक और विभक्ति का अंतर नहीं माना गया है। हिंदी-व्याकरणों के विचार में इन दोनों शब्दों के अर्थ की एकता यहाँ तक हिथर हो गई है कि व्यासजी

ध्वन्यान्वयित्वं कारकत्वं ।

† यह एक बहुत ही छोटी पुस्तक है और इसके प्रायः प्रत्येक पृष्ठ में भाषा की विदेशी अशुद्धियाँ पाई जाती हैं। तथापि इसमें व्याकरण के कई शुद्ध और उपयोगी नियम दिये गये हैं।

सरीखे संस्कृत के विद्वान् ने भी “माषा-प्रभाकर”* में विभक्ति के बदले “कारक” शब्द का प्रयोग किया है। हाल में पं० गोविन्दनारायण मिथ्न ने अपने “विभक्ति-विचार” में लिखा है कि “स्वर्गीय पं० दामोदर शास्त्री ने ही, संभव है कि, सबसे पहले स्वरचित व्याकरण में कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों के प्रयोग का यथोचित लंडन कर प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्ति शब्द का प्रयोग उनके बदले में करने के साथ ही इसका सुक्षियुक्त प्रतिपादन भी किया था।” इस तरह से इस बहुत ही पुरानी भूल को सुधारने की ओर आजकल लेखकों का ध्यान हुआ है। अब हमें यह देखना चाहिए कि इस भूल को सुधारने से हिंदी व्याकरण को क्या लाभ हो सकता है।

हिंदी में संशाओं की विभक्तियों (रूपों) की संख्या संस्कृत की अपेक्षा बहुत कम है और विकल्प से बहुधा कई एक संशाओं की विभक्तियों का लोप हो जाता है। संशाओं की अपेक्षा सर्वनामों के रूप हिंदी में कुछ अधिक निश्चित हैं; पर उनमें भी कई शब्दों की प्रथमा, द्वितीया और तृतीया विभक्तियाँ बहुधा दो-दो कारकों में आती हैं। हिंदी-संशाओं की एक-एक विभक्ति कभी-कभी चार-चार कारकों में आती है; जैसे, मेरा हाथ दुखता है, उसने मेरा हाथ पकड़ा, नौकर के हाथ चिढ़ी में गई, चिड़िया हाथ न आई। इन उदाहरणों में “हाथ” संशा (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) एकही (प्रथमा) विभक्ति में है और वह कमरा: कर्ता, कर्म, करण और अधिकरण कारकों में आई है। इनमें से कर्ता की विभक्ति को छोड़ शेष विभक्तियों के अध्याद्यत प्रत्यय वक्ता वा लेखक के इच्छानुसार व्यक्त भी किये जा सकते हैं; जैसे, उसने मेरे हाथ को पकड़ा; नौकर के हाथ से चिढ़ी भेजी गई, चिड़िया हाथ में न आई। ऐसी

* यह पुस्तक तारणपुर के जमींदार बाबू रामचरणसिंह की लिखी हुई है; परंतु इसका संशोधन स्वर्गीयासी पं० अंचिकादत्त व्यास ने किया था।

अवस्था में प्रायः एक ही रूप और अर्थ के शब्दों को कभी प्रथमा, कभी द्वितीया, कभी तृतीया और कभी संसारी विभक्ति में मानना पड़ेगा। केवल रूप के अनुसार विभक्ति मानने से हिंदी में “प्रथमा”, “द्वितीया” आदि कलिपत नामों में भी बड़ी गड़बड़ होगी। संस्कृत में शब्दों के रूप बहुचा निश्चित और स्थिर हैं, इसलिए जिन कारणों से उसमें कारक और विभक्ति का ऐसा मानना उचित है, उन्हीं कारणों से हिंदी में वह ऐसा मानना कठिन जान पड़ता है। हिंदी में अधिकांश विभक्तियों का रूप केवल अर्थ से निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि रूपों की संख्या बहुत ही कम है, इसलिए इस भाषा में विभक्तियों के सार्थक नाम कर्ता, कर्म, आदि ही उपयोगी जान पड़ते हैं।

हिंदी के जिन वैयाकरणों ने कारक और विभक्ति का अंतर हिंदी में मानने की चेता की है वे भी इनका विवेचन समाधान-शीर्षक नहीं कर सके हैं। प० केशवराम भट्ट ने अपने “हिंदी-व्याकरण” में संशाओं के केवल दो कारक—कर्ता और कर्म तथा पाँच रूप—पहला, दूसरा, तीसरा, आदि माने हैं। “विभक्ति” शब्द का प्रयोग उन्होंने “प्रत्यय” के अर्थ में किया है, और अपने माने हुए दोनों कारकों का लक्षण इस प्रकार बताया है—“किया के संबंध से संशा की जो दो विशेष अवस्थाएँ होती हैं उनको कारक कहते हैं।” इस लक्षण के अनुसार जिन करण, संप्रदान आदि संबंधों को संस्कृत वैयाकरण “कारक” मानते हैं वे भी कारक नहीं कहे जा सकते। तब फिर इन पिछले संबंधों को “कारक” के बदले और क्या कहना चाहिए? आगे चलकर “विभक्ति” शीर्षक लेख में भट्टजी संशाओं के रूपों के विषय में लिखते हैं कि “अलग—अलग पाँच ही रूपों से कारक आदि संशाओं की विभिन्न अवस्थाएँ पहचानी जाती हैं।” इसमें “आदि” शब्द से जाना जाता है कि संशा की केवल दो विशेष अवस्थाओं को कोई नाम देने की आवश्यकता ही नहीं। “हिंदी-व्याकरण” में कई नियम संस्कृत-व्याकरण के अनुसार सूत्र-रूप से देने का प्रयत्न किया गया है,

इसलिए इस पुस्तक में यह बात कहीं स्पष्ट नहीं हुई है कि “अवस्था” शब्द “संवंध” के अर्थ में आया है या “रूप” के अर्थ में, और न कहीं इस बात का विवेचन किया गया है कि केवल दो “विशेष अवस्थाएँ” ही “कारक” क्यों कहलाती हैं ? कारक का जो लक्षण किया गया है वह साक्षण नहीं, किंतु वर्गीकरण का वर्णन है और उसकी वाक्य-रचना स्पष्ट नहीं है । भट्टजी ने संश्लिष्टों के जो पौच्छ रूप माने हैं (जिनको कभी-कभी वे “विभक्ति” भी कहते हैं), उनमें से तीसरी और पौच्छवी विभक्तियों को उन्होंने “लुत अवस्था” में आने पर उन्हीं विभक्तियों के अंतर्गत माना है, पर दूसरी विभक्ति को कहीं उसीमें और कहीं पहली में लिया है । हिंदी में संचोधन-कारक का रूप इन पौच्छों विभक्तियों से भिन्न है; पर यह भी संस्कृत के अनुसार प्रथमा में मान लिया गया है । इसके सिवा हिंदी में पछी (“हिं० व्या०” की चौथी) विभक्ति का अभाव है, क्योंकि उसके बदले तदित प्रत्यय का-के-की आते हैं, परंतु भट्टजी ने तदित-प्रत्ययांत पद को भी विभक्ति मान लिया है । साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्मा ने “व्याकरण सार” में “विभक्ति” शब्द को उस रूपांतर के अर्थ में प्रयुक्त किया है जो कारक के प्रत्यय लगने के पूर्व संश्लिष्टों में होता है । आपके मतानुसार हिंदी में केवल दो विभक्तियाँ हैं ।

इस विवेचन का सार यही है कि हिंदी में विभक्ति और कारक का सूखम अंतर मानने में बड़ी कठिनाई है । इससे हिंदी व्याकरण की क्लिप्टता बढ़ती है और जबतक उनकी समाधान-कारक व्यवस्था न हो, तबतक केवल वाद-विवाद के लिए उन्हें व्याकरण में रखने से कोई लाभ नहीं है । इसलिए हमने “कारक” और “विभक्ति” शब्दों का प्रयोग हिंदी-व्याकरण के अनुकूल अर्थ में किया है; और प्रथमा, द्वितीया, आदि कल्पित नामों के बदले कर्ता, कर्म आदि सार्थक नाम लिखे हैं ।]

३०५.—हिंदी में आठ कारक हैं । इनके नाम, विभक्तियाँ और लक्षण नीचे दिये जाते हैं—

कारक	विभक्तियाँ
(१) कर्ता	० , ने
(२) कर्म	को
(३) करण	से
(४) संप्रदान	को
(५) अपादान	से
(६) संवंध	का—के—की
(७) अधिकरण	में, पर
(८) संबोधन	हे, अज्ञी, अहो, अरे

(१) क्रिया से जिस वस्तु के विषय में विधान किया जाता है उसे सूचित करनेवाले संज्ञा के रूप को कर्ता-कारक कहते हैं; जैसे, लड़का सोता है। नौकर ने दरवाजा खोला। चिढ़ी भेजी जायगी।

[टी०—कर्ता कारक का यह लक्षण दूसरे व्याकरणों में दिये हुए लक्षणों से भिन्न है। हिंदी में कारक और विभक्ति का संस्कृत-रूढ़ अंतर न मानने के कारण इस लक्षण की आवश्यकता हुई है। इसमें एकल व्यापार के आभ्यं वा का समावेश नहीं होता; किन्तु स्थितिदर्शक और विकारदर्शक क्रियाओं के कर्त्ताओं का भी (जो यथार्थ में व्यापार के आभ्यं नहीं है) समावेश हो सकता है। इसके सिवा सर्वक्रियाएँ कर्मव्याख्य में कर्म का जो मुख्य रूप होता है उसका भी समावेश इस लक्षण में हो जाता है।]

(२) जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है उसे सूचित करनेवाले, संज्ञा के रूप को कर्म-कारक कहते हैं; जैसे, “लड़का पत्थर फेंकता है।” “मालिक ने नौकर को चुलाया।”

(३) करण-कारक संज्ञा के उस रूप को कहते हैं जिससे

क्रिया के साधन का बोध होता है; जैसे “सिपाही चोर को रस्सी से बाँधता है।” “लड़के ने हाथ से फल तोड़ा।” “मनुष्य आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं और बुद्धि से विचार करते हैं।”

(४) जिस वस्तु के लिए कोई क्रिया की जाती है उसकी वाचक संज्ञा के रूप को संप्रदान-कारक कहते हैं; जैसे, राजा ने ब्राह्मण को धन दिया। “शुक्रेव मुनि राजा परीचित को कथा सुनाते हैं।” “लड़का नहाने को गया है।”

(५) अपादान-कारक संज्ञा के उस रूप को कहते हैं जिससे क्रिया के विभाग की अवधि सूचित होती है; जैसे, “पेड़ से फल गिरा।” “गंगा हिमालय से निकली है।”

(६) संज्ञा के जिस रूप से उसकी वाच्य वस्तु का संबंध किसी दूसरी वस्तु के साथ सूचित होता है उस रूप को संबंध-कारक कहते हैं; जैसे, राजा का महल, लड़के की पुस्तक, पत्थर के टुकड़े, इत्यादि। संबंध-कारक का रूप संबंधी शब्द के लिंग-वचन-कारक के कारण बदलता है। (अं०—३०६—४)

(७) संज्ञा का वह रूप जिससे क्रिया के आधार का बोध होता है अधिकरण-कारक कहलाता है; जैसे, “सिंह वन में रहता है।” “बंदर पेड़ पर चढ़ रहे हैं।”

(८) संज्ञा के जिस रूप से किसी को चिताना वा पुकारना सूचित होता है उसे सम्बोधन-कारक कहते हैं; जैसे, हे नाथ ! मेरे अपराधों को छाना करना।” “छिपे हो कौन से परदे में बेटा !” “अरे लड़के, इधर आ !”

[स०—कारकों के विशेष प्रयोग और अर्थ वाक्य-विन्यास के कारक-प्रकरण में लिखे जायेंगे ।]

विभक्तियों की व्युत्पत्ति ।

३०६—हिंदी की अधिकांश विभक्तियाँ प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकली हैं, परंतु इन भाषाओं के विरुद्ध हिंदी की विभक्तियाँ दोनों वचनों में एक-रूप रहती हैं । इन विभक्तियों को कोई-कोई व्याकरण प्रत्यय नहीं मानते; किंतु संबंध-सूचक अव्ययों में गिनते हैं । विभक्तियों और संबंध-सूचक अव्ययों का साधारण अंतर पहले (अं०-२३२-ग में) बताया गया है और आगे इसी अध्याय (अं०-३१४-३१५) में बताया जायगा । यहाँ केवल विभक्तियों की व्युत्पत्ति केवल दो एक व्याकरणों में संक्षेपतः लिखी गई है; पर इसका सविस्तार विवेचन विज्ञायती विद्वानों ने किया है । मिश्रजी ने भी अपने “विभक्तिविचार” में इस विषय की योग्य समालोचना की है । तथापि हिंदी विभक्तियों की व्युत्पत्ति बहुत ही विवाद-प्रस्त विषय है । इसमें बहुत कुछ मूल शोध की आवश्यकता है और जब तक अपभ्रंश-प्राकृत और प्राचीन हिंदी के बीच की भाषा का पता न लगे तब तक यह विषय बहुधा अनुमान ही रहेगा ।

(१) कर्त्ता-कारक—इस कारक के अधिकांश प्रयोगों में कोई विभक्ति नहीं आती । हिंदी आकारांत पुङ्ग शब्दों को छोड़कर शेष पुङ्ग शब्दों का मूल रूप ही इस कारक के दोनों वचनों में आता है । पर स्त्रीलिंग शब्दों और आकारांत पुङ्ग शब्दों के बहुवचन में रूपांतर होता है, जिसका विचार वचन के अध्याय में हो चुका है । विभक्ति का यह अभाव सूचित करने के लिए ही कर्त्ताकारक की विभक्तियों में ० चिह्न लिख दिया जाता है । हिंदी में कर्त्ताकारक की कोई विभक्ति (प्रत्यय) न होने का कारण यह है कि प्राकृत में अकारांत और आकारांत पुङ्ग संज्ञाओं को

छोड़ शेष पुलिंग और स्त्रीलिंग संज्ञाओं का प्रथमा (एकवचन) विभक्ति में कोई प्रत्यय नहीं है और संस्कृत के कई एक तत्त्वम् शब्द भी हिंदी में प्रथमा एक वचन के रूप में आये हैं ।

हिंदी में कर्त्ता-कारक की जो “ने” विभक्ति आती है वह यथार्थ में संस्कृत की तृतीया विभक्ति (करण-कारक) के “ना” प्रत्यय का रूपांतर है; परंतु हिंदी में “ने” का प्रयोग संस्कृत “ना” के समान करण (साधन) के अर्थ में कभी नहीं होता । इसलिए उसे हिंदी में करण कारक की (तृतीया) विभक्ति नहीं मानते । (“ने” का प्रयोग वाक्य-विन्यास के कारक-प्रकरण में लिखा जायगा) यह “ने” विभक्ति परिचमी हिंदी का एक विशेष चिह्न है; पूर्वी हिंदो (और बंगला, डिल्या आदि भाषाओं) में इसका प्रयोग नहीं होता । मराठी में इसके दोनों वचनों के रूप क्रमशः “ने” और “नी” हैं । “ने” विभक्ति को अधिकांश (देशी और विदेशी) वैयाकरण संस्कृत के “ना” (प्रा०—एण) से व्युत्पन्न मानते हैं, और उसके प्रयोग से हिंदी रचना भी प्रायः संस्कृत के अनुसार होती है । परंतु कैलाग साहब बीम्स साहब के मत के आधार पर उसे “लग्” (संगे) धातु के भूतकालिक कुदंत “लग्य” का अपञ्चंरा मानकर यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि हिंदी की विभक्तियाँ प्रत्यय नहीं हैं, किंतु संज्ञाओं और दूसरे शब्द-भेदों के अवशेष हैं । प्राकृत में इस विभक्ति का रूप एकवचन में ‘एण’ और अपञ्चंश में ‘ऐ’ है ।

(२) कर्म-कारक—इस कारक की विभक्ति “को” है; पर बहुधा इस विभक्ति का लोप हो जाता है, और तब कर्म-कारक की संज्ञा का रूप दोनों वचनों में कर्त्ता-कारक ही के समान होता है । यही “को” विभक्ति संप्रदान-कारक की भी है, इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि हिंदी में कर्म कारक का,

कोई निज का रूप नहीं है। इसका रूप यथार्थ में कर्म और संप्रदान-कारकों में बैठा हुआ है। इस विभक्ति की व्युत्पत्ति के विषय में व्याप जी “भाषा-प्रभाकर” में, बीमस साहच के मतानुसार लिखते हैं कि “कदाचित् यह स्वार्थिक “क” से निकला हो, पर सूदम संबंध इसका संस्कृत से जान पड़ता है, जैसे कहन् = कक्षण् = काखं = काहं = काहूँ = कहूँ = कहूँ = कौं = कौं = को ।” इस लंबी व्युत्पत्ति का खंडन करते हुए मिश्रजी ने अपने “विभक्ति-विचार” में लिखा है कि “कात्यायन ने अपने व्याकरण अम्हाकं पस्ससि, सञ्चको, यको, अमुको, आदि उदाहरण दिये हैं। और तुम्हाम्हेन आकं, ‘सञ्चतो को’, आदि सूत्रों से ‘तुम्हाकं’, ‘अम्हाकं’, ‘अम्हे’ आदि अनेक रूपों को सिद्ध किया है। प्राकृत के इन रूपों से ही हिंदी में हमको, हमें, तुमको, तुम्हें, आदि रूप बने हैं और इनके आदर्श पर ही द्वितीया विभक्ति चिह्न ‘को’ सब शब्दों के संग प्रचलित हो गया ।” इन दोनों युक्तियों में कौन सी प्राप्त है, यह बताना कठिन है, क्योंकि दोनों ही अनुमान हैं और इनको सिद्ध करने के लिए प्राचीन हिंदी के कोई उदाहरण नहीं मिलते। “विभक्ति-विचार” में ‘कहूँ’, ‘कहूँ’ आदि की व्युत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं कहा गया ।

(३) करण-कारक—इसकी विभक्ति “से” है। यही प्रत्यय अपादान-कारक का भी है। कर्म और संप्रदान-कारकों की विभक्ति के समान हिंदी में करण और अपादान-कारकों की विभक्ति भी एक ही है। मिश्रजी के मत में यह “से” विभक्ति प्राकृत की पंचमी विभक्ति “सुन्तो” से निकली है और इससे हिंदी के अपादान-कारक के प्राचीन रूप “ते”, “सो”, आदि व्युत्पन्न हुए हैं। चंद के महाकाव्य में अपादान के अर्थ में “हुतो” और “हूत” आये

हैं जो प्राकृत की पंचमी के दूसरे प्रत्यय “हिंतो” से निकले हैं। हार्नली साहब का मत भी प्रायः ऐसा ही है; पर कैलाग साहब जो सब विभक्तियों को स्वतंत्र शब्दों के टूटे-कूटे रूप सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, इस विभक्ति को संकृत के “सम” शब्द का रूपांतर मानते हैं। “से” की व्युत्पत्ति के विषय में मिश्रजी (और हार्नली साहब) का मत ठीक जान पड़ता है; परंतु इन विद्वानों में से किसीने यह नहीं बतलाया कि हिंदी में “से” विभक्ति करण और अपादान दोनों कारकों में क्योंकर प्रचलित हुई, जब कि संस्कृत और प्राकृत में दोनों कारकों के लिए अलग-अलग विभक्तियाँ हैं। “भाषा-प्रभाकर” में जहाँ और और विभक्तियों की व्युत्पत्ति बताने की चेष्टा की गई है, वहाँ “से” का नाम तक नहीं है।

(४) संबंध-कारक—इस कारक की विभक्ति “का” है। वाक्य में जिस शब्द के साथ संबंध-कारक का संबंध होता है उसे भेद कहते हैं और भेद के संबंध से संबंध-कारक को भेदक कहते हैं। “राजा का घोड़ा”—इस वाक्यांश में “राजा का” भेदक और “घोड़ा” भेद है। संबंध-कारक की विभक्ति “का” भेद के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलकर “की” और “के” हो जाती है। हिंदों की और-और विभक्तियोंके समान “का” विभक्ति की व्युत्पत्ति के विषय में भी ठैयाकरणों का मत एक नहीं है। उनके मतों का सार नीचे दिया जाता है—

(अ) संकृत में इक, ईन, इय प्रत्यय संज्ञाओं में लगने से “तत्संबंधी” विशेषण बनते हैं; जौसे काया—कायिक, कुल—कुलीन, राष्ट्र—राष्ट्रीय। “इक” से हिंदी में “का”, “ईन” से गुजराती में “नो” और “इय” से सिंधी में “जो” और मराठी में “चा” आया है।

(आ) प्रायः इसी अर्थ में संस्कृत में एक प्रत्यय “क” आता है; जैसे, मद्रक = मद्र देश में उत्पन्न; रोमक = रोम-देश-संबंधी, आदि । प्राचीन हिंदी में भी वर्तमान “का” के स्थान में “क” पाया जाता है जैसे, “पितु-आयसु सब धर्म-क टोका ।” (राम०) । इन उदाहरणों से जान पड़ता है कि हिंदी “का” संस्कृत के “क” प्रत्यय से निकला है ।

(इ) प्राकृत में “इदं” (संबंध) अर्थी में “केरओ”, “केरिआ”, “केरकं”, “केर”, आदि प्रत्यय आते हैं जो विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं और लिंग में विशेष्य के अनुसार बदलते हैं; जैसे, “कस्यकेरकं एदं पवहणं (सं०-कस्य सम्बन्धिनं इदं प्रवहणं) = किसका यह बाहन (है) । इन्हीं प्रत्ययों से रासो की प्राचीन हिंदी के केरा, केरो, आदि प्रत्यय निकले हैं जिनसे वर्तमान हिंदी के “का-के-की” प्रत्यय बने हैं ।

(ई) क, इक, पञ्चव आदि प्राकृत के इदमर्थों के प्रत्ययों से ही रूपांतरित होकर वर्तमान हिंदी के “का-के-की” प्रत्यय सिद्ध हुए दिखते हैं ।

(उ) सर्वनामों के रा-रे-री प्रत्यय केरा, केरो आदि प्रत्ययों के आद्य “क” का लोप करने से बने हुए समझे जाते हैं । (मारवाड़ी तथा बंगला में ये अथवा इन्हींके समान प्रत्यय संज्ञाओं के संबंध-कारक में आते हैं ।)

इस मत-मतांतर से जान पड़ता है कि हिंदी के संबंध-कारक की विभक्तियों की व्युत्पन्नि निश्चित नहीं है । तथापि यह बात प्रायः निश्चित है कि ये विभक्तियों संस्कृत वा प्राकृत की किसी विभक्ति से नहीं निकली हैं; किंतु किसी तद्वित-प्रत्यय से व्युत्पन्न हुई हैं ।

(५) अधिकरण-कारक—इसकी दो विभक्तियाँ हिंदी में प्रचलित हैं—“में” और “पर”। इनमें से “पर” को अधिकांश वैयाकरण संस्कृत “उपरि” का अपभ्रंश मानकर विभक्तियों में नहीं गिनते। “उपरि” का एक और अपभ्रंश “ऊपर” हिंदी में संबंध-सूचक के समान भी प्रचलित है। “विभक्ति-विचार” में मिश्रजी ने “लिए”, “निमित्त”, आदि के समान “पर” (पै) को भा स्वतंत्र शब्द माना है, पर उसकी व्युत्पात्त के विषय में कुछ नहीं लिखा। यथाथ में “पर” शब्द स्वतंत्र ही है, क्योंकि यह संस्कृत वा प्राकृत का किसी विभक्ति वा प्रत्यय से नहीं निकला है। “पर” को आधकरण-कारक का विभक्ति मानने का कारण यह है कि अधिकरण से जिस आधार का वोध होता है उसके सब भेद अकेले “में” से सूचित नहीं होते, जैसा संस्कृत की सप्तमी विभक्ति से होता है।

“में” की व्युत्पत्ति के विषय में भी मत-भेद है और इसके मूल रूप का निश्चय नहीं हुआ है। कोई इसे संस्कृत “मध्ये” का और कोई प्राकृत सप्तमी विभक्ति “मिम” का रूपांतर मानते हैं। मिश्रजी लिखते हैं कि यदि “में” संस्कृत “मध्ये” का अपभ्रंश होता तो “में” के साथ ही “मौँझ”, “मैंभार”, “मधि”, आदि का प्रयोग हिंदी में न होता। गुजराती का, सप्तमी का, प्रत्यय “मौं” इसी (पिछले) मत को पुष्ट करता है, अर्थात् “में” प्राकृत “मिम” का अपभ्रंश है।

(६) संबोधन-कारक—कोई-कोई वैयाकरण इसे अलग कारक नहीं गिनते, किंतु कर्त्ता-कारक के अंतर्गत मानते हैं। संबंध-कारक के समान यह कारकों में इसलिए नहीं गिना जाता कि इन दोनों कारकों का संबंध बहुधा किया से नहीं होता। संबंध-कारक का अन्वय तो किया के परोक्ष रूप से होता भी है; परंतु संबोधन-

कारक का अन्वय वाक्य में किसी शब्द के साथ नहीं होता। इसको केवल इसीलिए कारक मानते हैं कि इस अर्थ में संज्ञा का स्वतंत्र रूप पाया जाता है। संबोधन-कारक की कोई अलग विभक्ति नहीं है; परंतु और और कारकों के समान इसके दोनों वचनों में संज्ञा का रूपांतर होता है। विभक्ति के बदले इस कारक में संज्ञा के पहले बहुधा है, हो, अरे, अज्ञी, आदि विस्मयादि-बोधक अव्यय लगाये जाते हैं। इन शब्दों के प्रयोग विस्मयादि-बोधक-अव्यय के अध्याय में दिये गये हैं।

३०७—विभक्तियाँ चरम प्रत्यय कहलाती हैं, अर्थात् उनके पश्चात् दूसरे प्रत्यय नहीं आते। इस लक्षण के अनुसार विभक्तियों और दूसरे प्रत्ययों का अंतर स्पष्ट हो जाता है; जैसे, “संसार-भर के ग्रन्थ-गिरि पर ।” (भारत०)। इस वाक्यांश में “भर” शब्द विभक्ति नहीं है; क्योंकि उसके पश्चात् “के” विभक्ति आई है। इस “के” के पश्चात् भर, तक, बाला, आदि कोई प्रत्यय नहीं आ सकते। तथापि हिंदी में अधिकरण-कारक की विभक्तियों के साथ बहुधा संबंध वा अपादान-कारक की विभक्ति आती है; जैसे, “हमारे पाठकों में से बहुतेरों ने ।” (भारत०)। “नंद उसको आसन पर से उठा देगा ।” (मुद्रा०)। “तट पर से ।” (शिव०)। “कुएँ में का मेंढक ।” “जहाज पर के यात्री”, इत्यादि ।

(अ) संबंध-कारक के साथ कभी-कभी जो विभक्ति आती है वह भेद्य के अध्याहार के कारण आती है; जैसे, “इस रँड के () को बकने दीजिये ।” (शकु०)। “यह काम किसी घर के () ने किया है ।” कभी-कभी संबंध-कारक को संज्ञा मानकर उसका बहुवचन भी कर देते हैं; जैसे,

“यह काम घरकों ने किया है ।” (घरकों ने = घर-
बालों ने ।)

३०५—कोई-कोई विभक्तियाँ कुछ अव्ययों में भी पाई जाती हैं; जैसे—

को—कहाँ को, यहाँ को, आगे को ।

से—कहाँ से, वहाँ से, आगे से ।

का—कहाँ का, जहाँ का, कथ का ।

पर—यहाँ पर, जहाँ पर ।

संज्ञाओं की कारक-रचना ।

३०६—विभक्तियों के योग के पहले संज्ञाओं का जो रूपांतर होता है उसे विकृत रूप कहते हैं; जैसे, “घोड़ा” शब्द के साथ “ने” विभक्ति के योग से एकवचन में “घोड़े” और बहुवचन में “घोड़ों” हो जाता है । इसलिए “घोड़े” और “घोड़ों” विकृत रूप हैं । विभक्ति-रहित कर्ता और कर्म को छोड़कर शेष कारक जिन में संज्ञा वा सर्वनाम का विकृत रूप आता है, विकृत कारक कहलाते हैं ।

३१०—एकवचन में विकृत रूप का प्रत्यय “ए” है जो केवल हिंदी और उदू (तद्रव) आकारांत पुङ्गि संज्ञाओं में लगाया जाता है; जैसे, लड़का—लड़के ने, घोड़ा—घोड़े ने, सोना—सोने का, परदा—परदे में, अंधा—हे अंधे, इत्यादि (अं०—२८६) ।

(क) हिंदी आकारांत संज्ञाओं वा विशेषणों में “वन” से जो भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं उनके आगे विभक्ति आने पर मूल संज्ञा वा विशेषण का रूप विकृत होता है; जैसे, कड़ापन—कड़ेपन को, गुंडापन—गुंडेपन से, बहिरापन—बहिरेपन में, इत्यादि ।

अप०—(१) संबोधन-कारक में “बेटा” शब्द का रूप बहुधा नहीं बदलता; जैसे, “अरे बेटा, आँख खोलो ।” (सत्य०) । “बेटा ! उठ ।” (रघु०) ।

अप०—(२) जिन आकारांत पुलिंग शब्दों का रूप विभक्ति-रहित बहुवचन में नहीं बदलता वे एकवचन में भी विकृत रूप में नहीं आते (अ०—२८६ और अपवाद); जैसे, राजा ने, काका को, दरोगा से, देवता में, रामबोला का इत्यादि ।

अप०—(३) भारतीय प्रसिद्ध स्थानों के व्यक्तिवाचक आकारांत पुलिंग नामों को छोड़, शेष देशी तथा मुसलमानी स्थानवाचक आकारांत पुलिंग शब्दों का विकृत रूप विकल्प से होता है; जैसे, “आगरे का आया हुआ ।” (गुटका०) । “कलकत्ते के महलों में ।” (शिव०) । “इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में ।” (मुद्रा०) । “राजपूताने में”, “दरभंगे की फसल ।” (शिर्जा) । “दरभंगा से ।” (सर०) । छिंदवाड़ा में वा छिंदवाड़े में, बसरा से वा बसरे से, इत्यादि ।

प्रत्यपवाद—पाश्चात्य स्थानों के और कई देशी संस्थाओं के आकारांत पुलिंग नाम अविकृत रहते हैं; अफ्रिका, अमेरिका, आँस्ट्रेलिया, लासा, रीवाँ, नाभा, कोठा आदि ।

अप०—(४) जब किसी विकारी आकारांत संज्ञा (अथवा दूसरे शब्द) के संबंध-कारक के बाद वही शब्द आता है तब पूर्व शब्द बहुधा अविकृत रहता है; जैसे, कोठा का कोठा; जैसा का तैसा ।

अप०—(५) यदि विकारी संज्ञाओं (और दूसरे शब्दों) का प्रयोग शब्द ही के अर्थ में हो तो विभक्ति के पूर्व उनका विकृत

रूप नहीं होता; जैसे, 'धोड़ा' का क्या अर्थ है, "मैं" को सर्वनाम कहते हैं, "जैसा" से विशेषता सूचित होती है।

३११—बहुवचन में विकृत रूप के प्रत्यय औं और यों हैं।

(अ) अकारांत, विकारी आकारांत और हिंदी याकारांत शब्दों के अंत्यस्वर में ओं आदेश होता है; जैसे, घर—घरों को (पु०), बात—बातों में (स्त्री०), लड़का—लड़कों का (पु०), डिविया—डिवियों में (स्त्री०) ।

(आ) मुखिया, अगुआ, पुरखा और बाप-दादा शब्दों का विकृत रूप बहुधा इसी प्रकार से बनता है; जैसे, मुखियों को, अगुओं से, बाप-दादों का इत्यादि ।

[दू०—संस्कृत के इलंत शब्दों का विकृत रूप अकारांत शब्दों के समान होता है; जैसे, विद्वान्-विद्वानों को, सरित्—सरितों को, इत्यादि ।]

(इ) इकारांत संज्ञाओं के अंत्य हस्त स्वर के पञ्चात् “यों” लगाया जाता है; जैसे, मुनि—मुनियों को, हाथी—हाथियों से, शक्ति—शक्तियों का, नदी—नदियों में, इत्यादि ।

(ई) शेष शब्दों में अंत्य स्वर के पञ्चात् “ओं” आता है; जैसे, राजा—राजाओं को, साधु—साधुओं में, माता—माताओं से, घेनु—घेनुओं का, चौबे चौबेओं में, जौ—जौओं को ।

[दू०—विकृत रूप के पहले ई और ऊ हस्त हो जाते हैं । (अ०—२६२, २६३)]

(उ) ओकारांत शब्दों के अंत में केवल अनुस्वार आता है; और सानुस्वार ओकारांत तथा ओकारांत संज्ञाओं में कोई रूपांतर नहीं होता ; जैसे, रासो—रासों में, कोदो—कोदों से, सरसो—सरसों का, इत्यादि । (अ०—२६३—२) ।

[दू०—हिंदी में ऐकारांत पुलिंग और एकारांत, ऐकारांत तथा ओकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ नहीं हैं ।]

(श्र) जिन आकारांत शब्दों के अंत में अनुस्वार होता है उनके बचन और कारकों के रूपों में अनुस्वार बना रहता है; जैसे, रोओँ—रोएँ, रोएँ से, रोओँ में।

(ए) जाड़ा, गर्भी, बरसात, भूख, प्यास आदि कुछ शब्द विकृत कारकों में बहुधा बहुवचन ही में आते हैं; जैसे, भूखों मरना, बरसातों की रातें, गरमियों में, जाड़ों में, इत्यादि।

(ऐ) कुछ काल-बाचक संज्ञाएँ विभक्ति के बिना ही बहुवचन के विकृत रूप में आती हैं; जैसे, “बरसों बीत गये,” “इस काम में घंटों लग गये हैं।” (अ०—५१२)

३१२—अब प्रत्येक लिंग और अंत की एक-एक संज्ञा की कारक-रचना के उदाहरण दिये जाते हैं। पहले उदाहरण में सब कारकों के रूप रहेंगे; परंतु आगे के उदाहरणों में केवल कर्ता, कर्म और संबोधन के रूप दिये जायेंगे। बीच के कारकों की रचना कर्म-कारक के समान उनकी विभक्तियों के योग से हो सकती है।

(क) पुलिंग संज्ञाएँ

(१) अकारांत।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	बालक	बालक
	बालक ने	बालकों ने
कर्म	बालक को	बालकों को
करण	बालक से	बालकों से
संप्रदान	बालक को	बालकों को
अपादान	बालक से	बालकों से
संबंध	बालक का-के-की	बालकों का-के-की

कारक	एकवचन	बहुवचन
अधिकरण	बालक में	बालकों में
	बालक पर	बालकों पर
संबोधन	हे बालक	हे बालकों

(२) आकारांत (विकृत) ।

कर्ता	लड़का	लड़के
	लड़के ने	लड़कों ने
कर्म	लड़के को	लड़कों को
संबोधन	हे लड़के	हे लड़कों

(३) आकारांत (अविकृत) ।

कर्ता	राजा	राजा
	राजा ने	राजाओं ने
कर्म	राजा को	राजाओं को
संबोधन	हे राजा	हे राजाओं

(४) आकारांत (वैकल्पिक) ।

कर्ता	बाप-दादा	बाप-दादा
	बाप-दादा ने	बाप-दादाओं ने
कर्म	बाप-दादा को	बाप-दादाओं को
संबोधन	हे बाप-दादा	हे बाप-दादाओं

(अथवा)

कर्ता	बाप-दादा	बाप-दादे
	बाप-दादे ने	बाप-दादों ने
कर्म	बाप-दादे को	बाप-दादों को
संबोधन	हे बाप-दादे	हे बाप-दादों

(५) इकारांत ।

कर्ता	मुनि	मुनि
-------	------	------

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्म	मुनि ने	मुनियों ने
संबोधन	मुनि को	मुनियों को
	हे मुनि	हे मुनियो

(६) ईकारांत ।

कर्ता	माली	माली
कर्म	माली ने	मालियों ने
संबोधन	माली को	मालियों को
	हे माली	हे मालियो

(७) उकारांत ।

कर्ता	साधु	साधु
कर्म	साधु ने	साधुओं ने
संबोधन	साधु को	साधुओं को
	हे साधु	हे साधुओ

(८) ऊकारांत ।

कर्ता	डाकू	डाकू
कर्म	डाकू ने	डाकुओं ने
संबोधन	डाकू को	डाकुओं को
	हे डाकू	हे डाकुओ

(९) एकारांत ।

कर्ता	चौबे	चौबे
कर्म	चौबे ने	चौबेओं ने
संबोधन	चौबे को	चौबेओं को
	हे चौबे	हे चौबेओ

(१०) ओकारांत ।

कर्ता	रासो	रासो
-------	------	------

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्म	रासो ने	रासों ने
संबोधन	रासो को हे रासो	रासों को हे रासो
	(११) आकारांत ।	

कर्ता	जौ	जौ
	जौ ने	जौओं ने
कर्म	जौ को	जौओं को
संबोधन	हे जौ	हे जौओं

(१२) सानुस्वार आकारांत ।

कर्ता	कोदों	कोदों
	कोदों ने	कोदों ने
कर्म	कोदों को	कोदों को
संबोधन	हे कोदों	हे कोदों

(प्रकल्पना के समान)

(ख) स्त्रीलिंग संज्ञाएँ ।

(१) अकारांत ।

कर्ता	बहिन	बहिनें
	बहिन ने	बहिनों ने
कर्म	बहिन को	बहिनों को
संबोधन	हे बहिन	हे बहिनों

(२) आकारांत (संस्कृत) ।

कर्ता	शाला	शालाएँ
	शाला ने	शालाओं ने
कर्म	शाला को	शालाओं को
संबोधन	हे शाला	हे शालाओं

(३) याकारांत (हिंदी) ।

कारक	एकवचक	बहुवचन
कर्ता	बुढ़िया	बुढ़ियों
कर्म	बुढ़िया ने	बुढ़ियों ने
संबोधन	बुढ़िया को	बुढ़ियों को
	हे बुढ़िया	हे बुढ़ियों

(४) इकारांत ।

कर्ता	शक्ति	शक्तियों
कर्म	शक्ति ने	शक्तियों ने
संबोधन	शक्ति को	शक्तियों को
	हे शक्ति	हे शक्तियों

(५) ईकरांत ।

कर्ता	देवी	देवियों
कर्म	देवी ने	देवियों ने
संबोधन	देवी को	देवियों को
	हे देवी,	हे देवियों

(६) उकारांत ।

कर्ता	घेनु	घेनुएँ
कर्म	घेनु ने	घेनुओं ने
संबोधन	घेनु को	घेनुओं को
	हे घेनु	हे घेनुओं

(७) ऊकारांत ।

कर्ता	बहू	बहूएँ
कर्म	बहू ने	बहूओं ने
संबोधन	बहू को	बहूओं को
	हे बहू	हे बहूओं

(८) औकारांत ।

कारक	एकघचन	कहुचचन
कर्ता	गौ	गौएँ
	गौ ने	गौओं ने
कर्म	गौ को	गौओं को
संबोधन	हे गौ	हे गौओं

(९) सानुस्वार औकारांत ।

कर्ता	सरसों	सरसों
	सरसों ने	सरसों ने
कर्म	सरसों को	सरसों को
संबोधन	हे सरसों	हे सरसों

समान
संभव
कारण
प्रकार

३१३—तत्सम संस्कृत संज्ञाओं का मूल संबोधन-कारक (एक, घचन) भी उष्ण हिंदी और कविता में आता है; जैसे,

व्यंजनांत संज्ञाएँ—राजन्, श्रीमन्, विद्वन्, भगवन्, महात्मन्, स्वामिन्, इत्यादि ।

आकारांत संज्ञाएँ—कविते, आशे, प्रिये, शिक्षे, सीते, राखे, इत्यादि ।

इकारांत संज्ञाएँ—हरे, मुने, सखे, मते, सीतापते; इत्यादि ।

ईकारांत संज्ञाएँ—पुत्रि, देवि, मानिनि, जननि, इत्यादि ।

उकारांत संज्ञाएँ—बंधो, प्रभो, धेनो, गुरो, साधो, इत्यादि !

ऋकारांत संज्ञाएँ—पितः, दातः, मातः, इत्यादि ॥

विभक्तियों और संबंध-सूचक अव्ययों में संबंध ।

३१४—विभक्ति के द्वारा संज्ञा (या सर्वनाम) का जो संबंध किया वा दूसरे शब्दों के साथ प्रकाशित होता है वही संबंध कभी-कभी संबंध-सूचक अव्यय के द्वारा प्रकाशित होता है; जैसे,

“लड़का नहाने को गया है” अथवा “नहाने के लिए गया है।” इसके विरुद्ध संबंध-सूचकों से जितने संबंध प्रकाशित होते हैं उन सब के लिये हिंदी में कारक नहीं हैं; जैसे, “लड़का नदी तक गया”, “चिड़िया धोती समेत उड़ गई”, “मुसाफिर पेड़ तले बैठा है” “नौकर साँप के पास पहुँचा”, इत्यादि ।

[टी०—यहाँ अब ये प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि जिन संबंध-सूचकों से कारकों का अर्थ निकलता है उन्हें कारक क्यों न मानें और शब्दों के सब प्रकार के परस्पर संबंध सूचित करने के लिये कारकों की संख्या क्यों न बढ़ाई जाय ? यदि “नहाने को” कारक माना जाता है तो “नहाने के लिए” को भी कारक मानना चाहिये और यदि “पेड़ पर” एक कारक है तो “पेड़ तले” दूसरा कारक होना चाहिये ।

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए विभक्तियों और संबंध सूचकों की उत्पत्ति पर विचार करना आवश्यकता है । इस विषय में भाषाविदों का यह मत है कि विभक्तियों और संबंध-सूचकों का उपयोग बहुता एक ही है । भाषा के आदि काल में विभक्तियाँ न थीं और एक शब्द के साथ दूसरे का संबंध स्वतंत्र शब्दों के द्वारा प्रकाशित होता था । बार-बार उपयोग में आने से इन शब्दों के टुकड़े हो गये और किर उनका उपयोग प्रत्यय-रूप से होने लगा । संस्कृत सरीखी प्राचीन भाषाओं में संयोगात्मक विभक्तियाँ भी स्वतंत्र शब्दों के टुकड़े हैं । मिशनी “विभक्ति-विचार” में लिखते हैं कि “सु, ओ, जस्, अम्, औ, शस्, टा, भ्यां; भोस्, आदि को स्वतंत्र रूप से दर्शाना ही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ये चिह्न स्वतंत्र शब्दों में ही पूर्व काल में उपजे थे ।” किसी भाषा में बहुत सी और किसी भी थोड़ी विभक्तियाँ होती हैं । जिन भाषाओं में विभक्तियों की संख्या अधिक रहती है (जैसे संस्कृत में है) उनमें संबंध-सूचकों का प्रचार अधिक नहीं होता । भिज-भिज भाषाओं में रूप के जो मैद दिखाई

देते हैं उनका एक विशेष कारण यही है कि संबंध-सूचकों का उपयोग किसी में स्वतंत्र रूप से और किसी में प्रत्यय रूप है हुआ है ।

इस विवेचन से जान पड़ता है कि विभक्तियाँ और संबंध-सूचकों की उत्पत्ति प्रायः एक ही प्रकार की है । अर्थ की दृष्टि से भी दोनों समान ही हैं, परंतु रूप और प्रयोग की दृष्टि से दोनों में अंतर है । इसलिए कारक का विचार केवल अर्थ के अनुसार ही न करके रूप और प्रयोग के अनुसार भी करना चाहिए । जिस प्रकार लिंग और वचन के कारण संशाओं का रूपांतर होता है उसी प्रकार शब्दों का परस्पर संबंध सूचित करने के लिए भी रूपांतर होता है और उसे (हिंदी में) कारक कहते हैं । यह रूपांतर एक शब्द में दूसरा शब्द जोड़ने से नहीं, किंतु प्रत्यय जोड़ने से होता है । संबंध-सूचक अव्यय एक प्रकार के स्वतंत्र शब्द हैं; इसलिये संबंध-सूचकों संशाओं को कारक नहीं कहते । इसके सिवा, कुछ विशेष प्रकार के मुख्य संबंधों ही को कारक मानते हैं; औरों को नहीं । यदि सब संबंध-सूचकों संशाओं को कारक मानें तो अनेक प्रकार के संबंध सूचित करने के लिए कारकों की संख्या न जाने कितनी बढ़ जाय ।

विभक्तियाँ जिस प्रकार संबंध-सूचकों से (रूप और प्रयोग में) भिन्न हैं उसी प्रकार वे तदित और कुदंत (प्रत्ययों) से भी भिन्न हैं । कुदंत वा तदित प्रत्ययों के आगे विभक्तियाँ आती हैं, परंतु विभक्तियों के पश्चात् कुदंत वा तदित प्रत्यय बहुधा नहीं आते ।

इसी विषय के साथ इस बात का भी विवेचन आवश्यक जान पड़ता है कि विभक्तियाँ संशाओं (और सर्वनामों) में मिलाकर लिखी जायें वा उनसे पृथक् । इसके लिए पहिले हम दो उदाहरण उन पुस्तकों में से देते हैं जिनके लेखक संयोगवादी हैं—

“अब यह कैसे मालूम हो कि लोग जिन बातों को कष्ट मानते हैं उन्हें श्रीमान् भी कष्ट ही मानते हों । अथवा आपके पूर्ववर्ती शासक ने

जो काम किये आप भी उन्हें अन्याय भरे काम मानते हो ? साथ ही एक और बात है । प्रजाके लोगोंकी पहुँच श्रीमान तक बहुत कठिन है । पर आपका पूर्ववर्ती शासक आपसे पहलेही मिल चुका और जो कहना था वह कह गया ।” (शिव०) ।

(२)

प्रायः पीने आठ सौ वर्ष महाकवि चंद के समयसे अब तक चीत जुके हैं । चंदके सौ वर्ष बाद ही अलाड्हीन खिलजीके राज्यमें दिल्लीमें फारसी भाषा का सुप्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो हुआ । कवि अमीर खुसरो की मृत्यु सन् १३२५ ईस्वी में हुई थी । मुसलमान कवियोंमें उक्त अमीर खुसरो हिंदी काव्य रचना के विषयमें सर्व प्रथम और प्रधान माना जाता है ।” (विभक्ति०) ।

इन अवतरणों से जान पड़ेगा कि स्वयं संयोगवादी लेखक ही अभी तक एक-मत नहीं है । जिस एक शब्द (अव्यय प्रत्यय) को गुप्तजी मिलाकर लिखते हैं उसीको मिश्रजी अलग लिखते हैं । मिश्रजी ने तो यहाँ तक किया है कि संशा में विभक्ति को मिलाने के लिए दोनों के बीच में “ही” लिखना ही छोड़ दिया है; यद्यपि यह अव्यय संशा और विभक्ति के बीच में भी आता है । इसी तरह से गुप्तजी “उक्त” को और शब्दों से तो अलग-अलग, पर “यहाँ” में मिलाकर लिखते हैं । “पर” के संबंध में भी दोनों लेखकों का मत-विरोध है ।

ऐसी अवस्था में विभक्तियों को संज्ञाओं से मिलाकर लिखने के लिए भाषा के आधार पर कोई निषिद्ध नियम बनाना कठिन है । विभक्तियों को मिलाकर लिखने में एक दूसरी कठिनाई यह है कि हिंदी में बहुता प्रकृति और प्रत्यय के बीच में कोई-कोई अव्यय भी आ जाते हैं, जैसे “चौदह पीढ़ी तक का पता ।” (शिव०) । “संसार भर के ग्रंथ-गिरि ।” (भारत०) । “घर ही के बाड़े ।” (राम०) । प्रकृति और प्रत्यय के बीच में समानाधिकरण शब्द के आ जाने से भी उन दोनों को

मिलाने में आधा आ जाती है; जैसे, “विदर्भ नगर के राजा भीमसेन की कन्या भुवनमोहिनी दमर्यंती का रूप !” (गुणका) । “हरियो-विद (पंसारी के लड़के) ने” (परी०) । उलटे कामाओं से विरे हुए शब्दों के साथ विभक्ति मिलाने से जो गड़बड़ होती है उसके उदाहरण स्वयं “विभक्ति विचार” में मिलते हैं; जैसे, “समसे”, “सके” उद्भव न होने का प्रत्यक्ष प्रमाण, “को का” सर्वंघ, इत्यादि । मिथ्याजी ने कहीं-कहीं विभक्ति को इन कामाओं के पश्चात् भी लिखा है; जैसे, ‘‘न’’ का प्रयोग (प० ५६) “से” के बीच में (प० ८६) । इस प्रकार के गड़बड़ प्रयोगों से संयोग-वादियों के प्रायः सभी सिद्धांत खंडित हो जाते हैं ।

हिंदी में अधिकांश लेखक विभक्तियों को सर्वनामों के साथ मिलाकर लिखते हैं, क्योंकि इनमें संशाओं की अपेक्षा अधिक नियमित रूपांतर होते हैं, और प्रकृति तथा प्रस्तुत के बीच में बहुधा कोई प्रत्यय नहीं आते । तथापि “भारत-भारती” में विभक्तियाँ सर्वनामों से भी पृथक् लिखी गई हैं । ऐसी अवस्था में भाषा के प्रयोग का आधार वैयाकरण को नहीं है; इसलिए इस विषय को इम ऐसा ही अनिश्चित छोड़ देते हैं ।]

३१५—विभक्तियों के बदले में कभी-कभी नीचे लिखे संबंध-सूचक अव्यय आते हैं—

कर्मकारक—प्रति; वर्द्ध (पुरानी भाषा में) ।

करणकारक—द्वारा, करके, जारिये, कारण, मारे ।

संप्रदानकारक—लिए, हेतु, निमित्त, अर्थ, बास्ते ।

अपादानकारक—अपेक्षा, अनिस्वत, सामने, आगे, साथ ।

अधिकरण—मध्य, बीच, भीतर, अंदर, ऊपर ।

३१६—हिंदी में कुछ संस्कृत कारकों का—विशेष कर करण-कारक का प्रयोग होता है; जैसे, सुखेन (सुख से), कृपया (कृपा से), येन-केन-प्रकारेण, मनसा-वाचा-कर्मणा, इत्यादि । “राम-चरितमानस” में छंद बिठाने के लिए कहीं-कहीं शब्दों में कर्मकारक

की विभक्ति (व्याकरण के विरुद्ध) लगाई गई है; जैसे, “जय राम रमयां ।” ऐसा प्रयोग “रासो” और दूसरे प्राचीन काव्यों में भी मिलता है ।

(क) हिन्दी में कभी-कभी उद्दू भाषा के भी कुछ कारक आते हैं; जैसे,

करण और अपादान—इनकी विभक्ति “अज़” (से) है जो दो एक शब्दों में आती है; जैसे, अज़ खुद (आपसे), अज़ तरफ (तरफ से) ।

संवंधकारक—इसमें भेद्य पहले आता है और उसके अंत में “ए” प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे, सितारे-हिंद (हिंद के सितारे), दफ्तरे-हिंद (हिंद का दफ्तर), बामे-दुनिया (दुनिया की छत) ।

अधिकरण कारक—इसकी विभक्ति “दर” है जो “अज़” के समान कुछ संज्ञाओं के पहले आती है; जैसे, दर हकीकत (हकीकत में), दर असल (असल में) । कई लोग इन शब्दों को भूल से “दर हकीकत में” और “दर असल में” बोलते हैं । ‘किलहाल’ शब्द में ‘को’ अरबी प्रत्यय है और वह कारखो ‘दर’ का पर्याय-बाची है । ‘किलहाल’ को अर्द्ध शिक्षित ‘किलहाल में’ कहते हैं ।

चौथा अध्याय ।

सर्वनाम ।

३१७—संज्ञाओं के समान सर्वनामों में वचन और कारक हैं; परंतु लिंग के कारण इनका रूप नहीं बदलता ।

३१८—विभक्ति-रहित (कर्ता-कारक के) बहुवचन में, पुरुष-

वाचक (मैं, तू) और निश्चयवाचक (यह, वह) सर्वनामों को छोड़कर, शेष सर्वनामों का रूपांतर नहीं होता; जैसे,

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मैं	हम	आप	आप
तू	तुम	जो	जो
यह	ये	कौन	कौन
वह	ये	क्या	क्या
सो	सो	कोई	कोई
		कुछ	कुछ

इन उदाहरणों से जान पड़ेगा कि “मैं” और “तू” का बहुवचन अनियमित है; परंतु “यह” तथा “वह” का नियमित है। संबंधवाचक “जो” के समान नित्य-संबंधी “सो” का भी, बहुवचन में, रूपांतर नहीं होता। कोई-कोई लेखक बहुवचन में “यह”, और “वह” का भी रूपांतर नहीं करते। (अं०—१२२, १२८)। “क्या” और “कुछ” का प्रयोग एकवचन ही में होता है।

३१६—विभक्ति के योग से अधिकांश सर्वनाम दोनों वचनों में विकृत रूप में आते हैं; परंतु “कोई” और निजवाचक “आप” की कारक-रचना केवल एकवचन में होती है। “क्या” और “कुछ” का कोई रूपांतर नहीं होता; उनका प्रयोग केवल विभक्ति-रहित कर्ता और कर्म में होता है।

३२०—“आप”, “कोई”, “क्या” और “कुछ” को छोड़ शेष सर्वनामोंके कर्म और संप्रदान-कारकों में “को” के सिवां एक और विभक्ति (एकवचन में “ए” और बहुवचन में “एँ”) आती है।

३२१—पुरुष-वाचक सर्वनामों में, संबंध-कारक की “का-के-की” विभक्तियों के बदले “रा-रे-री” आती हैं और निजवाचक सर्वनाम में “ना-ने-नी” विभक्तियाँ लगाई जाती हैं।

३२२—सर्वनामों में संबोधन-कारक नहीं होता; क्योंकि जिसे पुकारते या चिताते हैं उसका नाम या उपनाम कहकर ही ऐसा करते हैं। कभी-कभी नाम याद न आने पर अथवा क्रोध में “अरेतू”, “अरेयह”, आदि शब्द बोले जाते हैं; परंतु ये (अशिष्ट) प्रयोग व्याकरण में विचार करने के योग्य नहीं हैं।

३२३—पुरुष-वाचक सर्वनामों की कारक-रचना आगे दी जाती है—

उत्तम पुरुष “मैं”

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	मैं	हम
	मैंने	हमने
कर्म	मुझको, मुझे	हमको, हमें
करण	मुझसे	हमसे
संप्रदान	मुझको, मुझे	हमको, हमें
अपादान	मुझसे	हमसे
संबंध	मेरा-रे-री	हमारा-रे-री
अधिकरण	मुझमें	हममें

मध्यम पुरुष “तू”

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	तू	तुम
	तूने	तुमने
कर्म	तुझको, तुझे	तुमको, तुम्हें
करण	तुझसे	तुमसे
संप्रदान	तुझको, तुझे	तुमको, तुम्हें
अपादान	तुझसे	तुमसे

कारक	एक०	बहु०
संबंध	तेरा—रे—री	तुम्हारा—रे—री
अधिकरण	तुममें	तुममें

(अ) पुरुष-वाचक सर्वनामों की कारक-रचना में बहुत समानता है। कर्ता और संबोधन को छोड़ शेष कारकों के एकवचन में “मैं” का विकृत रूप “मुझ” और “तू” का “तुझ” होता है। संबंध-कारक के दोनों वचनों में “मैं” का विकृत रूप क्रमशः “मे” और “हमा” और “तू” का “ते” और “तुम्हा” होता है। दोनों सर्वनामों में संबंध-कारक की रा—रे—री विभक्तियाँ आती हैं। विभक्ति-सहित कर्ता के दोनों वचनों में और संबंध कारक को छोड़ शेष कारकों के बहुवचन में दोनों का रूप अविकृत रहता है।

(आ) पुरुष-वाचक सर्वनामों के विभक्ति-रहित कर्ता के एकवचन और संबंध-कारक को छोड़ शेष कारकों में अवधारण के लिए एकवचन में “ई” और बहुवचन में ई वा हीं लगाते हैं; जैसे, मुझीको, तुम्हीसे, हमीने, तुम्हीसे, इत्यादि।

(इ) कविता में “मेरा” और “तेरा” के बदले बहुधा संस्कृत की यष्टि के रूप क्रमशः “मम” और “तव” आते हैं; जैसे, “करहु सु मम उर धाम।” (राम०)। “कहाँ गई तव गरिमा विशेष ?” (हिं० ग्र०)।

३८४—निजवाचक “आप” की कारक-रचना केवल एकवचन में होती है; परंतु एकवचन के रूप बहुवचन संज्ञा या सर्वनाम के साथ भी आते हैं। इसका विकृत रूप “अपना” है जो संबंध-कारक में आता है और जो “अप” में, संबंध-कारक की “ना” विभक्ति जोड़ने से बना है। इसके साथ “ने” विभक्ति नहीं आती; परंतु दूसरी विभक्तियों के योग से इसका रूप हिंदी आकारांत संज्ञा के

समान “अपने” हो जाता है। कर्त्ता और संबंध-कारक को छोड़ शेष कारकों में विकल्प “आप” के साथ विभक्तियाँ जोड़ी जाती हैं।

[स०—“आप” शब्द का संबंध-कारक “अपना” प्राकृत की पढ़ी “अप्पणो” से निकला है।]

निजवाचक “आप”

कारक	ए० व०
कर्त्ता	आप
कर्म—संप्र०	अपनेको, आपको
करण—अपा०	अपनेसे, आपसे
संबंध	अपना-ने-नी
अधिकरण	अपनेमें, आपमें

(अ) कभी-कभी “अपना” और “आप” संबंध-कारक को छोड़ शेष कारकों में मिलकर आते हैं; जैसे, अपने-आप, अपने-आपको, अपने-आपसे, अपने-आपमें।

(आ) “आप” शब्द का एक रूप “आपस” है जिसका प्रयोग केवल संबंध और अधिकरण-कारकों के एकवचन में होता है; जैसे, लड़के “आपस में लड़ते हैं।” “लियों की आपस की बातचीत।” इससे परस्परता का बोध होता है। कोई-कोई लेखक “आपस” का प्रयोग संज्ञा के समान करते हैं; जैसे, “(विधाता ने) प्रीति भी तुम्हारे आपस में अच्छी रक्खी है।” (शकु०)।

(इ) “अपना” जब संज्ञा के समान निज लोगों के अर्थ में आता है तब उसकी कारक-रचना हिंदी आकारांत संज्ञा के समान दोनों वचनों में होती है; जैसे, “अपने मात-पिता विन जग में कोई नहीं अपना पाया।” (आरा०) वह अपनों के पास नहीं गया।”

(ई) प्रत्येकता के अर्थ में “अपना” शब्द की विभक्ति होती है; जैसे, “अपने-अपनेको सब कोई चाहते हैं ।” “अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग ।”

(उ) कभी-कभी “अपना” के बदले “निज” (सर्वनाम) का संबंध-कारक आता है, और कभी-कभी दोनों रूप मिलकर आते हैं; जैसे, “निजका माला, निजका नौकर ।” “हम तुम्हें अपने निजके काम से भेजा चाहते हैं ।” (मुद्रा०) ।

(ऊ) कविता में “अपना” के बदले बहुधा “निज” (विशेषण) होकर आता है; जैसे, “निज देश कहते हैं किसे ।” (भारत०) । “वर्णाश्रिम निज-निज धरम, निरत वेद-पथ लोग ।” (राम०) ।

३२५—“आप” शब्द आदरसूचक भी है, पर उसका प्रयोग केवल अन्य-पुरुष के बहुवचन में होता है। इस अर्थ में उसकी कारक-रचना निज-वाचक “आप” से भिन्न होती है। विभक्ति के पहले आदरसूचक “आप” का रूप विकृत नहीं होता। इसका प्रयोग आदराथे बहुवचन में होता है, इसलिए बहुत्व का बोध होने के लिए इसके साथ “लोग” या “सब” लगा देते हैं। इसके साथ “ने” विभक्ति आती है और संबंध कारक में “का-के-की” विभक्तियाँ लगाई जाती हैं। इसके कर्म और संप्रदान-कारकों में दुहरे रूप नहीं आते।

आदरसूचक “आप”

कारक	एक० (आदर)	बहु० (संख्या)
कर्ता	आप	आप लोग
	आपने	आप लोगों ने
कर्म—संप्र०	आपको	आप लोगोंको
संबंध	आपका-के-की	आप लोगों का-के-की

[८०—इसके शेष रूप विभक्तियों के योग से इसी प्रकार बनते हैं ।]

३२६—निश्चयवाचक सर्वनामों के दोनों वचनों की कारक-रचना में विकृत रूप आता है। एकवचन में “यह” का विकृत रूप “इस”, “वह” का “उस” और “सो” का “तिस” होता है; और बहुवचन में क्रमशः “इन,” “उन” और “तिन” आते हैं। इनके विभक्तिसहित बहुवचन कर्त्ता के अंतर “न” में विकल्प से “हों” जोड़ा जाता है; और कर्मे तथा संप्रदान-कारकों के बहुवचन में “ए” के पहले “न” में “ह” मिलाया जाता है।

निकटवर्ती “यह”

कारक	एक०	बहु०
कर्त्ता	यह	यह, ये
	इसने	इनने, इन्होंने
कर्म—संप्रदान	इसको, इसे	इनको, इन्हें
करण—अपादान	इससे	इनसे
संबंध	इसका-के-की	इनका-के-की
अधिकरण	इसमें	इनमें
	दूरवर्ती “वह”	
कर्त्ता	वह	वह, वे
	उसने	उनने, उन्होंने
कर्म—संप्रदान	उसको, उसे	उनको, उन्हें

[८०—शेष कारक “यह” के अनुसार विभक्तियाँ लगाने से बनते हैं ।]

नित्यसंबंधी “सो”

कारक	एक०	बहु०
कर्त्ता	सो	सो
	तिसने	तिनने, तिन्होंने
कर्म—संप्रदान	तिसको, तिसे	तिनको, तिन्हें

[सू०—शेष रूप “बहु” के अनुसार विभक्तियाँ लगाने से बनते हैं ।]

- (अ) “सो” के जो रूप यहाँ दिये गये हैं वे यथार्थ में “तीन” के हैं जो पुरानी भाषा में “जौन” (जो) का नित्यसंबंधी है । “तीन” अब प्रचलित नहीं है; परंतु उसके कोई-कोई रूप “सो” के बदले और कभी-कभी “जिस” के साथ आते हैं; इसलिए सुभीते के विचार से सब रूप लिख दिये गये हैं । “तिसपर भी”, “जिस-तिसको”, आदि रूपों को छोड़ “तीन” के शेष रूपों के बदले “बहु” के रूप प्रचलित हैं ।
- (आ) निश्चयवाचक सर्वनामों के रूपों में अवधारण के लिए एकवचन में ही और बहुवचन में ही अंत्य स्वर में आदेश करते हैं; जैसे, यह-यही, यह-बही, इन-इन्हींसे, उन्हींको, सोई, इत्यादि ।

३२७—संबंधवाचक सर्वनाम “जो” और प्रश्नवाचक सर्वनाम “कौन” के रूप निश्चयवाचक सर्वनामों के अनुसार बनते हैं । “जो” के विकृत रूप दोनों वचनों में क्रमशः “जिस” और “जिन” हैं, तथा “कौन” के “किस” और “किन” हैं ।

संबंध-वाचक “जो”

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	जो	जो
	जिसने	जिनने, जिन्होंने
कर्म-संप्रदान	जिसको, जिसे	जिनको, जिन्हें

प्रश्नवाचक “कौन”

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	कौन	कौन
	किसने	किनने, किन्होंने
कर्म-संप्रदान	किसको, किसे	किनको, किन्हें

३२८—यह, वह, सो, जो, और कौन के विभक्ति-सद्वित कर्त्ता-कारक के बहुवचन में जो दो-दो रूप हैं उनमें से दूसरा रूप अधिक शिष्ट समझा जाता है; जैसे, उनने और उन्हने। कोई-कोई वैयाकरण शेष कारकों में भी 'हो' जोड़कर बहुवचन का दूसरा रूप बनाते हैं; जैसे, इन्होंको, जिन्होंसे, इत्यादि। परंतु ये रूप प्रचलित नहीं हैं।

३२९—प्रश्नवाचक सर्वनाम “क्या” की कारक-रचना नहीं होती। यह शब्द इसी रूप में केवल एकवचन (विभक्ति-रद्वित) कर्त्ता और कर्म में आता है; जैसे, क्या गिरा ? ” “तुम क्या चाहते हो ? ” दूसरे कारकों के एकवचन में “क्या” के बदले ब्रज-भाषा के “कहा” सर्वनाम का विकृत रूप “काहे” आता है।

प्रश्नवाचक “क्या”

कारक	ए० व०
कर्त्ता	क्या
कर्म	क्या
करण—अपादा०	काहे से
संप्रदान	काहे को
संबंध	काहे का-के-की
अधिकरण	काहे में

(अ) “काहे से” (अपादान) और “काहे को” (संप्रदान) का प्रयोग बहुधा “क्यों” के अर्थ में होता है; जैसे, “तुम यह काहेसे कहते हो ? ” “लड़का वहाँ काहेको गया था ? ” “काहे को” कभी-कभी असंभावना के अर्थ में आता है; जैसे “चोर काहेको हाथ आता है ” “क्योंकि” समुच्चयबोधक में “क्यों”

के बदले कभी-कभी “काहे से” का प्रयोग होता है (अं०-२४५-अ); जैसे, “शकुंतला मुझे बहुत प्यारी है काहेसे कि वह मेरी सहेली की बेटी है ।” (शक०) । “काहेका” का अर्थ “किस चीज़ से बना” है; पर कभी-कभी इसका अर्थ “बृथा” भी होता है; जैसे, “वह राजा ही काहेका है ।” (सत्य०) ।

(आ) “क्या से क्या” और “क्या का क्या” बाक्यांशों में “क्या” के साथ विभक्ति आती है। इनसे दशांतर सूचित होती है ।

३३०—अनिश्चयवाचक सर्वनाम “कोई” यथार्थ में प्रश्न-वाचक सर्वनाम से बना है; जैसे, सं०—कोपि, प्रा०—कोचि, हिं०—कोई । इसका विकृत रूप “किसी” है जो प्रश्नवाचक सर्वनाम “कौन” के विकृत रूप “किस” में अवधारणावोधक “ई” प्रत्यय लगाने से बना है । “कोई” की कारक-रचना केवल एक-बचन में होती है; परंतु इसके रूपों की द्विरूपि से बहुवचन का वोध होता है । कर्म और संप्रदान-कारकों में इसका एकारांत रूप नहीं होता, जैसा दूसरे सर्वनामों का होता है ।

अनिश्चयवाचक “कोई”

कारक	ए० ब०
कर्ता	कोई
	किसी ने
कर्म—संप्रदान	किसी को

[स०—कोई-कोई वैयाकरण इसके बहुवचन रूप “किन” के नमूने पर “किन्हीने” “किन्हीको” आदि लिखते हैं; परं ये रूप शिष्ट-सम्मत नहीं हैं । “कोई” के द्विरूप रूपों ही से बहुवचन होता है । परिवर्तन के अर्थ में “कोई” के अविकृत रूप के साथ संबंध-कारक की विभक्ति आती है;

जैसे “कोई का कोई राजा बन गया ।” इस वाक्यांश का प्रयोग बहुधा कर्त्ता कारक ही में होता है ।]

३३१—अनिश्चयवाचक सर्वनाम “कुछ” की कारक-रचना नहीं होती । “क्या” के समान यह केवल विभक्ति-रहित, कर्त्ता और कर्म के एकवचन में आता है; जैसे, “पानी में कुछ है ।” लड़के ने कुछ फेंका है ।” “कुछ का कुछ” वाक्यांश में “कुछ” के साथ संबंध-कारक की विभक्ति आती है । जब “कुछ” का प्रयोग “कोई” के अर्थ में संज्ञा के समान होता है तब उसकी कारक-रचना संबोधन को छोड़ शेष कारकों के बहुवचन में होती है; जैसे, “उनमें से कुछने इस बात को स्वीकार करने की कृपा दिखाई ।” (हिं० को०) । “कुछ ऐसे हैं ।” “कुछ की भाषा सहज है ।” (सर०) ।

३३२—आप, कोई, क्या और कुछ को छोड़कर शेष सर्वनामों के कर्म और संप्रदान कारकों में दो-दो रूप होने से यह ज्ञान है कि दो “को” इकट्ठे होकर उच्चारण नहीं बिगाड़ते; जैसे, “मैं इसे तुमको दूँगा ।” इस वाक्य में “इसे” के बदले “इसको” कहना अशुद्ध है ।

३३३—निजवाचक “आप”, “कोई”, “क्या” और “कुछ” को छोड़ शेष सर्वनामों के बहुवचन-रूप आदर के लिए भी आते हैं इसलिए बहुत्व का स्पष्ट बोध कराने के लिए इन सर्वनामों के साथ “लोग” वा “लोगों” लगाते हैं; जैसे, ये लोग, उन लोगों को, किन लोगों से, इत्यादि । “कौन” को छोड़ शेष सर्वनामों के साथ “लोग” के बदले कभी कभी “सब” आता है, जैसे, हम सब, आप सबको, इन सबमें से, इत्यादि ।

३३४—विकारी सर्वनामों के मेल से बने हुए सर्वनामों के

दोनों अवयव विकृत होते हैं; जैसे, जिस किसी को, जिस जिस से, किसी न किसी का नाम, इत्यादि ।

३३५—अवधारणा वा अविकार के अर्थ में पुरुष-वाचक और निश्चयवाचक सर्वनामों के अविकृत रूप के साथ संबंध-कारक की विभक्ति आती है; जैसे “तुम के तुम न गये और मुझे भी न जाने दिया ।” “जो तीस दिन अधिक होंगे वह वह के वही होंगे ।” (शिव०) ।

‘पौँचवाँ अध्याय ।

विशेषण ।

३३६—हिंदी में आकारांत विशेषणों को छोड़ दूसरे विशेषणों में कोई विकार नहीं होता; परंतु सब विशेषणों का प्रयोग संज्ञाओं के समान होता है; इसलिए यह कह सकते हैं कि विशेषणों में परीक्षा रूप से लिंग, वचन और कारक होते हैं। इस प्रकार के विशेषणों का विकार संज्ञाओं के समान उनके “अंत” के अनुसार होता है ।

विशेषणों के मुख्य तीन भेद किये गये हैं—सार्वनामिक, गुण-वाचक और संख्यावाचक । इनके रूपांतरों का विचार आगे इसी क्रम से होगा ।

३३७—सार्वनामिक विशेषणों के दो भेद हैं—मूल और यौगिक । “आप” “क्या” और “कुछ” को छोड़कर शेष मूल सार्वनामिक विशेषणों के पश्चात् विभक्त्यंत वा संबंध-सूचकांत संज्ञा आने पर उनके दोनों वचनों में विकृत रूप आता है; जैसे, “मुझ दीन को” “तुम मूर्ख से” “हम ब्राह्मणों का धर्म,” “किस

देश में,” “उस गाँव तक,” “किसी बृक्ष की छाल,” “उन पेड़ों पर,” इत्यादि ।

(अ) “शिव०” में “कौन” शब्द अविकृत रूप में आया है; जैसे, “कौन वात में तुम उनसे बढ़कर हो ?” यह प्रयोग अनुकरणीय नहीं है ।

(आ) “कोई” शब्द के विकृत रूप की द्विरूपित से बहुवचन का बोध होता है; पर उसके साथ बहुधा एकवचन संज्ञा आती है; जैसे, “किसी-किसी तपस्वी ने मुझे पहचान भी लिया है ।” (शकु०) । “उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो किसी-किसी विशेष प्रकार की राज्यपद्धति का होना बिलकुल ही पसंद नहीं करते ।” (स्वा०) । विकृत कारकों की बहुवचन संज्ञा के साथ “कोई-कोई” कभी-कभी मूल रूप में ही आता है; जैसे, “कोई कोई लोगों का यह ध्यान है ।” (जीविका०) । इस पिछले प्रकार के प्रयोग का प्रचार अधिक नहीं है ।

(इ) कुछ कालवाचक संज्ञाओं के अधिकरणकारक के एकवचन के साथ (कुछ के अर्थ में) “कोई” का अविकृत रूप आता है; जैसे, “कोई दम में” “कोई घड़ी में”, इत्यादि ।

३३८—यौगिक सार्वनामिक विशेषण आकारांत होते हैं; जैसे, ऐसा, वैसा, इतना, उतना, इत्यादि । ये आकारांत विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार गुणवाचक आकारांत विशेषणों के समान (अं०—३३६) बदलते हैं; जैसे, ऐसा मनुष्य, ऐसे मनुष्य को, ऐसे लड़के, ऐसी लड़की, ऐसी लड़कियाँ, इत्यादि ।

(अ) “कौन”, “जो” और “कोई” के साथ जब “सा” प्रत्यय आता है तब उनमें आकारांत गुणवाचक विशेषणों के समान

विकार होता है; जैसे कौनसा लड़का, कौनसा लड़की, कौनसे लड़के को, इत्यादि । (अं०—३३६) ।

३३६—गुणवाचक विशेषणों में केवल आकारांत विशेषण विशेष्य-निन्म होते हैं, अर्थात् वे विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलते हैं। इनमें वही रूपांतर होते हैं जो संबंध-कारक की विभक्ति “का” में होते हैं। आकारांत विशेषणों में विकार होने के नियम ये हैं—

(१) पुलिंग विशेष्य बहुवचन में हो अथवा विभक्त्यंत वा संबंध-सूचकांत हो तो विशेषण के अंत्य “आ” के स्थान में “ए” होता है; जैसे, छोटे लड़के, छोंचे घर में, बड़े लड़के-समेत, इत्यादि ।

(२) स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ विशेषण के अंत्य “आ” के स्थान में ‘ई’ होती है; जैसे, छोटी लड़की, छोटी लड़कियाँ, छोटी लड़की को, इत्यादि ।

(अ) राजा शिवप्रसाद ने “इकट्ठा” विशेषण को उद्दृ भाषा के आकारांत विशेषणों के अनुकरण पर बहुधा अविकृत रूप में लिखा है; जैसे, “दौलत इकट्ठा होती रही”, (इति०); पर “विद्यांकुर” मे “इकट्टे” आया है; जैसे, “उनके इकट्टे मुँद चलते हैं।” अन्य लोकक इसे विकृत रूप में ही लिखते हैं; जैसे, “इकट्टे होने पर उन लोगों का वह क्रोध और भी बढ़ गया।” (रघु०) ।

(आ) “जमा”, “उमदा” और “जरा” को छोड़ शेष उद्दृ आकारांत विशेषणों का रूपांतर हिंदी आकारांत विशेषणों के समान होता है; जैसे, “दोष निकालने की तो जुदी बात है।” (परी०) । “इसे शब्द पर चलाने और किर अपने पास लौटा

लेने के मंत्र जुदे-जुदे हैं । ” (रघु०) । “ बेचारे लड़के ”,
“ बेचारी लड़की ” ।

(स०—कोई-कोई लेखक इन उद्दृष्टियों को अविकृत रूप में ही लिखते हैं; जैसे, “ ताजा इवा ”, (शिव०); परंतु हिंदी की प्रबृत्ति इनके रूपांतर की ओर है । दिवेदीजी ने “ स्वाधीनता ” में कुछ वर्ष पूर्व “ नियम जुदा-जुदा है ” लिखकर “ रघुवंश ” में “ मंत्र जुदे-जुदे है ” लिखा है ।]

३४०—आकारांत संवंधसूचक (जो अर्थ में प्रायः विशेषण के समान हैं) आकारांत विशेषणों के समान विकृत होते हैं । (अं०२३३-आ); जैसे, सरी ऐसी नारी, तालाब का जैसा रूप, सिंह के से गुण, भोज सरीखे राजा, हरिश्चन्द्र ऐसा पति इत्यादि । (अ) जब किसी संज्ञा के साथ अनिश्चय के अर्थ में “ सा ” प्रत्यय आता है तो इसका रूप उसी संज्ञा के लिंग और वचन के अनुसार बदलता है; जैसे, “ मुझे जाड़ा सा लगता है ”, “ एक जोत सी उतरी चली आती है ”, (गुटका०), “ उसने मुँह पर घूँघट सा ढाल लिया है । ” (तथा) । “ रास्ते में पत्थर से पड़े हैं । ”

३४१—आकारांत गुण-वाचक विशेषणों को छोड़ शेष हिंदी गुणवाचक विशेषणों में कोई विकार नहीं होता; जैसे, लाल टोपी, भारी बोझ, ढालू, जमीन, इत्यादि ।

३४२—संस्कृत गुणवाचक विशेषण, बहुधा कविता में, विशेष्य के लिंग के अनुसार विकृत होते हैं । इनका रूपांतर “ अंत ” (अंत्यस्वर) के अनुसार होता है—
(अ) अंजनांत विशेषणों में स्त्रीलिंग के लिए “ ई ” लगाते हैं;
जैसे,

पापिन् = पापिनी स्त्री

बुद्धिमत् = बुद्धिमती भार्या

गुणवत् = गुणवती कन्या

प्रभावशालिन् = प्रभावशालिनी भाषा

“हिंदी-रघुवंश” में “युद्ध-संवधिनी थकावट” आया है।

(आ) कई एक अंगवाचक तथा दूसरे अकारांत विशेषणों में भी बहुधा “ई” आदेश होती है; जैसे,

सुमुख—सुमुखी

चंद्रवदन—चंद्रवदनी

दयामय—दयामयी

सुंदर—सुंदरी

(इ) उकारांत विशेषणों में, विकल्प से, अंत्य स्वर में “व” आगम करके “ई” लगाते हैं; जैसे,

साधु—साध्वी— साधु वा साध्वी की स्त्री

गुरु—गुर्वी— गुरु वा गुर्वी छाया

(ई) अकारांत विशेषणों में बहुधा “आ” आदेश होता है; जैसे,

सुशील—सुशीला अनाथ—अनाथा

चतुर—चतुरा प्रिय—प्रिया

सरल—सरला सचारित्र—सचारित्रा

३४३—संख्यावाचक विशेषणों में क्रमवाचक, आवृत्तिवाचक और आकारांत परिमाणवाचक विशेषणों का रूपांतर होता है; जैसे, पहली पुस्तक, पहले लड़के, दूसरे दिन तक, सारे देश में, दूने दामों पर।

(अ) अपूर्णांक विशेषणों में केवल “आधा” शब्द विकृत होता है; जैसे, “आधे गाँव में।” “सवा” शब्द का रूपांतर नहीं होता; पर इससे बना हुआ “सवाया” शब्द विकारी है; जैसे, सवा घड़ी में, सवाये दामों पर। ‘पौन’ शब्द का

एक रूप “पौना” है जो विकृत रूप में आता है; जैसे, पौने दामों पर, पौनी कीमत में, इत्यादि ।

(आ) संस्कृत क्रमबाचक विशेषणों में पहले तीन शब्दों में “आ” और शेष शब्दों में (अठारह तक) “ई” लगाकर रुद्गिरि बनाते हैं; जैसे, प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, दशमी, षोडशी, इत्यादि । अठारह से ऊपर संस्कृत क्रमबाचक रुद्गिरि विशेषणों का प्रयोग हिंदी में बहुधा नहीं होता ।

(इ) “एक शब्द का प्रयोग संज्ञा के समान होने पर उसकी कारक-रचना एकवचन ही में होती है, पर जब उसका अर्थ “कुछ लोग” होता है तब उसका रूपांतर बहुवचन में भी होता है; जैसे, “एकों को इस बात की इच्छा नहीं होती” ।
(अं०-१८४-आ) ।

(ई) “एक-दूसरा” का प्रयोग प्रायः सर्वनाम के समान होता है । यह बहुधा लिंग और वचन के कारण नहीं बदलता; परंतु विकृत कारकों के एकवचन में (आकारांत विशेषणों के समान (इसके अंत “आ” के बदले ए हो जाता है; जैसे, “ये दोनों बातें एक-दूसरे से मिली हुई मालूम होती हैं ।”

(स्वा०) । यह कर्त्ता-कारक में कभी प्रयुक्त नहीं होता ।

[स०—कोई—कोई लेखक “एक दूसरा” को विशेष्य के लिंग के अनुसार बदलते हैं; जैसे, “लड़कियाँ एक-दूसरी को चाहती हैं ।”]

विशेषणों की तुलना ।

३४४—हिंदी में विशेषणों की तुलना करने के लिए उनमें कोई विकार नहीं होता । यह अर्थ नीचे लिखे नियमों के द्वारा सूचित किया जाता है—

(अ) दो वस्तुओं में किसी भी गुण का न्यूनाधिक-भाव सूचित

करने के लिए जिस वस्तु के साथ तुलना करते हैं उसका नाम (उपमान) अपादान-कारक में लाया जाता है और जिस वस्तु की तुलना करते हैं उसका नाम (उपमेय) गुण-वाचक विशेषण के साथ आता है; जैसे, “मारनेवाले से पालनेवाला बड़ा होता है ।” (कहा०) । “कारण ते कारज कठिन ।” (राम०) । “अपने को औरों से अच्छा और औरों को अपने से बुरा दिखलाने को ।” (गुटका०) ।

(आ) अपादान-कारक के बदले बहुधा संज्ञा के साथ “अपेक्षा” वा “बनिस्वत्” का उपयोग किया जाता है और विशेषण (अथवा संज्ञा के संबंधकारक) के साथ अर्थ के अनुसार “अधिक” वा “कम” शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे, “बेलपति-कन्या राजकन्या से भी अधिक सुंदरी, सुशीला और सच्चरित्रा है ।” (सर०) । “मेरा जमाना बंगालियों के बानिस्वत तुम फिरंगियों के लिए ज्यादा मुसीबत का था ।” (शिव०) । “हिंदुस्तान में इस समय और देशों की अपेक्षा सबे साधान बहुत कम हैं ।” (परी०) “लड़के की अपेक्षा लड़की कम प्यारी नहीं होती ।”

(इ) अधिकता के अर्थ में कभी-कभी “बढ़कर” पूर्वकालिक कृदंत अथवा “कहीं” क्रियाविशेषण आता है। जैसे, “मुझसे बढ़कर और कौन पुण्यात्मा है ?” (गुटका०) । “चित्र से बढ़कर चित्रे की बड़ाई कीजिए ।” (क० क०) । “पर मुझसे वह कहीं सुखी हैं ।” (हिं० ग्रं०) । “मनुष्यों में अन्य प्राणियों से कहीं अधिक उपज्ञाएँ होती हैं ।” (हित०) ।

(ई) संज्ञावाचक विशेषणों के साथ न्यूनता के अर्थ में “कुछ कम” वाक्यांश आता है जिसका प्रयोग किया-विशेषण के समान होता है; जैसे, कुछ कम दस हजार वर्ष बीत गये ।” (रघु०)। “कुछ” के बदले अर्थ के अनुसार निश्चित संलग्न-वाचक विशेषण भी आता है, जैसे, “एक कम सौ यज्ञ” (तथा) ।

(उ) सर्वोत्तमता सूचित करने के लिए विशेषण के पहले “सबसे” लगाते हैं और उपमान और अधिकरण कारक में रखते हैं; जैसे, “सबसे बड़ी हानि ।” (सर०)। “है विश्व में सबसे बड़ी सर्वान्तकारी काल ही ।” (भारत०)। “धनुर्धारी योद्धाओं में इसीका नवर सबसे ऊँचा है ।” (रघु०) ।

(ऊ) सर्वोत्तमता दिखाने की एक और रीति यह है कि कभी-कभी विशेषण की द्विरुक्ति करते हैं अथवा द्विरुक्त विशेषणों में से पहले को अपादान-कारक में रखते हैं; जैसे, “इसके कंधों से बड़े-बड़े मोतियों का हार लटक रहा है ।” (रघु०)। “इस नगर में जो अच्छे से अच्छे पंडित हों ।” (गुटका०)। “जो खुशी बड़े-बड़े राजाओं को होती है वही एक गरीब से गरीब लकड़ारे को भी होती है ।” (परी०) ।

(ऋ) कभी-कभी सर्वोत्तमता केवल ध्वनि से सूचित होती है और शब्दों से केवल यही जाना जाता है कि अमुक बग्नु में अमुक गुण की अतिशयता है। इसके लिए अत्यंत, परम, अतिशय, महुतही, एकही, आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे अत्यंत सुंदर छवि,” “परम मनोहर रूप”। “बहुत ही डरावनी मूर्ति ।” “पंडितजी अपनी विद्या में एकही हैं ।” (परी०) ।

(ए) कुछ रंगवाचक विशेषणों से अतिशयता सूचित कराने के लिए उनके साथ प्रायः उसी अर्थ का दूसरा विशेषण वा संज्ञा लगाते हैं; जैसे, काला-भुजंग, लाल-अंगारा, पीला-जर्दू ।

(ऐ) कई वस्तुओं की एकत्र उत्तमता जताने के लिए “एक” विशेषण की द्विरुक्ति करके पहले शब्द को अपादान कारक में रखते हैं और द्वितीय विशेषणों के पश्चात् गुणवाचक विशेषण लाते हैं; जैसे, “शहर में एक से एक धनबान लोग पड़े हैं ।” “बाग में एक सुंदर फूल हैं ।”

३४५—संस्कृत गुणवाचक विशेषणों में^८ तुलना-द्योतक प्रत्यय लगाये जाते हैं । तुलना के विचार से विशेषणों की तीन अवस्थाएँ होती हैं—(१) मूलावस्था (२) उत्तरावस्था (३) उत्तमावस्था ।

(१) विशेषण के जिस रूप से किसी वस्तु की तुलना सूचित नहीं होती उसे मूलावस्था कहते हैं; जैसे, “सोना पीला होता है,” “उच्च स्थान,” “नम्र स्वभाव,” इत्यादि ।

(२) विशेषण के जिस रूप से दो वस्तुओं में किसी एक के गुण की अधिकता वा न्यूनता सूचित होती है उस रूप को उत्तरावस्था कहते हैं; जैसे, “बहु द्वंद्वतर प्रबल प्रमाण दें ।” (इति०) , “गुरुतर दोष,” “घोरतर पाप” इत्यादि ।

(३) उत्तमावस्था विशेषण के उस रूप को कहते हैं जिससे दो से अधिक वस्तुओं में किसी एक के गुण की अधिकता वा न्यूनता सूचित होती है, जैसे, “चंद्र के प्राचीनतम काव्य में ।” (विभक्ति०) , “उच्चतम आदर्श”, इत्यादि ।

३४६—संस्कृत में विशेषण की उत्तरावस्था में तर या ईयस् प्रत्यय लगाया जाता है और उत्तमावस्था में तम वा इष्ट प्रत्यय आता है । हिंदी में ईयस् और इष्ट प्रत्ययों की अपेक्षा तर और तम प्रत्ययों का विचार अधिक है ।

(अ) “तर” और “तम” प्रत्ययों के योग से मूल विशेषण में बहुत से विकार नहीं होते; केवल अंत्य न् का लोप होता है और “बस्” प्रत्ययांत विशेषणों में स् के बदले त् आता है; जैसे,

लघु (छोटा), लघुतर (अधिक छोटा) लघुतम (सबसे छोटा)

गुरु	गुरुतर	गुरुतम
------	--------	--------

महत्	महत्तर	महत्तम
------	--------	--------

युवन् (तरुण)	युवतर	युवतम
--------------	-------	-------

विद्वस् (विद्वान्)	विद्वत्तर	विद्वत्तम
--------------------	-----------	-----------

उत् (ऊपर)	उत्तर	उत्तम
-----------	-------	-------

(स०—“उत्तम” शब्द हिंदी में मूल अर्थ में आता है । परंतु “उत्तर” शब्द बहुधा “जवाब” और “दिशा” के अर्थ में प्रयुक्त होता है । “उत्तराद्द” शब्द में उत्तर का अर्थ “पिछला” है । “तर” और “तम” प्रत्ययों के मेल से “तारतम्य” शब्द बना है जो “तुलना” का पर्यायवाची है ।)

(आ) ईयस् और इष्ट प्रत्ययों के योग से मूल विशेषण में बहुत से विकार होते हैं; पर हिंदी में इनका प्रचार कम होने के कारण इस पुस्तक में इनके नियम लिखने की आवश्यकता नहीं है । यहाँ केवल इनके कुछ प्रचलित उदाहरण दिये जाते हैं—

वसिष्ठ = वसुमत् (धनी) + इष्ट ।

स्वादिष्ठ = स्वादु (मीठा) + इष्ट ।

बलिष्ठ = बलिन् + इष्ठ ।

गरिष्ठ = गुरु + इष्ठ ।

(३) नीचे लिखे रूप विशेषण के मूल रूप से भिन्न हैं—

कनिष्ठ—यह 'युवन्' शब्द का एक रूप है ।

ज्येष्ठ, श्रेष्ठ—इनके मूल शब्दों का पता नहीं है । हिंदी में "श्रेष्ठ" शब्द बहुधा उत्तरावस्था में आता है; जैसे, "धन" से विश्वा श्रेष्ठ है ।" (भाषा०) ।

[स०—हिंदी में ईयस्-प्रत्ययांत उदाहरण बहुधा नहीं मिलते । "इरेच्छा बलीयसी" और स्वर्गादपि गरीयसी" में संस्कृत के लीलिंग उदाहरण हैं ।]

३४६ (क)—हिंदी में कुछ उक्त विशेषण अपनी उत्तरावस्था और उत्तमावस्था में आते हैं; जैसे, विद्वत् (अधिक अच्छा), बद्वत् (अधिक बुरा), ज्यादातर (अधिकतर), पेशतर (अधिक पहले—क्रि० वि०), कमतरीन (नीचतम्) ।

बृठाँ अध्याय ।

क्रिया ।

३४७—क्रिया का उपयोग विधान करने में होता है और विधान करने में काल, रीति, पुरुष, लिंग और बचन की अवस्था का उल्लेख करना आवश्यक होता है ।

[स०—संस्कृत में ये सब अवस्थाएँ क्रिया ही के रूपांतर से सूचित होती हैं; पर हिंदी में इनके लिए बहुधा सहकारी क्रियाओं का काम पड़ता है ।]

३४८—क्रिया में वाच्य, काल, अर्थ, पुरुष, लिंग और बचन के कारण विकार होता है । जिस क्रिया में ये विकार पाये जाते हैं

और जिसके द्वारा विधान किया जा सकता है, उसे समापिका किया कहते हैं; जैसे, “लड़का खेलता है।” इस बाक्य में “खेलता है” समापिका किया है। “नौकर काम पर गया।” यहाँ “गया” समापिका किया है।

[१] वाच्य ।

३४६—वाच्य किया के उस रूपांतर को कहते हैं जिससे जाता जाता है कि बाक्य में कर्ता के विषय में विधान किया गया है वा कर्म के विषय में, अथवा केवल भाव के विषय में; जैसे, “स्त्री कपड़ा सीती है” (कर्ता), “कपड़ा सिया जाता है” (कर्म), “यहाँ बैठा नहीं जाता” (भाव) ।

[टी० — वाच्य का यह लक्षण हिंदी के अधिकांश व्याकरणों में दिये हुए लक्षणों से भिन्न है । उनमें वाच्य का लक्षण संस्कृत व्याकरण के अनुसार किया के केवल रूप के आधार पर किया गया है । संस्कृत में वाच्य का निर्णय केवल रूप पर हो सकता है; पर हिंदी में किया के कई एक प्रयोग—जैसे; लड़के ने पाठ पढ़ा, रानी ने सहेलियों को बुलाया, लड़कों को गाड़ी पर बिठाया जाय—ऐसे हैं जो रूप के अनुसार एक वाच्य में अर्थ के अनुसार दूसरे वाच्य में आते हैं । इसलिए संस्कृत व्याकरण के अनुसार, केवल रूप के आधार पर हिंदी में वाच्य का लक्षण करना कठिन है । यदि केवल रूप के आधार पर यह लक्षण किया जायगा तो अर्थ के अनुसार वाच्य के कई संकीर्ण (संलग्न), विभाग करने पड़ेंगे और यह विषय सहज होने के बदले कठिन हो जायगा ।

कई एक वैयाकरणों का मत है कि हिंदी में वाच्य का लक्षण करने में किया के केवल “रूपांतर” का उल्लेख करना अशुद्ध है, क्योंकि इस भाषा में वाच्य के लिए किया का रूपांतर ही नहीं होता, बरन् उसके साथ दूसरी किया का समाप्त भी होता है । इस आचेप का उत्तर यह है कि कोई

भाषा कितनी ही रूपांतर-शील क्यों न हो, उसमें कुछ न कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जिनमें मूँज शब्द में तो रूपांतर नहीं होता; किंतु दूसरे शब्दों की सहायता से रूपांतर माना जाता है। संस्कृत के “बोधयाम् आस”, “पठन् भवति” आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं। हिंदी में केवल बाच्य ही नहीं, किंतु अधिकांश काल, अर्थ, कृदंत और कारक तथा तुलना आदि भी बहुधा दूसरे शब्दों के योग से सूचित होते हैं। इसलिए हिंदी-व्याकरण में कहीं-कहीं संयुक्त शब्दों को भी, सुभीते के लिए, मूँज रूपांतर मान लेते हैं।

कोई-कोई वैयाकरण “बाच्य” को “प्रयोग” भी कहते हैं, क्योंकि संस्कृत व्याकरण में ये दोनों शब्द पर्यायिकाची हैं। हिंदी में बाच्य के संबंध से दो प्रकार की रचनाएँ होती हैं; इसलिए इमने “प्रयोग” शब्द का उपयोग किया के साथ कर्ता वा कर्म के अन्वय तथा अनन्वय ही के अर्थ में किया है और उसे “बाच्य” का अनावश्यक पर्यायिकाची शब्द नहीं रखता। हिंदी-व्याकरणों के “कर्तृप्रधान,” “कर्म-प्रधान” और “भाव-प्रधान” शब्द भास्मक होने के कारण इस पुस्तक में छोड़ दिये गये हैं।]

३४६ (क) — कर्तृबाच्य किया के उस रूपांतर को कहते हैं जिससे जाना जाता है कि वाक्य का (अं०—६७८—४) क्रिया का कर्ता है; जैसे, “लड़का दौड़ता है,” “लड़का पुस्तक पढ़ता है,” “लड़के ने पुस्तक पढ़ी,” “रानी ने सहेलियों को बुलवाया,” “हमने नहाया,” इत्यादि।

[टी० — “लड़के ने पुस्तक पढ़ी”—इसी वाक्य में किया को कोई-कोई वैयाकरण कर्मबाच्य (वा कर्मणिप्रयोग) मानते हैं। संस्कृत-व्याकरण में दिये हुए लक्षण के अनुसार ”पढ़ी” किया कर्मबाच्य (वा कर्मणि-प्रयोग) अवश्य है, क्योंकि उसके पुरुष, लिंग, वचन “पुस्तक” कर्म के अनुसार हैं, और हिंदी की रचना “लड़के ने पुस्तक पढ़ी” संस्कृत की रचना “बालकेन पुस्तिका पठिता” के बिलकुल समान है। तथापि हिंदी

की यह रचना कुछ विशेष कालों ही में होती है । (जिनका वर्णन आगे “प्रयोग” के प्रकरण में किया जायगा) और इसमें कर्म की प्रधानता नहीं है, किंतु कर्त्ता की है । इसलिए यह रचना रूप के अनुसार कर्मवाच्य होने पर भी अर्थ के अनुसार कर्त्तवाच्य है । इसी प्रकार “रानी ने सहेलियों को बुलाया”—इस वाक्य में “बुलाया” किया रूप के अनुसार तो भाववाच्य है, परंतु अर्थ के अनुसार कर्त्तवाच्य ही है और इसमें भी हमारा किया हुआ वाच्य का लक्षण बटित होता है ।]

३५०—किया के उस रूप को कर्मवाच्य कहते हैं जिससे जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य किया का कर्म है; जैसे कपड़ा सिया जाता है । चिढ़ी भेजी गई । मुझसे यह बोझ न उठाया जायगा । “उसे उतरवा लिया जाय ।” (शिव०) ।

३५१—किया के जिस रूप से यह जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य किया का कर्त्ता या कर्म कोई नहीं है उस रूप को भाववाच्य कहते हैं; जैसे, “यहाँ कैसे बैठा जायगा,” “धूप में चला नहीं जाता ।”

३५२—कर्त्तवाच्य अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की कियाओं में होता है; कर्मवाच्य केवल सकर्मक कियाओं में और भाववाच्य केवल अकर्मक कियाओं में होता है ।

(अ) यदि कर्मवाच्य और भाववाच्य कियाओं में कर्त्ता को लिखने की आवश्यकता हो तो उसे करण-कारक में रखते हैं; जैसे, लड़के से रोटी नहीं खाई गई । मुझसे चला नहीं जाता । कर्मवाच्य में कर्त्ता कभी-कभी “द्वारा” शब्द के साथ आता है; जैसे, “मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी गई ।”

(आ) कर्मवाच्य में उद्देश्य कभी अप्रत्यय कर्मकारक में (जो रूप में अप्रत्यय कर्त्ता-कारक के समान होता है) और

कभी सप्रत्यय कर्मकारक में आता है; जैसे, “होली एक अमराई में उतारी गई।” (ठेठ०) “उसे उतरवा लिया जाय।” (शब०) ।

[स०—कर्मचाच्य के उद्देश्य को कर्म-कारक में रखने का प्रयोग आधुनिक और एक-देशीय है। “रामचरितमानस” तथा “प्रेमसागर” में यह प्रयोग नहीं है। अधिकांश शिष्ट लेखक भी इससे मुक्त हैं; परंतु “प्रयोगशरण्यः वैयाकरण्यः” के अनुसार इसका विचार करना पड़ता है।

इस प्रयोग के विषय में द्विवेदी जी “सरस्वती” में लिखते हैं कि “तब खान बहादुर और उनके साथी (१) उसको पेश किया गया (२) खत को खाया गया (३) मुल्क को बरचाद किया गया, इत्यादि अशुद्ध प्रयोग कलाम से निकालते जरूर हिचकें” ।]

(इ) जनना, भूलना, खोना, आदि कुछ सकर्मक क्रियाएं बहुधा कर्मचाच्य में नहीं आतीं ।

[स०—संयुक्त क्रियाओं के वाच्य का विचार आगे (४२५ वें अंक में) किया जायगा ।]

३५३—हिंदी में कर्मचाच्य क्रिया का उपयोग सर्वत्र नहीं होता; वह बहुधा नीचे लिखे स्थानों में आती है—

(१) जब क्रिया का कर्ता अज्ञात हो अथवा उसके व्यक्त करने की आवश्यकता न हो; जैसे, “बोर पकड़ा गया है”, “आज हुकम सुनाया जायगा,” “न तु मारे जौहैं सब राजा ।” (राम०) ।

(२) कानूनी भाषा और सरकारी कागज-पत्रों में प्रभुता जताने के लिए; जैसे, “इत्तला दी जाती है,” “तुमको यह लिखा जाता है,” “सखत कारंबाई की जायगी ।”

(३) अशक्तता के अर्थ में; जैसे, “रोगी से अन्न नहीं खाया जाता,” “हमसे तुम्हारी बात न सुनी जायगी ।”

(४) किंचित् अभिमान में; जैसे, “यह किर देखा जायगा ।”

“नौकर बुलाये गये हैं।” “आपको यह बात बताई गई है।”
“उसे पेश किया गया।”

३५४—कर्मवाच्य के बदले हिंदी में बहुधा नीचे लिखी रखनाएँ आती हैं।

(१) कभी-कभी सामान्य वर्तमानकाल की अन्यपुरुष बहु-बचन किया का उपयोग कर कर्ता का अध्याहार करते हैं; जैसे, ऐसा कहते हैं (=ऐसा कहा जाता है)। ऐसा सुनते हैं (=ऐसा सुना जाता है)। सूत को कातते हैं और उससे कपड़ा बनाते हैं (=सूत काता जाता है और उससे कपड़ा बनाया जाता है)। तरावट के लिए तालु पर तेल मलाते हैं।

(२) कभी-कभी कर्मवाच्य की समानार्थिनी अकर्मक किया का प्रयोग होता है; जैसे, घर बनता है (बनाया जाता है)। वह लड़ाई में मरा (मारा गया) सड़क सिंच रही है (सीची जा रही है)।

(३) कुछ सकर्मक क्रियार्थक संज्ञाओं के अधिकरण कारक के साथ “आना” किया के विवक्षित काल का उपयोग करते हैं, जैसे, सुनने में आया है (सुना गया है), देखने में आता है (देखा जाता है), इत्यादि।

(४) किसी-किसी सकर्मक धातु के साथ “पड़ना” किया का इच्छित काल लगाते हैं; जैसे, “ये सब बातें देख पढ़ेंगी आगे।” (सर०)। जान पड़ता है; सुन पड़ता है।

(५) कभी-कभी पूर्ति (संज्ञा या विशेषण) के साथ “होना” किया के विवक्षित कालों का प्रयोग होता है, जैसे, नानक उस गाँव के पटवारी हुए (बनाये गये)। यह रीति प्रचलित हुई (की गई)।

(६) भूतकालिक कुदंत (विशेषण) के साथ संबंध-कारक

और “होना” किया के कालों का प्रयोग किया जाता है; जैसे, यह बात मेरी जानी हुई है (मेरे द्वारा जानी गई है) । वह काम लड़के का किया होगा (लड़के से किया गया होगा) ।

३५५—भावबाच्य किया बहुधा अशक्तता के अर्थ में आती है, जैसे, यहाँ कैसे बैठा जायगा । लड़के से चला नहीं जाता ।

(अ) अशक्तता के अर्थ में सकर्मक और अकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं के अपूर्ण क्रियाशोतक कुदंत के साथ “बनना” किया के कालों का भी उपयोग करते हैं, जैसे, रोटी खाते नहीं बनता, लड़के से चलते न बनेगा, इत्यादि ।
(अं०—४१६) ।

[द०—संयुक्त क्रियाओं के भावबाच्य का विचार आगे (४२६ वे अंक में) किया जायगा ।]

३५६—द्विकर्मक क्रियाओं के कर्मबाच्य में मुख्य कर्म उद्देश्य होता है और गौण कर्म उद्यों का त्यों रहता है; राजा को भेट दी गई । । विद्यार्थी को गणित सिखाया जायगा ।

(अ) अपूर्ण सकर्मक क्रियाओं के कर्मबाच्य में मुख्य कर्म उद्देश्य होता है, परंतु वह कभी-कभी कर्मकारक ही में आता है; जैसे, “सिपाही सरदार बनाया गया । “कांस्टेबलों को कालिज के अहाते में न खड़ा किया जाता । ”
(शिव०) ।

(२) काल ।

३५७—क्रिया के उस रूपांतर को काल कहते हैं जिससे क्रिया के व्यापार का समय तथा उसकी पूर्ण वा अपूर्ण अवस्था का बोध होता है; जैसे, मैं जाता हूँ (वर्तमानकाल) । मैं जाता था (अपूर्ण भूतकाल) । मैं जाऊँगा (भविष्यत् काल) ।

[स०—(१) काल (समय) अनादि और अनंत है । उसका कोई खंड नहीं हो सकता । तथापि वक्ता वा लेखक की हस्ति से समय के तीन भाग कहियत किये जा सकते हैं । जिस समय वक्ता वा लेखक बोलता वा लिखता हो उस समय को वर्तमान काल इकते हैं और उसके पहले का समय भूतकाल तथा पीछे का समय भविष्यत् काल कहलाता है । इन तीनों कालों का बोध किया के रूपों से होता है; इसलिए किया के रूप भी “काल” कहलाते हैं । किया के “काल” से केवल व्यापार के समय ही का बोध नहीं होता; किंतु उसकी पूर्णता वा अपूर्णता भी सूचित होती है । इसलिए किया के रूपांतरों के अनुसार प्रत्येक “काल” के भी भेद माने जाते हैं ।

(२) यह बात स्मरणीय है कि काल किया के रूप का नाम है, इसलिए दूसरे शब्द जिनसे काल का बोध होता है “काल” नहीं कहाते; जैसे, आज, कल, परसों, अभी, घड़ी, पल, इत्यादि ।)

३५८—हिंदी में किया के कालों के मुख्य तीन भेद होते हैं— (१) वर्तमान काल (२) भूत काल (३) भविष्यत् काल । किया की पूर्णता वा अपूर्णता के विचार से पहले दो कालों के दो-दो भेद और होते हैं । (भविष्यत् काल में व्यापार की पूर्ण वा अपूर्ण अवस्था सूचित करने के लिए हिंदी में किया के कोई विशेष रूप नहीं पाये जाते; इसलिए इस काल के कई भेद नहीं होते ।) किया के जिस रूप से केवल काल का बोध होता है और व्यापार की पूर्ण वा अपूर्ण अवस्था का बोध नहीं होता उसे काल की सामान्य अवस्था कहते हैं । व्यापार की सामान्य, अपूर्ण और पूर्ण अवस्था से कालों के जो भेद होते हैं, उनके नाम और उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

काल	सामान्य	अपूर्ण	पूर्ण
वर्तमान	वह चलता है	वह चल रहा है	वह चला है
भूत	वह चला	{ वह चल रहा था वह चलता था	वह चला था ०
भविष्यत्	वह चलेगा	०	०

(१) सामान्य वर्तमानकाल से जाना जाता है कि व्यापार का आरंभ बोलने के समय हुआ है; जैसे, हवा चलती है, लड़का पुस्तक पढ़ता है, चिट्ठी भेजी जाती है ।

(२) अपूर्ण वर्तमानकाल से ज्ञात होता है कि वर्तमान काल में व्यापार हो रहा है; जैसे, गाड़ी आ रही है । इम कपड़े पहिन रहे हैं । चिट्ठी भेजी जा रही है ।

(३) पूर्ण वर्तमानकाल की क्रिया से सूचित होता है कि व्यापार वर्तमानकाल में पूर्ण हुआ है; जैसे, नौकर आया है । चिट्ठी भेजी गई है ।

(स०—यद्यपि वर्तमानकाल एक और भूलकाल से और दूसरी और भविष्यत् काल से मर्यादित है तथापि उसकी पूर्व और उत्तर मर्यादा पूर्णतया निभित नहीं है । वह केवल वक्ता वा लेखक की तत्कालीक कल्पना पर निर्भर है । वह कभी—कभी तो केवल व्यापारी होता है और कभी—कभी सुग, मन्वंतर अथवा कल्प तक फैल जाता है । इसलिए भूतकाल के अंत और भविष्यत्-काल के आरंभ के बीच का कोई भी समय वर्तमान-काल कहलाता है ।]

(४) सामान्य भूतकाल की क्रिया से जाना जाता है कि

व्यापार बोलने वा लिखने के पहले हुआ; जैसे, पानी गिरा, गाढ़ी आई, चिट्ठी भेजी गई।

(४) अपूर्ण भूतकाल से बोध होता है कि व्यापार गत काल में पूरा नहीं हुआ, किंतु; जारी रहा; गाढ़ी आती थी, चिट्ठी लिखी जाती थी, नौकर जा रहा था ।

(५) पूर्ण भूतकाल से ज्ञात होता है कि व्यापार को पूर्ण हुए बहुत समय बीत चुका; जैसे, नौकर चिट्ठी लाया था, सेना लड़ाई पर भेजी गई थी ।

(६) सामान्य भविष्यत्-काल की क्रिया से ज्ञात होता है कि व्यापार का आरंभ होनेवाला है; जैसे, नौकर जायगा, हम कपड़े पहिनेंगे, चिट्ठी भेजी जायगी ।

[दी०—कालों का जो वर्गीकरण हमने यहाँ किया है वह प्रचलित हिंदी-व्याकरणों में किये गए वर्गीकरण से भिन्न है । उनमें काल के साथ साथ क्रिया के दूसरे अर्थ भी (जैसे—आशा, संभावना, संदेह, आदि) वर्गीकरण के आधार माने गये हैं । हमने इन दोनों आधारों (काल और अर्थ) पर अलग-अलग वर्गीकरण किया है, क्योंकि एक आधार में क्रिया केवल काल की प्रभान्ता है और दूसरे में केवल अर्थ वा रीति की । ऐसा वर्गीकरण न्याय-सम्मत भी है । ऊपर लिखे सात कालों का वर्गीकरण क्रिया के समय और व्यापार की पूर्ण अथवा अपूर्ण अवस्था के आधार पर किया गया है । अर्थ के अनुसार कालों का वर्गीकरण अगले प्रकरण में किया जायगा ।]

यदि हिंदी में वर्तमान और भूतकाल के समान भविष्यत्-काल में भी व्यापार की पूर्णता और अपूर्णता सूचित करने के लिए क्रिया के रूप उपलब्ध होते तो हिंदी की काल-व्यवस्था अँगरेजी के समान पूर्ण हो जाती और कालों की संख्या सात के बदले ठीक नौ होती । कोई-कोई वैयाकरण सकहते हैं कि “वह लिखता रहेगा” अपूर्ण भविष्यत् का और “वह लिख

चुकेगा” पूर्ण भविष्यत् का उदाहरण है; और इन दोनों कालों को स्वीकार करने से हिंदी की काल-व्यवस्था पूरी हो जायगी। ऐसा करना बहुत ही उचित होता; परंतु ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं वे यथार्थ में संयुक्त कियाओं के हैं और इस प्रकार के रूप दूसरे कालों में भी पाये जाते हैं; जैसे, वह लिखता रहा। वह लिख जुका, इत्यादि। तब इन रूपों को भी अपूर्ण भविष्यत् और पूर्ण भविष्यत् के समान क्रमशः अपूर्णभूत और पूर्णभूत मानना पड़ेगा जिससे काल-व्यवस्था पूर्ण होने के बदले गङ्गबड़ और कठिन हो जायगी। वही बात अपूर्ण वर्तमान के रूपों के विषय में भी कही जा सकती है।

इमने इस काल के उदाहरण केवल काल-व्यवस्था की पूर्णता के लिए दिये हैं। इस प्रकार के रूपों का विचार संयुक्त कियाओं के अध्याय में किया जायगा। (अं०—४०७, ४१२, ४१५) ।

कालों के संबंध में यह बात भी विचारणीय है कि कोई-कोई वैयाकरण इन्हें सार्थक नाम (सामान्य वर्तमान, पूर्णभूत, आदि) देना ठीक नहीं समझते, क्योंकि किसी एक नाम से एक काल के सब अर्थ सूचित नहीं होते। भद्री ने इनके नाम संस्कृत के लट्-लोट्-लाट्-लिङ् आदि के अनुकरण पर “पहला रूप” “तीसरा रूप”, आदि (कल्पित नाम) रखते हैं। कारकों के नामों के समान कालों के नाम भी व्याकरण में विवाद-ग्रस्त विषय हैं; परंतु जिन कारणों से हिंदी में कारकों के सार्थक नाम रखना प्रयोजनीय है, उन्हीं कारणों से कालों के सार्थक नाम भी आवश्यक हैं।

कालों के नामों में इमने केवल प्रचलित “आसन्न भूतकाल” के बदले “पूर्ण वर्तमानकाल” नाम रखता है। इस काल से भूतकाल में आरंभ होनेवाली क्रिया की पूर्णता वर्तमान काल में सूचित होती है; इसलिए यह विछुला नाम ही अधिक सार्थक ज्ञान प्रदत्ता है और इससे कालों के नामों में एक प्रकार की व्यवस्था भी आ जाती है।]

[३] अर्थ ।

३५६—किया के जिस रूप से विधान करने की रीति का बोध होता है उसे “अर्थ” कहते हैं; जैसे, लड़का जाता है (निश्चय), लड़का जावे (संभावना), तुम जाओ (आज्ञा), यदि लड़का जाता तो अच्छा होता (संकेत) ।

[टी०—हिंदी के अधिकांश व्याकरणों में इस रूपांतर का विचार अलग नहीं किया गया, किन्तु काल के साथ मिला दिया गया है । आदम साहब के व्याकरणों में “नियम” के नाम से इस रूपांतर का विचार हुआ है और पाँचे महाशय ने स्पात् मराठी के अनुकरण पर अपनी “भाषातत्त्वदीपिका” में इसका विचार “अर्थ” नाम से किया है । इस रूपांतर का नाम काले महाशय ने भी अपने अङ्गरेजी-संस्कृत व्याकरण में (लोट्, विधि लिंग, आदि के लिए) “अर्थ” ही रखा है । यह नाम “नियम” की अपेक्षा अधिक प्रचलित है; इसलिए हम भी इसका प्रयोग करते हैं, यद्यपि यह योड़ा बहुत भ्रामक अवश्य है ।

किया के रूपों से केवल समय और पूर्ण अथवा अपूर्ण अवस्था ही का बोध नहीं होता, किन्तु निश्चय, संदेह, संभावना, आज्ञा, संकेत, आदि का भी बोध होता है; इसलिए इन रूपों का भी व्याकरण में संग्रह किया जाता है । इन रूपों से काल का भी बोध होता है और अर्थ का भी; और किसी-किसी रूप में ये दोनों इतने मिले रहते हैं कि इनको अलग-अलग करके बताना कठिन हो जाता है; जैसे, “वहाँ न जाना पुत्र, कहीं ।” (एकांत०) । इस वाक्य में केवल आशार्थ ही नहीं है; किन्तु भविष्यत् काल भी है, इसलिए यह निश्चित करना कठिन है कि “जाना” काल का रूप है अथवा अर्थ का । कदाचित् इसी कठिनाई से बचने के लिए हिंदी के वैयाकरण काल और अर्थ को मिलाकर किया के रूपों का वर्गीकरण करते हैं । इसके लिए उन्हें काल के लक्षण में यह कहना

पढ़ता है कि “किया का ‘काल’ समय के अतिरिक्त व्यापार की अवस्था भी बताता है अर्थात् व्यापार समाप्त हुआ या नहीं हुआ, होगा अथवा उसके होने में संदेह है।” ‘काल’ के लक्षण को इतना व्यापक कर देने पर भी आज्ञा, संभावना और संकेत अर्थ बच जाते हैं और इन अर्थों के अनुसार भी किया के रूपों का वर्गीकरण करना आवश्यक होता है। इसलिए समय और पृथग्ता वा अपृथग्ता के सिवा किया के जो और अर्थ होते हैं, उनके अनुसार अलग वर्गीकरण करना उचित है, यद्यपि इस वर्गीकरण में योड़ी बहुत अशास्त्रीयता अवश्य है।]

३६०—हिंदी में कियाओं के मुख्य पाँच अर्थ होते हैं—(१) निश्चयार्थ (२) संभावनार्थ (३) संदेहार्थ (४) आशार्थ और (५) संकेतार्थ ।

(१) किया के जिस रूप से किसी विधान का निश्चय सूचित होता है उसे निश्चयार्थ कहते हैं; जैसे, “लड़का आता है,” “नौकर चिढ़ी नहीं लाया,” “हम किताब पढ़ते रहेंगे,” “क्या आदमी न जायगा ।”

[स०—(क) हिंदी में निश्चयार्थ किया का कोई विशेष रूप नहीं है। जब किया किसी विशेष अर्थ में नहीं आती तब उसे, सुभीते के लिए, निश्चयार्थ में मान लेते हैं। “काल” के विवेचन में पहले (अं०-३५८ में) जो उदाहरण दिए गये हैं वे सब निश्चयार्थ के उदाहरण हैं।

(ख) प्रश्नवाचक वाक्यों में किया के रूप से प्रश्न सूचित नहीं होता; इसलिए प्रश्न को किया का अलग “अर्थ” नहीं मानते। यद्यपि प्रश्न पूछने में वक्ता के मन में संदेह का आभास रहता है तथापि प्रश्न का उत्तर संदेह संदिग्ध नहीं होता। “क्या लड़का आया है?”—इस प्रश्न का उत्तर निश्चय-पूर्वक दिया जा सकता है; जैसे, “लड़का आया है” अथवा “लड़का नहीं आया”। इसके सिवा प्रश्न स्वयं कई अर्थों में

किया जा सकता है; जैसे, “क्या लड़का आया है” (निश्चय), “लड़का कैसे आवे ?” (संभावना), “लड़का आया होगा” (संदेह), इत्यादि ।

(२) संभावनार्थी किया से अनुमान, इच्छा, कर्तव्य आदि का बोध होता है; जैसे, कदाचित् पानी बरसे (अनुमान), तुम्हारी जय हो (इच्छा), राजा को उचित है कि प्रजा का पालन करे (कर्तव्य), इत्यादि ।

(३) संदेहार्थी किया से किसी बात का संदेह जाना जाता है; जैसे, “लड़का आता होगा,” “नौकर गया होगा ।”

(४) आशार्थी किया से आशा, उपदेश, निषेध, आदि का बोध होता है; जैसे, तुम जाओ, लड़का जावे, वहाँ मत जाना, क्या मैं जाऊँ (प्रार्थना), इत्यादि ।

[स०—आशार्थी और संभावनार्थी के रूपों में बहुत कुछ समानता है । यह बात आगे काल-रचना के विवेचन में जान पड़ेगी । संभावनार्थी के कर्तव्य, योग्यता आदि अर्थों में कभी-कभी आशा का अर्थ गमित रहता है; जैसे, “लड़का यहाँ बैठे” । इस वाक्य में किया से आशा और कर्तव्य दोनों अर्थ सूचित होते हैं ।]

(५) संकेतार्थी किया से ऐसी दो घटनाओं की असिद्धि सूचित होती है जिसमें कार्य-कारण का संबंध होता है; जैसे “यदि मेरे पास बहुतसा धन होता तो मैं चार काम करता ।” (भाषासार०) । “यदि तूने भगवान को इस मंदिर में विठाया होता तो यह अशुद्ध क्यों रहता ।” (गुटका०) ।

[स०—संकेतार्थीक वाक्यों में जो—तो समुच्चयबोधक अव्यय बहुधा आते हैं ।]

३६१—सब अर्थों के अनुसार कालों के जो भेद होते हैं उन की संख्या, नाम और उदाहरण आगे दिये जाते हैं—

निष्ठयार्थ	संभावनार्थ	संदेहार्थ	आशार्थ	संकेतार्थ
१. सामान्य वर्तमान वह चलता है	७. संभाव्य वर्तमान वह चलता	१०. संदिग्ध वर्तमान वह चलता	१२. प्रत्यक्ष विधि तू. चल	१४. सामान्य संकेतार्थ वह चलता
२. पूर्ण वर्तमान वह चला है	८. हो ८. संभाव्य भूत	११. संदिग्ध भूत होगा	१३. परोक्ष विधि तू. चलना	१५. अपूर्ण संकेतार्थ वह चलता
३. सामान्य भूत वह चला	९. संभाव्य भविष्यत्	१२. संभाव्य होगा		१६. पूर्ण संकेतार्थ वह चला
४. अपूर्ण भूत वह चलता था	१०. संभाव्य भविष्यत्			१७. होता
५. पूर्ण भूत वह चला था				
६. सामान्य भविष्यत् वह चलेगा				

[स०—(१) इन उदाहरणों से जान पड़ेगा कि हिंदी में कालों की संख्या कम से कम सोलह है । भिन्न-भिन्न हिंदी व्याकरणों में यह संख्या भिन्न-भिन्न पाई जाती है जिसका कारण यह है कि कोई-कोई वैयाकरण कुछ कालों को स्वीकृत नहीं करते अथवा उन्हें भ्रम-वश छोड़ जाते हैं । अपूर्ण वर्तमान, अपूर्ण भविष्यत् और पूर्ण भविष्यत् कालों को छोड़, जिनका विवेचन संयुक्त कियाओ के साथ करना ठीक जान पड़ता है,

शेष काल हमारे किये हुए वर्गोंकरण में ऐसे हैं जिनका प्रयोग भाषा में पाया जाता है और जिनमें काल तथा अर्थ के लक्षण घटते हैं। कालों के प्रचलित नामों में हमने दो नाम बदल दिये हैं—(१) आसन्नभूत (२) देतुहेतुमद्भूत। “आसन्नभूत” नाम बदलने का कारण पहले कहा जा चुका है; तथापि कालन्तरना में इसी नाम का उपयोग ठीक जान पड़ता है। “देतुहेतुमद्भूत” नाम बदलने का कारण यह है कि इस काल के तीन रूप होते हैं जिनमें से प्रत्येक का प्रयोग अलग-अलग प्रकार का है और जिनका अर्थ एक ही नाम से सूचित नहीं होता। ये काल केवल संकेतार्थ में आते हैं; इसलिए इनके नामों के साथ “संकेत” शब्द रखना उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार “संभाष्य” और “संदिग्ध” शब्द संभावनार्थ और संदेहार्थ सूचित करने के लिए आवश्यक होते हैं।

जो काल और नाम प्रचलित व्याकरणोंमें नहीं पाये जाते वे उदाहरण सहित यहाँ लिखे जाते हैं—

प्रचलित नाम	नया नाम	उदाहरण
आसन्न भूतकाल	पूर्ण वर्तमानकाल	वह चला है
×	संभाष्य वर्तमानकाल	वह चलता हो
×	संभाष्य भूतकाल	वह चला हो
विधि	प्रत्यक्ष विधि	तू चल
देतुहेतुमद्भूतकाल	सामान्य संकेतार्थ	वह चलता
×	अपूर्ण संकेतार्थ	वह चलता होता
×	पूर्ण संकेतार्थ	वह चला होता

(२) कालों के विशेष अर्थ वाक्य-विन्यास में लिखे जायेंगे।)

(४) पुरुष, लिंग और वचन प्रयोग

२६२—हिंदी कियाओंमें तीन पुरुष (उच्चम, मध्यम और अन्य,) २२

दो लिंग (पुरुषिंग और स्त्रीलिंग), और दो वचन (एकवचन और बहुवचन) होते हैं । उदाह—

पुरुषिंग ।

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मैं चलता हूँ	हम चलते हैं
मध्यम „	तू चलता है	तुम चलते हो
अन्य „	वह चलता है	वे चलते हैं
स्त्रीलिंग ।		

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मैं चलती हूँ	हम चलती हैं
मध्यम „	तू चलती है	तुम चलती हो
अन्य „	वह चलती है	वे चलती हैं

३६३—पुरुषिंग एकवचन का प्रत्यय आ, पुरुषिंग बहुवचन का प्रत्यय ए, स्त्रीलिंग एक वचन का प्रत्यय ई और स्त्रीलिंग बहुवचन का प्रत्यय ई वा ई है ।

३६४—संभाव्य भविष्यत और विधि-कालों में लिंग के कारण कोई रूपांतर नहीं होता । स्थितिदर्शक “होना” किया के सामान्य वर्तमान के रूपों में भी लिंग का कोई विकार नहीं होता । (अं०-३८६-१, ३८७) ।

३६५—वाक्य में कर्त्ता वा कर्म के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार किया का जो अन्वय और अनन्वय होता है उसे प्रयोग कहते हैं । हिंदी में जो तीन प्रयोग होते हैं—(१) कर्त्तरिप्रयोग (२) कर्मणिप्रयोग और (३) भावे प्रयोग ।

(१) कर्त्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार जिस किया का रूपांतर होता है उस किया को कर्त्तरिप्रयोग कहते हैं; जैसे,

मैं चलता हूँ, यह जाती है, वे आते हैं, लड़की कपड़ा सीती है, इत्यादि ।

(२) जिस क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन कर्म के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार होते हैं उसे कर्मणिप्रयोग कहते हैं; जैसे, मैंने पुस्तक पढ़ी, पुस्तक पढ़ी गई, रानी ने पत्र लिखा, इत्यादि ।

(३) जिस क्रिया के पुरुष, लिंग और वचन कर्ता वा कर्म के अनुसार नहीं होते, अर्थात् जो सदा अन्य पुरुष, पुलिंग, एक-वचन में रहती है उसे भावेप्रयोग कहते हैं; जैसे, रानी ने सहेलियों को बुलाया, मुझसे चला नहीं जाता, सिपाहियों को लड़ाई पर भेजा जावेगा ।

३६६—सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कुदंत से बने हुए कालों को (अं०—३६) छोड़कर कर्त्तवाच्य के शेष कालों में तथा अकर्मक क्रियाओं के सब कालों में कर्त्तरिप्रयोग आता है । कर्त्तरिप्रयोग में कर्ता-कारक अप्रत्यय रहता है ।

अप०—(१) भूतकालिक कुदंत से बने हुए कालों में बोलना, भूलना, बकना, लाना, समझना और जानना सकर्मक क्रियाएँ कर्त्तरिप्रयोग में आती हैं, जैसे, लड़की कुछ न बोली, हम बहुत बके, “राम-मन-भ्रमर न भूला” । (राम०) । “दूसरे गर्भाधान में केतकी पुत्र जनी” । (गुटका०) । कुछ तुम समझे कुछ हम समझे । (कहा०) । नौकर चिढ़ी लाया ।

अप०—(२) नहाना, छींकना, आदि अकर्मक क्रियाएँ भूतकालिक कुदंत से बने हुए कालों में भावेप्रयोग में आती हैं, जैसे, हमने नहाया है, लड़की ने छींका, इत्यादि ।

प्रत्य०—कोई-कोई लेखक बोलना, समझना और जानना क्रियाओं के साथ विकल्प से सप्रत्यय कर्ता-कारक का प्रयोग करते

हैं; जैसे, “उसने कभी मूठ नहीं बोला” । (रघु०) । “केतकी ने लड़की जनी” । (गुटका०) । “जिन स्त्रियों ने तुम्हारे बाप के बाप को जना है ।” (शिव०) । “जिसका मतलब मैंने कुछ भी नहीं समझा ।” (चिचित्र०) ।

सितारे-हिंद “पुकारना” किया को सदा कर्त्तरिप्रयोग में लिखते हैं; जैसे, “चोबदार पुकारा” । “जो तू एक बार भी जी से पुकारा होता ।” (गुटका०) ।

[स०—संयुक्त क्रियाओं के प्रयोगों का विचार वाक्य-विन्यास में किया जायगा । (अं०—३८—६३८) ।]

३६७—कर्मणिप्रयोग दो प्रकार का होता है—(१) कर्तुं-वाच्य कर्मणिप्रयोग (२) कर्मवाच्य कर्मणिप्रयोग ।

(१) “बोलना”—वर्ग की सकर्मक क्रियाओं को छोड़ शेष कर्तुंवाच्य सकर्मक क्रियाएँ भूतकालिक कुदंत से बने कालों में (अप्रत्यय कर्मकारक के साथ) कर्मणिप्रयोग में आती हैं; जैसे, मैंने पुस्तक पढ़ी, मंत्री ने पत्र लिखे, इत्यादि । कर्तुंवाच्य के कर्मणिप्रयोग में कर्त्ता-कारक सप्रत्यय रहता है ।

(२) कर्मवाच्य की सब क्रियाएँ (अं०—३५०, ३६३) अप्रत्यय कर्मकारक के साथ कर्मणिप्रयोग में आती हैं। जैसे, चिट्ठी भेजी गई, लड़का बुलाया जायगा, इत्यादि । यदि कर्मवाच्य के कर्मणिप्रयोग में कर्ता की आवश्यकता हो तो वह करण-कारक में अथवा “द्वारा” शब्द के साथ आता है; जैसे, मुझसे पुस्तक पढ़ी गई । मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी गई ।

३६८—भावेप्रयोग तीन प्रकार का होता है—(१) कर्तुंवाच्य भावेप्रयोग (२) कर्मवाच्य भावेप्रयोग (३) भाववाच्य भावेप्रयोग ।

(१) कर्तुंवाच्य भावेप्रयोग में सकर्मक क्रिया के कर्ता और कर्म दोनों सप्रत्यय रहते हैं और यदि क्रिया अकर्मक हो तो केवल

कर्त्ता सप्रत्यय रहता है; जैसे, रानी ने सहेलियों को बुलाया, हमने नहाया है, लड़की ने छोंका था।

(२) कर्मवाच्य भावेप्रयोग में कर्म सप्रत्यय रहता है और यदि कर्त्ता की आवश्यकता हो तो वह “द्वारा” के साथ अथवा करण-कारक में आता है; परंतु बहुधा वह लुप्त ही रहता है; जैसे, “उसे अदालत में पेश किया गया।” “तौकर को वहाँ भेजा जायगा।”

[स०—सप्रत्यय कर्म कारक का उपयोग वाक्य-विन्यास के कारक-प्रकरण में लिखा जायगा (अ०—५२०) ।]

(३) भाववाच्य भावेप्रयोग में कर्त्ता की आवश्यकता हो तो उसे करण-कारक में रखते हैं; जैसे, यहाँ बैठा नहीं जाता, मुफ्ते चला नहीं जाता, इत्यादि। भाववाच्य भावेप्रयोग में सदा अकमंक किया आती है। (अ०—३५२) ।

(४) कुदंत ।

३६६—किया के जिन रूपों का उपयोग दूसरे शब्द-भेदों के समान होता है उन्हें कुदंत कहते हैं; जैसे, चलना (संज्ञा), चलता (विशेषण), चलकर (किया-विशेषण), मारे, लिए (संबंध-सूचक), इत्यादि।

[य०—कई कुदंतों का उपयोग काल-रचना तथा संयुक्त कियाओं में होता है और ये सब धातुओं से बनते हैं।]

३७०—हिंदी में रूप के अनुसार कुदंत दो प्रकार के होते हैं—
 (१) विकारी (२) अविकारी वा अव्यय। विकारी कुदंतों का प्रयोग बहुधा संज्ञा वा विशेषण के समान होता है और कुदंत अव्यय किया-विशेषण वा कभी-कभी संबंधसूचक के समान आते हैं। (अ०—६२०) । यहाँ केवल उन कुदंतों का विचार किया

जाता है जो काक्ष-रचना सथा संयुक्त क्रियाओं में उपयुक्त होते हैं। शेष कृदंत व्युत्पत्ति-प्रकरण में लिखे जायेंगे।

१—विकारी कृदंत ।

३५१—विकारी कृदंत चार प्रकार के हैं—(१) क्रियार्थक संज्ञा (२) कर्त्तव्याचक संज्ञा (३) वर्तमानकालिक कृदंत (४) भूत-कालिक कृदंत ।

३५२—धातु के अंत में “ना” जोड़ने से क्रियार्थक संज्ञा बनती है। (अं०—१८८—अ)। इसका प्रयोग संज्ञा और विशेषण दोनों के समान होता है। क्रियार्थक संज्ञा केवल पुर्णिंग और एकवचन में आती है, और इसकी कारक-रचना संशोधन कारक को छोड़ शेष कारकों में आकारांत पुर्णिंग (तद्वत्) संज्ञा के समान होती है, (अं०—३१०); जैसे, जाने को, जाने से, जाने में इत्यादि ।

(अ) जब क्रियार्थक संज्ञा विशेषण के समान आती है तब उसका रूप उसकी पूर्ति वा कर्म (विशेष्य) के लिंग-वचन के अनुसार बदलता है; जैसे, “तुम्हें परीक्षा करनी हो तो लो ।” (परीक्षा०)। “बनयुवतियों की छवि रनवास की स्त्रियों में मिलनी दुर्लभ है ।” (शकु०)। “देखनी हमको पढ़ी औरंगजेबी अंत में ।” (भारत०)। “बात करनी हमें मुश्किल कभी ऐसी तो न थी ।” “पहिनने के बख आसानी से चढ़ने उत्तरनेवाले होने चाहिए ।” (सर०)।

[स०—क्रियार्थक विशेषण को लेखक लोग कभी-कभी अविकृत ही रखते हैं; जैसे, “मत कैलाने के लिए लड़ाई करना ।” (इति०)।

कौनसी बात समाज को मानना चाहिए ।” (स्वा०) । “मनुष्य-नाशना करना चाहिए ।” (शिव०) ।]

३७३—क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप के अंत में “बाला” लगाने से कर्तृवाचक-संज्ञा बनती है, जैसे, चलनेवाला, जानेवाला, इत्यादि । इसका प्रयोग कभी-कभी भविष्यत्कालिक कुदंत विशेषण के समान होता है; जैसे, आज मेरा भाई आनेवाला है । जानेवाला नौकर । कर्तृवाचक संज्ञा का रूपांतर संज्ञा और विशेषण के समान होत है ।

[स०—“बाला” प्रत्यय के बदले कभी-कभी “हारा” प्रत्यय आता है । “मरना” और “होना” क्रियार्थक संज्ञाओं के अंत्य “आ” का लोप करके “हारा” के बदले “हार” लगते हैं; जैसे, मरनहार, होनहार । “बाला” या “हार” के बल प्रत्यय है, स्वरूप शब्द नहीं है । पर राम० में मूल शब्द और इस प्रत्यय के बीच में ‘‘हु’’ अवधारणा-बोधक अव्यय रख दिया गया है, जैसे, भयउ न अहह न होनिहु “हारा” । कोई-कोई आङ्गुनिक लेखक “बाला” को मूल शब्द से अलग लिखते हैं ।

“बाला” को कोई-कोई वैयाकरण संस्कृत के “बत्” या “बल्” से और कोई-कोई “पाल” से व्युत्पन्न हुआ मानते हैं; और “हारा” को संस्कृत के “कार” प्रत्यय से निकला हुआ समझते हैं ।]

३७४—वर्तमानकालिक कुदंत धातु के अंत में “ता” लगाने से बनता है, जैसे, चलता, बोलता इत्यादि । इसका प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है और इसका रूप आकारांत विशेषण के समान बदलता है, जैसे, बहता पानी, चलती चक्की, जीते कीड़े, इत्यादि । कभी-कभी इसका प्रयोग संज्ञा के समान होता है, और तब इसकी कारक-रचना आकारांत पुँकिंग संज्ञा के समान होती है, जैसे, मरता क्या न करता । दूबते को तिनके का सहारा बस है । मारतों के आगे, भागतों के पीछे ।

३७५—भूतकालिक कुदंत धातु के अंत में आ जोड़ने से बनता है। इसकी रचना नीचे लिखे नियमों के अनुसार होती है—

(१) अकारांत धातु के अंत्य “अ” के स्थान में “आ” कर देते हैं, जैसे,

बोलना—बोला

पहचानना—पहचाना

ठरना—ठरा

मारना—मारा

समझना—समझा

खींचना—खींचा

(२) धातु के अंत में आ, एवा ओ हो तो धातु के अंत में “य” कर देते हैं, जैसे,

लाना—लाया

बोना—बोया

कहलाना—कहलाया

हुबोना—हुबोया

खेना—खेया

सेना—सेया

(अ) यदि धातु के अंत में ई हो तो उसे हस्त कर देते हैं, जैसे, पीना—पिया, जीना—जिया, सीना—सिया।

(३) ऊकारांत धातु की “ऊ” को हस्त करके उसके आगे “आ” लगाते हैं, जैसे,

चूना—चुआ

छूना—छुआ

३७६—नीचे लिखे भूतकालिक कुदंत नियम-विरुद्ध बनते हैं—

होना—हुआ

जाना—गया

करना—किया

मरना—मुआ

देना—दिया

लेना—लिया

[३०—“मुआ” केवल कविता में आता है। गद्य में “मरा” शब्द प्रचलित है। मुआ, हुआ, आदि शब्दों को कोई-कोई लेखक मुपा, हुवा, छुया, आदि रूपों में लिखते हैं, पर ये रूप अशुद्ध हैं, क्योंकि ऐसा उच्चारण नहीं होता और ये शिष्ट-सम्मत भी नहीं है। करना का भूतकालिक कुदंत “करा” प्रान्तिक प्रयोग है। “जाना” का भूतकालिक कुदंत

“जाया” संयुक्त कियाओ में आती है। इसका रूप “गया” सं०—गतः से प्रा०—गओ के द्वारा बना है।]

३७७—भूतकालिक कृदंत का प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है; जैसे, मरा, घोड़ा, गिरा, घर, डठा हाथ, सुनी बात, भागा चोर।

(अ) वर्तमानकालिक और भूतकालिक कृदंतों के साथ बहुधा “हुआ” लगाते हैं और इसमें मूल कृदंतों के समान रूपांतर होता है; जैसे, दौड़ता हुआ घोड़ा, चलती हुई गाड़ी, देखो हुई बस्तु, मरे हुए लोग, इत्यादि। खीलिंग बहुवचन का प्रत्यय केवल “हुई” में लगता है; जैसे, मरी हुई मकिलयाँ।

(आ) भूतकालिक कृदंत भी कभी-कभी संज्ञा के समान आता है; जैसे, हाथ का दिया, पिसे को पीसना। “गई बहोरि गरीब निवाजू ।” (राम०)

(इ) सकर्मक किया से बना हुआ भूतकालिक कृदंत विशेषण कर्मवाच्य होता है अर्थात् वह कर्म की विशेषता बताता है; जैसे, किया हुआ काम, बनाई हुई बात, इत्यादि। इस अर्थ में इस कृदंत के साथ कोई-कोई लेखक “गया” कृदंत जोड़ते हैं; जैसे, किया गया काम, बनाई गई बात, इत्यादि।

३७८—जिन भूतकालिक कृदंतों में “आ” के पूर्व “य” का आगम होता है उसमें “ए” और “ई” प्रत्ययों के पहले विकल्प से “य” का लोप हो जाता है; जैसे, लाये वा लाए; लायी वा लाई। यदि “य” प्रत्यय के पहले “इ” हो तो “य” का लोप होकर “इ” प्रत्यय पूर्व “इ” में संधि के अनुसार मिल जाता है, जैसे,

लिथा—सी, दिया—दी, किया—की, सिया—सी, पिया—पी, जिया—जी। “गया” का खीलिंग “गई” होता है।

[स०—कोई-कोई लेखक इंकारात् रूपों को लियी, लिई, गयी, जियी, मिई, आदि लिखते हैं; पर ये रूप सर्व-समत नहीं हैं। चतुर्थचन में ये (लाये) और खीलिंग में ई (लाई) का प्रयोग अधिक शिष्ट माना जाता है।]

२—कुदंत अव्यय ।

३४७—कुदंत अव्यय चार प्रकार के हैं—

(१) पूर्वकालिक कुदंत (२) तात्कालिक कुदंत (३) अपूर्ण कियायोतक (४) पूर्ण कियायोतक ।

३८०—पूर्वकालिक कुदंत अव्यय धातु के रूप में रहता है अथवा धातु के अंत में “के”, “कर” वा “करके” जोड़ने से बनता है; जैसे,

किया	धातु	पूर्वकालिक कुदंत
आना	जा	जाके, जाकर, जाकरके
खाना	खा	खाके, खाकर, खाकरके
दौड़ना	दौड़	दौड़के, दौड़कर, दौड़करके

[स०—“करना” किया के धातु में केवल “के” जोड़ा जाता है; जैसे, करके । “आना” किया के, नियमित रूपों के सिवा, कभी-कभी दो रूप और होते हैं; जैसे, आन और आनकर । उदा०—“शकुंतला स्नान करके खड़ी है” (शकु०) । “दूत ने आनकर यह खबर दी ।” “आन पहुँची” । किंतु मैं स्वरूप धातु के परे कभी-कभी “ये” जोड़कर पूर्वकालिक कुदंत अव्यय बनाते हैं; जैसे, जाना—जाय, बनाना—बनाय, इत्यादि । पूर्वकालिक कुदंत का “य” प्रत्यय संस्कृत के “य”, प्रत्यय से निकला है और उसका एक पूर्वकालिक कुदंत “विहाय” (छोड़कर)

अपने नूल रूप में हिंदी कविता में आता है; जैसे, “तप विहाय जेहि
भावै भोगू।” (राम०) ।

(क) पूर्बकालिक कुदंत अव्यय से बहुधा मुख्य किया के
पहले होनेवाले व्यापार की समाप्ति का बोध होता है; जैसे, “हम
नगर देखकर लौटे ।” “वे भोजन करके लेटते हैं ।” किया-समाप्ति
के अतिरिक्त, पूर्बकालिक किया से नीचे लिखे अर्थ पाये जाते हैं—

(१) कार्य-कारण; जैसे, लड़का कुसंग में पड़कर चिगड़
गया । प्रभुता पाह जाहि भद नाही । (राम०) ।

(२) रीति; जैसे, बचा दौड़कर चलता है । “साँग कटाकर
बछड़ों में मिलना ।” (कहा०) ।

(३) द्वारा; जैसे, इस पवित्र आश्रम के दर्शन करके हम
अपना जन्म सफल करें । (शकु०) । फौसी लगाकर मरना ।

(४) विरोध; जैसे, तुम ब्राह्मण होकर संस्कृत नहीं जानते ।
पानी में रहकर भगर से बैर । (कहा०) ।

इन्हीं वर्तमानकालिक कुदंत के “ता” को “ते” आदेश
करके उसके आगे “ही” जोड़ने से तात्कालिक कुदंत अव्यय बनता
है; जैसे, बोलतेही, आतेही, इत्यादि । इससे मुख्य किया के साथ
होनेवाले व्यापार की समाप्ति का बोध होता है; जैसे, “उसने
आतेही उपद्रव मचाया ।” ‘सिपाही गिरते ही मर गया’ ।

इन्हीं अपूर्ण कियाद्योतक कुदंत अव्यय का रूप तात्कालिक
कुदंत अव्यय के समान “ता” को “ते” आदेश करने से बनता
है; परंतु उसके साथ “ही” नहीं जोड़ी जाती; जैसे, सोते, रहते,
देखते, इत्यादि । इससे मुख्य किया के साथ होनेवाले व्यापार की
अपूर्णता सूचित होती है; जैसे, “मुझे घर लौटते रात हो
जायगी ।” “उसने जहाजों को एक पाती में जाते देखा” ।

(विचित्र०) । “तू अपनी विवाहिता को छोड़ते नहीं लजाता ।”
 (शकुं०) ।

इद३—पूर्णि क्रियाद्योतक कृदंत अव्यय भूतकालिक कृदंत विशेषण के अंत्य “आ” को “ए” आदेश करने से बनता है; जैसे, किये, गये, बीते, लिये, मारे, इत्यादि । इस कृदंत से बहुधा मुख्य क्रिया के साथ होनेवाले व्यापार की पूर्णता का बोध होता है; जैसे, इतनी रात गये तुम क्यों आये ? इस बात को हुए कई वर्ष बीत गये । इससे मुख्य क्रिया की रीति भी सूचित होती है; जैसे, ‘महाराज कमर कसे बैठे हैं ।’ (विचित्र०) । “लिए” और “मारे” कृदंतों का प्रयोग बहुधा संबंध-सूचक अव्यय के समान होता है । (अं०—२३६—४) ।

इद४—अपूर्णि क्रियाद्योतक और पूर्णि क्रियाद्योतक कृदंतों के साथ बहुधा (अं०—३७७—अ) “होना” क्रिया का पूर्णि क्रियाद्योतक कृदंत अव्यय “हुए” लगाया जाता है; जैसे, “दो एक दिन आते हुए दासी ने उसको देखा था” । (चंद्र०) । “धर्म एक बैताल के सिर पर घिटारा रखवाये हुए आता है ।” (सत्य०) ।

[स०—तात्कालिक कृदंत, अपूर्णि क्रियाद्योतक कृदंत और पूर्णि क्रियाद्योतक कृदंत यथार्थ में क्रिया के कोई भिन्न प्रकार के रूपांतर नहीं हैं; किंतु वच्च मानकालिक और भूतकालिक कृदंतों के विशेष प्रयोग हैं । कृदंतों के वर्गीकरण में इन तीनों को अलग-अलग स्थान देने का कारण यह है कि इनका : योग कई एक संयुक्त क्रियाओं में और स्वतंत्र कर्ता के साथ तथा कभी-कभी क्रिया-विशेषण के समान होता है; इसलिए इनके अलग-अलग नाम रखने में सुभोता है । कृदंतों के विशेष अर्थ और प्रयोग वाक्य-विन्यास में लिखे जायेंगे ।

(६) काल-रचना ।

३८५.—क्रिया के वाच्य, अर्थ, काल, पुरुष, लिंग और रचना के कारण होनेवाले सब रूपों का संग्रह करना काल-रचना कहलाती है ।

(क) हिंदी के सोलह काल रचना के विचार से तीन वर्गों में बाँटे जासकते हैं । पहले वर्ग में वे काल आते हैं जो धातु में प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं; दूसरे वर्ग में वे काल हैं जो वर्तमानकालिक कुदंत में सहकारी क्रिया “होना” के रूप लगाने से बनते हैं और तीसरे वर्ग में वे काल आते हैं जो भूतकालिक कुदंत में उसा सहकारी क्रिया के रूप जोड़कर बनाये जाते हैं । इन वर्गों के अनुसार कालों का वर्गीकरण नीचे दिया जाता है—

पहला वर्ग ।

(धातु से बने हुए काल)

- (१) संभाव्य-भविष्यत्
- (२) सामान्य-भविष्यत्
- (३) प्रत्यक्ष-विधि
- (४) परोक्ष-विधि

दूसरा वर्ग ।

(वर्तमानकालिक कुदंत से बने हुए काल)

- (१) सामान्य-संकेतार्थी (हेतुहेतुमङ्गूतकाल)
- (२) सामान्य-वर्तमान
- (३) अपूर्ण-भूत
- (४) संभाव्य-वर्तमान
- (५) संदिश्य-वर्तमान
- (६) अपूर्ण-संकेतार्थी

तीसरा वर्ग ।

(भूतकालिक कुदंत से बने हुए काल)

- (१) सामान्य-भूत
- (२) आसन्न-भूत (पूर्णवर्त्तमान)
- (३) पूर्ण-भूत
- (४) संभाष्य-भूत
- (५) संदिग्ध-भूत
- (६) पूर्ण-संकेतार्थ

५

(ख) इन तीन वर्गों में पहले वर्ग के चारों काल तथा सासान्य संकेतार्थ और सामान्य भूत केवल प्रत्ययों के योग से बनते हैं, इसलिए ये छः काल साधारण काल कहलाते हैं; और शेष दस काल सहकारी क्रिया के योग से बनने के कारण संयुक्त काल कहे जाते हैं । कोई-कोई वैयाकरण केवल पहले छः कालों को यथार्थ “काल” मानते हैं, और पिछले दस कालों को संयुक्त क्रियाओं में गिनते हैं, क्योंकि इनकी रचना दो क्रियाओं के मेल से होती है । पहले (अं०३४६-टी० में) कहा जा चुका है कि हिंदी संस्कृत के समान रूपांतरशील और संयोगात्मक भाषा नहीं कही है; इसलिए इसमें शब्दों के समासों को कभी-कभी, सुभीते के लिए, उनका रूपांतर मान लेते हैं । इसके सिवा हिंदी में संयुक्त क्रियाएँ “अलग मानने की चाल पुरानी है जिसका कारण यह है कि कुछ संयुक्त क्रियाएँ कुछ विशेष कालों में ही आती हैं और कई एक संयुक्त क्रियाएँ संज्ञाओं के मेल से बनती हैं । इस विषय का विशेष विचार आगे (अं०-३०० में) किया जायगा ।

*हिंदुस्थान की और और आर्यभाषाओं—मराठी, गुजराती, बंगला, आदि—की भी यही अवस्था है ।

जिन कालों को “संयुक्त काल” कहते हैं, वे कदंतों के साथ केवल एक ही सहकारी किया के मेल से बनते हैं और उनसे संयुक्त कियाओं के विशेष अर्थ—अवधारण, शक्ति, आरंभ, अवकाश, आदि—सूचित नहीं होते; इसलिए संयुक्त कालों को संयुक्त कियाओं से अलग मानते हैं। “संयुक्त काल” शब्द के विषय में किसी-किसी को जो आक्षेप है उसके संबंध में केवल इतना ही कहना है कि “कल्पित” नाम की अपेक्षा कुछ भी सार्थक नाम रखने से उसका उल्लेख करने में अधिक सुभीता है।

१—कर्तृवाच्य ।

३८६—पहले वर्ग के चारों कालों के कर्तृवाच्य के रूप नीचे लिखे अनुसार बनते हैं—

(१) संभाव्य भविष्यत् काल बनाने के लिए धातु में ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं—

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	ऊँ	ऐ
म० पु०	ए	ओ
अ० पु०	ए	ऐ

(अ) यदि धातु अकारांत हो तो ये प्रत्यय “आ” के स्थान में लगाये जाते हैं; जैसे, “लिख” से “लिखूँ”, “कह” से कहे, “बोल” से “बोलूँ”, इत्यादि ।

(आ) यदि धातु के अंत में आकार वा ओकार हो तो “ऊँ”, और “ओ” को छोड़ शेष प्रत्ययों के पहले विकल्प से “व” का आगम होता है; जैसे, “जा” से जाए वा जावे, “गा” से गाए वा गावे, “खो” से खोए वा खोवे, इत्यादि । इकारांत और ऊकारांत धातुओं में जब विकल्प से “व” का आगम नहीं होता तब उनका अंत्य स्वर हस्त हो जाता

है; जैसे, जिझँ, जिझो, विए वा पीवे, सिएं वा सीवें, छुएँ वा छूवे ।

(इ) एकारांत धातुओं में ऊँ और ओ को छोड़ शेष प्रत्ययों के पहले “व” का आगम होता है; जैसे, सेवे, खेवें, देवें, इत्यादि ।

(ई) देना और लेना कियाओं के धातुओं में से विकल्प से (अ) और (इ) के अनुसार प्रत्ययों का आदेश होता है; जैसे, दूँ (देऊँ), दे (देवे), दो (देओ), लूँ (लेऊँ), ले (लेवे), लो (लेओ) ।

(उ) आकारांत धातुओं के परे ए और एँ के स्थान में विकल्प से क्रमशः य और यँ आते हैं; जैसे, जाय, जायें, खाय, खायें, इत्यादि ।

(ऊ) “होना” के रूप ऊपर लिखे नियमों के विरुद्ध होते हैं। ये आगे दिये जायगे ।

[स०—कई लेखक लावो, रियें, जाये, जाव, आदि रूप लिखते हैं; पर ये अशुद्ध हैं ।

(२) सामान्य भविष्यत् काल की रचना के लिए संभाव्य भविष्यत् के प्रत्येक पुरुष में पुलिंग एकवचन के लिए गा, पुलिंग बहुवचन के लिए गे, और खीलिंग एकवचन तथा बहुवचन के लिए गी लगाते हैं; जैसे, जाऊँगा, जायेंगे, जायगी, जाओगी, आदि ।

[स०—“भाषा-प्रभाकर” में खीलिंग बहुवचन का चिन्ह गी लिखा है; परंतु भाषा में “गी” ही का प्रचार है और स्वयं वैयाकरण ने जो उदाहरण दिये हैं उनमें भी “गी” ही आया है। इस प्रत्यय के संबंध में हमने जो नियम दिया है वह सितारे-हिंद और पं० रामसजन के व्याकरणों में पाया जाता है। सामान्य भविष्यत् का प्रत्यय “गा” संकृत—गतः;

प्राक०—गश्चो से निकला हुआ जान पड़ता है। क्योंकि यह लिंग और वचन के अनुसार बदलता है तथा इसके और मूल किया के बीच में 'ही' अव्यय आसकता है। (अं०—२२७) ।

(३) प्रत्यक्ष विधि का रूप संभाव्य भविष्यत् के रूप के समान होता है; दोनों में केवल मध्यम पुरुष के एकवचन का अंतर है। विधि का मध्यम पुरुष एकवचन धातु ही के समान होता है; जैसे, "कहना" से "कह्", "जाना" से "जा", इत्यादि ।

४० - "शकु०" में विधि के मध्यम पुरुष एकवचन का रूप संभाव्य भविष्यत् ही के समान आया है; जैसे, कन्य—हे बेटी, मेरे नित्य कर्म में विनाश मत डाले ।

(अ) आदर-सूचक "आप" के लिये मध्यम पुरुष में धातु के साथ साथ "इये" वा "इयेगा" जोड़ देते हैं; जैसे, आइये, बैठिये, पान खाइयेगा ।

(आ) लेना, देना, पीना, करना और होना के आदर-सूचक विधि काल में, "इये" वा "इयेगा" के पहले ज का आगम होता है और उनके स्वरों में प्रायः वहाँ रूपांतर होता है जो इन क्रियाओं के भूतकालिक कुदंत बनाने में किया जाता है। (अं०—३७६); जैसे,

लेना—लीजिये	करना—कीजिये	देना—दीजिये
होना—हूजिये	पीना—पीजिये	

[होना का आदर-सूचक विधि-काल होइये का भी चलन अविक है— "आप सभापति होइये जिससे कार्य आरंभ किया जा सके" ।]

(इ) "करना" का नियमित आदर-सूचक विधिकाल "करिये" "शकु०" में आया है; पर यह प्रयोग अनुकरणीय नहीं है।

(ई) कभी—कभी आदर-सूचक विधि का उपयोग संभाव्य भविष्यत् के अर्थ में होता है, जैसे, "मन में ऐसी आती है

कि सब छोड़ छाड़ बैठ रहिये” । (शकु०) । “वायस पालिय अति अनुरागा ।” (राम०) ।

(३) “चाहिये” यथार्थ में आदर-सूचक विधि का रूप है ; पर इससे वर्तमान काल की आवश्यकता का बोध होता है ; जैसे, “मुझे पुस्तक चाहिये ।” “उन्हें और क्या चाहिये ?”

(४) आदर-सूचक विधि का दूसरा रूप (गांत) कभी-कभी आदर के लिए सामान्य भविष्यत् और परोक्ष विधि में भी आता है ; जैसे, “कौन सी रात आन मिलियेगा ।” “मुझे दूस समझकर कृपा रखियेगा ।”

(५) परोक्ष विधि के बल मध्यम पुरुष में आती है और दोनों वचनों में एक ही रूप का प्रयोग होता है । इसके दो रूप होते हैं—(१) क्रियार्थिक संज्ञा तद्वत् परोक्ष विधि होती है (२) आदर-सूचक विधि के अंत में ओ आदेश होता है ; जैसे, (१) तू रहना सुख से पति-संग (सर०) । प्रथम मिलाप को भूल मत जाना । (शकु०) । (२) तू किसी के सोंहीं मत कहियो । (प्रेम०) । पिता, इस लता को मेरे ही समान गिनियो । (शकु०) ।

(६) “आप” के साथ आदर-सूचक विधि का दूसरा रूप आता है [(३) ५] । जैसे, “आप वहाँ न जाइयेगा ।” “आप न जाइओ” शिष्ट-प्रयोग नहीं है ।

(७) आदर-सूचक विधि में “ज” के पश्चात् इए और इयो बहुधा क्रमसे ए और ओ हो जाते हैं ; जैसे, लीजे, दीजे, कीजो, पीजो, हूजे, आदि । ये रूप अक्सर कविता में आते हैं ; जैसे, “कह गिरिधर कविराय कहो अब कैसी कीजे । जल खारी हूँ गयो कहो अब कैसे पीजे ।” “स्वावलम्ब हम सब को दीजे ।” (भारत०) । “कीजो सदा धर्म से शासन ।” (सर०) ।

१०—किसी-किसी का मत है कि “इये” को “इए” लिखना चाहिये अर्थात् “चाहिये” “कीजिये”, आदि शब्द “चाहिए” “कीजिए”, रूप में लिखे जावें। इस मत का प्रचार यों ही वर्षों से हुआ है, और कई लोग इसके विरोधी भी हैं। इस वर्ण-विन्यास के प्रवर्तक पं० महावीरप्रसादजी दिवेदी हैं जिनके प्रभाव से इसका महत्व बहुत बढ़ गया है। स्थानाभाव के कारण यहाँ दोनों पक्षों के बादों का विचार नहीं कर सकते; पर इस मत को प्रहण करने में विशेष कठिनाई यह है कि यदि “कीजिये” को “कीजिए” लिखें तो फिर “कीजियो” किस रूप में लिखा जायगा? यदि “कीजियो” को “कीजिओ” लिखें तो “लियो” को “लिओ” लिखना चाहिये और जो एक को “कीजिए” और दूसरे को “कीजियो” लिखें तो प्रायः एक प्रकार के दोनों रूपों को इस प्रकार मिल-मिल लिखने से व्यर्थ ही भ्रम उत्पन्न होगा। इस प्रकार के दोनों अनमिल-रूप भारत-भारती में पाये जाते हैं; जैसे,

“इस देश को हे दीनबन्धो आप किर आपनाइए
भगवान्! भारतवर्ष को फिर पुण्य-भूमि बनाइए,”
“दाता! तुम्हारी जय रहे, हमको दया कर दीजियो,
माता! मरे हा! हा! हमारी शीघ्रही सुष लीजियो।

हम अपने मत के समर्थन में भारत-मिल-संपादक पं० अंविकाप्रसाद बाजपेयी के एक लेख का कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं—

‘अब’ “चाहिये” और “लिये” जैसे शब्दों पर विचार करना चाहिये। हिंदी-शब्दों में इकार के बाद स्वतः यकार का उत्थारण होता है, जैसा किया, दिया, आदि से स्पष्ट है। इसके सिवा “हानि” शब्द इकारात है। इसका बहुवचन में “हानिओ” न होकर “हानियो” रूप होता है। × × × × सच तो यो है कि हिंदी की प्रकृति इकार के बाद यकार उत्थारण करने की है। इसलिए “चाहिये”, “लिये”

“दीजिये”, “कीजिये”, जैसे शब्दों के अंत में एकार न लिखकर “येकार” लिखना चाहिये ।”

३८७—संयुक्त कालों की रचना में “होना” सहकारी क्रिया के रूपों का काम पड़ता है, इसलिए ये रूप आगे लिखे जाते हैं। हिंदी में “होना” क्रिया के दो अर्थ हैं—(२) स्थिति (२) विकार। पहले अर्थ में इस क्रिया के केवल दो काल होते हैं। दूसरे अर्थ में इसकी काल-रचना और क्रियाओं के समान होती है; पर इसके कुछ कालों से पहला अर्थ भी सूचित होता है।

होना (स्थितिदर्शक)

(१) सामान्य वर्तमानकाल

कर्ता—पुरुषिंग वा स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
उ० पु० मैं हूँ	हम हैं
म० पु० तू है	तुम हो
उ० पु० वह है	वे हैं

(२) सामान्य भूतकाल
कर्ता—पुरुषिंग

उ० पु० मैं था	हम थे
म० पु० तू था	तुम थे
उ० पु० वह था	वे थे

कर्ता—स्त्रीलिंग

थी थी

होना (विकारदर्शक)

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

कर्ता—पुङ्गि वा स्त्रीलिंग

१—मैं होऊँ

हम हों, होवें

२—तू हो, होवे

तुम होओ, हो

३—वह हो, होवे

वे हों, होवें

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

कर्ता—पुङ्गि

१—मैं होऊँगा

हम होंगे, होवेंगे

२—तू होगा, होवेगा

तुम होओगे; होगे

३—वह होगा, होवेगा

वे होंगे, होवेंगे

कर्ता—स्त्रीलिंग

१—मैं होऊँगी

हम होंगी, होवेंगी

२—तू होगी, होवेगी

तुम होओगी, होगी

३—वह होगी, होवेगी

वे होंगी, होवेंगी

(३) सामान्य संकेतार्थी

कर्ता—पुङ्गि

एकवचन

बहुवचन

१—मैं होता

हम होते

२—तू होता

तुम होते

३—वह होता

वे होते

कर्ता—स्त्रीलिंग

१—३ होती

होती

सू—“होना” (विकार-दर्शक) के शेष रूप आगे यथास्थान दिये जायेंगे ।

३८८—दूसरे वर्ग के छाड़ों कर्त्तव्य काल वर्तमानकालिक कृदंत के साथ “होना” सहकारी किया के ऊपर लिखे कालों के रूप जोड़ने से बनते हैं। स्थितिदर्शक सामान्य वर्तमान काल और विकार-दर्शक संभाष्य भविष्यत्-काल को छोड़ सहकारी किया के शेष कालों के रूप कर्त्ता के पुरुष-लिंग-बचनानुसार बदलते हैं।

(१) सामान्य संकेतार्थी वर्तमानकालिक कृदंत को कर्त्ता के पुरुष-लिंग-बचनानुसार बदलने से बनता है। इसके साथ सहायक किया नहीं आती, जैसे, मैं आता, वह आती, हम आते, वे आतीं, इत्यादि ।

(२) सामान्य वर्तमान वर्तमानकालिक कृदंत के साथ स्थितिदर्शक सहकारी किया के सामान्य वर्तमान-काल के रूप जोड़ने से बनता है, जैसे, मैं आता हूँ, वह आती है, तुम आती हो, इत्यादि ।

(अ) सामान्य वर्तमानकाल के साथ “नहीं” आने से बहुधा सहकारी किया का लोप हो जाता है; जैसे, “दो भाइयों में भी परस्पर अब यहाँ पटती नहीं” । (भारत०) ।

(३) अपूर्ण भूतकाल बनाने के लिए कृदंत के साथ स्थितिदर्शक सहकारी किया के सामान्य भूतकाल के रूप (था) जोड़ते हैं; जैसे, मैं आता था, तू आती थी, वह आती थी, वे आती थीं, इत्यादि ।

(अ) जब इस काल से भूतकाल के अन्यास का बोध होता है तब बहुधा सहकारी किया का लोप कर देते हैं; जैसे, “मैं बराबर नियम-पूर्वक स्वाधीनता के लिए महाराज से प्रथना करता तो वह कहते, अभी सब, करो” (विचित्र०) ।

(आ) छोलचाल की कविता में कभी-कभी संभाष्य भविष्यत् के आगे स्थितिदर्शक सहकारी किया के रूप जोड़कर सामान्य

वर्त्तमान और अपूर्ण भूतकाल बनाते हैं; जैसे, “कहाँ जलै है वह आगी” । (एकांत०) । “(पूर्ण सुधाकर,—भूतक मनोहर दिखलावै था सर के तीर । ” (हिं० ग्रं०) । इसका प्रचार अब घट रहा है ।

(४) वर्त्तमानकालिक कृदंत के साथ विकार-दर्शक सहकारी क्रिया के संभाष्य-भविष्यत्काल के रूप लगाने से संभाष्य-वर्त्तमान काल बनता है; जैसे, मैं आता होऊँ, वह आता हो, वे आती हों ।

(५) वर्त्तमानकालिक कृदंत के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य-भविष्यत् के रूप लगाने से संदिग्ध वर्त्तमान काल बनता है; जैसे, मैं आता होऊँगा, वह आता होगा, वे आती होंगी ।

(६) अपूर्ण संकेतार्थी काल बनाने के लिए वर्त्तमानकालिक कृदंत के साथ सामान्य संकेतार्थी काल के रूप लगाये जाते हैं; जैसे, आज दिन यदि बढ़ई हल न तैयार करते होते तो हमारी क्या दशा होती ।

(७) इस काल का प्रचार अधिक नहीं है । इसके बदले बहुधा सामान्य संकेतार्थी आता है । इस काल में “होना” क्रिया का प्रयोग नहीं होता, क्योंकि उसके साथ “होता” शब्द की निरर्थक द्विरूपित होती है ।

३६६—तीसरे वर्ग के छाँओं कर्त्तवाच्य काल भूतकालिक कृदंत के साथ “होना” सहायक क्रिया के पूर्वोक्त पाँचों कालों के रूप जोड़ने से बनते हैं । इन कालों में “बोलना” वर्ग की क्रियाओं को छोड़कर शेष सर्कमंक क्रियाएँ कर्मणिप्रयोग वा भावे-प्रयोग में आती हैं । (अं०—३६६—३६८) । यहाँ केवल कर्त्तविप्रयोग के उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) सामान्य भूतकाल भूतकालिक कुदंत में कर्ता के पुरुष-लिंग-वचनानुसार रूपांतर करने से बनता है। इसके साथ सहकारी क्रिया नहीं आती; जैसे, मैं आया, हम आये, वह बोला, वे बोलीं ।

(२) आसन्न-भूत बनाने के लिए भूतकालिक कुदंत के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य वर्तमान के रूप जोड़ते हैं; जैसे, मैं बोला हूँ, वह बोला है, तू आया है, वे आई हैं ।

(३) पूर्णभूतकाल भूतकालिक कुदंत के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य भूतकाल के रूप जोड़कर बनाया जाता है; जैसे, मैं आया था, वह आई थी, तुम बोली थीं, हम बोली थीं ।

(४) भूतकालिक कुदंत के साथ सहकारी क्रिया के संभाव्य भविष्यत्-काल के रूप जोड़ने से संभाव्य भूतकाल बनता है; जैसे, मैं बोला होऊँ, तू बोला हो; वह आई हो, हम आई हों ।

(५) भूतकालिक कुदंत के साथ सहकारी क्रिया के सामान्य भविष्यत्-काल के रूप जोड़ने से संदिग्ध भूतकाल बनता है; जैसे, मैं आया होऊँगा, वह आया होगा, वे आई होंगी ।

(६) पूर्ण संकेतार्थी काल बनाने के लिए भूतकालिक कुदंत के साथ सामान्य संकेतार्थी काल के रूप लगाये जाते हैं; जैसे, “जो तू एक बार भी जी से पुकारा होता तो मेरी पुकार तीर की तरह तारों के पार पहुँची होती” (गुटका०) ।

३६०—आकारांत क्रियाओं में पुरुष के कारण भेद नहीं पड़ता; जैसे, मैं गया, तू गया, वह गया। जब उनके साथ सहकारी क्रिया आती है तब स्त्रीलिंग के बहुवचन का रूपांतर केवल सहकारी क्रिया में होता है; जैसे, जाती हूँ, हम जाती हैं, वे जाती थीं ।

३६१—उत्तम पुरुष, ऋलिंग वहुवचन के रूप बहुधा (अं०—१२८—४) चोल-चाल में पुलिंग ही के समान होते हैं। राजा शिवप्रसाद का यही मत है और भाषा में इसके प्रयोग मिलते हैं; जैसे गौतमी—हम जाते हैं। (शक०)। रानी—अब हम महल में जाते हैं। (कर्प०८)।

३६२—आगे कर्त्त्वाच्य के सब कालों में तीन क्रियाओं के रूप लिखे जाते हैं। इन क्रियाओं में एक अकर्मक, एक सहकारी और एक सकर्मक है। अकर्मक क्रिया हलांत धातु की और सकर्मक क्रिया स्वरांत धातु की है। सहकारी “होना” क्रिया के कुछ रूप अनियमित होते हैं—

(अकर्मक “चलना” क्रिया (कर्त्त्वाच्य)

धातु...	चल (हलांत)
कर्त्त्वाचक संज्ञा	चलनेवाला
वर्त्तमानकालिक कुदंत	चलता-हुआ
भूतकालिक कुदंत	चला-हुआ
पूर्वकालिक कुदंत	चल, चलकर
तात्कालिक कुदंत	चलतेही
अपूर्ण क्रियादोतक कुदंत	चलते-हुए
पूर्ण क्रियादोतक कुदंत	चले हुए

(क) धातु से बने-हुए काल

कर्त्त्वरिप्रयोग

(१) संभाष्य भविष्यत्-काल

कर्त्ता—पुलिंग वा ऋलिंग

एकवचन

१ में चलूँ

बहुवचन

हम चलें

एकवचन
१ तू चले
२ वह चले

बहुवचन
तुम चलो
वे चलें

(२) सामान्य भविष्यत्-काल
कर्ता—पुङ्गि

१ मैं चलूँगा
२ तू चलेगा
३ वह चलेगा

हम चलेंगे
तुम चलोगे
वे चलेंगे

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं चलूँगी
२ तू चलेगी
३ वह चलेगी

हम चलेंगी
तुम चलोगी
वे चलेंगी

(३) प्रत्यक्ष विधिकाल (साधारण)

कर्ता—पुङ्गि वा स्त्रीलिंग

१ मैं चलूँ
२ तू चले
३ वह चले

हम चलें
तुम चलो
वे चलें

(आदर-सूचक)

२ X आप चलिये वा चलियेगा

(४) परोक्ष विधिकाल (साधारण)

२ तू चलना वा चलियो तुम चलना वा चलियो

(आदर-सूचक)

२ X आप चलियेगा

(ख) वर्तमानकालिक कुदंत से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) सामान्य संकेतार्थकाल

कर्त्ता—पुङ्गि

एकवचन

बहुवचन

१ मैं चलता

हम चलते

२ तू चलता

तुम चलते

३ वह चलता

वे चलते

कर्त्ता—खीलिंग

१ मैं चलती

हम चलती

२ तू चलती

तुम चलती

३ वह चलती

वे चलती

(२) सामान्य वर्तमानकाल

कर्त्ता—पुङ्गि

१ मैं चलता हूँ

हम चलते हूँ

२ तू चलता है

तुम चलते हो

३ वह चलता है

वे चलते हैं

कर्त्ता—खीलिंग

१ मैं चलती हूँ

हम चलती हूँ

२ तू चलती है

तुम चलती हो

३ वह चलती है

वे चलती हैं

(३) अपूर्ण भूतकाल

कर्त्ता—पुङ्गि

१ मैं चलता था

हम चलते थे

२ तू चलता था

तुम चलते थे

३ वह चलता था

वे चलते थे

(३६४)

कर्ता—स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१ मैं चलती थी	हम चलती थीं
२ तू चलती थी	तुम चलती थीं
३ वह चलती थी	वे चलती थीं

(४) संभाव्य वर्तमानकाल

कर्ता—पुरुषिंग

१ मैं चलता होऊँ	हम चलते हों
२ तू चलता हो	तुम चलते होओ
३ वह चलता हो	वे चलते हों

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं चलती होऊँगा	हम चलती होंगे
२ तू चलती होगा	तुम चलते होंगे
३ वह चलती होगा	वे चलते होंगे

(५) संदिग्ध वर्तमानकाल

कर्ता—पुरुषिंग

१ मैं चलता होऊँगी	हम चलते होंगी
२ तू चलती होगी	तुम चलती होंगी
३ वह चलती होगी	वे चलती होंगी

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं चलती होऊँगी	हम चलती होंगी
२ तू चलती होगी	तुम चलती होंगी
३ वह चलती होगी	वे चलती होंगी

(६) अपूर्ण संकेतार्थ

कर्ता—पुरुषिंग

१ मैं चलता होता	हम चलते होते
-----------------	--------------

एकवचन
२ तू चलता होता
३ वह चलता होता

बहुवचन
तुम चलते होते
वे चलते होते

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं चलती होती
२ तू चलती होती
३ वह चलती होती

हम चलती होतीं
तुम चलती होतीं
वे चलती होतीं

(ग) भूतकालिक कुदंत से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) सामान्य भूतकाल

कर्त्ता—पुरुषलिंग

१ मैं चला
२ तू चला
३ वह चला

हम चले
तुम चले
वे चले

कर्त्ता—खीलिंग

१ मैं चली
२ तू चली
३ वह चली

हम चलीं
तुम चलीं
वे चलीं

(२) आसन्न भूतकाल

कर्त्ता—पुरुषलिंग

१ मैं चला हूँ
२ तू चला है
३ वह चला है

हम चले हैं
तुम चले हो
वे चले हैं

(३६६)

कर्ता—स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१ मैं चली हूँ	हम चली हैं
२ तू चली है	तुम चली हो
३ वह चली है	वे चली हैं

(३) पूर्ण भूतकाल

कर्ता—पुण्डिंग

१ मैं चला था	हम चले थे
२ तू चला था	तुम चले थे
३ वह चला था	वे चले थे

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं चली थी	हम चली थीं
२ तू चली थी	तुम चली थीं
३ वह चली थी	वे चली थीं

(४) संभाव्य भूतकाल

कर्ता—पुण्डिंग

१ मैं चला होऊँ	हम चले हों
२ तू चला हो	तुम चले होओ
३ वह चला हो	वे चले हों

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं चली होऊँ	हम चली हों
२ तू चली हो	तुम चली होओ
३ वह चली हो	वे चली हों

(५) संदिग्ध भूतकाल

कर्ता—पुण्डिंग

१ मैं चला होऊँगा	हम चले होंगे
------------------	--------------

एकवचन

२ तू चला होगा

३ वह चला होगा

बहुवचन

तुम चले होगे

वे चले होंगे

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं चली होऊँगी

२ तू चली होगी

३ वह चली होगी

हम चली होंगी

तुम चली होगी

वे चली होंगी

(६) पूर्ण संकेतार्थी

कर्त्ता—पुलिंग

१ मैं चला होता

२ तू चला होता

३ वह चला होता

हम चले होते

तुम चले होते

वे चले होते

कर्त्ता—खीलिंग

१ मैं चली होती

२ तू चली होती

३ वह चली होती

हम चली होती

तुम चली होती

वे चली होती

(सहकारी) “होना” (विकार-दर्शक) क्रियाकृ (कर्तृवाच्य)

धातु हो (स्वरांत)

कर्तृवाचक संज्ञा होनेवाला

वर्त्मानकालिक कृदंत होता-हुआ

भूतकालिक कृदंत हुआ

पूर्वकालिक कृदंत हो, होकर

तात्कालिक कृदंत होते ही

* इस क्रिया के कुछ रूप अनियमित हैं (अं०-३८६ ऊ) ।

अपूर्ण क्रियाशोतक कुदंत ... होते-हुए
 पूर्ण क्रियाशोतक कुदंत हुए

(क) धातु से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

सू.—इन कालों के रूप ३८७ वें अंक में दिये गये हैं।

(३) प्रत्यक्ष विधिकाल (साधारण)

कर्त्ता पुङ्गि वा खीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१ मैं होऊँ	हम हों, होवें
२ तू हो	तुम होओ, हो
३ वह हो, होवे	वे हों, होवें

(आदर-सूचक)

२ x आप हूजिये वा हूजियेगा

(४) परोक्ष विधिकाल (साधारण)

२ तू होना वा हूजियो तुम होना वा हूजियो

आदर-सूचक

२ x आप हूजियेगा

(ख) वर्तमानकालिक कुदंत से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) सामान्य संकेतार्थ काल

सू.—इस काल के लिए ३८७ वाँ अंक देखो।

(३६६)

(२) सामान्य वर्तमानकाल

कर्ता—पुङ्गि

एकवचन

- १ मैं होता हूँ
- २ तू होता है
- ३ वह होता है

बहुवचन

- १ हम होते हैं
- २ तुम होते हो
- ३ वे होते हैं

कर्ता—खीलिंग

- १ मैं होती हूँ
- २ तू होती है
- ३ वह होती है

- १ हम होती हैं
- २ तुम होती हो
- ३ वे होती हैं

(३) अपूर्ण—भूतकाल

कर्ता—पुङ्गि

- १ मैं होता था
- २ तू होता था
- ३ वह होता था

- १ हम होते थे
- २ तुम होते थे
- ३ वे होते थे

कर्ता—खीलिंग

- १ मैं होती थी
- २ तू होती थी
- ३ वह होती थी

- १ हम होती थीं
- २ तुम होती थीं
- ३ वे होती थीं

(४) संभाव्य वर्तमानकाल

कर्ता—पुङ्गि

- १ मैं होता होऊँ
- २ तू होता हो
- ३ वह होता हो

- १ हम होते हों
- २ तुम होते होओ
- ३ वे होते हो

कर्ता—खीलिंग

- १ मैं होती होऊँ

- १ हम होती हों

एकवचन
१ तू होती हो
२ तू होती हो
३ वह होती हो

बहुवचन
तुम होतो होओ
वे होती हों

(५) संदिग्ध वर्त्मानकाल

कर्ता—पुलिंग

१ मैं होता होऊँगा
२ तू होता होगा
३ वह होता होगा

हम होते होंगे
तुम होते होगे
वे होते होंगे

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं होती होऊँगी
२ तू होती होगी
३ वह होती होगी

हम होती होंगी
तुम होतो होगी
वे होती होंगी

अपूर्ण संकेतार्थीकाल

इ०—इस काल में “होना” किया के रूप नहीं होते ।

(६) भूतकालिक कुदंत से बने हुए काल

कर्त्तरिप्रयोग

(१) सामान्य भूतकाल

कर्ता—पुलिंग

१ मैं हुआ
२ तू हुआ
३ वह हुआ

हम हुए
तुम हुए
वे हुए

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं हुई
२ तू हुई
३ वह हुई

हम हुई
तुम हुई
वे हुई

(३७१)

(२) आसन्न-भूतकाल

कर्ता—पुलिंग

एकवचन

- १ मैं हुआ हूँ
- २ तू हुआ है
- ३ वह हुआ है

बहुवचन

- हम हुए हैं
- तुम हुए हो
- वे हुए हैं

कर्ता—स्त्रीलिंग

- १ मैं हुई हूँ
- २ तू हुई है
- ३ वह हुई है

- हम हुई हैं
- तुम हुई हो
- वे हुई हैं

(३) पूर्ण भूतकाल

कर्ता—पुलिंग

- १ मैं हुआ था
- २ तू हुआ था
- ३ वह हुआ था

- हम हुए थे
- तुम हुए थे
- वे हुए थे

कर्ता—स्त्रीलिंग

- १ मैं हुई थी
- २ तू हुई थी
- ३ वह हुई थी

- हम हुई थी
- तुम हुई थी
- वे हुई थी

(४) संभाव्य भूतकाल

कर्ता—पुलिंग

- १ मैं हुआ होऊँ
- २ तू हुआ हो
- ३ वह हुआ हो

- हम हुए हों
- तुम हुए होओ
- वे हुए हों

कर्ता—स्त्रीलिंग

- १ मैं हुई होऊँ

- हम हुई हों

एकवचन
१ तू हुई हो
२ वह हुई हो

बहुवचन
तुम हुई होओ
वे हुई हों

(५) संदिग्ध भूतकाल
कर्ता—पुलिंग

१ मैं हुआ होऊँगा
२ तू हुआ होगा
३ वह हुआ होगा

हम हुए होंगे
तुम हुए होगे
वे हुए होंगे

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं हुई होऊँगी
२ तू हुई होगी
३ वह हुई होगी

हम हुई होंगी
तुम हुई होगी
वे हुई होंगी

(६) पूर्ण संकेतार्थकाल

कर्ता—पुलिंग

१ मैं हुआ होता
२ तू हुआ होता
३ वह हुआ होता

हम हुए होते
तुम हुए होते
वे हुए होते

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं हुई होती
२ तू हुई होती
३ वह हुई होती

हम हुई होती
तुम हुई होती
वे हुई होती

सकर्मक “पाना” क्रिया (कर्त्तवाच्य)

धातु.....	पा (स्वरांत)
कर्त्तवाचक संज्ञा.....	पानेवाला
वर्त्तमानकालिक कुदंत.....	पाता-हुआ
भूतकालिक कुदंत.....	पाया-हुआ
पूर्वकालिक कुदंत.....	पा, पाकर
तात्कालिक कुदंत.....	पातेही
अपूर्ण क्रियायोगक कुदंत.....	पाते-हुए
पूर्ण क्रियायोगक कुदंत.....	पाये-हुए

(क) धातु से बने हुए काल

कर्त्तरि—प्रयोग

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

कर्ता—पुलिंग वा स्त्रीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१ मैं पाऊँ	हम पाएँ, पावें, पायें
२ तू पाए, पावे, पाय	तुम पाओ
३ वह पाए, पावे पाय	वे पाएँ, पावें, पायें

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

कर्ता—पुलिंग

१ मैं पाऊँगा	हम पाएँगे, पावेंगे, पायेंगे
२ तू पाएगा, पावेगा, पायगा	तुम पाओगे
३ वह पाएगा, पावेगा, पायगा,	वे पाएँगे, पावेंगे, पायेंगे

कर्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं पाऊँगी	हम पाएँगी, पावेंगी, पायेंगी
--------------	-----------------------------

एकवचन	बहुवचन
२ तू पाएगी, पावेगी, पायगी	तुम पाओगी
३ वह पाएगी, पावेगी, पायगी	वे पाएंगी, पावेंगी, पायेंगी

(३) प्रत्यक्ष-विधिकाल (साधारण)

कर्त्ता—पुलिंग वा स्त्रीलिंग

१ मैं पाऊँ	हम पाएँ, पावें, पायें
२ तू पा	तुम पाओ
३ वह पाए, पावे, पाय	वे पाएँ, पावें, पायें
(आदर-सूचक)	

२ ×	आप पाइये वा पाइयेगा
-----	---------------------

(४) परोक्ष-विधिकाल (साधारण)

२ तू पाना वा पाइयो	तुम पाना वा पाइयो
(आदर-सूचक)	

२ ×	आप पाइयेगा
-----	------------

(५) वर्तमानकालिक कुदंत से बने हुए काल
कर्त्तरि प्रयोग

(१) सामान्य संकेतार्थिकाल

कर्त्ता—पुलिंग

१ मैं पाता	हम पाते
२ तू पाता	तुम पाते
३ वह पाता	वे पाते

कर्त्ता—स्त्रीलिंग

१ मैं पाती	हम पातीं
२ तू पाती	तुम पातीं
३ वह पाती	वे पातीं

(२) सामान्य वर्तमानकाल

कर्ता—पुलिंग

एकवचन

- १ मैं पाता हूँ
 २ तू पाता है
 ३ वह पाता है

बहुवचन

- हम पाते हैं
 तुम पाते हो
 वे पाते हैं

कर्ता—खीलिंग

- १ मैं पाती हूँ
 २ तू पाती है
 ३ वह पाती है

- हम पाती हैं
 तुम पाती हो
 वे पाती हैं

(३) अपूर्ण-भूतकाल

कर्ता—पुलिंग

- १ मैं पाता था
 २ तू पाता था
 ३ वह पाता था

- हम पाते थे
 पुम पाते थे
 वे पाते थे

कर्ता—खीलिंग

- १ मैं पाती थी
 २ तू पाती थी
 ३ वह पाती थी

- हम पाती थीं
 तुम पाती थीं
 वे पाती थीं

(४) संभाव्य वर्तमानकाल

कर्ता—पुलिंग

- १ मैं पाता होऊँ
 २ तू पाता हो
 ३ वह पाता हो

- हम पाते हों
 तुम पाते होओ
 वे पाते हों

(३७६)

कर्ता—खीलिंग

एकवचन	बहुवचन
१ मैं पाती होऊँ	हम पाती हों
२ तू पाती हो	तुम पाती होओ
३ वह पाती हो	वे पाती हों

(५) संदिग्ध वर्त्तमानकाल

कर्ता—पुलिंग

१ मैं पाता होऊँगा	हम पाते होंगे
२ तू पाता होगा	तुम पाते होंगे
३ वह पाता होगा	वे पाते होंगे

कर्ता—खीलिंग

१ मैं पाती होऊँगी	हम पाती होंगी
२ तू पाती होगी	तुम पाती होगी
३ वह पाती होगी	वे पाती होंगी

(६) अपूर्णि संकेतार्थकाल

कर्ता—पुलिंग

१ मैं पाता होता	हम पाते होते
२ तू पाता होता	तुम पाते होते
३ वह पाता होता	वे पाते होते

कर्ता—खीलिंग

१ मैं पाती होती	हम पाती होती
२ तू पाती होती	तुम पाती होती
३ वह पाती होती	वे पाती होती

(ग) भूतकालिक कुदंत से बने हुए काल

कर्मणि-प्रयोग

(१) सामान्य भूतकाल

कर्म-पुलिंग, एकवचन

कर्म-खीलिंग, एकवचन

मैंने वा हमने	पाया	मैंने वा हमने	पाइ
तूने वा तुमने		तूने वा तुमने	
उसने वा उन्होंने		उसने वा उन्होंने	

कर्म-पुलिंग, बहुवचन

कर्म-खीलिंग, बहुवचन

मैंने वा हमने	पाये	मैंने वा हमने	पाइ
तूने वा तुमने		तूने वा तुमने	
उसने वा उन्होंने		उसने वा उन्होंने	

(२) आसन्न भूतकाल

कर्म-पुलिंग, एकवचन

कर्म-खीलिंग, एकवचन

मैंने वा हमने	पाया है	मैंने वा हमने	पाइ है
तूने वा तुमने		तूने वा तुमने	
उसने वा उन्होंने		उसने वा उन्होंने	

कर्म-पुलिंग, बहुवचन

कर्म-खीलिंग, बहुवचन

मैंने वा हमने	पाये हैं	मैंने वा हमने	पाइ हैं
तूने वा तुमने		तूने वा तुमने	
उसने वा उन्होंने		उसने वा उन्होंने	

(३) पूर्ण-भूतकाल

कर्म-पुलिंग, एकवचन

कर्म-खीलिंग, एकवचन

मैंने वा हमने	पाया था	मैंने वा हमने	पाइ थी
तूने वा तुमने		तूने वा तुमने	
उसने वा उन्होंने		उसने वा उन्होंने	

कर्म-पुलिंग, बहुवचन	कर्म-खीलिंग, बहुवचन
मैंने वा हमने } तूने वा तुमने } उसने वा उन्होंने }	मैंने वा हमने } पाये थे तूने वा तुमने } उसने वा उन्होंने }

(४) संभाव्य-भूतकाल

कर्म-पुलिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने } तूने वा तुमने } उसने वा उन्होंने }	पाया हो } पाई हो }	पाये हो } पाई हो }

(५) संदिग्ध-भूतकाल

कर्म-पुलिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने } तूने वा तुमने } उसने वा उन्होंने }	पाया होगा } पाई होगी }	पाये होंगे } पाई होंगी }

(६) पूर्ण संकेतार्थ काल

कर्म-पुणिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने		
तूने वा तुमने	{ पाया होता	पाये होते
उसने वा उन्होंने		
कर्म-खीलिंग	एकवचन	बहुवचन
मैंने वा हमने		
तूने वा तुमने	{ पाई होती	पाई होती
उसने वा उन्होंने		

२—कर्मवाच्य

३६३—कर्मवाच्य किया बनाने के लिए सकर्मक धातु के भूत-कालिक कुदंत के आगे “जाना” (सहकारी) किया से सब कालों और अर्थों के रूप जोड़ते हैं । कर्मवाच्य से कर्मणि-प्रयोग में (अं—३६७) कर्म उद्देश्य होकर अप्रत्यय कर्त्ता-कारक के रूप में आता है, और किया के पुरुष, लिंग, वचन उस कर्म के अनुसार होते हैं; जैसे, लड़का बुलाया गया है, लड़की बुलाई गई है ।

३६४—(क) जब सकर्मक क्रियाओं का आदर-सूचक रूप संभाष्य भविष्यत्-काल के अर्थ में आता है (अं०—३६६—३—ई), तब वह कर्मवाच्य होता है और “चाहिये” किया को छोड़कर शेष कियाएँ भावेप्रयोग में आती हैं; जैसे, “क्या कहिये”, बायस पालिय अति अनुरागा । (राम०) ।

(ख) ‘चाहिये’ को कोई—कोई लेखक बहुवचन में ‘चाहियें’ लिखते हैं; जैसे, “वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहियें ।” (सत्य०) । पर यह प्रयोग सार्वत्रिक नहीं है । “चाहिये” से बहुधा सामान्य वर्तमानकाल का अर्थ पाया जाता है, इसलिए भूतकाल के लिए

इसके साथ “था” जोड़ देते हैं; जैसे, तेरा घोंसला किसी दोबार के ऊपर चाहिये था। इन उदाहरणों में “चाहिये” कर्मणिप्रयोग में है और इसका अर्थ “इष्ट” वा “अपेक्षित” है। यह क्रिया, अन्यान्य क्रियाओं की तरह, विधिकाल तथा दूसरे कालों में नहीं आती।

३६५—आगे “देखना” सकर्मक क्रिया के कर्मवाच्य (कर्मणि-प्रयोग) के केवल पुर्णिंग रूप दिये जाते हैं। खीलिंग रूप कर्त्तवाच्य काल-रचना के अनुकरण पर सहज बना लिये जा सकते हैं।

(सकर्मक) “देखना” क्रिया | (कर्मवाच्य)

धातु.....देखा जा
कर्त्तवाचक संज्ञा.....देखा जानेवाला
वर्त्तमान कालिक कुदंत.....देखा जाता हुआ
भूतकालिक कुदंत.....देखा गया (देखा हुआ)
पूर्वकालिक कुदंत.....देखा जाकर
तात्कालिक कुदंत.....देखे जाते ही
अपूर्ण क्रियाशातक कुदंत... :देखे जाते हुए } पूर्ण क्रियाशातक कुदंत.....देखें गये हुए } (कवित)

(क) धातु से बने हुए काल

कर्मणि-प्रयोग

(कर्म-पुर्णिंग)

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल

एकवचन	बहुवचन
१ मैं देखा जाऊँ	हम देखे जाएँ, जावें, जायें
२ देखा जाए, जावे, जाय	तुम देखे जाओ
३ वह „ „ „ „	वे देखे जाएँ, जावें, जायें

(२) सामान्य भविष्यत्-काले

एकवचन

बहुवचन

- १ मैं देखा जाऊँगा हम देखे जाएँगे, जावेंगे, जायेंगे
 २ तू देखा जाएगा, जावेगा, जायेगा तुम देखे जाओगे
 ३ वह „ „ „ वे देखे चाएँगे, जावेंगे, जायेंगे

(३) प्रत्यक्ष-विधिकाल (साधारण)

- १ मैं देखा जाऊँ हम देखे जाएँ, जावें, जायेँ
 २ तू देखा जा तुम देखे जाओ
 ३ वह देखा जाए, जावे, जाय वे देखे जाएँ, जावें, जायेँ

(४) परोक्ष-विधिकाल (साधारण)

- २ तू देखा जाना बा जाइयो तुम देखे जाना बा जाइयो
 सू—कर्मवाच्च मैं आदर-सूचक विधि के रूप नहीं पाये जाते ।

(ख) वर्त्तमानकालिक कुदंत से बने हुए काल

(कर्म पुर्जिंग)

(१) सामान्य संकेतार्थकाल

- १ मैं देखा जाता हूँ हम देखे जाते हैं
 २ तू „ „ तुम „ „
 ३ वह „ „ वे „ „

(२) सामान्य वर्त्तमानकाल

- १ मैं देखा जाता हूँ हम देखे जाते हैं
 २ तू देखा जाता हो तुम देखे जाते हो
 ३ वह „ „ „ वे देखे जाते हैं

(३) अपूर्ण भूतकाल

- २ मैं देखा जाता था हम देखे जाते थे
 २ तू „ „ „ तुम „ „ „
 ३ वह „ „ „ वे „ „ „

(४) संभाव्य वर्त्तमानकाल

एकवचन	बहुवचन
१ मैं देखा जाता होऊँ	हम देखे जाते हों
२ तू देखा जाता हो	तुम देखे जाते होओ
३ वह „ „	वे देखे जाते हों

(५) संदिग्ध वर्त्तमानकाल

१ मैं देखा जाता होऊँगा	हम देखे जाते होंगे
२ तू देखा जाता होगा	तुम देखे जाते होगे
३ वह „ „	वे देखे जाते होंगे

(६) अपूर्ण संकेतार्थकाल

१ मैं देखा जाता होता	हम देखे जाते होते
२ तू „ „	तुम „ „
३ वह „ „	वे „ „

(७) भूतकालि क्रृदंत से बने हुए काल

कर्मणिप्रयोग

(कर्म पुलिंग)

(१) सामान्य भूतकाल

१ मैं देखा गया	हम देखे गये
२ तू „ „	तुम „ „
३ वह „ „	वे „ „

(२) आसन्न भूतकाल

१ मैं देखा गया हूँ	हम देखे गये हैं
२ तू देखा गया है	तुम देखे गये हो
३ वह „ „	वे देखे गये हैं

(३) पूर्ण भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
१ मैं देखा गया था	हम देखे गये थे
२ तू „ „ „	तुम „ „ „
३ वह „ „ „	वे „ „ „

(४) संभाव्य भूतकाल

१ मैं देखा गया होऊँ	हम देखे गये हों
२ तू देखा गया हो	तुम देखे गये हो
३ वह „ „ „	वे देखे गये हों

(५) संदिग्ध भूतकाल

१ मैं देखा गया होऊँगा	हम देखे गये होंगे
२ तू देखा गया होगा	तुम देखे गये होगे
३ वह „ „ „	वे देखे गये होंगे

पूर्ण संकेतार्थकाल

१ मैं देखा गया होता	हम देखे गये होते
२ तू „ „ „	तुम „ „ „
३ वह „ „ „	वे „ „ „

३—भाववाच्य

३६६—भाववाच्य (अं०—३५१) अकर्मक क्रिया के उस रूप को कहते हैं जो कर्मवाच्य के समान होता है। भाववाच्य क्रिया में कर्म नहीं होता और उसका कर्ता करण-कारक में आता है। भाववाच्य क्रिया सदैव अन्यपुरुष, पुर्जिग, एकवचन में रहती है; डौसे, हमसे चला न गया, रात-भर किसी से जागा नहीं जाता, इत्यादि ।

३६७—भाववाच्य क्रिया सदा भावेप्रयोग में आती है (अं०—३६८—३) और उसका उपयोग अशक्तता के अर्थ में “न” वा “नहीं” के साथ होता है। भाववाच्य क्रिया सब कालों और कुदंतों में नहीं आती।

३६८—जब अकर्मक क्रिया के आदर-सूचक विधिकाल का रूप संभाव्य भविष्यत्-काल के अर्थ में आता है तब वह भाववाच्य होता है; जैसे, “मन में आती है कि सब छोड़-छाड़ बैठे रहिए”। (शक०)। यह भाववाच्य क्रिया भी भावेप्रयोग में आती है।

३६९—यहाँ भाववाच्य के केवल उन्हीं रूपों के उदाहरण दिये जाते हैं जिनमें उसका प्रयोग पाया जाता है—

(अकर्मक) “चला जाना” क्रिया (भाववाच्य)

धातु..... चला जा

सू—इस क्रिया से और कुदंत नहीं बनते।

(क) धातु से बने हुए काल

भावेप्रयोग

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल	
एकवचन	बहुवचन
१ मुझसे वा हमसे	
२ तुझसे वा तुमसे	
३ उससे वा उनसे	

(२) सामान्य भविष्यत्-काल

१ मुझसे वा हमसे	{	चला जावेगा, जाएगा,
२ तुझसे वा तुमसे		
३ उससे वा उनसे		

(३५)

(ख) वर्तमानकालिक कुदंत से बने हुए काल
भावेप्रयोग

(१) सामान्य संकेतार्थ

एकवचन	बहुवचन
१ मुझसे वा हमसे	}
२ तुझसे वा तुमसे	
३ उससे वा उनसे	

चला जाता

(२) सामान्य वर्तमानकाल

१ मुझसे वा हमसे	}
२ तुझसे वा तुमसे	
३ उससे वा उनसे	

चला जाता है

(३) अपूर्ण भूदकाल

१ मुझसे वा हमसे	}
२ तुझसे वा तुमसे	
३ उससे वा उनसे	

चला जाता था

(४) संभाव्य वर्तमान काल

१ मुझसे वा हमसे	}
२ तुझसे वा तुमसे	
३ उससे वा उनसे	

चला जाता हो

(५) संदिग्ध वर्तमानकाल

१ मुझसे वा हमसे	}
२ तुझसे वा तुमसे	
३ उससे वा उनसे	

चला जाता होगा

(३८)

(ग) भूतकालिक-कुदंत से बने हुए काल
भावेप्रयोग

(१) सामान्य भूतकाल

एकवचन

बहुवचन

१ मुझसे वा हमसे	}	चला गया
२ तुझसे वा तुमसे		
३ उससे वा उनसे		

(२) आसन्न भूतकाल

१ मुझसे वा हमसे	}	चला गया है
२ तुझसे वा तुमसे		
३ उससे वा उनसे		

(३) पूर्ण भूतकाल

१ मुझसे वा हमसे	}	चला गया था
२ तुझसे वा तुमसे		
३ उससे वा उनसे		

(४) संभाष्य भूतकाल

१ मुझसे वा हमसे	}	चला गया हो
२ तुझसे वा तुमसे		
३ उससे वा उनसे		

(५) संदिग्ध भूतकाल

१ मुझसे वा हमसे	}	चला गया होगा
२ तुझसे वा तुमसे		
३ उससे वा उनसे		

सू—कर्मवाच्य और भाववाच्य में जो संयुक्त कियाएँ आती हैं उनका विचार आगामी अध्याय में किया जायगा । (अं० ४२५-४२६) ।

सातवाँ अध्याय ।

संयुक्त क्रियाएँ ।

४००—धातुओं के कुछ विशेष कृदंतों के आगे (विशेष अर्थ में) कोई-कोई क्रियाएँ जोड़ने से जो क्रियाएँ बनती हैं उन्हें संयुक्त क्रियाएँ कहते हैं; जैसे, करने लगना, जा सकना, मार देना, इत्यादि । इन उदाहरणों में करने, जा और मार कृदंत हैं और इनके आगे लगना, सकना, देना क्रियाएँ जोड़ी गई हैं । संयुक्त क्रियाओं में मुख्य क्रिया का कोई कृदंत रहता है और सहकारी क्रिया के काल के रूप रहते हैं ।

४०१—कृदंत के आगे सहकारी क्रिया आने से सदैव संयुक्त क्रिया नहीं बनती । “लड़का बढ़ा हो गया”, इस वाक्य में मुख्य धातु वा क्रिया “होना” है; “जाना” नहीं । “जाना” के बल सहकारी क्रिया है, इसलिए “हो गया” संयुक्त क्रिया है; परन्तु लड़का “तुम्हारे घर हो गया,” इस वाक्य में “हो” पूर्वकालिक कृदंत “गया” क्रिया की विशेषता बतलाता है; इसलिए यहाँ “गया” (इकहरी) क्रिया ही मुख्य क्रिया है । जहाँ कृदंत की क्रिया मुख्य होती है और काल की क्रिया उस कृदंत की विशेषता सूचित करती है वहाँ दोनों को संयुक्त क्रिया कहते हैं । यह बात वाक्य के अर्थ पर अबलंबित है; इसलिए संयुक्त क्रिया का निष्प्रय वाक्य के अर्थ पर से करना चाहिये ।

[टी०—“संयुक्त कालो” के विवेचन में कहा गया है कि हिंदी में संयुक्त क्रियाओं को “संयुक्त कालो” से अलग मानने की चाल है: और वहाँ इस बात का कारण भी संक्षेप में बता दिया गया है । संयुक्त क्रियाओं को अलग मानने का सबसे बड़ा कारण यह है कि इनमें जो सहकारी क्रियाएँ जोड़ी जाती हैं उनसे “काल” का कोई विशेष अर्थ सूचित नहीं होता; किंतु युख्य क्रिया तथा सहकारी क्रिया के मेल से एक नया अर्थ

उत्तम होता है। इसके सिवा “संयुक्त” कालों में जिन कुदंतों का उपयोग होता है उनसे बहुधा भिन्न कुदंत “संयुक्त” कियाओं में आते हैं; जैसे, “जाता था” संयुक्त काल है; पर “जाने लगा” वा “जाया चाहता है” संयुक्त किया है। इस प्रकार अर्थ और रूप दोनों में “संयुक्त कियाएँ”, “संयुक्त कालों” से भिन्न हैं; यथापि दोनों मुख्य किया और सहकारी किया के भेल से बनते हैं।

संयुक्त कियाओं से जो नया अर्थ पाया जाता है वह कालों के विशेष “अर्थ” से (अं०—३५८) भिन्न होता है और वह अर्थ इन कियाओं के किसी विशेष रूप से सूचित नहीं होता। पर कालों का “अर्थ” (आशा, संभावना, संवेद, आदि) बहुधा किया के रूप ही से सूचित होता है। इस हित से संयुक्त कियाएँ इकही कियाओं के उस रूपांतर से भी भिन्न हैं जिसे “अर्थ” कहते हैं।

किसी-किसी का मत है कि जिन दुहरी (वा तिहरी) कियाओं को हिंदी में संयुक्त कियाएँ मानते हैं वे यथार्थ में संयुक्त कियाएँ नहीं हैं, किंतु कियावाक्यांश हैं; और उनमें शब्दों का परस्पर व्याकरणीय संबंध पाया जाता है; जैसे, “जाने लगा” वाक्यांश में “जाने” कियार्थक ‘संशा अधिकरण-कारक में है और वह “लगा” किया से “आधार” का संबंध रखती है। इस युक्ति में बहुत कुछ बल है, परंतु जब हम “जाने में लगा” और “जाने लगा” के अर्थ को देखते हैं तब जान पड़ता है कि दोनों के अर्थों में बहुत अंतर है। एक से अपूर्णता और दूसरे से अरारंभ सूचित होता है। इसी प्रकार “सो जाना” और “सोकर जाना” में भी अर्थ का बहुत अंतर है। इसके सिवा “स्वीकार करना”, “विदा करना”, “दान करना”, “स्मरण होना” आदि ऐसी संयुक्त कियाएँ हैं जिनके अंगों के साथ दूसरे शब्दों का संबंध बताना कठिन है; जैसे, “मैं आपकी बात स्वीकार करता हूँ”। इस वाक्य में “स्वीकार” शब्द भावबान्धक संहा है। यदि हम इस “करना” का कर्म मानें तो “बात” शब्द को किस कारक में

मानेंगे ? और यदि ‘बात’ शब्द को संबंध कारक में मानें तो “मैंने आपकी बात स्वीकार की”, इस बाक्य में किया का प्रयोग कर्म के अनुसार न मानकर “बात का” संबंध कारक के अनुसार मानना परेगा जो यथार्थ में नहीं है। इससे संयुक्त कियाओं को अलग मानना ही उचित जान प्रवृत्ता है। जो लोग इन्हें केवल वाक्य-विन्यास का विषय मानते हैं वे भी तो एक प्रकार से इनके विवेचन की आवश्यकता स्वीकार करते हैं। रही स्थान की बात, सो उसके लिये इससे बढ़कर कोई कारण नहीं है कि काल-न्यूनना की कुछ विशेषताओं के कारण संयुक्त कियाओं का विवेचन किया के रूपांतर ही के साथ करना चाहिए। कोई-कोई लोग संयुक्त कियाओं को समाप्त मानते हैं; परंतु सामासिक शब्दों के विवर संयुक्त कियाओं के अंगों के बीच में दूसरे शब्द भी आ जाते हैं; जैसे, “कहाँ कोई आ न जाय”, इत्यादि ।]

४०२—रूप के अनुसार संयुक्त कियाएँ आठ प्रकार की होती हैं—

- (१) कियार्थक संज्ञा के मेल से बनी हुईं।
- (२) वर्त्मानकालिक कृदंत के मेल से बनी हुईं।
- (३) भूतकालिक कृदंत के मेल से बनी हुईं।
- (४) पूर्णकालिक कृदंत के मेल से बनी हुईं।
- (५) अपूर्ण कियाद्योतक कृदंत के मेल से बनी हुईं।
- (६) पूर्ण कियाद्योतक कृदंत के मेल से बनी हुईं।
- (७) संज्ञा वा विशेषण से बनी हुईं।
- (८) पुनरुक्त संयुक्त कियाएँ।

४०३—संयुक्त कियाओं में नीचे लिखी सहकारी कियाएँ आती हैं—होना, आना, उठना, करना, चाहना, चुकना, जाना, ढालना, देना, रहना, लगना, लेना, पाना, सकना, बनना, बैठना, पड़ना। इनमें से बहुधा सकना और चुकना छोड़ शेष कियाएँ

स्वतंत्र भी हैं और अर्थ के अनुसार दूसरी सहकारी कियाओं से मिलकर स्वयं संयुक्त कियाएँ हो सकती हैं।

(१) क्रियार्थक संज्ञा के मेल से बनी हुई संयुक्त क्रियाएँ

४०४—क्रियार्थक संज्ञा के मेल से बनी हुई संयुक्त क्रिया में क्रियार्थक संज्ञा दो रूपों में आती हैं—(१) साधारण रूप में (२) विकृत रूप में (अं०—४०५) ।

४०५—क्रियार्थक संज्ञा के साधारण रूप के साथ “पड़ना,” “होना” वा “चाहिये” क्रियाओं को जोड़ने से आवश्यकताबोधक संयुक्त क्रिया बनती है; जैसे, करना पड़ता है, करना चाहिये। जब इन संयुक्त क्रियाओं में क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग प्रायः विशेषण के समान होता है तब विशेष्य के लिंग-व्यवहार के अनुसार बदलती है (अं०—३७२-अ); जैसे, कुलियों की मदद करनी चाहिये। मुझे दवा पीनी पड़ेगी। “जो होनी होगी सो होगी” (सर०) । “पड़ना”, “होना” और “चाहिए” के अर्थ और प्रयोग की विशेषता नीचे लिखी जाती है—

पड़ना—इससे जिस आवश्यकता का बोध होता है उसमें पराधीनता का अर्थ गर्भित रहता है; जैसे, मुझे वहाँ जाना पड़ता है। दवा खाना पड़ती है।

होना—इस सहकारी क्रिया से आवश्यकता वा कर्तव्य के सिवा भविष्यत् काल का भी बोध होता है; जैसे, “इस सगुन से क्या फल होना है !” (शकु०) । यह क्रिया बहुधा सामान्य कालों ही में आती है; जैसे, जाना है, जाना था, जाना होगा, जाना होता इत्यादि ।

चाहिये—जब इसका प्रयोग स्वतंत्र किया के समान (अं०-३६४-ख) होता है तब इसका अर्थ “इष्ट वा अपेक्षित” होता है; परंतु संयुक्त किया में इसका अर्थ “आवश्यकता वा कर्त्तव्य” होता है। इसका प्रयोग बहुधा सामान्य चर्त्तमान और सामान्य भूतकाल ही में होता है; जैसे, मुझे जाना चाहिए, उसे जाना चाहिये था। “चाहिये” भूतकालिक कृदंत के साथ भी आता है। (अं०-४१०—आ) ।

४०६—क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप से तीन प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं—(१) आरंभ-बोधक (२) अनुमति-बोधक (३) अवकाश-बोधक ।

(१) आरंभ-बोधक क्रिया “लगना” क्रिया के योग से बनती है; जैसे, वह कहने लगा। गोपाल जाने लगा ।

(अ) आरंभ-बोधक क्रिया का सामान्य भूतकाल, “क्यों” के साथ, सामान्य भविष्यत् की असंभवता के अर्थ में आता है; जैसे, हम वहाँ क्यों जाने लगे = हम वहाँ नहीं जायेंगे। “इस रूपवान युवक को छोड़कर वह हमें क्यों पसंद करने लगी !” (रघु०) ।

(२) “देना” जोड़ने से अनुमति-बोधक क्रिया बनती है; जैसे, मुझे जाने दीजिये, उसने मुझे बोलने न दिया, इत्यादि ।

(३) अवकाश-बोधक क्रिया अर्थ में अनुमति-बोधक क्रिया की विरोधिनी है। इसमें “देना” के बदले “पाना” जोड़ा जाता है; जैसे, “यहाँ से जाने न पावेगी” (शकु०) । “बात न होने पाई ।”

(अ) “पाना” क्रिया कभी-कभी पूर्वकालिक कृदंत के धातुवत् रूप के साथ भी आती है; जैसे, “कुछ लोगों ने श्रीमान् को बड़ी कठिनाई से एक दृष्टि देख पाया ।” (शिव०) ।

[टी०—अधिकांश हिंदी व्याकरणों में “देना” और “पाना” दोनों से बनी हुई संयुक्त क्रियाएँ अवकाश-बोधक कही गई हैं; पर दोनों से एक ही प्रकार के अवकाश का बोध नहीं होता और दोनों में प्रयोग का भी अन्तर है जो आगे (अं०—६३६—६३७ में) बताया जायगा । इसलिए हमने इन दोनों क्रियाओं को अलग-अलग माना है ।]

[२] वर्तमानकालिक कुदंत के योग से बनी हुई

४०७—वर्तमानकालिक कुदंत के आगे आना, जाना वा रहना क्रिया जोड़ने से नित्यता-बोधक क्रिया बनती है । इस क्रिया में कुदंत के लिंग-वचन विशेष्य के अनुसार बदलते हैं; जैसे, यह बात सनातन से होती आती है, पेड़ बढ़ता गया, पानी बरसता रहेगा ।

(अ) इन क्रियाओं में अर्थ की जो सूझता है वह विचारणीय है । “लड़की गाती जाती है,” इस वाक्य में “गाती जाती है” का यह भी अर्थ है कि लड़की गाती हुई जा रही है । इस अर्थ में “गाती जाती है” संयुक्त क्रिया नहीं है ।
(अं० ४००) ।

(आ) “जाता रहना” का अर्थ बहुधा “मर जाना”, “नष्ट होना” वा “बला जाना” होता है; जैसे, “मेरे पिता जाते रहे” “चाँदी की सारी चमक जाती रही” (गुटका०) “नौकर घर से जाता रहेगा ।”

(इ.) “रहना” के सामान्य भविष्यत्-काल से अपूर्णता का बोध होता है; जैसे, जब तुम आओगे तब हम लिखते रहेंगे । इस अर्थ में कोई-कोई वैयाकरण इस संयुक्त क्रिया को अपूर्ण भविष्यत्-काल मानते हैं । (अं०—३५८, टी०) ।

(ई) आना, रहना और जाना से क्रमशः भूत, वर्तमान और
उत्तम भविष्य तित्यता का बोध होता है; जैसे, लड़का पढ़ता आता
है, लड़का पढ़ता रहता है, लड़का पढ़ता जाता है।

(उ) “चलना” क्रिया के वर्तमानकालिक कुदंत के साथ “होना”
या “बनना” क्रिया के सामान्य भूतकाल का रूप जोड़ने से
पिछली क्रिया का निश्चय सूचित होता है; जैसे वह प्रसन्न हो
चलता बना। यह प्रयोग बोल चाल का है।

(३) भूतकालिक कुदंत से बनी हुई ।

४०८—अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कुदंत के आगे
“जाना” क्रिया जोड़ने से तत्परता-बोधक संयुक्त क्रिया बनती है।
यह क्रिया केवल वर्तमानकालिक कुदंत से बने हुए कालों में आती
है; जैसे, लड़का आया जाता है, “मारे बू के सिर फटा जाता
था” (गुटका०), मारे चिंता के वह मरी जाती थी, मेरे रोंगटे
खड़े हुए जाते हैं, इत्यादि ।

(अ) “जाना” के साथ “जाना” सहकारी क्रिया नहीं आती।
“चलना” के साथ “जाना” लगाने से बहुधा पिछली क्रिया
का निश्चय सूचित होता है; जैसे, वह चला गया। यह बाक्य
अर्थ में अं० ४०७—उ के समान है।

(आ) कुछ पर्यायवाची क्रियाओं के साथ इसी अर्थ में “पढ़ना”
जोड़ते हैं; जैसे, वह गिरा पढ़ता है, मैं कूदी पढ़ती हूँ।

४०९—भूतकालिक कुदंत के आगे “करना” क्रिया जोड़ने से
अभ्यासबोधक क्रिया बनती है; जैसे, तुम हमें देखो न देखो,
हम हुम्हें देखा करें; “बारह बरस दिल्ली रहे, पर भाइ ही
झोंका किये” (भारत०) ।

[स०—इस किया का प्रचलित नाम “नित्यता-बोधक” है; पर जिसको हमने नित्यता-बोधक लिखा है (अ०—४०७) उसमें और इस किया में रूप के सिवा अर्थ का भी (वद्धन) अंतर है; जैसे, “लड़का पढ़ता रहता है” और लड़का पढ़ा करता है । ” इसलिए इस किया का नाम अभ्यास-बोधक उचित जान पड़ता है ।]

४१०—भूतकालिककुदंत के आगे “चाहना” किया जोड़ने से इच्छा-बोधक संयुक्त किया बनती है; जैसे, तुम किया चाहोगे तो सफाई होनी कौन कठिन है ! ” (परी०), “देखा चहाँ जानकी माता । ” (राम०), “बेटाजी, हम तुम्हें एक अपने निज के काम से भेजा चाहते हैं । ” (मुद्रा०) ।

(अ) अभ्यास-बोधक और इच्छा-बोधक कियाओं में “जाना” भूतकालिक कुदंत “जाया” और “मरना” का “मरा” होता है; जैसे, जाया करता है, मरा चाहता है । (अ०—३७६ स०) ।

(आ) इच्छा-बोधक किया के रूप में “चाहना” का आदर-पूर्चक रूप “चाहिये” भी आता है (अ०—४०५); जैसे, “महाराज, अब कहीं बलरामजी का विवाह किया चाहिये । ” (प्रेम०) । “मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा । अवशि शीश धर चाहिये कीन्हा । ” (राम०) । यहाँ भी “चाहिये” से कर्तव्य का बोध होता है और यह किया भावेप्रयोग में आती है ।

(इ) इच्छाबोधक किया से कभी-कभी आसन्न भविष्यत् का भी बोध होता है; जैसे, “रानी रोहिताश्व का मृत-कंबल फाड़ा चाहती है कि रंगभूमि की पूछबी हिलती है । ” (सत्य०) । “तू जय शब्द कहा चाहती थी, सो आँसुओं ने रोक

लिया ।” (शकु०) । “गाढ़ी आया चाहती है । घड़ी बजा जाहती है ।” इसी अर्थ में कर्त्तव्याचक संज्ञा (अं०—३७३) के साथ “होना” किया के सामान्य कालों के रूप जोड़ते हैं, जैसे, “वह जानेवाला है”, “अब यह मरनहार भा सौंचा” (राम०) ।

(ई) इच्छा-बोधक कियाओं में क्रियार्थक संज्ञा के अविकृत रूप का प्रयोग अधिक होता है; जैसे, मैंने तपस्वी की कन्या को रोकना चाहा” (शकु०) । “(रानी) उन्मत्ता की भाँति उठकर दौड़ना चाहती है” (सत्य०) । भूतकाल कुदंत से बने कालों में बहुधा क्रियार्थक संज्ञा ही आती है; जैसे, “मैंने उसे देखा चाहा” के बदले “मैंने उसे देखना चाहा” अधिक प्रयुक्त है ।

(४) पूर्वकालिक कुदंत के मेल से बनी हुई ।

[टी०—पूर्वकालिक कुदंत का एक रूप (अं०—३८०) धातुवत् होता है; इसलिए इस कुदंत से बनी हुई संयुक्त क्रियाओं को हिंदी के वैयाकरण “धातु से बनी हुई” कहते हैं; पर हिंदी की उप-भाषाओं और हिंदुत्यान की दूसरी आर्य-भाषाओं का बिलान करने से जान पढ़ता है कि इन क्रियाओं में मुख्य क्रिया धातु के रूप में नहीं, किन्तु पूर्वकालिक कुदंत के रूप में आती है । स्वयं बोलचाल की कविता में यह रूप प्रचलित है; जैसे, “मन के नद को उमगाय रही” । (क० क०) । यही रूप ब्रज-भाषा में प्रचलित है; जैसे, “जिसका यश छाय रहा चहुँ देश ।” (प्रेम०) । रामचरितमानस में इसके अनेकों उदाहरण हैं; जैसे, “रामि न सकहिं न कहि सक जाहू ।” दूसरी भाषाओं के उदाहरण ये हैं—करुन चुकरण (मराठी), कही चुकवूँ (गुज०), करिया चुकन (बंगला), करि सारिबा (डिंया)]

४१—पूर्वकालिक कुदंत के योग से तीन प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ अनेती हैं—(१) अवधारणाबोधक, (२) शक्तिबोधक, (३) पूर्णताबोधक ।

४२—अवधारणा-बोधक क्रिया से मुख्य क्रिया के अर्थ में अधिक निश्चय पाया जाता है । नीचे लिखी सहायक क्रियाएँ इस अर्थ में आती हैं । इन क्रियाओं का ठोक-ठीक उपयोग सर्वथा क्षयवहार के अनुसार है; तथापि इनके प्रयोग के कुछ नियम यहाँ दिये जाते हैं—

उठना—इस क्रिया से अचानकता का बोध होता है । इसका उपयोग बहुधा स्थितिदर्शक क्रियाओं के साथ होता है; जैसे, बोल उठना, चिल्हा उठना, रो उठना, कौप उठना, चौक उठना, इत्यादि ।

बैठना—यह क्रिया बहुधा धृष्टता के अर्थ में आती है । इसका प्रयोग कुछ विशेष क्रियाओं ही के साथ होता है; जैसे, मार बैठना, कह बैठना, चढ़ बैठना, खो बैठना । “उठना” के साथ “बैठना” का अर्थ बहुधा अचानकता-बोधक होता है, जैसे, वह उठ बैठा ।

आना—कई स्थानों में इस क्रिया का स्वतंत्र अर्थ पाया जाता है; जैसे, देख आओ = देखकर आओ; लौट आओ = लौटकर आओ । दूसरे स्थानों में इससे यह सूचित होता है कि क्रिया का व्यापार वक्ता की ओर होता है; जैसे, बादल घिर आये, आज यह चौर यम के घर से बच आया, इत्यादि । “बातहि-आत कर्व बढ़ि आई ।” (राम०)

(अ) कभी-कभी बोलना, कहना, रोना, हँसना, आदि क्रियाओं के साथ “आना” का अर्थ “उठना” के समान अचानकता

का होता है; जैसे, काष्ठो चाहे कच्छु तो कच्छु कहि आवै ।”

(जगत०) । उसकी बात सुनकर मुझे रो आया ।

जाना—यह किया कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने में प्रयुक्त होती है; इसलिए कहै एक सकर्मक कियाएँ इसके योग से अकर्मक हो जाती हैं; जैसे,

कुचलना—कुचल जाना

खोना—खो जाना

छाना—छा जाना

लिखना—लिख जाना

धोना—धो जाना

सीना—सी जाना

छूना—छू जाना

भूलना—भूल जाना

उदा०—मेरे पैर के नीचे कोई कुचल गया । मैं चांडालों से छू गया हूँ । “यदि राज्ञस लड़ाई करने को उद्यत होगा तौ भी पकड़ जायगा” । (मुद्रा०) ।

इसका प्रयोग बहुधा स्थिति वा विकारदर्शक अकर्मक कियाओं के साथ पूर्णता के अर्थ में होता है; जैसे, हो जाना, बन जाना, फैल जाना, बिगड़ जाना, फूट जाना, मर जाना, इत्यादि ।

ब्यापारदर्शक कियाओं में “जाना” के योग से बहुधा शीघ्रता का बोध होता है; जैसे, खा जाना, निगल जाना, पी जाना, पहुँच जाना, जान जाना, समझ जाना, आ जाना, धूम जाना, कह जाना, इत्यादि । कभी-कभी “जाना” का अर्थ प्रायः स्वतंत्र होता है और इस अर्थ में “जाना” किया “आना” के विरुद्ध होती है; जैसे, देख जाओ = देखकर जाओ, लिख जाओ = लिखकर जाओ, लौट जाना = लौटकर जाना, इत्यादि ।

लेना—जिस किया के ब्यापार का लाभ कर्त्ता ही को प्राप्त होता है उसके साथ “लेना” किया आती है । “लेना” के योग से बनी हुई संयुक्त किया का अर्थ संस्कृत के आत्मनेपद के समान

होता है; जैसे, खा लेना, पी लेना, सुन लेना, छीन लेना, कर लेना, समझ लेना, इत्यादि ।

“होना” के साथ “लेना” से पूर्णता का अर्थ पाया जाता है; जैसे, “जब तक पहले बातचीत नहीं हो लेती तब तक किसीका किसीके साथ कुछ भी संबंध नहीं हो सकता ।” (रघु०) । खो लेना, मर लेना, त्याग लेना, आदि संयोग इसलिए अशुद्ध हैं कि इनके व्यापार से कर्ता को कोई लाभ नहीं हो सकता ।

देना—यह किया अर्थ में “लेना” के विरुद्ध है और इसका उपयोग तभी होता है जब इसके व्यापार का लाभ दूसरे को मिलता है; जैसे, कह देना, छोड़ देना, समझा देना, खिला देना, सुना देना, कर देना, इत्यादि । इसका प्रयोग संस्कृत के परस्मैपद के समान होता है ।

“देना” का संयोग बहुधा सकर्मक कियाओं के साथ होता है; जैसे, मार देना, डाल देना, खो देना, त्याग देना, इत्यादि । चलना, हँसना, रोना, छीकना, आदि अकर्मक कियाओं के साथ भी “देना” आता है; परन्तु उनके साथ इसका अर्थ बहुधा अचानकता का होता है ।

(अ) मारना, पटकना आदि कियाओं के साथ कभी-कभी “देना” पहले आता है और काल का रूपांतर दूसरी किया में होता है; जैसे, दे मारा, दे पटका, इत्यादि ।

“लेना” और “देना” अपने-अपने कूदंतों के साथ भी आते हैं; जैसे, ले लेना, दे देना ।

पड़ना—यह किया आवश्यकता-बोधक कियाओं में भी आती है । अवधारणा-बोधक कियाओं में इसका अर्थ बहुधा “जाना” के समान होता है और उसीके समान इसके योग से कई एक सकर्मक

कियाएँ अकर्मक हो जाती हैं; जैसे, सुनना—सुन पढ़ना, जानना—जान पढ़ना। देखना—देख पढ़ना, सूझना—सूझ पढ़ना। समझना—समझ पढ़ना।

“पढ़ना” किया सभी सकर्मक क्रियाओं के साथ नहीं आती। अकर्मक क्रियाओं के साथ इसका अर्थ “घटना” होता है; जैसे, गिर पढ़ना, चाँक पढ़ना, कूद पढ़ना, हँस पढ़ना, आ पढ़ना, इत्यादि।

“बनना” के साथ “पढ़ना” के बदले इसी अर्थ में कभी-कभी “आना” किया आती है; जैसे बात बन पढ़ी = बन आई। “हैं बनियाँ बनि आये के साथी !”

डालना—यह किया केवल सकर्मक क्रियाओं के साथ आती है। इससे बहुधा उप्रता का बोध होता है; जैसे, फोड़ डालना, काट डालना, मार डालना, फाड़ डालना, तोड़ डालना, कर डालना, इत्यादि।

“मार देना” का अर्थ “चोट पहुँचाना” और “मार डालना” का अर्थ “प्राण लेना” है।

रहना—यह किया बहुधा भूतकालिक कुदंतों से बने हुए कालों में आती है। इसके आसन्न-भूत और पूर्णभूत कालों से क्रमशः अपर्णवर्तमान और अपर्णभूत का बोध होता है; जैसे, लड़के खेल रहे हैं। लड़के खेल रहे थे। (अं०-३४८, टी०)। दूसरे कालों में इसका प्रयोग बहुधा अकर्मक क्रियाओं के साथ होता है; जैसे, बैठ रहो, वह सो रहा; हम पह रहेंगे।

रखना—इस किया का व्यवहार अधिक नहीं होता और अर्थ में यह प्रायः “लेना” के समान है; जैसे, समझ रखना, रोक रखना, इत्यादि। ‘छोड़ रखना’ के बदले बहुधा ‘रख छोड़ना’ आता है।

निकलना—यह किया भी कचित् आती है। इसका अर्थ प्रायः “पड़ना” के समान है; और उसीके समान यह बहुधा अकर्मक क्रियाओं के साथ आती है; जैसे, चल निकलना, आ निकलना, इत्यादि ।

४१३—एक ही कुदंत के साथ भिन्न-भिन्न अर्थों में भिन्न-भिन्न सहकारी क्रियाओं के योग से भिन्न-भिन्न अवधारण-बोधक क्रियाएं बनती हैं; जैसे, देख लेना, देख देना, देख ढालना, देख जाना, देख पढ़ना, देख रहना, इत्यादि ।

४१४—शक्तिबोधक क्रिया “सकना” के योग से बनती है; जैसे, खा सकना, मार सकना, दौड़ सकना, हो सकना, इत्यादि ।

“सकना” क्रिया स्वतंत्र होकर नहीं आती; परंतु रामचरित-मानस में इसका प्रयोग कई स्थानों में स्वतंत्र हुआ है; जैसे, “सकहु तो आयसु धरहु सिर” ।

अँगरेजी के प्रभाव से कोई-कोई लोग प्रभुता प्रदर्शित करने के लिए शक्तिबोधक क्रिया का प्रयोग सामान्य बच्चमानकाल में आज्ञा के अर्थ में करते हैं; जैसे, तुम जा सकते हो (तुम जाओ)। वह जा सकता है (बह जावे) ।

४१५—पूर्णताबोधक क्रिया के योग से बनती है; जैसे, खा चुकना, पढ़ चुकना, दौड़ चुकना, इत्यादि ।

कोई-कोई लेखक पूर्णताबोधक क्रिया के सामान्य भविष्यत्-काल को अँगरेजी की चाल पर “पूरी भविष्यत्-काल” कहते हैं; जैसे, “वह जा चुकेगा” । इस प्रकार के नाम पूर्णताबोधक क्रियाओं के सब कालों को ठीक-ठीक नहीं दिये जा सकते; इस-लिए इनके सामान्य भविष्यत् के रूपों को भी संयुक्त क्रिया ही मानना उचित है (अं०—३५८-टी) ।

इस किया के सामान्य भूतकाल से बहुधा किसी काम के विषय में कर्ता की अयोग्यता सूचित होती है; जैसे; तुम जा चुके! वह यह काम कर चुका !

“चुकना” किया कोई-कोई वैयाकरण “सकना” के समान परतंत्र किया मानते हैं; पर इसका स्वतंत्र प्रयोग पाया जाता है; जैसे, “गाते गाते चुके नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ”।

(५) अपूर्ण क्रियाद्योतक कुदंत के मेल से बनी हुई ।

४१६—अपूर्ण क्रियाद्योतक कुदंत के आगे “बनना” किया के जोड़ने से योग्यता-बोधक किया बनती है; जैसे, उससे जलते नहीं बनता, लड़के से किताब पढ़ते नहीं बनता; इत्यादि । इससे बहुधा भाववाच्य का अर्थ सूचित होता है । (अं०—३५५) ।

यह किया पराधीनता वा विवशता के अर्थ में भी आती है; जैसे, उससे आते बना । कभी-कभी आश्चर्य के अर्थ में तात्कालिक कुदंत के आगे “बनना” जोड़ते हैं; जैसे, यह छवि देखते ही बनती है ।

(६) पूर्ण क्रियाद्योतक कुदंत से बनी हुई ।

४१७—पूर्ण क्रियाद्योतक कुदंत से दो प्रकार की संयुक्त कियाएँ बनती हैं—(१) निरंतरता-बोधक (२) निश्चय-बोधक ।

४१८—सकर्मक क्रियाओं के पूर्ण क्रियाद्योतक कुदंत के आगे “जाना” किया जोड़ने से निरंतरता-बोधक किया बनती है; जैसे यह सुन्ने निगले जाता है । इस लता को क्यों छोड़े जाती है । लड़की यह काम किये जाती है । पढ़े जाओ ।

यह किया बहुधा वर्तमानकालिक कुदंत से बने हुए कालों में तथा विधि-कालों में आती है ।

४१६—पूर्णि क्रियायोतक कुदंत के आगे लेना, देना, डालना, और बैठना, (अवधारणा की सहायक क्रियाएँ) जोड़ने से निश्चय बोधक संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं। ये क्रियाएँ बहुधा सकर्मक क्रियाओं के साथ वर्तमानकालिक कुदंत से बने हुए कालों में ही आती हैं; जैसे, मैं यह पुस्तक लिए लेता हूँ। वह कपड़ा दिए देता है। हम कुछ कहे बैठते हैं। वह मुझे मारे डालता है। “मैं उस आज्ञापत्र का अनुबाद किये देता हूँ”। (विचित्र०) ।

(७) संज्ञा वा विशेषण के योग से बनी हुई

४२०—संज्ञा वा विशेषण के साथ क्रिया जोड़ने से जो संयुक्त क्रिया बनती है उसे नाम-बोधक क्रिया कहते हैं; जैसे, मस्म होना, भस्म करना, स्वीकार होना, स्वीकार करना, मोल लेना, दिखाई देना ।

४०—नामबोधक संयुक्त क्रियाओं में केवल वही संज्ञाएँ अथवा विशेषण आते हैं जिनका संबंध वाक्य के दूसरे शब्दों के साथ नहीं होता। “ईश्वर ने लड़के पर दिया की”, इस वाक्य में “दिया करना” संयुक्त क्रिया नहीं है; क्योंकि “दिया” संज्ञा “करना” क्रिया या कर्म है; परन्तु “लड़का दिखाई दिया”, इस वाक्य में “दिखाई देना” संयुक्त क्रिया है; क्योंकि “दिखाई” संज्ञा का ‘दिया’ से कोई संबंध नहीं है। यदि “दिखाई” को “दिया” क्रिया का कर्म मानें तो “लड़का” शब्द सप्रत्यय कर्त्ता कारक में होना चाहिये और क्रिया कर्मणि प्रयोग में आनी चाहिये; जैसे “लड़के ने दिखाई दी”; पर यह प्रयोग अशुद्ध है; इसलिए “दिखाई देना” को संयुक्त क्रिया मानने ही में व्याकरण के नियमों का पालन हो सकता है। इसी प्रकार “मैं आपकी योग्यता स्वीकार करता हूँ” इस वाक्य में “करता हूँ” क्रिया का कर्म, “स्वीकार” नहीं है; किन्तु “स्वीकार करता हूँ” संयुक्त क्रिया का कर्म “योग्यता” है।

७१ ४२१—नामबोधक संयुक्त क्रियाओं में “करना”, “होना” (कभी-कभी “रहना”) और “देना” आते हैं। “करना” और “होना” के साथ बहुधा सम्झूल की क्रियार्थीक संज्ञाएँ और “देना” के साथ हिन्दी की भाववाचक संज्ञाएँ आती हैं; जैसे,

होना

स्वीकार होना, नाश होना, स्मरण होना, कंठ होना, याद होना, विसर्जन होना, आरंभ होना, शुरू होना, सहन होना, भस्म होना, विदा होना ।

करना

स्वीकार करना, अंगीकार करना, ज्ञान करना, आरंभ करना, अहरण करना, श्रवण करना, उपार्जन करना, संपादन करना, विदा करना, त्याग करना ।

देना

दिखाई देना, सुनाई देना, पकड़ाई देना, छुलाई देना, बैঁধाई देना ।

(अ) “देना” के बदले कभी-कभी “पढ़ना” आता है; जैसे, शब्द सुनाई पढ़ा । नौकर दूर से दिखाई पढ़ा ।

[८०—कोई-कोई लेखक नामबोधक क्रियाओं की संज्ञा के बदले, व्याकरण की अशुद्धता के लिए, उसका विशेषण-रूप उपयोग में लाते हैं; जैसे, “सभा विसर्जन हुई” के बदले “सभा विसर्जित हुई”; “स्वीकार करना” के बदले “स्वीकृत करना,” इत्यादि । यह प्रयोग अभी सार्वत्रिक नहीं है । इसके बदले कोई-कोई लेखक कर्ता और कर्म को संबंधकारक में रखते हैं; जैसे, कथा का आरंभ हुआ । उन्होंने कथा का आरंभ किया । कई लेखक भूल से “होना” क्रियार्थ संज्ञा और उसके साथ आई हुई साधारण संज्ञा को संयुक्त क्रिया मानकर विभक्ति के योग से संज्ञा के भेदक वा विशेषण को विकृत रूप में रखते हैं; जैसे, उनके जन्म होने पर

(उनका जन्म होने पर)। राजा के देहान्त होने के पश्चात् (राजा का देहान्त होने के पश्चात्) ।

(=) पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ ।

४२२—जब दो समान अर्थवाली वा समान ध्वनिवाली क्रियाओं का संयोग होता है, तब उन्हें पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ कहते हैं; जैसे, पढ़ना-लिखना, करना-धरना, समझना-बूझना, बोलना-चालना, पूछना-ताछना, खाना-पीना, होना-हवाना, मिलना-जुलना; देखना-भालना ।

(अ) जो क्रिया केवल यमक (ध्वनि) मिलाने के लिए आती है वह निरर्थक रहती है; जैसे, ताछना, भालना, हवाना ।

(आ) पुनरुक्त क्रियाओं में दोनों क्रियाओं का रूपांतर होता है; परंतु सहायक क्रिया केवल पिछली क्रिया के साथ आती है; जैसे, अपना काम देखो-भालो, यह वहाँ जाया-आया करता है, जहाज यहाँ आयें-जायेंगे, मिल-जुलकर, बोलता-चालता हुआ ।

४२३—संयुक्त क्रियाओं में कभी-कभी सहकारी क्रिया के कृदंत के आगे दूसरी सहकारी क्रिया आती है जिससे तीन अर्थवा चार शब्दों की भी संयुक्त क्रिया बन जाती है; जैसे, उसकी तत्काल सफाई कर लेना चाहिये” । (परी०) । “उन्हें वह काम करना पड़ रहा है ।” (आदर्श०) । “हम यह पुस्तक उठा ले जा सकते हैं ।” इत्यादि ।

४२४—संयुक्त क्रियाओं में अंतिम सहकारी क्रिया के धातु को पिछले कृदंत वा विशेषण के साथ मिलाकर संयुक्त धातु मानते हैं; जैसे, उठा ले जा सकते हैं” क्रिया में “उठा ले जा सकें” धातु

माना जायगा । संस्कृत में भी ऐसे ही संयुक्त धातु माने जाते हैं; जैसे, प्रमाणीकृ, पयोधरीभू, इत्यादि ।

४२५—संयुक्त क्रियाओं में केवल नीचे लिखी सकर्मक क्रियाएँ कर्मवाच्य में आती हैं—

(१) आवश्यकता-बोधक क्रियाएँ जिनमें “होना” और “चाहिये” का योग होता है; जैसे, चिट्ठी लिखी जानी थी । काम देखा जाना चाहिये, इत्यादि ।

(२) आरंभ-बोधक, जैसे, वह विद्वान् समझा जाने लगा । आप भी बड़ों में गिने जाने लगे ।

(३) अवधारणा-बोधक क्रियाएँ जो “लेना”, “देना”, “डालना”, के योग से बनती हैं; चिट्ठी भेज दी जाती है, काम कर लिया गया, पत्र फाँक डाला जायगा, इत्यादि ।

(४) शक्ति-बोधक क्रियाएँ; जैसे, चिट्ठी भेजी जा सकती है, काम न किया जा सका, इत्यादि ।

(५) पूर्णता-बोधक क्रियाएँ; जैसे, पानी लाया जा चुका । कपड़ा सिया जा चुकेगा, इत्यादि ।

(६) नाम-बोधक क्रियाएँ जो बहुधा संस्कृत क्रियार्थक संज्ञा के योग से बनती हैं; जैसे, यह बात स्वीकार की गई, कथा अवण की जायगी; हाथी मोंल लिया जाता है, इत्यादि ।

(७) पुनरुक्त क्रियाएँ; जैसे, काम देखा-भाला नहीं गया, बात समझी-बूझी जायगी, इत्यादि ।

(८) निस्यता-बोधक; जैसे, काम किया जाता रहेगा = होता रहेगा । चिट्ठी लिखी जाती रही ।

४२६—भाववाच्य में केवल नाम-बोधक और पुनरुक्त कर्मक क्रियाएँ आती हैं; जैसे, अन्याय देखकर किसी से चुप नहीं रहा जाता । लड़के से कैसे चला फिरा जायगा, इत्यादि ।

आठवाँ अध्याय ।

विकृत अव्यय ।

[शब्दों के रूपांतर के प्रकरण में अव्ययों का उल्लेख न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि अव्ययों में लिंग-बचनादि के कारण विकार (रूपांतर) नहीं होता । पर भाषा में निरपवाद नियम बहुत थोड़े पाये जाते हैं । भाषा-संबंधी शास्त्रों में बहुधा अनेक अपवाद और प्रत्यपवाद रहते हैं । पूर्व में अव्ययों को अविकारी शब्द कहा गया है; परंतु कोई कोई अव्यय विकृत रूप में भी आते हैं । इस अध्याय में इन्हीं विकृत अव्ययों का विचार किया जायगा । ये सब अव्यय बहुधा आकारात होने के कारण आकारात विशेषणों के समान उपयोग में आते हैं और उन्हीं के समान लिंग-बचन के कारण इनका रूप पलटता है ।]

४२७—क्रियाविशेषण—जब आकारात विशेषणों का प्रयोग क्रियाविशेषणों के समान होता है तब उनमें बहुधा रूपांतर होता है । इस रूपांतर के नियम ये हैं—

(अ) परिणामवाचक वा प्रकारवाचक क्रियाविशेषण जिस विशेषण की विशेषता बताते हैं उसी के विशेष्य के अनुसार उनमें रूपांतर होता है; जैसे, “जो जितने वडे हैं उनकी इपी उतनी ही बड़ी है ॥” (सत्य०) । “शास्त्राभ्यास उसका जैसा बड़ा हुआ था, उसे भी उसका बैसा ही अद्भुत था ॥” (रघु०) । “नर पर्वत के कसूर वडे भारी हैं ॥” (विचित्र०) ।

(आ) अकर्मक क्रियाओं के कर्त्तरिप्रयोग में आकारात क्रियाविशेषण कर्त्ता के लिंग बचन के अनुसार बदलते हैं; जैसे, वे उनसे इतने हिल गये थे ॥” (रघु०) । “यूँहों की जड़ पवित्र बरहों के प्रवाह से धुलकर कैसी चमकती है ॥”

(शकु०) । “प्यादे तें फरजी भयो तिरछो तिरछो जात ।”

(रहीम०) । “जैसी चले बयार ।” (रुएड०) ।

अप०—इस प्रकार के वाक्यों में कभी-कभी कियाविशेषण का रूप अविकृत ही रहता है; जैसे, “जितना वे पहले तैयार रहते थे उतना पीछे नहीं रहते ।” (स्वा०) । “यहाँ की स्थियाँ दरपोक और बेवकूफ होने से उतना ही लज़ाती हैं जितना कि पुरुष ।” (विचित्र०) । ये प्रयोग अनुकरणीय नहीं हैं, क्योंकि इन वाक्यों में आये हुए शब्द शुद्ध कियाविशेषण नहीं हैं। वे मूल-विशेषण होने के कारण संज्ञा और किया-दोनों से समान-संबंध रखते हैं।
 (इ) सकर्मक कर्त्तरि और कर्मण-प्रयोगों में प्रकृत किया-विशेषण कर्म के लिंग-वचन के अनुसार बदलते हैं; जैसे, “एक बंदर किसी महाजन के बाग में जा करोपके कल मनमाने खाता था ।” “खंबे जमीन में सीधे गाढ़े गये ।” (विचित्र०) । “समुद्र अपनी बड़ी-बड़ी लहरें ऊँची उठाकर तट की तरफ बढ़ता है” । (रघु०) ।

अप०—जब सकर्मक किया में कर्म की विवक्षा नहीं रहती तब उसका प्रयोग अकर्मक किया के समान होता है; और प्रकृत कियाविशेषण कर्त्ता के साथ अन्वित न होकर सदैव पुर्णिंग एक वचन (अविकृत) रूप में रहता है; जैसे, “मैं इतना पुकारती हूँ ।” (सत्य०) । “लड़की अच्छा गाती है” । “वे तिरछा लिखते हैं ।” “इसी डर से वे थोड़ा बोलते हैं” । (रघु०) ।

(ई) सकर्मक भावेप्रयोग में पूर्वोक्त कियाविशेषण विकल्प से विकृत अथवा अविकृत रूप में आते हैं; और अकर्मक भावे-प्रयोग में बहुधा अविकृत रूप में; जैसे, “एकमात्र नंदिनी ही

को उसने सामने खड़ी देखा” । (रघु०) । “इसको (हमने) इतना बड़ा बनाया ।” (सर०) । मुझसे सीधा नहीं चला जाता” । (अं०—५६२) ।

८०—सदा, सर्वदा, सर्वथा, बहुधा, वृथा, आदि आकारांत कियाविशेषणों का रूपांतर नहीं होता, क्योंकि ये शब्द मूल में विशेषण नहीं हैं ।

४२८—संबंध-सूचक अव्यय—जो संबंध-सूचक अव्यय मूल में विशेषण हैं (अं०—३४०), उनमें आकारांत शब्द विशेष्य के सिंगारचनानुसार बदलते हैं । विशेष्य विभक्त्यांत किंवा संबंध-सूचकांत हो तो संबंध-सूचक विशेषण विकृत रूप में आता है; जैसे, “तुम सरीखे छोफड़े”, “यह आप ऐसे महात्माओं ही का काम है”, इत्यादि ।

दूसरा भाग ।

शब्द-साधन ।

तीसरा परिच्छेद ।

व्युत्पत्ति ।

पहला अध्याय ।

विषयारंभ ।

४२६—शब्द-साधन के तीन भाग हैं—वर्गीकरण, रूपांतर और व्युत्पत्ति । इनमें से पहले दो विषयों का विवेचन दूसरे भाग के पहले और दूसरे परिच्छेदों में हो चुका है । इस तीसरे परिच्छेद में व्युत्पत्ति अर्थात् शब्द-रचना का विचार किया जायगा ।

४०—व्युत्पत्ति-प्रकरण में केवल यौगिक शब्दों की रचना का विचार किया जाता है, रूढ़ शब्दों का नहीं । रूढ़ शब्द किस भाषा के किस शब्द से बना है, यह बताना इस प्रकरण का विषय नहीं है । इस प्रकरण में केवल इस बात का स्पष्टीकरण होता है कि भाषा का प्रचलित शब्द भाषा के अन्य प्रचलित शब्द से किस प्रकार बना है । उदाहरणार्थ, “इठोला” शब्द, “इठ” शब्द से बना हुआ एक विशेषण है, अर्थात् “इठोला” शब्द यौगिक है, रूढ़ नहीं है; और केवल यही व्युत्पत्ति इस प्रकरण में बताई जायगी । “इठ” शब्द किस भाषा से किस प्रकार हिंदी में आया, इस बात का विचार इस प्रकरण में न किया जायगा । “इठ” शब्द दूसरी भाषा में, जिससे वह निकला है, चाहे यौगिक भी हो, पर हिंदी में यदि उसके खंड सार्थक नहीं हैं तो वह रूढ़ ही माना जायगा । इसी प्रकार

“रसोई-घर” शब्द में केवल यह चताया जायगा कि यह शब्द “रसोई” और “घर” शब्दों के समास से बना है; परंतु “रसोई” और “घर” शब्दों की व्युत्पत्ति किन भाषाओं के किन शब्दों से हुई है, यह बात व्याकरण-विषय के बाहर की है।

४३०—एक ही भाषा के किसी शब्द से जो दूसरे शब्द बनते हैं वो बहुधा तीन प्रकार से बनाये जाते हैं। किसी-किसी शब्द के पूर्व एक-दो अच्छर लगाने से नये शब्द बनते हैं; किसी-किसी शब्द के पश्चात् एक-दो अच्छर लगाकर नये शब्द बनाये जाते हैं; और किसी-किसी शब्द के साथ दूसरा शब्द मिलाने से नये संयुक्त शब्द तैयार होते हैं।

(अ) शब्द के पूर्व जो अच्छर वा अच्छर-समूह लगाया जाता है उसे उपसर्ग कहते हैं; जैसे, “बन” शब्द के पूर्व “अन” नियेवार्थी अच्छर-समूह लगाने से “अनबन” शब्द बनता है। इस शब्द में “अन” (अच्छर-समूह) की उपसर्ग कहते हैं।

५०—संक्षिप्त में शब्दों के पूर्व आनेवाले कुछ नियत अच्छरों ही को उपसर्ग कहते हैं और बाकी को अव्यय मानते हैं। यह अंतर उस भाषा की हिंदू-महात्म्य का भी हो, पर हिंदी में ऐसा अंतर मानने का कोई कारण नहीं है। इसलिए हिंदी में “उपसर्ग” शब्द की योजना अधिक व्यापक अर्थ में होती है।

(आ) शब्दों के पश्चात् (आगे) जो अच्छर वा अच्छर-समूह लगाया जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं; जैसे, “बड़ा” शब्द में “आई” (अच्छर-समूह) से “बड़ाई” शब्द बनता है, इसलिए “आई” प्रत्यय है।

५०—रूपांतर-प्रकरण में जो कारक-प्रत्यय और काल-प्रत्यय कहे गये हैं उनमें भी व्युत्पत्ति-प्रत्ययों में अंतर है। पहले दो प्रकार के प्रत्यय

चरम-प्रत्यय हैं अर्थात् उनके पश्चात् और कोई प्रत्यय नहीं लग सकते । हिंदी में अधिकरण कारक के प्रत्यय इस नियम के अपवाद हैं, तथा प्रियमकियों को साधारणतया चरम-प्रत्यय मानते हैं । परंतु व्युत्पत्ति में जो प्रत्यय आते हैं वे चरम-प्रत्यय नहीं हैं; क्योंकि उनके पश्चात् दूसरे प्रत्यय आ सकते हैं । उदाहरण के लिये “चतुराई” शब्द में “आई” प्रत्यय है और इस समय के पश्चात् ‘से’ ‘को’, आदि प्रत्यय लगाने से “चतुराई से” “चतुराई को” आदि शब्द सिद्ध होते हैं; पर ‘से’ ‘को’, आदि के पश्चात् “आई” अथवा और कोई व्युत्पत्ति-प्रत्यय नहीं लग सकता ।

योगिक शब्दों में जो अव्यय हैं (जैसे, जुपके, लिए, धीरे, आदि) उनके प्रत्ययों के आगे भी बहुधा दूसरे प्रत्यय नहीं आते; परंतु उनको चरम-प्रत्यय नहीं कहते, क्योंकि उनके पश्चात् विभक्तियों का लोप हो जाता है । सारांश यह है कि कारक-प्रत्यय और काल-प्रत्यय ही को चरम-प्रत्यय कहते हैं ।

(इ) दो अथवा अधिक शब्दों के मिलने से जो संयुक्त-शब्द बनता है उसे समास कहते हैं; जैसे, रसोई-घर, मैझधार, पंसेरी, इत्यादि ।

सू०— एक अच्छर का शब्द भी होता है; और अनेक अच्छरों के उपसर्ग और प्रत्यय भी होते हैं; इसलिए वाणि स्वरूप देखकर यह बतानी कठिन है कि शब्द कौनसा है और उपसर्ग अथवा प्रत्यय कौनसा है । ऐसी अवस्था में उनके अर्थ के अंतर पर विचार करना आवश्यक है । जिस अच्छर-समूह में स्वतंत्रतापूर्वक कोई अर्थ पाया जाया है उसे शब्द कहते हैं; और जिस अच्छर या अच्छर-समूह में स्वतंत्रपूर्वक कोई अर्थ नहीं पाया जाता कर्यात् स्वतंत्रता-पूर्वक जिसका प्रयोग नहीं होता और जो किसी शब्द के आधर से उसके आगे अथवा पिछे आकर अर्थवान् होता है, उसे उपसर्ग अथवा प्रत्यय कहते हैं ।

४३१—खपसर्ग, प्रत्यय और समास से बने हुए शब्दों के सिवा हिंदी में और दो प्रकार के यौगिक शब्द हैं जो कमशः पुनरुक्त और अनुकरण-वाचक कहलाते हैं । पुनरुक्त-शब्द किसी शब्द को दुहराने से बनते हैं; जैसे, घर-घर, मारामारी, कामधाम, उर्दू-सुर्दू, काट-कूट, इत्यादि । अनुकरण-वाचक शब्द, जिनको कोई-कोई बैयाकरण पुनरुक्त शब्दों का ही भेद मानते हैं, किसी पदार्थ की यथार्थ अथवा कलिपत ध्वनि को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं; जैसे, खटखटाना, धड़ाम, चट, इत्यादि ।

४३२—प्रत्ययों से बने हुए शब्दों के दो मुख्य भेद हैं—कुदंत और तद्रित । धातुओं से परे जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें कृत् कहते हैं, और कृत् प्रत्ययों के योग से जो शब्द बनते हैं वे कुदंत कहलाते हैं । धातुओं को छोड़कर शेष शब्दों के आगे प्रत्यय लगाने से जो शब्द तैयार होते हैं उन्हें तद्रित कहते हैं ।

४०—हिंदी-भाषा में जो शब्द प्रचलित हैं उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनके विषय में यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि उनकी व्युत्पत्ति कैसे हुई । इस प्रकार के शब्द देशज कहलाते हैं । इन शब्दों की संख्या बहुत थोड़ी है और संभव है कि आधुनिक आर्यभाषाओं की बहुती के नियमों की अधिक खोज और पहचान होने से अंत में इनकी संख्या बहुत कम हो जायगी । देशज शब्दों को छोड़कर हिंदी के अधिकांश शब्द दूसरी भाषाओं से आये हैं जिनमें संस्कृत, उर्दू और आजकल अँगरेजी मुख्य हैं । इनके सिवा मराठी और बंगला भाषाओं से भी हिंदी का थोड़ा-बहुत समागम हुआ है । व्युत्पत्तिप्रकरण में पूर्वोक्त भाषाओं के शब्दों का अलग-अलग विचार किया जायगा ।

दूसरी भाषाओं से और विशेषकर संस्कृत से जो शब्द मूल शब्दों में कुछ विकार होने पर हिंदी में रुद्र हुए हैं वे तद्रित कहलाते हैं । दूसरे

प्रकार के संस्कृत-शब्दों को तत्सम कहते हैं। हिंदी में तत्सम शब्द भी आते हैं। इस प्रकरण में केवल तत्सम शब्दों का विचार किया जायगा, क्योंकि तद्देव शब्दों की व्युत्पत्ति का विचार करना व्याकरण का विषय नहीं, किंतु कोशा का है।

हिंदी में जो वौगिक शब्द प्रचलित हैं वे बहुधा उसी एक भाषा के प्रत्ययों और शब्दों के योग से बने हैं जिस भाषा से वे आये हैं; परंतु कोई-कोई शब्द ऐसे भी हैं जो दो भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्दों और अत्ययों के योग से बने हैं। इस बात का स्पष्टीकरण यथास्थान किया जायगा।

दूसरा अध्याय।

उपसर्ग।

४३३—पहले संस्कृत उपसर्ग मुख्य अर्थ और उदाहरण सहित दिये जाते हैं। संस्कृत में इन उपसर्गों को धातुओं के साथ जोड़ने से उनके अर्थ में हेरफेर होता है*; परंतु उस अर्थ का स्पष्टीकरण हिंदी-व्याकरण का विषय नहीं है। हिंदी में उपसर्ग-युक्त जो संस्कृत तत्सम शब्द आते हैं, उन्हीं शब्दों के संबंध में यहाँ उपसर्गों का विचार करना कठिन है। ये उपसर्ग कभी-कभी निरे हिंदी शब्दों में लगे हुए भी पाये जाते हैं जिनके उदाहरण यथास्थान दिये जायेंगे।

(क) संस्कृत उपसर्ग।

अति = अधिक, उस पार, ऊपर; जैसे, अतिकाल, अतिरिक्त, अतिशय, अत्यंत, अत्याचार।

* उपसर्गेण धात्वयों घलादन्यत्र नीयते।

प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारत् ॥

८०—हिंदी में “अति” इसी अर्थ में स्वतंत्र शब्द के समान भी प्रयुक्त होता है; जैसे, “अति बुरी होती है।” “अति संघर्षण” (राष्ट्र) ।

अधि = ऊपर, स्थान में, श्रेष्ठ; जैसे, अधिकरण, अधिकार, अधिपाठक, अधिराज, अधिष्ठाता, अध्यात्म ।

अनु = पीछे, समान; जैसे, अनुकरण, अनुक्रम, अनुग्रह, अनुचर, अनुज, अनुताप, अनुरूप, अनुशासन, अनुस्वार ।

अप = बुरा, हीन, विरुद्ध, अभाव, इत्यादि; जैसे, अपकीर्ति, अपध्रंश, अपमान, अपराध, अपशब्द, अपस्थ्य, अपहरण ।

अभि = ओर, पास, सामने; जैसे, अभिप्राय, अभिमुख, अभिमान, अभिलाष, अभिसार, अभ्यागत, अभ्यास, अभ्युदय ।

अव = नीचे, हीन, अभाव; जैसे, अवगत, अवगाह, अवगुण, अवतार, अवनत, अवलोकन, अवसान, अवस्था ।

स०—प्राचीन कविता में “अव” का रूप बहुधा “ओ” पाया जाता है; जैसे, ओगुन, ओसर ।

आ=तक, ओर, समेत, उलटा; जैसे, आकर्षण, आकार, आकाश, आकमण, आगमन, आचरण, आजन्म, आबालबृद्ध, आरंभ ।

उत्—दृ = ऊपर, ऊँचा, श्रेष्ठ; जैसे, उत्कर्ष, उत्कंठा, उत्ताम, उद्यम, उद्देश्य, उन्नति, उत्पङ्घ, उल्लेख ।

उप—निकट, सहश, गौण; जैसे, उपकार, उपदेश, उपनाम, उपनेत्र, उपभेद, उपयोग, उपवन, उपवेद ।

दुर, दुस्—बुरा, कठिन, दुष्ट; जैसे, दुराचार, दुर्गुण, दुर्गम, दुर्जन, दुर्दशा, दुर्दिन, दुर्बल, दुर्लभ, दुष्कर्म, दुष्प्राप्य, दुःसह ।

नि—भीतर, नीचे, बाहर; जैसे, निकृष्ट, निर्दर्शन, निर्दान, निपात, निवंध, नियुक्त, निवास, निरूपण ।

निर्, निस्—बाहर, निषेध; जैसे, निराकरण, निर्मम, निःशंक, निरपराध, निभेय; निर्बाह, निश्चल, निर्दोष, नीरोग (हिं०—निरोगी) ।

दू०—हिंदी में यह उपसर्व व्युथा “नि” हो जाता है; जैसे, निघन, निवल, निडर, निसंक ।

परा—पीछे, उलटा; जैसे, पराक्रम, पराजय, पराभव, परामर्श, परावर्तीन ।

परि—आसपास, चारों ओर, पूर्ण; जैसे, परिक्रमा, परिजन, परिणाम, परिधि, परिपूर्ण, परिमाण, परिवर्तीन, परिणय, पर्याप्त,

प्र—अधिक, आगे, ऊपर; जैसे, प्रकाश, प्रलयात, प्रचार, प्रबल। प्रभु, प्रयोग, प्रसार, प्रस्थान, प्रलय ।

प्रति—विरुद्ध, सामने, एक-एक; जैसे, प्रतिकूल, प्रतिच्छय, प्रतिष्ठनि, प्रतिकार, प्रतिनिधि, प्रतिवादी, प्रत्यक्ष, प्रत्युपकार, प्रत्येक ।

वि—भिन्न, विशेष, अभाव; जैसे, विकास, विज्ञान, विदेश, विधवा, विवाद, विशेष, विस्मरण, (हिं०—विसरना) ।

सम्—अच्छा, साथ, पूर्ण; जैसे, संकल्प, संगम, संग्रह, सतोष, संन्यास, संयोग, संस्कार, संरक्षण, संहार ।

सु—अच्छा, सहज, अधिक; जैसे, सुकर्म, सुकृत, सुगम, सुलभ, सुशिक्षित, सुदूर, स्वागत ।

हिंदी—सुडौल, सुज्ञान, सुधर, सपुत्र ।

४३४—कभी-कभी एक ही शब्द के साथ दो-तीन उपसर्व

आते हैं; जैसे, निराकरण, प्रत्युपकार, समालोचना, समभिव्याहार, (भा० प्र०) ।

४३५—संस्कृत शब्दों में कोई-कोई विशेषण और अव्यय भी उपसर्गों के समान व्यवहृत होते हैं । इनका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है; क्योंकि ये बहुधा स्वतंत्र रूप से उपयोग में नहीं आते ।

अ—अभाव, निषेध; जैसे, अगम, अज्ञान, अधर्म, अनीति, अलौकिक, अव्यय ।

स्वरादि शब्दों के पहले “अ” के स्थान में “अन्” हो जाता है और “अन्” के “न्” में आगे का स्वर मिल जाता है । उदा०—अनन्तर, अनिष्ट, अनाचार, अनादि, अनायास, अनेक ।

हिं०—अद्वृत, अज्ञान, अटल, अथाह, अलग ।

अधस्—नीचे; उदा०—अधोगति, अधोमुख, अधोभाग, अधःपतन, अधस्तत ।

अंतर्—भीतर; उदा०—अंतःकरण, अंतःस्थ, अंतर्दृशा, अंतर्धान, अंतर्भाव, अंतर्वेदी ।

अमा—पास; उदा०—अमात्य, अमावास्या ।

अलम्—सुंदर; उदा०—अलंकार, अलंकृत, अलंकृति । यह अव्यय बहुधा कु (करना) धातु के पूर्व आता है ।

आविर्—प्रकट, बाहर; उदा०—आविर्भाव, आविष्कार ।

इति—ऐसा, यह; उदा०—इतिवृत्त, इतिहास, इतिकर्त्तव्यता ।

स०—“इति” शब्द हिंदी में बहुधा इसी अर्थ में स्वतंत्र शब्द के समान भी आता है (अ०—२२७) ।

कु (का, कद)—बुरा; उदा०—कुकर्म, कुरूप, कुशकुन, कॉ-पुरुष, कदाचार ।

हिं०—कुचाल, कुठौर, कुडौल, कुडंगा, कपूत ।

चिर—बहुत; उदा०—चिरकाल, चिरंजीव, चिरायु ।

तिरस्—तुच्छ; उदा०—तिरस्कार, तिरोहित ।

न—अभाव; उदा०—नज़ात्र, नग, नपुंसक, नास्तिक ।

नाना—बहुत; उदा०—नानारूप, नानाजाति ।

स०—हिंदी में “नाना” बहुधा स्वतंत्र शब्द के समान प्रयुक्त होता है; जैसे, “लागे विटप मनोहर नाना (राम०) ।

पुरस्—सामने, आगे; जैसे, पुरस्कार, पुरश्चरण, पुरोहित ।

पुरा—पहले; जैसे, पुरातत्त्व, पुरातन, पुरावृत्त ।

पुनर्—फिर; जैसे, पुनर्जन्म, पुनर्विवाह, पुनरुक्त ।

प्राक्—पहले का; जैसे, प्राक्षयन, प्राक्तम्, प्राकृत ।

प्रतर्—सबेरे; जैसे, प्रातःकाल, प्रातःक्लान, प्रातःस्मरण ।

प्रादुर्—प्रकट; जैसे, प्रादुर्भाव ।

वहिर्—वाहर; जैसे, वहिर्द्वार, वहिष्कार ।

स—सहित; जैसे, सगोव्र, सजातीय, सजीव, सरस, सावधान, सफल (हिं०—सुफल) ।

हिंदी—सचेत, सबेरा, सलग, सहेली, साड़े (सं०—सार्ढ) ।

सत्—अच्छा; जैसे, सज्जन, सत्कर्म, सत्पात्र, सद्गुरु, सदाचार ।

सह—साथ; जैसे, सहकारी, सहगमन, सहज, सहचर, सहानुभूति, सहोदर ।

स्व—अपना, निजी; उदा०—स्वतंत्र, स्वदेश, स्वधर्म, स्वभाव, स्वभाषा, स्वराज्य, स्वरूप ।

स्वयं—खुद, अपने आप; जैसे, स्वयंभ्, स्वयंवर, स्वयं-सिद्ध, स्वयं-सेवक ।

स्वर—आकाश, स्वर्ग; जैसे, स्वर्तोक, स्वर्गीगा ।

सू—कृ और भू (संस्कृत) धातुओं के पूर्व कई शब्द—विशेषकर संशारें, और विशेषण—ईकारांत अव्यय होकर आते हैं; जैसे, स्वीकार, बगाँकरण, बशीकरण, द्रवीभूत, फलीभूत, भस्मीभूत, बशीभूत, समीकरण ।

[ख] हिंदी उपसर्ग

ये उपसर्ग बहुधा संस्कृत उवसर्गों के अपभ्रंश हैं और विशेषकर तद्वय शब्दों के पूर्व आते हैं ।

अ—=अभाव, निषेध; उदाह—अचेत, अज्ञान, अथाह, अवेर, अलग ।

अपवाद—संस्कृत में स्वरादि शब्दों के पहले अ के स्थान में अन् हो जाता है, परंतु हिंदी में अन व्यञ्जनादि शब्दों के पूर्व आता है; जैसे, अनगिनती, अनधेरा (कुं०), अनवन, अनभल, अन-हित, (राम०), अनभोल ।

सू—(१) अनूठा, अनोखा और अनैसा शब्द संस्कृत के अपभ्रंश जान पढ़ते हैं जिनमें अन् उपसर्ग आया है ।

(२) कभी-कभी यह प्रत्यय भूल से लगा दिया जाता है; जैसे, अलोप अचपल ।

अध—(स०—अद्ध०)=आधा ; उदाह—अधकचा, अधखिला, अधपका, अधमरा, अधपहै, अधसेरा ।

सू—“अधूरा” शब्द “अध + पूरा” का अपभ्रंश जान पढ़ता है ।

उन (स० ऊन)—एक कम ; जैसे उन्नीस, उन्तीस, उनचास उनसठ, उनहन्तर, उन्नासी ।

आौ (सं०—अव) = हीन, निषेध; उदा०—आौगुन, आौघट, आौदसा, आौढर, आौसर।

दु (सं०—दुर) = शुरा, हीन; उदा०—दुकाल (राम०), दुबला।

नि (सं०—निर) = रहित; उदा०—निकम्मा, निखरा, निडर, निधङ्क, निरोगी, निहत्या। यह उद्दू के 'खालिस' (=शुद), शब्द में अर्थ ही जोड़ दिया जाता है; जैसे, निखालिस।

चिन (सं०—चिना) = निषेध, अभाव; उदा०—चिनजाने, चिन-धोया, चिनव्याहा।

भर = पूरा, ठीक; उदा०—भरपेट, भर-दौड़ (शकु०), भर-पूर, भरसक, भरकोस्।

[ग] उद्दू उपसर्ग ।

अल (अ०) = निश्चित; उदा०—अलगरज, अलवत्ता।

ऐन (अ०) = ठीक, पूरा; उदा०—ऐनजवानी, ऐनवक्त।

य०—यह उपसर्ग हिंदी "भर" का पर्यायवाची है।

कम = थोड़ा, हीन; उदा०—कमउच्च, कमकीमत, कमजोर, कमबख्त, कमहिम्मत।

ख०—कभी-कभी यह उपसर्ग एक-दो हिंदी शब्दों में लगा हुआ मिलता है; जैसे, कमसमझ, कमदाम।

खुश = अच्छा; उदा०—खुशबू, खुशदिल, खुश-किस्मत।

गैर (अ०—गैर) = भिन्न, विरुद्ध; उदा०—गैरहाजिर, गैर-मुल्क, गैरवाजिव, गैरसरकारी।

स०—“वगैरह” शब्द में “व” (ओर) समुच्चय-बोधक है और “गैरह” “नौर” का अहवचन है। इस शब्द का अर्थ है “ओर दूसरे।”

दर = में; उदा०—दरखास्त, दरकार, दरखास्त, दरहकीकत ।
ना—अभाव (सं०-न); उदा०—नावम्मेद, नादान, नाप-
 सन्द, नाराज, नालायक ।

फी (अ०)—में, पर; जैसे, फिलहाल, (की + अल + हाल)=
 हाल में, फी आदमी ।

ब = ओर, में, अनुसार ; उदा०—बनाम, ब-इजलास, बदस्तूर,
 बड़ीलत ।

बद = बुरा ; उदा०—बदकार, बदकिस्मत, बदनाम, बदफैल,
 बदबू, बदमाश, बदराह (सत०), बदहजमी ।

बर = ऊपर ; उदा०—बरखास्त, बरदाश्त, बरतरफ, बरवर्च,
 बराबर ।

बा = साथ ; उदा०—बाजाबता, बाकार्यदा, बातमीज ।

बिल (अ०) = साथ; उदा०—बिलकुल, बिलमुक्ता ।

बिला (अ०) = ; उदा०—बिलाकुस्त, बिलाशक ।

बे = बिना ; उदा०—बेईमान, बेचारा (हिं०-बिचारा),
 बेतरह, बेबकूफ, बेरहम ।

स०—यह उपसर्ग बहुधा हिंदी-शब्दों में भी लगाया जाता है; जैसे,
 बेकाम, बेचैन, बेजोड़, बेड़ील । “बाहियात” और “फुजूल” शब्दों के
 साथ यह उपसर्ग भूल से जोड़ दिया जाता है; जैसे, बे-बाहियात, बेफुजूल ।

ला (अ०) = बिना, अभाव; उदा०—लाचार, लाघारिस,
 लाजबाब, लामजहूच ।

सर = मुख्य; उदा०—सरकार, सरताज (हिं०—सिरताज),
 सरदार, सरनाम (हिं० सिर-नामा), सरखत, सरहद ।

हिं०—सरपञ्च ।

हम (सं०—सम)—साथ, समान; उदा०—हमउन्ह, हमदर्दी, हमराह, हमवतन ।

हर—प्रत्येक; उदा०—हररोज, हरमाह, हरचीज, हरसाल, हर-तरह ।

[स०—इस उपसर्ग का उपयोग हिंदी शब्दों के साथ अधिंकता से होता है; ऐसे, हरकाम, हरघड़ी, हरदिन, हर-एक, हर-कोई ।]

(घ) अँगरेजी उपसर्ग

सब—अधीन, भीतरी; उदा०—सब इंस्पेक्टर, सब-रजिस्ट्रार, सब-जज, सब-आफिस, सब-कमेटी ।

हिंदी में अँगरेजो शब्दों की भरती अभी हो रही है; इस-लिए आज ही यह बात निष्ठ्य-पूर्वक नहीं कही जा सकती कि उस भाषा से आये हुए शब्दों में से कौनसे शब्द कह और कौनसे यौगिक हैं । अभी इस विषय के पूर्ण विचार की आवश्यकता भी नहीं है; इसलिए हिंदी व्याकरण का यह भाग इस समय अधूरा ही रहेगा । ऊपर जो उद्घाहरण दिया गया है वह अँगरेजी उपसर्गों का केवल एक नमूना है ।

[स०—इस अध्याय में जो उपसर्ग दिये गये हैं उनमें कुछ ऐसे हैं जो कभी-कभी स्वतंत्र शब्दों के समान भी प्रयोग में आते हैं । इन्हें उपसर्गों में सम्मिलित करने का कारण केवल यह है कि जब इनका प्रयोग उपसर्गों के समान होता है तब इनके अर्थ अथवा रूप में कुछ अंतर पड़ जाता है । इस प्रकार के शब्द इति, स्वयं, सर, विन, भर, कम, आदि हैं ।]

[टी०—राजा शिवप्रसाद ने अपने हिंदी-व्याकरण में प्रत्यय, अध्यय, विभक्ति और उपसर्ग, चारों को उपसर्ग माना है; परंतु उन्होंने इसका कोई कारण नहीं लिखा और न उपसर्ग का कोई लक्षण ही दिया जिससे उनके मत की पुष्टि होती । ऐसी अवस्था में हम उनके किये वर्गोंकरण के

विषय में कुछ नहीं कह सकते । भाषा-प्रभाकर में राजा साहच के मत पर आचेप किया गया है; परंतु लेखक ने अपनी पुस्तक में संस्कृत-उपसर्गों को छोड़ और किसी भाषा के उपसर्गों का नाम तक नहीं लिया । उद्भूत-उपसर्ग तो भाषा-प्रभाकर में आ ही नहीं सकते, क्योंकि लेखक महाशय स्वयं लिखते हैं कि “हिंदी में वस्तुतः पारसी, अरबी, आदि शब्दों का प्रयोग कहाँ !” पर संबंधसूचकों की तालिका में “बदले” शब्द न जाने उन्होंने कैसे लिख दिया ? जो हो, इस विषय में कुछ कहना ही व्यर्थ है, क्योंकि उपसर्गयुक्त उद्भूत हिंदी में आते हैं । हिंदी-उपसर्गों के विषय में भाषा-प्रभाकर में केवल इतना ही लिखा है कि “स्वतंत्र हिंदी-शब्दों में उपसर्ग नहीं लगते हैं ।” इस उक्ति का खंडन इस अध्याय में दिये हुए उदाहरणों से हो जाता है । भट्टजी ने अपने व्याकरण में उपसर्गों की तालिका दी है, परंतु उनके अर्थ नहीं समझाये, यद्यपि प्रत्ययों का अर्थ उन्होंने विस्तारपूर्वक लिखा है । उन दोनों पुस्तकों में दिये हुए उपसर्ग के लक्षण न्याय-संगत नहीं जान पड़ते ।]

तीसरा अध्याय ।

संस्कृत प्रत्यय ।

(क) संस्कृत कुदंत ।

अ (कर्तृवाचक)—

चुर् (चुराना)	—चोर
दीप् (चमकना)	—दीप
नद् (शब्द करना)	—नद
सृष् (सरकना)	—सर्प
हृ (हरना)	—हर

चर् (चलना)	—चर (दूत)
दिव् (चमकना)	—देव
धृ (धरना)	—धर (पर्वत)
बुध् (जानना)	—बुध
स्मृ (चाहना)	—स्मर

प्रह (पकड़ना)—प्राह	वधू (मारना)—व्याध
रम् (क्रीड़ा करना)—राम	लभ् (पाना)—लाभ
(भावबाचक)—	
कम् (इच्छा करना)—काम	क्रध् (क्रोध करना)—क्रोध
खिद् (उदास होना)—खेद	चि (इकट्ठा करना—(सं)चय
जि (जीतना)—जय	मुह् (अचेत होना)—मोह
नी (ले जाना)—नय	रु (शब्द करना)—रथ
अक (कत्तृ वाचक)—	
कु—कारक	नृत्—नरक
गै—गायक	पू (पवित्र करना)—पायक
दा—दायक	युज् (जोड़ना)—योजक
लिख्—लेखक	तृ (तरना)—तारक
मृ (मरना)—मारक	पठ्—पाठक
नी—नायक	पच्—पाचक

अत्—इस प्रत्यय के लगाने से (संस्कृत में) वर्तमानकालिक कुदंत बनता है, परंतु उसका प्रचार हिंदी में नहीं है। तथापि जगत्, जगती, दमयती, आदि कई संज्ञाएँ मूल कुदंत हैं।

अन (कत्तृवाचक)—	
नंद (प्रसन्न होना)—नंदन	मद् (पालन होना)—नदन
रम्—रमण	श्रु—श्रवण
रु—रावण	मुह्—मोहन
सूद (मारना)—(मधु) सूदन	साध्—साधन
प—पावन	पाल्—पालन
(भावबाचक)—	
सहू—सहन	शी (सोना)—शयन

भ—भवन		स्था—स्थान
मृ—मरण		रक्ष—रक्षण
भुज—भोजन (करण-वाचक)		हु (होम करना)—हवन
नी—नयन	चर—चरण	भूष—भूषण ।
या—यान	वह—वाहन	वद—वदन

अना (भाववाचक) —

विद् (चेतना)—वेदना	रच्—रचना
घट् (होना)—घटना	तुल्—तुलना
सूच्—सूचना	प्र + अर्थ—प्रार्थना
बंद—बंदना	आ + राध्—आराधना
अव + हेल (तिरस्कार करना) —अवहेलना	गवेष् (खोजना)—गवेषणा भू—भावना

अनोय (योग्यार्थ) —

दर्श—दर्शनीय	स्मृ—स्मरणीय
रम्—रमणीय	वि + चर—विचारणीय
आ + ह—आदरणीय	मन्—माननीय
कु—करणीय	शुच्—शोचनीय
[स०—हिंदी का 'सराहनीय' शब्द इसी आदर्श पर बना है ।]	
आ (भाववाचक) —	

इष् (इच्छ) —— इच्छा कथ—कथा	गुह् (छिपना)—गुहा
पूज्—पूजा	कीढ़—कीड़ा
व्यथ्—व्यथा	शिक्ष—शिक्षा

अस् (विविध अर्थ में) —

सृ (चलना)—सरस्	वच् (बोलना)—वचस्
------------------	--------------------

तम् (खेद करना)—तमस्

तिज् (टेना)—तेजस् पय् (जाना)—पयस्

शृं (सताना)—शिरस् वस् (जाना)—वयस्

ऋ (जाना)—उरस् छंदू(प्रसन्न करना)—छंदस्

[स०—इन शब्दों के अंत का स् अथवा इसीका विसर्ग हिंदी में आनेवाले संस्कृत सामाजिक शब्दों में दिखाई देता है; ऐसे, सरसिज, तेज़:पुंज, पयोद, छंदःशाल, इत्यादि । इस कारण से हिंदी व्याकरण में इन शब्दों का नूल रूप बताना आवश्यक है । जब ये शब्द स्वतंत्र रूप से हिंदी में आते हैं तब इनका अन्त्य स् छोड़ दिया जाता है और ये सर, तम, तेज, पय, आदि अकारांत शब्दों का रूप प्रदर्शन करते हैं ।]

आलु (गुणवाचक)—

दय्—दयालु, शी (सोना)—शयालु ।

इ—(कर्तवाचक)—

ह—हरि, कु—कवि ।

इन्—इस प्रत्यय के लगाने से जो (कर्तवाचक) संहारें बनती हैं उनकी प्रथमा का एकवचन ईकारांत होता है । हिंदी में यही ईकारांत रूप प्रचलित है; इसलिए यहाँ ईकारांत ही के उदाहरण दिये जाते हैं ।

त्यज् (छोड़ना)—स्थारी । दुष् (भूलना)—दोषी । युज्—योगी । बद् (बोलना)—बादी । द्विष् (बैर करना)—द्वेषी । उप + कु—उपकारी । सम् + यम्—संयमी । सह + चर = सहचारी ।

इस्—

शुत् (चमकना)—ज्योतिस्, हु—हविस् ।

[स०—अस् प्रत्यय के नीचेवाली सूचना देखो ।)

इष्टगु—(योग्यार्थिक कर्तवाचक)—

सह—सहिष्णु । वृथ् (बढ़ना)—वर्धिष्णु ।

“स्थागु” और “विष्णु” में केवल “तु” प्रत्यय हैं; और जिष्णु में षण् प्रत्यय है। तु और षण् प्रत्यय इष्टगु के शेष भाग हैं।

उ (कर्तवाचक)—

मिछ्—मिछु । इच्छ्—इच्छु (हितेच्छु) । साध्-साधु

उक (कर्तवाचक)—

मिछ्—मिछुक, हन् (मार डालना)—घातुक ।

भू—भावुक, कम्—कामुक ।

उर् (कर्तवाचक)—

भास् (चमकना)—भासुर । भंज् (ढूटना)—भंगुर ।

उस् (विविध अर्थ में)—

चक् (कहना; देखना)—चक्षुस् । ई (जाना)—आयुस् ।

यज् (पूजा करना)—यजुस् (यजुवेद्) । वप् (उत्पन्न करना) वपुस् । घन् (शब्द करना)—घनुस् ।

सू—अस् प्रत्यय के नीचे की सूचना देखो ।]

त—इस प्रत्यय के योग से भृतकालिक कुदंत बनते हैं। हिंदी में इनका प्रचार अधिकता से है ।

गम्-गत

भ-भूत

कृ-कृत

मृ-मृत

मद्-मत्त

जन्-जात

हन्-हत

च्यु-च्युत

ख्यात-ख्यात

त्यज्-त्यक्त

श्र-श्रुत

वच्-उक्त

गुह्य-गृह्य

सिध्-सिद्ध

तृप्-तृप्त

दुष्-दुष्ट

नश्-नष्ट

हरा-हर्ष

विद्-विदित

कथ्-कथित

प्रह-प्रहीत

(अ) त के बदले कहीं-कहीं न या शु होता है ।

ली (लगना)—लीन कू (फैलाना)—कीर्ण (संकीर्ण)

जू (वृद्ध होना)—जीर्ण उदू + विज्-उद्विग्न

खिदू-खिन्न हा (छोड़ना)—हीन अदू (खाना)—अन्न

चि—चीण

(आ) किसी-किसी धातुओं में त और न दोनों प्रत्ययों के लगने से दो-दो रूप होते हैं ।

पूर्-पूरित, पूर्ण; त्रा—त्रात, त्राण ।

(ई) त के स्थान में कभी-कभी क, म, व आते हैं ।

शुष् (सूखना) शुष्क, पञ्च्-पञ्च ।

ता (त)—(कर्तृवाचक)—

मूल प्रत्यय तृ है, परंतु इस प्रत्ययबाले शब्दों की प्रथमा के पुलिंग एकवचन का रूप ताकारांत होता है; और वही रूप हिंदी में प्रचलित है। इसलिए यहाँ ताकारांत उदाहरण दिये जाते हैं ।

दा—दाता नी—नेता शु—श्रोता

चञ्च—चक्ता जि—जेता भृ—भर्ता

कु—कर्ता भुज्—भोक्ता हृ—हर्ता

[स०—इन शब्दों का खीलिंग बनाने के लिए (हिंदी में) तृ प्रत्ययांत शब्द में है लगाते हैं (अं०—२७६ इ) । जैसे, ग्रंथकर्ता, धात्री, कवयित्री ।]

तब्य (योग्यार्थक)—

कु—कर्तव्य भू—भवितव्य शा—शातव्य

दश्—द्रष्टव्य श्र—श्रोतव्य दा—दातव्य

पठ्—पठितव्य वञ्च—वक्तव्य

ति (भाववाचक)—

कु—कृति	प्री—प्रीति	शक्—शक्ति
स्मृ—स्मृति	री—रीति	स्था—स्थिति

(अ) कई-एक नकारातं और मकारातं धातुओं के अंत्याचर का लोप हो जाता है; जैसे,

मन्-मति, लण्-लति, गम्-गति, रम्-रति, यम्-यति ।

(आ) कहीं-कहीं संधि के नियमों से कुछ रूपांतर हो जाता है। युध्-युद्धि, युज्-युक्ति, सृज्-सृष्टि, दश्-दृष्टि, स्था-स्थिति ।

(इ) कहीं-कहीं ति के बदले नि आती है।
हा-हानि, ग्लै-ग्लानि ।

त्र (करणवाचक)—

नी—नेत्र, श्रु—श्रोत, पा—पात्र, शास्—शास्त्र ।
अस्—अस्त्र, शास्—शस्त्र, च्छि—चेत्र ।

(ई) किसी-किसी धातु में त्र के बदले इत्र पाया जाता है। खन्-खनित्र, पृ—पवित्र, चर्-चरित्र ।

त्रिम (निवृत्त के अर्थ में)—

कु—कृत्रिम ।

न (भाववाचक)—

यत् (उपाय करना)—यत्न	स्वप्—स्वप्न	प्रच्छ—प्रश्न
यज्—यज्ञ	याच्—याच्चा	तृष्—तृष्णा

मन् (विविध अर्थ में)—

दा—दाम	कु—कर्म	सि (बौधना)—सीमा
--------	---------	-------------------

धा—धाम	छद् (छिपाना)—छप्त	चर्—चर्म
--------	-------------------	----------

वृह्—व्रह्मा	जन्—जन्म	हि—हेम
--------------	----------	--------

[दू—ऊपर लिखे अकारातं शब्द 'मन्' प्रत्यय के न् का लोप करने

से बने हैं। हिंदी में मूल व्यंजनात् रूप का प्रचार न होने के कारण प्रथमा के एकवचन के रूप दिये गये हैं।]

मान—

यह प्रत्यय यत् के समान वर्तमानकालिक कुदंत का है। इस प्रत्यय के योग से बने हुए शब्द हिंदी में बहुधा संहा अथवा विशेषण होते हैं।

यज्—यज्मान वृत्—वर्तमान वि + रज्—विराज्मान
 विद्—विद्यमान दीप्—दीप्यमान व्वल्—जाव्वल्यमान
 [स०—इन शब्दों के अनुकरण पर हिंदी के “चलायमान” और “शोनायमान” शब्द बने हैं।]

य (योन्यार्थक)—

कृ—कार्य	त्यज्—त्याज्य	वध्—वध्य
पठ्—पाठ्य	वच्—वाच्य, वाक्य	दा—देय

ज्ञम्—ज्ञन्य	गम्—गम्य	गद् (बोलना)—गद्य
वि + धा—विधेय शास्—शिष्य		पद्—पद्य

खाद्—खाद्य	दश्—दश्य	सह्—सह्य
------------	----------	----------

या (भाववाचक)—

विद्—विद्या	चर्—चर्या	कृ—क्रिया
श्री—शाश्या	मृग्—मृग्या	सम् + अस्—समस्या

र् (गुणवाचक)—

नम्—नम्र, हिंस् (मार डालना)—हिंस्।

रु (कर्तवाचक)—

दा—दारु, मि—मेरु

वर (गुणवाचक)—

भास्—भास्वर, स्था—स्थावर, ईश्—ईश्वर, नश्—नश्वर।

स् + आ (इच्छा-बोधक)—

पा (पीना)—पिपासा कु (करना)—चिकीर्षा
ज्ञा (जानना)—जिज्ञासा कित् (चंगा करना)—चिकित्सा
लल् (इच्छा करना)—लालसा मन् (विचारना)—मीमांसा ।

[ख] संस्कृत तद्रित ।

अ (अपत्यवाचक)—

रघु—राघव	कश्यप—काश्यप	कुरु—कौरव
पाण्डु—पाण्डव	पृथा—पार्थ	सुमित्र—सौमित्र,
पर्वत—पार्वती (ऋौ०)	दुहित्—दौहित्र	वसुदेव—वासुदेव,

(गुणवाचक)—

शिव—शैव	विष्णु—वैष्णव	चंद्र—चांद्र (मास, वर्ष)
मनु—मानव	पृथिवी—पार्थिव (लिंग)	व्याकरण—वैयाकरण

(जाननेवाला) ।

निशा—नैश सूर—सौर

(भाववाचक)—

इस अर्थ में यह प्रत्यय बहुधा अकारांत, इकारांत और उकारांत शब्दों में लगता है ।

कुशल—कौशल	पुरुष—पौरुष	मुनि—मौन
शुचि—शौच	लघु—लाघव	गुरु—गौरव

अक (उसको जाननेवाला)—

मीमांसा—मीमांसक, शिक्षा—शिक्षक ।

आमह (उसका पिता)—

पितृ—पितामह, मातृ—मातामह ।

इ (उसका पुत्र)—

दशरथ—दाशरथि (राम), मरुत्—मारुति (हनुमान्) ।

इक (उसको जाननेवाला)—

तर्क—तार्किक, अलंकार—आलंकारिक, न्याय—नैयायिक,
वेद—वैदिक ।

(गुणवाचक)—

वर्ष—वार्षिक	मास—मासिक
--------------	-----------

दिन—दैनिक	लोक—लौकिक
-----------	-----------

इतिहास—ऐतिहासिक	धर्म—धार्मिक
-----------------	--------------

सेना—सैनिक	नौ—नाविक
------------	----------

मनस्—मानसिक	पुराण—पौराणिक
-------------	---------------

समाज—सामाजिक	शरीर—शारीरिक
--------------	--------------

समय—सामयिक	तत्काल—तात्कालिक
------------	------------------

धन—धनिक	अध्यात्म—आध्यात्मिक
---------	---------------------

इत (गुणवाचक)—

पुष्प—पुष्पित	फल—फलित	दुःख—दुःखित
---------------	---------	-------------

कंटक—कंटकित	कुसुम—कुसुमित	पञ्चव—पञ्चवित
-------------	---------------	---------------

हर्ष—हर्षित	आनंद—आनंदित	प्रतिविंश—प्रतिविंशित
-------------	-------------	-----------------------

इन् (कर्त्तवाचक)—

इस प्रत्ययबाले शब्दों की प्रथमा के एकवचन में न का सौप होने पर इंकारान्त रूप हो जाता है । यही रूप हिंदी में प्रचलित है; इसलिए यहाँ इसी के उदाहरण दिये जाते हैं । यह प्रत्यय बहुधा आकारांत शब्दों में लगाया जाता है ।

शास्त्र—शास्त्री	हल—हली	तरंग—तरंगिणी (ली०)
------------------	--------	----------------------

धन—धनी	अर्थ—अर्थी (विद्यार्थी)	पक्ष—पक्षी
--------	---------------------------	------------

क्रोध—क्रोधी योग—योगी सुख—सुखी
 हस्त—हस्ती पुष्कर—पुष्करिणी(खी०) दंत—दंती ।
 इन—यह प्रत्यय फल, मल और वर्हा में लगाया जाता है ।

फल—फलिन, मल—मलिन, वर्हा—वर्हिण (मोर) । वर्हिण
 शब्द का रूप वर्ही भी होता है ।

(अ) अधि—अधीन, प्राच् (पहले)—प्राचीन,
 अर्वाच (पीछे)—अर्वाचीन, सम्यच् (भली भौति)—समीचीन
 इम (गुणवाचक)—

अप्र—अप्रिम, अंत—अंतिम—पश्चात्—पश्चिम ।

इमा (भाववाचक)—

महत्—महिमा	गुरु—गरिमा	लघु—लघिमा
रक्त—रक्तिमा	अरुण—अरुणिमा	नील—नीलिमा

इय (गुणवाचक)—

यज्ञ—यज्ञिय, राष्ट्र—राष्ट्रिय, ज्ञात्र—ज्ञात्रिय ।

इल (गुणवाचक)—

तुंद—तुंदिल (हिं० तोंदल), पंक—पंकिल, जटा—जटिल, फेन—
 फेनिल ।

इष्ट (श्रेष्ठता के अर्थ में)—

बली—बलिष्ट, स्वादु—स्वादिष्ट, गुरु—गरिष्ट, श्रेयस्—श्रेष्ट ।

ईन (गुणवाचक)—

कुल—कुलीन	नव—नवीन	शाला—शालीन
-----------	---------	------------

प्राम—प्रामीण	पार—पारीण
---------------	-----------

ईय (संबंधवाचक)—

त्वत्—त्वदीय	तद्—तदीय
--------------	----------

मत्—मदीय

भवत्—भवदीय

नारद—नारदीय

पाणिनि—पाणिनीय

(अ) स्व, पर और, राजन् में इस प्रत्यय के पूर्व को आगम होता है। जैसे, स्वकीय, परकीय, राजकीय।

उल (संबंध-वाचक)—

मातृ—मातुल (मामा)।

एय (अपत्यवाचक)—

विनता—वैनतेय कुन्ती—कौन्तेय गंगा—गोगेय
भंगिनी—भागिनेय मृकङ्ग—कार्किङ्गेय राधा—राधेय

(विविध अर्थ में)—

अग्निन—आग्नेय

पुरुष—पौरुषेय

पथिन्—पाथेय

अतिथि—आतिथेय

क (ऊनवाचक)—

पुत्र—पुत्रक, बाल—बालक, पृथु—पृथुक, नौ—नौका (खी०)।

(समुदाय-वाचक)—

पंच—पंचक,

सप्त—सप्तक,

अष्ट—अष्टक।

दश—दशक

कटु (विविध अर्थ में)—

यह प्रत्यय कुछ उपसर्गों में लगाने से ये शब्द बनते हैं—
संकट, प्रकट, विकट, निकट; उत्कट।

कल्प (ऊनवाचक)—

कुमारकल्प, कविकल्प, मृतकल्प, विद्वत्कल्प।

चित् (अनिरचयवाचक)—

कचित्, कदाचित्, किञ्चित्।

ठ (कत्तृवाचक)—

कर्मन्—कर्मठ, जरा—जरठ ।

तन (काल-संबंधवाचक)—

सदा (सना)—सनातन,

नव-नूतन,

अद्य-अद्यतन ।

तस् (रीतिवाचक)

प्रथम—प्रथमतः, स्वतः, उभयतः, तत्त्वतः, अंशतः ।

त्य (संबंधवाचक)—

द्विष्णा—द्वाद्विष्णात्य

अमा—अमात्य

अत्र—अत्रत्य

पुरा—पुरातन,

प्राच्—प्राक्तन,

चिरं—चिरंतन

[स०—पाश्चिमात्य और पौरात्य शब्द इन शब्दों के अनुकरण पर हिंदी में प्रचलित हुए हैं । पर ये अशुद्ध हैं ।]

त्र (स्थानवाचक)—

यद्—यत्र, तद्—तत्र, सर्वत्र, अन्यत्र, एकत्र ।

ता (भाववाचक)—

गुह—गुहता लघु—लघुता कवि—कविता

मधुर—मधुरता सम—समता आवश्यक—आवश्यकता

नवीन—नवीनता विशेष—विशेषता ।

(समूहवाचक)—

जन—जनता, प्राम—प्रामता, बंधु—बंधुता, सहाय—

सहायता ।

“सहायता” शब्द हिंदी में केवल भाववाचक है ।

त्व (भाववाचक)—

गुरुत्व

ब्राह्मणत्व

पुरुषत्व	सतीत्व	
राजत्व	बंधुत्व	
था (रीतिवाचक)—		
तद्—तथा	यद्—यथा	
सर्वाधा	अन्यथा	
दा (कालवाचक)—		
सर्व—सर्वदा, यद्—यदा, किम्—कदा, सदा ।		
धा (प्रकारवाचक)—		
द्वि—द्विधा, शत—शतधा, बहुधा ।		
धेय (गुणवाचक)—		
नाम—नामधेय, भाग—भागधेय ।		
म (गुणवाचक)—		
मध्य—मध्यम, आदि—आदिम, अधस—अधम, हु (शाखा)—हुम ।		
मत् (गुणवाचक)—		
श्रीमान्	मतिमान्	बुद्धिमान्
आयुष्मान्	धीमान्	गोमती (स्त्री०)
‘बुद्धिमान्’ शब्द अशुद्ध है ।		
[द०—मत् (मान्) के सहश वर् (वान्) प्रत्यय है जो आगे लिखा जायगा ।]		
मय (विकार और व्याप्ति के अर्थ में)—		
काष्ठमय, विष्णुमय, जलमय, मांसमय, तेजोमय ।		
मात्र—नाममात्र; पलमात्र, लेशमात्र, च्छणमात्र ।		
मिन्—(कर्तवाचक)—		
स्व—स्वामी, वाक्—वाग्मी (वक्ता) ।		

य—(भाववाचक)—

मधुर—माधुर्य चतुर—चातुर्य पंडित—पंडित्य
बणिज—बाणिज्य स्वस्थ—स्वास्थ्य अधिपति—आधिपत्य
धीर—धीर्य वीर—वीर्य । ब्राह्मण—ब्राह्मण्य

(अपत्यवाचक, संबंधवाचक)—

शंडक—शांडिल्य पुलरित—पौलस्थ दिति—दैत्य
जमदग्नि—जामदग्न्य चतुर्मास—चातुर्मास्य (हिं० चौमासा)

धन—धान्य मूल—मूल्य तालु—तालव्य
मुख—मुख्य प्राम—प्राम्य अंत—अंत्य

र—(गुणवाचक)—

मधु—मधुर मुख—मुखर कुंज—कुंजर
नग—नगर पांडु—पांडुर

ल (गुणवाचक)—

वस—वसल शीत—शीतल श्याम—श्यामल
मंजु—मंजुल मांस—मांसल

लु (गुणवाचक)—

श्रद्धालु, दयालु, कृपालु, निद्रालु ।

व (गुणवाचक)—

केश—केशव (सुन्दर केशवाला, विष्णु), विषु (समान)—
विषुव (दिन-रात समान होने का काल वा वृत्त), राजी (रेखा)—
राजीव (रेखा में बढ़नेवाला, कमल), अर्णस् (पानी)-अर्णव
(समुद्र) ।

वत् (गुणवाचक)—

यह प्रत्यय अकारांत वा आकारांत संज्ञाओं के पश्चात् आता है ।

धनवान्, विद्यवान्, ज्ञानवान्, गुणवान्, रूपवान्, भाग्य-
वती (स्त्री०) ।

(अ) किसी-किसी सर्वनामों में इस प्रत्यय को लगाने से अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण बनते हैं ।

यद्—यावत्, तद्—तावत् ।

(आ) यह प्रत्यय “तुल्य” के अर्थ में भी आता है और इससे किया-विशेषण बनते हैं ।

मातृवत्, पितृवत्, पुत्रवत्, आत्मवत् ।

बल (गुणवाचक)—

कुषीबल, रजस्वला, (स्त्री), शिखावल (मयूर) दंतावल (हाथी) ऊर्जस्वल (बलवान्) ।

विन् (गुणवाचक)—

तपस्—तपस्वी यशस्—यशस्वी तेजस्—तेजस्वी
माया—मायावी मेधा—मेधावी

पयस्—पयत्विनी (स्त्री०, दुधार गाय)

व्य (संबंधवाचक)—

पितृव्य (काका) भ्रातृव्य (भतीजा)

श (विविध अर्थ में)—

रोम—रोमश, कर्क—कर्कश ।

शुः (रीतिवाचक)—

क्रमशः, अक्षरशः, शब्दशः, अल्पशः, कोटिशः ।

सात् (विकारवाचक)—

भस्म—भस्मसात्,

जल—जलसात्,

अग्नि—अग्निसात्,

भूमि—भूमिसात् ।

[स०—ये शब्द बहुधा होना या करना किया के साथ आते हैं ।]

[स०—हिंदी भाषा दिन-दिन बढ़ती जाती है और उसे अपनी वृद्धि के किए बहुधा संस्कृत के शब्द और उनके साथ उसके प्रत्यय-लेने की

आवश्यकता पड़ती है; इसलिए इस सूची में समय-समय पर और भी शब्दों तथा प्रत्ययों का समावेश हो सकता है। इस दृष्टि से इस अध्याय को अभी अपूर्ण ही समझना चाहिये। तथापि बत्तमान हिंदी दृष्टि से इसमें प्रायः वे सब शब्द और प्रत्यय आ गये हैं जिनका प्रचार अभी हमारी भाषा में है।]

भृद्दि—ऊपर लिखे प्रत्ययों के सिवा संस्कृत में कई एक शब्द ऐसे हैं जो समास में उपसर्ग अथवा प्रत्यय के समान प्रयुक्त होते हैं। यद्यपि इन शब्दों में स्वतंत्र अर्थी रहता है जिसके कारण इन्हें शब्द कहते हैं, तथापि इनका स्वतंत्र प्रयोग बहुत कम होता है। इसलिए इन्हें यहाँ उपसर्गों और प्रत्ययों के साथ लिखते हैं।

जिन शब्दों के पूर्व * यह चिह्न है उनका प्रयोग बहुधा प्रत्ययों ही के समान होता है।

अधीन—स्वाधीन, पराधीन, दैवाधीन, भाग्याधीन।

अंतर—देशांतर, भाषांतर, मन्वांतर, पाठांतर, अर्थांतर, रूपांतर।

अन्वित—दुःखान्वित, दोषान्वित, भयान्वित, क्रोधान्वित, मोहान्वित, लोभान्वित,

* अपह—शोकापह, दुःखापह, सुखापह, मानापह।

अध्यक्ष—दानाध्यक्ष, कोशाध्यक्ष, सभाध्यक्ष।

अतीत—कलातीत, गुणातीत, आशातीत, स्मरणातीत।

अनुरूप—गुणानुरूप, योग्यतानुरूप, मति-अनुरूप (राम०), आज्ञानुरूप।

अनुसार—कर्मानुसार, भाग्यानुसार, इच्छानुसार, समयानुसार, धर्मानुसार।

अभिमुख—दक्षिणाभिमुख, पूर्वाभिमुख, मरणाभिमुख।

अर्थ—धर्मीर्थ, संमत्यर्थ, प्रीत्यर्थ, समालोचनार्थ ।

अर्थी—धनार्थी, विद्यार्थी, शिक्षार्थी, फलार्थी, मानार्थी ।

* अहं—पूजाहं, दंडाहं, मानाहं, विचाराहं ।

आक्रांत—रोगाक्रांत, पादाक्रांत, चिंताक्रांत, जुधाक्रांत,
दुःखाक्रांत ।

आतुर—प्रेमातुर, कामातुर, चिंतातुर ।

आकुल—चिंताकुल, भयाकुल, शोकाकुल, प्रेमाकुल ।

आचार—देशाचार, पापाचार, शिष्टाचार, कुलाचार ।

आत्म—आत्म-स्तुति, आत्म-स्त्राधा, आत्म-घात, आत्म-हत्या ।

आपन—दोषापन, खेदापन, सुखापन, स्थानापन ।

* आवह—हितावह, गुणावह, फलावह, सुखावह ।

आर्त—दुःखार्त, शोकार्त, जुधार्त, तृपार्त ।

आशय—महाशय, नीचाशय, जुद्राशय, जलाशय ।

आस्पद—दोषास्पद, निंदास्पद, लज्जास्पद, हास्यास्पद ।

* आढ्य—बलाढ्य, धनाढ्य, गुणाढ्य ।

उत्तर—लोकोत्तर, भोजनोत्तर ।

* कर—प्रभाकर, दिनकर, दिवाकर, हितकर, सुखकर ।

* कार—स्वर्णकार, चर्मकार, प्रथकार, कुभकार, नाटकार ।

* कालीन—समकालीन, पूर्वकालीन, जन्मकालीन ।

* ग (गम् धातु का अंश = जाननेवाला)—

दरग, तुरग (तुरंग), विहग (विहंग), दुर्ग, खग, अग, नग ।

गत—गतवैभव, गतायु, गतश्री, मतोगत, हृषिगत, कंठगत,
व्यक्तिगत ।

* गम—तुरंगम, विहंगम, दुर्गम, सुगम, अगम, संगम,
हृदयंगम ।

गम्य—बुद्धिगम्य, विचारगम्य ।

ग्रस्त—वादग्रस्त, चिंताग्रस्त, व्याखिग्रस्त, भयग्रस्त ।

धात—विश्वासधात, प्राणधात, आशाधात ।

* झ—(हन् धातु का अंश = मारडालनेवाला)—

कुतन्न, पापन्न, शत्रुन्न, मातन्न, बातन्न ।

* चर—जलचर, निशाचर, खेचर, अनुचर ।

चिंतक—शुभचिंतक, हितचिंतक, लाभचिंतक ।

जन्य—क्रोध-जन्य, अहान-जन्य, स्पर्श-जन्य, प्रेम-जन्य ।

* ज (जन् धातु का अंश = उत्पन्न होनेवाला)—

अंडज, पिंडज, स्वेदज, जलज, बारिज, अनुज, पूर्वज, पित्तज,
जारज, द्विज ।

जाल—शब्दजाल, कर्मजाल, मायाजाल, प्रेमजाल ।

* जीवी—अमजीवी, धनजीवी, कष्टजीवी, क्षणजीवी ।

* दर्शी—दूरदर्शी, कालदर्शी, सूहमदर्शी ।

* द (दा धातु का अंश = देनेवाला)—

सुखद, जलद, धनद, बारिद, मोक्षद, नर्मदा (रु०) ।

* दायक—सुखदायक, गुणदायक, आनंददायक, मंगल-
दायक, भयदायक ।

* दायी—दायक के समान । (रु०—दायिनी ।)

* धर—महीधर, गिरधर, पयोधर, हलधर, मंगाधर, जलधर, धाराधर ।

* धार—सूत्रधार, कण्ठधार ।

धर्म—राजधर्म, कुलधर्म, सेवाधर्म, पुत्रधर्म, प्रजाधर्म, जातिधर्म ।

नाशक—कफनाशक, कुमिनाशक, धननाशक, विन्नविनाशक ।

निष्ठु—कर्मनिष्ठु, योगनिष्ठु, राजनिष्ठु, ब्रह्मनिष्ठु ।

पर—तत्पर, स्वार्थपर, धर्मपर ।

परायण—भक्ति-परायण, धर्म-परायण, स्वार्थ-परायण, प्रेम-परायण ।

बुद्धि—पारबुद्धि, पुण्यबुद्धि, धर्मबुद्धि ।

भाव—मित्रभाव, शत्रुभाव, वंशभाव, खीभाव, प्रेमभाव, कार्यकारणभाव, विष-प्रतिविष-भाव ।

भेद—पाठ-भेद, अर्थभेद, मतभेद, बुद्धिभेद ।

युत—श्रीयुत, अयुत, धर्मयुत ।

[द०—‘युत’ का ‘त’ इलांत नहीं है ।]

रहित—ज्ञानरहित, धनरहित, प्रेमरहित, भावरहित ।

रूप—बायुरूप, अग्निरूप, मायारूप, नररूप, देवरूप ।

शील—धर्मशील, सहमशील, पुण्यशील, दानशील, विचारशील, कर्मशील ।

* शाली—भास्यशाली, ऐश्वर्यशाली, बीर्यशाली ।

शून्य—ज्ञानशून्य, द्रष्टव्यशून्य, अर्थशून्य ।

शूर—कर्मशूर, दानशूर, रणशूर, आरंभशूर ।

साध्य—द्रव्यसाध्य, कष्टसाध्य, यत्नसाध्य ।

❖ स्थ (स्था धातु का अंश = रहनेवाला)—

गृहस्थ, मार्गस्थ, तटस्थ, स्वस्थ, उदरस्थ, अंतःस्थ ।

हत—हतभाग्य, हतबीर्य, हतबुद्धि, हताश ।

हर (हर्ता, हारक, हारी) = पापहर, रोगहर, दुःखहर, दोषहर्ता, दुःखहर्ता, अमहारी, तापहारी, चातहारक ।

हीन—हीनकर्म, हीनबुद्धि, हीनकुल, गुणहीन, धनहीन, मतिहीन, विद्याहीन, शक्तिहीन ।

❖ ज्ञ (ज्ञा धातु का अंश = जाननेवाला)—

शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ, सर्वज्ञ मर्मज्ञ, विज्ञ, नीतिज्ञ, विशेषज्ञ, अभिज्ञ (ज्ञाता) ।

चौथा अध्याय ।

हिंदी-प्रत्यय ।

(क) हिंदी-कृदंत ।

अ—यह प्रत्यय आकारात् धातुओं में जोड़ा जाता है और इसके योग से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

लूटना—लूट ।

मारना—मार ।

जाँचना—जाँच ।

चमकना—चमक ।

पहुँचना—पहुँच ।

समझना—समझ ।

देखना-भालना—देखभाल ।

उछलना-कूदना—उछलकूद ।

[सू.—“हिंदी-व्याकरण” में इस प्रत्यय का नाम “शून्य” लिखा गया है जिसका अर्थ यह है कि धातु में कुछ भी नहीं जोड़ा जाता और

उसीका प्रयोग भाववाचक संज्ञा के समान होता है । यथार्थ में यह बात ठीक है, पर हमने शून्य के बदले अ इसलिए लिखा है कि शून्य शब्द से होनेवाला अम दूर हो जावे । इस अ प्रत्यय के आदेश से धातु के अंत्य अ का लोप समझना चाहिये ।

(अ) किसी-किसी धातु की उपांत्य हस्त इ और उ को गुणादेश होता है; जैसे,

मिलना—मेल, हिलना-मिलना—हेलमेल, झुकना—झोक ।

(आ) कहीं-कहीं धातु के उपांत्य अ को बृद्धि होती है; जैसे

अड़ना—आड़ । लगना—लाग ।

चलना—चाल । फटना—फाट ।

बढ़ना—बढ़ ।

(इ) इसके योग से कोई-कोई विशेषण भी बनते हैं; जैसे, बढ़ना—बढ़ । घटना—घट । भरना—भर ।

(ई) इस प्रत्यय के योग से पूर्वकालिक कुदंत अव्यय बनता है; जैसे, चलना—चल । जाना—जा । देखना—देख ।

[स०—प्राचीन कविता में इस अव्यय का इकारांत रूप पाया जाता है; जैसे, देखना—देलि । फैकना—फैकि । डठना—डठि । स्वरांत धातुओं के साथ इ के स्थान में बहुधा य का आदेश होता है; जैसे, खाय, गाय ।]

अकड़ (कर्त्तवाचक)—

बूझना—बुझकड़

कूदना—कुदकड़

भूलना—भुलकड़

पीना—पियकड़

अंत (भाववाचक)—

गढ़ना—गढ़त

लिपटना—लिपटत

लड़ना—लड़त

रटना—रटत

आ—इस प्रत्यय के योग से बहुधा भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

धेरना—धेरा	फेरना—फेरा	जोड़ना—जोड़ा
झगड़ना—झगड़ा	छापना—छापा	रंगड़ना—रंगड़ा
झटकना—झटका	उतारना—उतारा	तोड़ना—तोड़ा

(अ) इस प्रत्यय के लगने के पूर्ण किसी-किसी धातु के उपांत्य स्वर में गुण होता है; जैसे,

मिलना—मेला	टूटना—टोटा	मुकना—मोका
------------	------------	------------

(आ) समास में इस प्रत्यय के योग से कई एक कर्तुवाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

(घुड़—) चढ़ा	(अँग —) रखा	(भड़—) भूँजा
(ठठ—) फोड़ा	(गँठ—) कटा	(मन—) चला
(मिठ—) बोला	ले—लेवा	दे—देवा

(इ) भूतकालिक कुदंत इसी प्रत्यय के योग से बनाये जाते हैं; जैसे,
मरना—मरा धोना—धोया खींचना—खींचा
पढ़ना—पढ़ा बनाना—बनाया बैठना—बैठा

(ई) कोई-कोई करणवाचक संज्ञाएँ; जैसे,
मूलना—मूला टेलना—टेला फाँसना—फाँसा
झारना—झारा पोतना—पोता घेरना—घेरा
आई—इस प्रत्यय से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं जिनसे (१)

क्रिया के व्यापार और (२) क्रिया के दार्मों का बोध होता है।

(१) लड़ना—लड़ाई	समाना—समाई	चढ़ना—चढ़ाई
दिखना—दिखाई	हुनना—हुनाई	पढ़ना—पढ़ाई
खुदना—खुदाई	जुतना—जुताई	सीना—सिलाई

(२) लिखाना—लिखाई पिसाना—पिसाई

लिखाना—लिखाई	पिसाना—पिसाई
धुलाना—धुलाई	धुलाना—धुलाई

[स०—‘आना’ से ‘अवाई’ और ‘जाना’ से ‘जवाई’ भाववाचक संशाएँ (किया के व्यापार के अर्थ में) बनती हैं ।]

आऊ—यह प्रत्यय किसी-किसी घातु में योग्यता के अर्थ में लगता है; जैसे,

टिकना—टिकाऊ बिकना—बिकाऊ

चलना—चलाऊ दिखना—दिखाऊ

जलना—जलाऊ गिरना—गिराऊ

(अ) किसी-किसी घातु में इस प्रत्यय का अर्थ कर्तव्यवाचक होता है; जैसे,

खाना—खाऊ उड़ाना—उड़ाऊ जुमाना—जुमाऊ

अंकु, आक, आकु, (कर्तव्यवाचक)—

उड़ना—उड़कु लड़ना—लड़कु

पैरना—पैराक तैरना—तैराक

लड़ना—लड़ाक (लड़ाका, लड़ाकु) उड़ना—उड़ाक (उड़ाकु)

आन (भाववाचक)—

उठना—उठान उड़ना—उड़ान

लगना—लगान मिलना—मिलान

चलना—चलान ।

आप (भाववाचक)—

मिलना—मिलाप जलना—जलापा

पूजना—पुजापा ।

आव (भाववाचक)—

चढ़ना—चढ़ाव बचना—बचाव

छिड़कना—छिड़काव बहना—बहाव

लगना—लगाव जमना—जमाव

पड़ना—पड़ाव घूमना—घुमाव

आवट (भाववाचक)—

लिखना—लिखावट	थकना—थकावट
रुकना—रुकावट	बनना—बनावट
सजना—सजावट	दिखना—दिखावट
लगना—लगावट	मिलना—मिलावट

कहना—कहावत ।

आवना (विशेषण)—

सुहाना—सुहावना	लुभाना—लुभावना
	डराना—डरावना ।

आवा (भाववाचक)—

छुड़ाना—छुड़ावा	भुलाना—भुलावा
छलना—छलावा	बुलाना—बुलावा
चलना—चलावा	पहिरता—पहिरावा

पछताना—पछतावा ।

आस (भाववाचक)—

पीना—प्यास	ऊंघना—ऊँधास	रोना—रोआस
------------	-------------	-----------

आहट (भाववाचक)—

चिल्लाना—चिल्लाहट	घबराना—घबराहट
गड़गड़ाना—गड़गड़ाहट	भनभनाना—भनभनाहट
गुर्दाना—गुर्दाहट	जगमगाना—जगमगाहट
[सू—यह प्रत्यय बहुधा अनुकरणवाचक शब्दों के साथ आता है, और “शब्द” के अर्थ में इसका स्वतंत्र प्रयोग भी होता है ।]	

इयल (कर्तव्यवाचक)—

अड़ना—अड़ियल	सड़ना—सड़ियल
मरना—मरियल	बढ़ना—बढ़ियल

ई (भाववाचक)—

हँसना—हँसी	कहना—कही
बोलना—बोली	मरना—मरी
धमकाना—धमकी	घुड़कना—घुड़की
(करण्वाचक)—	
रेतना—रेती	फँसना—फँसी
गाँसना—गाँसी	चिमटना—चिमटी
	टॉकना—टॉकी ।

इया (कर्त्तवाचक)—

जड़ना—जड़िया	लखना—लखिया
धुनना—धुनिया	नियारना—नियारिया ।
(गुण्वाचक)—	

बढ़ना—बढ़िया	घटना—घटिया ।
--------------	--------------

ऊ (कर्त्तवाचक)—

खाना—खाऊ	रटना—रटू
उतरना—उतारू (तैयार)	चलना चालू
विगाहना—विगाहू	मारना—मारू
काढना—काढू	लगना—लागू (मराठी)
(करण्वाचक)—भाङना—भाङू ।	

ए—यह प्रत्यय सब धातुओं में लगता है और इसके योग से अव्यय बनते हैं। इससे क्रिया की समाप्ति का बोध होता है; इसलिए इससे बने हुए शब्दों को बहुधा पूरी क्रिया-द्यातक कृदंत कहते हैं। इन अव्ययों का प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान तीनों कालों में होता है। ये अव्यय संयुक्त क्रियाओं में भी आते हैं जिनका विचार यथा-स्थान हो चुका है।

उदाह—देखे, पाये, लिये, समेटे, निकले ।

एरा (कर्तवाचक)—

कमाना—कमेरा

लटना—लुटेरा

(भाववाचक)—निषटाना—निषटेरा

बसना—बसेरा

ऐया (कर्तवाचक)—

काटना—कट्या

बचाना—बचैया

परोसना—परोसैया

भरना—भरैया

[स०—इस प्रत्यय का प्रचार प्राचीन हिंदी में अधिक है । आखु-
निक हिंदी में इसके बदले 'वैया' प्रत्यय आता है जो यथास्थान लिला
जायगा ।]

ऐत (कर्तवाचक)—

लडना—लड़त

चढना—चढ़त

फेकना—फिकैत

ओड़ा (कर्तवाचक)—

भागना—भगोड़ा

हँसना—हँसोडा (हँसोड)

चाटना—चटोरा

औता, औती (भाववाचक)—

समझाना—समझौता

मनाना—मनौती

छुड़ाना—छुड़ौती

चुकाना—चुकौता, चुकौती

कसना—कसौटी

चुनना—चुनौती (प्रेरणा०)

औना, औनी, आवनी (विविध अर्थ में)—

खेलना—खिलौना

विछाना—विछौना

ओढ़ना—उढ़ौना

पहराना—पहरौनी (पहरावनी)

छाना—छावनी

ठहरना—ठहरौनी

कहना—कहानी

(आँख) मींचना—(आँख) मिचौनी

औवल (भावबाचक)—

बूझना—बुझौवल

बनना—बनौवल

मीचना—मिचौवल

क (भावबाचक, स्थानबाचक)—

धैठना—धैठक

फाड़ना—फाटक

(कर्तवाचक)—

मारना—मारक

धालना—धालक

घोलना—घोलक

जाँचना—जाँचक

[स०—किसी-किसी अनुकरणबाचक मूल अव्यय के आगे इस प्रत्यय के योग से धातु भी बनते हैं; जैसे, खड़—खड़कना, घड़—घड़कना, तड़—तड़कना, घम—घमकना, खट—खटकना ।]

कर, के, करके—ये प्रत्यय सब धातुओं में लगते हैं और इनके योग से अव्यय बनते हैं। इन प्रत्ययों में ‘कर’ अधिक शिष्ट समझा जाता है और गद्य में बहुधा इसी का प्रयोग होता है। इन प्रत्ययों से बने हुए अव्यय पूर्णकालिक कुदंत कहलाते हैं और उनका उपयोग क्रिया-विशेषण के समान तीनों कालों में होता है। पूर्णकालिक कुदंत अव्यय का उपयोग संयुक्त क्रियाओं की रचना में होता है, जिसका वर्णन संयुक्त क्रियाओं के अध्याय में आ चुका है। उदा०—देकर, जाकर, उठके, दौड़ करके ।

[द०—किसी-किसी की सम्मति में “कर” और “करके” प्रत्यय नहीं हैं, किन्तु स्वतंत्र शब्द हैं; और कदाचित् इसी विचार से वे लोग “चलकर” शब्द को “चला कर” (अलग-अलग) लिखते हैं। यदि यह भी मान लिया जावे कि “कर” स्वतंत्र शब्द है—पर कई एक स्वतंत्र शब्द भी अपनी स्वतंत्रता त्यागकर प्रत्यय हो गये हैं—तो भी उसे अलग-अलग लिखने के लिए कोई कारण नहीं है; क्योंकि समाज में भी तो दो या अधिक शब्द एकत्र लिखे जाते हैं ।)

का (विविध अर्थ में)—छीलना—छिलका,

की (विविध अर्थ में)—फिरना—फिरकी, फूटना—फुटकी
हूबना—हुबकी ।

गी (भाववाचक)—देना—देनगी ।

त (भाववाचक)—

बचना—बचत खपना—खपत

पढ़ना—पढ़त रंगना—रंगत

ता—इस प्रत्यय के द्वारा सब धातुओं से वर्तमानकालिक कृदंत बनते हैं जिनका प्रयोग विशेषण के समान होता है और जिनमें विशेष्य के लिंग-बचन के अनुसार विकार होता है । काल-रचना में इस कृदंत का बहुत उपयोग होता है । उदाहरण आता, देखता, करता ।

ती (भाववाचक)—

बढ़ना—बढ़ती घटना—घटती चढ़ना—चढ़ती

भरना—भरती चुकना—चुकती गिनना—गिनती

झड़ना—झड़ती पाना—पावती फबना—फबती

ते—इस प्रत्यय के द्वारा सब धातुओं से अपूर्ण क्रिया-द्योतक कृदंत बनाये जाते हैं जिनका प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है । इससे बहुधा मुख्य क्रिया के समय होनेवाली घटना का बोध होता है । कभी-कभी इससे “लगातार” का अर्थ भी निकलता है; जैसे, मुझे आपको खोजते कई घंटे हो गये । उनको यहाँ रहते तीन बरस हो चुके ।

न (भाववाचक)—

चलना—चलन

मुस्क्याना—मुस्क्यान

कहना—कहन

लेना-देना—लेनदेन

खाना-पीना—खानपान व्याना—व्यान
सोना—सियन, सीबन

(करणवाचक)—

भाइना—भाइन बेलना—बेलन जमाना—जामन

[य०—(१) कभी-कभी एक ही करणवाचक शब्द कई अर्थों में आता है; जैसे भाइन = भाइने का हथियार अथवा भाइ बुधा पदार्थ (कड़ा) ।

(२) न प्रत्यय संस्कृत के अन कुदंत प्रत्यय से निकला है ।]

ना—इस प्रत्यय के योग से क्रियार्थक, कर्मवाचक और करणवाचक संज्ञाएँ बनती हैं । हिंदी में इस कुदंत से धातु का भी निर्देश करते हैं; जैसे, बोलना, लिखना, देना, खाना, इत्यादि ।

[य०—संस्कृत के अन प्रत्ययात् कुदंतों से हिंदी के कई नाप्रत्ययात् कुदंत निकले हैं; पर ऐसा भी जान पड़ता है कि संस्कृत से केवल अन प्रत्यय लेकर उसे “न” कर लिया है, क्योंकि यह प्रत्यय उद्दू शब्दों में भी लगा दिया जाता है और हिंदी के दूसरे शब्दों में भी जोड़ा जाता है; जैसे, उद्दू शब्द—‘बदल’ से बदलना, ‘गुजर’ से गुजरना, दारा से दाराना, गर्म से गर्माना । हिंदी शब्द—अलग से अलगाना, अपना से अपनाना, खाठी से लड़ियाना; रिस से रिसाना, इत्यादि ।]

(कर्मवाचक)—

खाना—खाना (भोज्य पदार्थ)—इस अर्थ में यह शब्द बहुधा मुसलमानों और उनके सहवासियों में प्रचलित है । गाना-गाना (गीत), बोलना—बोलना (बात), इत्यादि ।

(अ)—(करणवाचक)—

बेलना—बेलना

कसना—कसना

ओढ़ना—ओढ़ना

घोटना—घोटना

(आ) किसी-किसी धातुका आथ स्वर हस्त हो जाता है; जैसे,

बाँधना—बँधना छानना—छनना कूटना—कुटना

(इ)—(विशेषण)—

उड़ना (उड़नेवाला) हँसना (हँसनेवाला)

रोना (रोनेवाला, रोनीसूरत) ज़दना (चैल)

(ई)—(अधिकरणवाचक)—फिरना, रमना, पालना ।

नी—इस प्रत्यय के योग से स्त्रीलिंग कुदंत संज्ञाएँ बनती हैं ।

(अ)—भाववाचक)—

करना—करनी भरना—भरनी

कटना—कटनी बोना—बोनी

(आ)—(कर्मवाचक)—चटनी, सुंधनी, कहानी ।

(इ)—(करणवाचक)—

धौकनी, ओढ़नी, कतरनी, छननी, कुरेदनी, लेखनी, ढकनी, सुमरनी ।

(ई)—(विशेषण)—

कहनी (कहने के योग्य), सुननी (सुनने के योग्य)

बाँ—(विशेषण)—

ढालना—ढ़लबाँ

काटना—कटबाँ

पोटना—पिटबाँ

चुनना—चुनबाँ

बाला—यह प्रत्यय सब क्रियार्थक संज्ञाओं में लगता है और इसके योग से कर्तृबाचक विशेषण और संज्ञाएँ बनती हैं । इस प्रत्यय के पूर्व अंत्य आ के स्थान में ए हो जाता है; जैसे, जानेवाला, रोकनेवाला, खानेवाला, देनेवाला ।

बैया—यह प्रत्यय ऐया का पर्यायी है और “बाला” का समानार्थी है । इसका प्रयोग एकाहरी धातुओं के साथ अधिक होता है; जैसे, खबैया, गबैया, छबैया, दिबैया, रखबैया ।

सार—मिलनसार । (यह प्रत्यय उद्दृढ़ है ।)

हार—यह वाला के स्थान में कुछ धातुओं से होता है; जैसे, मरनहार, होनहार, आनहार ।

हारा—यह प्रत्यय “वाला” का पर्यायी है; पर इसका प्रचार गद्य में कम होता है ।

हा—(कर्त्तवाचक)—

काटना—कटहा, मारना—मरकहा, चराना—चरवाहा ।

(ख) हिंदी-तद्रित ।

आ—यह प्रत्यय कई एक संज्ञाओं में लगाकर विशेषण बनाते हैं; जैसे,

भूख—भूखा	व्यास—व्यासा	मैल—मैला
----------	--------------	----------

प्यार—प्यारा	ठंड—ठंडा	खार—खारा
--------------	----------	----------

(अ) कभी-कभी एक संज्ञा से दूसरी भाववाचक अथवा समुदायवाचक संज्ञा बनती है; जैसे,

जोड़—जोड़ा	चूर—चूरा	सराफ—सराफा
------------	----------	------------

बजाज—बजाजा	बोझ—बोझा
------------	----------

(आ) नाम और जातिसूचक संज्ञाओं में यह प्रत्यय अनादर अथवा दुलार के अर्थ में आता है; जैसे,

शंकर—शंकरा	ठाकुर—ठाकुरा	बलदेव—बलदेवा
------------	--------------	--------------

[स०—रामचरित-मानस तथा दूसरी पुरानी पुस्तकों की कविता में यह प्रत्यय मात्रा-न्यूनि के लिये, संज्ञाओं के अंत में लगा हुआ पाया जाता है; जैसे, हंस—हंसा, दिन—दिना, नाम—नामा]

(इ) पदार्थों की स्थूलता दिखाने के लिये पदार्थ-वाचक शब्दों के अंत्य स्वर के स्थान में इस प्रत्यय का आदेश होता

है; जैसे, लकड़ी-लकड़ा, चिमटी-चिमटा, घड़ी-घड़ा
(विनोद में) ।

[स०—यह प्रत्यय बहुधा इकारांत खीलिंग संशाओं में, पुलिंग बनाने के लिये लगाया जाता है । इसका उल्लेख लिंग-प्रकरण में किया गया है । (ही) द्वार-द्वारा; इस उदाहरण में आ के योग से अव्यय बना है ।

आँ—यह, वह, जो और कौन के परे इस प्रत्यय के योग से स्थानबाचक क्रियाविशेषण बनते हैं; जैसे, यहाँ, वहाँ, जहाँ, कहाँ, तहाँ ।

आँद (भावबाचक)—जैसे, कपड़ा—कपड़ाँद (जले कपड़े की बास), सड़ाँद, घिनाँद, मधाँद ।

आई—इस प्रत्यय के योग से विशेषणों और संशाओं से भाव-बाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

भला—भलाई	बुरा—बुराई	ढीठ—ढिठाई
चतुर—चतुराई	चिकना—चिकनाई	पंडित—पंडिताई
ठाकुर—ठकुराई	बनिया—बनियाई	

[स०—(१) इस प्रत्यय से कुछ जातिबाचक संज्ञाएँ भी बनती हैं । मिठाई, खटाई, चिकनाई, ठंडाई, आदि शब्दों से उन वस्तुओं का भी बोध होता है जिनमें यह धर्म पाया जाता है । मिठाई = पेड़ा, बर्फी, आदि । ठंडाई-भाँग ।

(२) यह प्रत्यय कभी-कभी संखृत की 'ता' प्रत्यंतांत भावबाचक संशाओं में भूल से जोड़ दिया जाता है; जैसे, नूरताई, कोमलताई, शूरताई, जड़ताई ।

(३) 'आई' प्रत्ययांत सब तदित खीलिंग है ।]

आनंद—विनोद में नामों के साथ जोड़ा जाता है—गड़बड़ा-नंद, मेड़कानंद, गोलमालानंद ।

आऊ—(गुणवाचक)—

आगे—अगाऊ घर—घराऊ

बाट—बटाऊ पंडित—पंडिताऊ

आका—अनुकरणवाचक शब्दों से इस प्रत्यय के द्वारा भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

सन—सनाका घम—घमाका सह—सहाका

भड़—भड़ाका घड़—घड़ाका

आटा—यह उपर्युक्त प्रत्यय का समानार्थी है और कुछ शब्दों में लगाया जाता है; जैसे, अर्रीटा, भर्रीटा, सर्रीटा, घट्टीटा।

आन (भाववाचक)—

घमस—घमासान ऊँचा—ऊँचान नीचा—निचान
लंबा—लंबान चौड़ा—चौड़ान

[दू० —यह प्रत्यय बहुधा परिमाणवाचक विशेषणों में लगता है ।]

आना (स्थानवाचक)—

राजपूत—राजपूताना हिंदू—हिंदुआना
तिलंगा—तिलंगाना उड़िया—उड़ियाना

सिरहाना, पैताना।

आनी—यह प्रत्यय रूपीलिंग का है। इसके प्रयोग के लिए लिंग-प्रकरण देखो।

आयत (भाववाचक)—

बहुत—बहुतायत पंच—पंचायत

तीसरा—तिसरायत; तिहायत अपना—अपनायत

आर—(अ) यह प्रत्यय संस्कृत के “कार” प्रत्यय का अप-

भंश है। उदाहरण—कुम्हार (कुंभकार), सुनार (सुबर्णकार),
लुहार, चमार, सुआर (सुपकार)।

(आ) कभी-कभी इस प्रत्यय से विशेषण बनते हैं; जैसे,
दूध—दुधार, गाँव—गाँवार।

आरी, आरा, आड़ी, ये “आर” के पर्यायी हैं और थोड़े
से शब्दों में लगते हैं; जैसे, पूजा—पुजारी, खेल—खिलाड़ी
बनिज-बनिजारा, घसियारा, भिखारी, हत्यारा, मटियारा,
कोठारी।

(अ)—(भावबाचक)—झूट—झुटकारा।

आल—(अ) इस प्रत्यय से विशेषण और संज्ञाएँ बनती
हैं; जैसे,

लाठी—लठियाल

भाठा—भठियाल

जौआला (जौ और अनाज का मिश्रण)

दया—दयाल

कृपा—कृपाल

डाढ़ी—डड़ियल

(आ) किसी-किसी शब्दों में यह प्रत्यय संस्कृत आलय का अप-
भंश है; जैसे, ससुराल (श्वशुरालय), ननिहाल, गंगाल,
घड़ियाल (घड़ी का घर), दिवाला, शिवाला, पनारा
(पनाला)।

आली—संस्कृत “आवली” का अपभंश है और समूह के
अर्थी में प्रत्युक्त होता है; जैसे, दिवाली।

आलू—झगड़ा—झगड़ालू, लाज—ज्जालू, डर—डरालू।

आवट (भावबाचक)—अमावट, महावट।

आस (भावबाचक)—

मीठा-मिठास

खट्टा—खटास

नीद—निंदास।

आसा-(विविध अर्थ में)-मुँडासा, मुँहासा ।

आहट (भाववाचक)—

कहुवा-कहुवाहट

चिकना-चिकनाहट

गरम—गरमाहट

इन-खीलिंग का प्रत्यय है । इसका प्रयोग लिंग प्रकरण में दिया गया है ।

इया-(अ) कुछ संज्ञाओं से इस प्रत्यय के द्वारा कर्तवाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

आढ़त-आढ़तिया

मक्खन-मक्खनिया

बखेड़ा-बखेड़िया

गाहर-गाहरिया मुख-मुखिया

दुख-दुखिया

रसोइ-रसोइया रसि-रसिया

(स्थानवाचक)—

मथुरा-मथुरिया

कलकत्ता-कलकत्तिया

सरवार-सरवरिया

कनौज-कनौजिया

(आ)-(ऊनवाचक)-

खाट-खटिया

फोड़ा-फुड़िया

डब्बा-डबिया

गठरी-गठरिया

आम-अँविया

बेटी-बिटिया

(इ)-(वस्त्रार्थी)-जाँधिया, अँगिया ।

(ई) ईकारांत पुलिंग और खीलिंग संज्ञाओं में अनादर अथवा दुलार के लिए यह प्रत्यय लगाते हैं; जैसे,

हरी-हरिया

तेली-तिलिया

घोबी-घुबिया

राघा-रघिया

दुगी-दुर्गिया

माई-मैया

भाई-भैया

सिपाही-सिपहिया

(उ) प्राचीन कविता के कई शब्दों में यह प्रत्यय स्वार्थ में लगा हुआ मिलता है; जैसे,

आँख-आँखिया	भाँग-भँगिया	आग-आगिया
पाँच-पैयाँ	जी-जिया	षी-पिया

ई-(अ) यह प्रत्यय कई एक संज्ञाओं में लगाने से विशेषण बनते हैं; जैसे, भार-भारी, ऊन-ऊनी, देश-देशी। इसी प्रकार जंगली, विदेशी, बैगनी, गुलाबी, बैसाखी, जहाजी, सरकारी, आदि शब्द बनते हैं। देश के नाम से जाति और भाषा के नाम भी इस प्रत्यय के योग से बनते हैं; जैसे, मारवाड़ी, बंगाली, गुजराती, बिलायती, नैपाली, पंजाबी, अरबी।

(आ) कई एक अकारांत वा आकारांत संज्ञाओं में यह प्रत्यय लगाने से ऊनबाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

पहाड़-पहाड़ी	चाट-चाटी	डोलकी	डोरी
टोकरी	रस्सी	उपलो	

(इ) कोई-कोई व्यापारवाचक संज्ञाएँ इसी प्रत्यय के योग से बनी हैं; जैसे, तेली (तेल निकालनेवाला), मालो, धोबी, तमोली।

(ई) किसी-किसी विशेषणों में यह प्रत्यय लगाकर भाववाचक संज्ञाएँ बनाते हैं; जैसे, गृहस्थ-गृहस्थी, बुद्धिमान-बुद्धिमानी, सावधान-सावधानी, चतुर-चातुरो। इस अर्थ में यह प्रत्यय उदू शब्दों में बहुतायत से आता है; जैसे, गरीब-गरीबी, नेक-नेकी, बद-बदी, सुस्त-सुस्ती।

इस प्रत्यय के और उदाहरण अगले अध्याय में दिये जायेंगे।

(उ) कुछ संख्यावाचक विशेषणों से इस प्रत्यय के द्वारा समुदाय-वाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे, बीस-बीसी, बच्चीसी, पच्चीसी।

(क) कोई-एक संज्ञाओं में भी यह प्रत्यय लगाने से भावचाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे,

चोर-चोरी खेत-खेती

किसान-किसानी महाजन-महाजनी

दलाल-दलाली डाक्टर-डाक्टरी

सवार-सवारी

“सवारी” शब्द यात्री के अर्थ में जाति-वाचक है ।

(झ) भूषणार्थक-अङ्गूष्ठी, कंठी, पहुँची, पैरी, जोभी (जीभ साक करने की सलाई), अगाढ़ी, पिछाड़ी ।

ईता—इस प्रत्यय के योग से विशेषण बनते हैं; जैसे,

रंग-रंगीला छवि-छवीला लाज-लजीला

रस-रसीला जहर-जहरीला पानी-पनीला

(अ) कोई-कोई संज्ञाएँ; जैसे, गोबर-गोबरीला ।

ईसा—मूँड-मुँडीसा, उसीसा ।

उआ—इस प्रत्यय से मङ्गुआ, गेरुआ, खारुआ, फगुआ, ठह-
लुआ, आदि विशेषण अथवा संज्ञाएँ बनती हैं ।

ऊ—इस प्रत्यय के योग से विशेषण बनते हैं—

ढाल-ढालू घर-घरू बाजार-बाजारू

पेट-पेटू गरज-गरजू भाँसा-भाँसू

नाक-नक्कू (बदनाम)

(अ) रामचरित-मानस तथा दूसरी प्राचीन कविताओं में, यह प्रत्यय संज्ञाओं में लगा हुआ पाया जाता है; जैसे, रामू, आपू, प्रतापू, लोगू, योगू, इत्यादि । “ऊ” के बदले कभी-कभी उ आता है; जैसे, आपु, पितु, मातु, रामु ।

(आ) कोई-कोई व्यक्तिवाचक तथा सम्बन्धवाचक संज्ञाओं में

यह प्रत्यय प्रेम अथवा आदर के लिये लगाया जाता है;
जैसे,

जगन्नाथ-जग्गू

श्याम-श्यामू

बचा-बच्चू

लहा-लल्लू

नन्हा-नन्हू

(इ) छोटी जाति के लोगों अथवा बचों के नामों में बहुधा यह
प्रत्यय पाया जाता है; जैसे, कल्लू, गबडू, सटरू, मुल्लू।
एँ-(क्रमवाचक)-पाँचें, सातें, आठें, नवें, दसें।

ए-कई एक आकारांत संज्ञाओं और विशेषणों में यह प्रत्यय
लगाने से अवधय बनते हैं जिनका प्रयोग संबंधसूचक अथवा
क्रियाविशेषण के समान होता है; जैसे,

सामना-सामने

धीरा-धीरे

बदला-बदले

लेखा-लेखे

तड़का-तड़के

जैसा-जैसे

पीछा-पीछे

एर-मूँह-मुँहेर, अंध-अंधेर।

एरा-(व्यापारवाचक)-

साँप-संपेरा, कौसा-कसेरा, चित्र-चितेरा, लाख-लखेरा।

(गुणवाचक)-बहुत-बहुतेरा, घन-घनेरा।

(भाववाचक)—अंध—अंधेरा।

(संबंधवाचक)—

काका-ककेरा

मामा-ममेरा

फूका-फुफेरा

चाचा-चचेरा

मौसा-मौसेरा

एड़ी (कर्तृवाचक)-भाँग-भेगेड़ी, गाँजा-गैंजेड़ी।

एली—इथ-हथेली।

एल (विविध)—फूल—फुलेल, नाक—नकेल।

ऐत (व्यवसाय-बाचक)—

लट्ठ—जठैत वरद्धा—वरछैत

वरद (विरद)—वरदैत (गवैया) भाला—भालैत

कड़खा—कड़खैत नाता—नतैत

दंगा—दंगैत डाका—डैकैत

ऐल—(गुणवाचक)—

खपरा—खपरैल दूध—दुधैल,

दौंत—दंतैल तोंद्र—तोंदैल,

ऐला—(विविध)—

बाघ—बघेला एक—अकेला मोर—मुरेला

आधा—अधेला सौत—सौतेला ।

ऐला—(गुणवाचक)—वन—वनैला, धूम—धुमेला,

मूँछ—मुँछेला ।

ओं—साकल्य और बहुत के अर्थ में; जैसे, दोनों, चारों, सैकड़ों, लाखों ।

ओट, ओटा—लंग—लँगोट, चम—चमोटा ।

ओटी—डाथ—हथौटी, सच—सचौटी, अक्षर—अक्षरौटी,

चूना—चुनौटी ।

औढ़ा (औढ़ी)—हाथ—हथौढ़ा, वरस—वरसौढ़ी ।

औती (भाववाचक)—बाप—बपौती, बूढ़ा—बुढ़ौती ।

औता (पात्र के अर्थ में)—काठ—कठौता, काजर—कजरौटा ।

ओला (ऊनवाचक)—

सौंप — सँपोला

बात — बतोला

घडा — घडोला

आौटा (उसका वज्ञा) — हिरन — हिरनौटा, चिल्ही — चिलौटा,
पहिला — पहलौटा ।

क—(अ) अव्यय से नाम; जैसे, घड — घडक, भड — भडक
धम — धमक ।

(आ) समुदायवाचक — चौक, पंचक, सप्तक, अष्टक ।

(इ) स्थार्थक — ठंड — ठंडक, ढोल — ढोलक, कहुँ — कहुँक
(कविता में) ।

कर — करके — इसे कुछ शब्दों में लगानि से क्रिया-विशेषण
बनते हैं; जैसे, खास — खासकर, विशेष — विशेषकर, बहुत
करके, क्योंकर, ।

का (स्वार्थ में) —

छोटा — छुटका

छप — छपका

(समुदाय-वाचक) — इक्का, टुक्का, चौका ।

(विविध) — मा — मैका, माटी — मटका, लाड — लडका ।

की — (उत्तराचक) — कन — कनकी, टिम — टिमकी ।

चन्द — विनोद अथवा आदर में संज्ञाओं के साथ आता है;
जैसे, गीदड़चन्द, मूसलचन्द, बामनचन्द ।

जा — भाई अथवा बहिन का बेटा; जैसे, भतीजा, भानजा ।

(क्रमवाचक) दूजा, तीजा ।

जी — आदरार्थ; जैसे, गुरुजी, पंडितजी, बाबूजी ।

टा, टी—(अनवाचक)—

रोओँ—रोंगटा

काला — कलूटा

चोर—चोटा

बहू—बहूटी

**ठो—संख्यावाचक शब्दों के साथ अनिश्चय में; जैसे, दो-ठो
चारठो, दसठो ।**

डा, डी—(ऊनवाचक)—

चाम—चमड़ा

बचड़ा—बछड़ा

दुख—दुखड़ा

मुख—मुखड़ा

टूक—टुकड़ा

लँग—लँगड़ा

टाँग—टंगड़ी

पलंग—पलँगड़ी

पँख—पँखड़ी

लाल—लालड़ी

अँत—अँतड़ी

(स्थानवाचक)—आगा—आगाही, पीछा—पिछाही ।

त—(भाववाचक)—चाह—चाहत, रंग—रंगत, मेल—

मिलत ।

ता—(विविध)—पाँयता, रायता (राई से बना) ।

ती—(भाववाचक)—कम—कमती । यह प्रत्यय यहाँ फारसी शब्द में लगा है और इस यौगिक शब्द का उपयोग कभी-कभी विशेषण के समान भी होता है ।

तना—यह, वह, जो और कौन के परे परिमाण के अर्थ में, जैसे, इतना, उतना, जितना, कितना ।

था—चार और छः से परे संख्या-कम के अर्थ में, जैसे, चौथा ; छः से छठा ।

नो—(विविध अर्थ में)—चाँद—चाँदनी, पाँव—पैंजनी,
नथ—नथनी ।

पन—(भाववाचक)—

काला—कालापन लड़का—लड़कपन

बाल—बालपन पागल—पागलपन

गँवार—गँवारपन

पा—(भाववाचक) — बूढ़ा—बुढ़ापा, रँड़—रँड़ापा, बहिन—
बहिनापा, मोटा—मोटापा ।

ब—यह, यह, जो और कौन के परे काल के अर्थ में; जैसे,
अब, तब, जब, कब ।

भगवान—आदर अथवा विनोद में; जैसे, वेद-भगवान, बंदर
भगवान (विचित्र०) ।

राम—कुछ शब्दों में आदर के लिये और कुछ में निरादर,
अथवा विनोद के लिये जोड़ा जाता है; जैसे, माताराम, पिताराम,
दूतराम, मैठकराम, गीदहराम ।

री—(ऊनवाचक)—कोठा—कोठरी, छत्ता—छतरी, बौस—
बौसुरी, मोट—मोटरी ।

ला—(गुणवाचक)—

आगे—आगला पीछे—पिछला

माँझ—मँझला धुंध—धुँधला

लाड—लाडला बाव—बावला

ली—(ऊनवाचक)—टीका—टिकली, सूप—सुपली, खाज—
खुजली, घटा—घंटाली, छफ—छफली ।

ल—(विविध)—घाव—घायल, पाँव—पायल ।

येों—यह, वह, जो और कौन के परे प्रकार के अर्थ में; जैसे, यों, त्यों, ज्यों, क्यों।

वत्—गुण-अर्थ में; दया—दयावंत, धन—धनवंत, गुण—गुणवंत, शील—शीलवंत।

वाल—यह प्रत्यय “बाला” का शेष है; जैसे,

गया—गयावाल

प्रयाग—प्रयागवाल

पङ्की—पङ्कीवाल

कोत (कोट)—कोटवाल

बाला—कर्तु—अर्थ में;

टोषी—टोषीवाला

गाढ़ी—गाढ़ीवाला

धन—धनवाला

काम—कामवाला

वाँ—(क्रमवाचक)—पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ, नवाँ, दसवाँ सौवाँ।

वा (ऊनवाचक)—वेटा—विड़वा, बच्छा—बछवा, बचा—बचवा, पुर—पुरवा।

[द० — यह प्रत्यय प्रांतिक है ।]

स—(भाववाचक)—आप—आपस, घाम—घमस ।

(क्रमवाचक)—ग्यारह—ग्यारस, बारह—बारस, तेरस, चौदस ।

सा—(प्रकारवाचक)—यह, वह, सो, जो, कौन के साथ; जैसे, ऐसा, वैसा, कैसा, जैसा, तैसा ।

(ऊनवाचक)—लालसा, अच्छासा, उड़तासा, एकसा, मरासा, ऊँचासा ।

(परिमाणवाचक)—थोड़ासा, बहुतसा, छोटासा ।

[द० — इस प्रत्यय का प्रयोग कभी-कभी संबंध-दूतक के समान होता है (अ० — २४१)] ।

सरा—(क्रमवाचक)—दूसरा, तीसरा ।

सों—(पूर्व दिनवाचक) परसों, नरसों ।

हर—(घर के अर्थ में)—खंडहर, पीहर, नैहर, कठहरा ।

हरा—(परत के अर्थ में) इकहरा, दुहरा, तिहरा, चौहरा ।

(विभिन्न अर्थ में)—ककहरा ।

(गुणवाचक)—सोना—सुनहरा, रूपा—हपहरा ।

हा—(गुणवाचक)—हज्ज—हलवाहा, पानी—पनिहा, कबीर—
कविराहा ।

हारा—यह प्रत्यय बाला का पर्यायी है, परन्तु इसका उपयोग
उसकी अपेक्षा कम होता है; जैसे, लकड़ी—लकड़हारा, पनहारा,
चुड़िहारा, मनिहारा ।

ही—(निश्चयवाचक)—कई एक सर्वनामों और क्रियाविशे-
षणों में यह प्रत्यय ई होकर मिल जाता है; जैसे, आजही, सभी,
मैंही, तुम्ही, उसी, वही, कभी, अभी, किसी, यही ।

नगर, पुर, गढ़, गाँव, नेर, मेर, वाड़ा, कोट, आदि प्रत्यय
स्थानों का नाम सूचित करते हैं; जैसे, रामनगर, शिवपुर, देवगढ़,
चिरगाँव, बीकानेर, अजमेर, रजवाड़ा, नगरकोट ।

पैंचवाँ अध्याय

उद्दू प्रत्यय

भृड़—संस्कृत और हिंदी के समान उद्दू यौगिक शब्द भी
कुदंत और तद्धित के भेद से दो प्रकार के होते हैं । ये शब्द मुख्य
करके दो भाषाओं अर्थात् फारसी और अरबी के हैं । इसलिए
इनका विवेचन अलग-अलग किया जाता है ।

(१) फारसी प्रत्यय

(क) फारसी कुदंत

आ (भाववाचक)—

आमद (आया)—

खरीद (खरोदा)—

बरदाश्त (सहा)—

दरख्वात (माँगा)—

रसीद (पहुँचा)—

आ (कत्तूवाचक)—

दान (जानना)—

रिहा (छूटनेवाला, मुक्त)।

आन (आँ)—(वर्त्मानकालिक कुदंत)—

पुर्स (पूछना)—पुर्सी (पूछता हुआ),

चस्प (चिपकाना)—

चस्पी (चिपकता हुआ)।

इन्दा (कत्तूवाचक)—

कुन (करना)—कुनिन्दा (करनेवाला),

जी (जीना)—जिन्दा (जीतनेवाला, जीता),

बाश (रहना) बाशिंदा, परिंदा (उड़ने-

वाला, पक्षी)।

[स०—हिंदी किया “बुनना” के साथ यह प्रत्यय लगाने से

चुनिदा शब्द बना है; पर यह अशुद्ध है।]

इश (भाववाचक)—

परवर (पालना)—परवरिश, कोरा (उपाय करना)—कोशिश,

नाला (रोना)—नालिश, माल (मलता)—मालिश, फरमाय (आज्ञा

देना)—फरमाइश।

ई (भावबाचक)—

रफतन (जाना)—रफतनी, आमदन (आना)—आमदनी ।

ह (भूतकालिक कुदंत)—

शुद्ध (हुआ)—शुद्ध, सुर्व (मरा)—सुर्दह, दाशत (रक्खा)—
दाशता (रक्खी हुई थी) ।

(ख) फारसी तद्दित ।

(अ) संज्ञाएँ

आ—इस प्रत्यय के द्वारा कुछ विशेषणों से भावबाचक
संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे, गरम—गरमा, सफेद—गफेदा, खराब—
खराबा ।

आनह (आना)—(हपये के अर्थ में)—

जुर्म—जुर्माना

तलब—तलबाना

नजर—नजाराना

हज—हजाना

बय (बिक्री)—बयाना

मिहनत—मिहनताना,

(विविध अर्थ में)—

दस्त—दस्ताना (हाथ का मोजा),

ई—विशेषणों में यह प्रत्यय लगाने से भावबाचक संज्ञाएँ
बनती हैं; जैसे,

खुश—खुशी

सियाह—सियाही (कालापन, मसी)

नेक—नेकी

बद—बदी

(अ) इसी प्रत्यय के द्वारा संज्ञाओं से अधिकार, गुण, स्थिति
अथवा मोल सूचित करनेवाली संज्ञाएँ बनता हैं; जैसे,

नवाब—नवाबी

फकीर—फकीरी

सौदांगर—सौदांगरी

दोस्त—दोस्ती

दुश्मन—दुश्मनी

दलाल—दलाली

मंजूर—मंजूरी

(आ) शब्दांत का 'ह' बदलकर ग हो जाता है; जैसे,

बंदह—बंदगी

रवानह—रवानगी

(इ) ज्यादह—ज्यादती ।

क (ऊनवाचक); जैसे, तोप—तुपक ।

कार—इससे कर्तृवाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे, पेश (सामने)-

पेशकार (सहायक), बद (बुरा)—बदकार (दुष्ट), काश्त (खेती)—
काश्तकार (किसान), सलाह—सलाहकार ।

[स०—हिंदी “जानकार” में यही प्रत्यय जान पड़ता है ।]

गर—(कर्तृवाचक); जैसे,

सौदा—सौदागर

कार—कारीगर

जीन—जीनगर

गार—(कर्तृवाचक)—

मदद—मददगार

खिदमत—खिदमतगार

चा अथवा डूचा (ऊनवाचक)—

बाग—बागचा अथवा बाँगीचा (हिं०—बगीचा)

गाली (कालीन = शतरंजी)—गालीचा (हिं०—गलीचा)

देग (हिं०—डेग)—देगचा (बटलोई), चमचा ।

दान (पात्रवाचक)—

कलम—कलमदान शमश (मोमबत्ती)—शमशदान

इवदान, नावदान, खानदान ।

[स०—यह प्रत्यय हिंदी शब्दों में भी लगाया जाता है और इसका

रूप बहुधा दानी हो जाता है; जैसे, पानदान, पीकदान, (पीकदानी), चायदान, मच्छिदानी, गोददानी, उगालदान ।

बान (कठबाचक)—

बाग—बागबान दर (द्वार)—दरबान

मिहर (दया) मिहरबान, मेज़बान (पाहुने का सत्कारकरनेवाला) ।

[स०—हिंदी-शब्दों में भी यह प्रत्यय लगता है; पर इसका रूप संस्कृत के अनुकरण पर बान हो जाता है; जैसे, गाड़ीबान, हाथीबान ।]

ह (विविध अर्थों में)—

हफ्त (सात)—हफ्तह (सप्ताह)

चश्म (आँख)—चश्मह दस्त (हाथ)—दस्तह (मूठ)

पेश (सामने)—पेशह रोज़—रोज़ह (उपास)

[स०—हिंदी में इके स्थान में बहुधा आ हो जाता है; जैसे, हफ्ता, पेशा ।]

भृङ (क)—नीचे लिखे शब्दों का उपयोग बहुधा प्रत्ययों के समान होता है—

नामा (चिट्ठी)—इकरारनामा, सरनामा, मुख्तारनामा ।

आब (पानी)—गुलाब, गिलाब (गिल = मिट्टी), शराब ।

(आ) विशेषण

आनह (आना)—

साल—सालाना

मर्द—मर्दीना

शाह—शाहाना

इंदा—

शर्म—शर्मिंदा,

रोज—रोजाना

जन—जनाना

‘ठायापाराना’ अशुद्ध प्रयोग है।

कार—कारिंदा ।

आवर—

जोरावर,	दिल्लावर (साहसी)
बछतावर (भाग्यवान्)	दस्तावर (रेचक)

नाक—

दर्द—दर्दनाक,	खोफ—खोफनाक ।
---------------	--------------

ई—

ईरानी	खूनी,	देहाती,	खाको,	आसमाजी
-------	-------	---------	-------	--------

इन—

रंगीन	शौकीन
नमकीत	संग (पत्थर)—संगीन (भारी)
	पोत्त (चमड़ा)—पोस्तीन

मंद—

अक्षमंद	दौलतमंद
---------	---------

दानिश (ज्ञान)—दानिशमंद

वार— उम्मीदवार (हिं०—उम्मेदवार), माहेवार, तकसीलवार, तारीखवार ।

वर—

जानवर	नामवर
-------	-------

ताक्तवर	हिमतवर
---------	--------

ईना—

कम—कमीना	माह (चंद्रमा)—महीना
----------	-----------------------

पश्च—पश्मीना (ऊनी कपड़ा)

जादह (उत्पन्न हुआ)—शाहजादा, हरामजादा ।

४३८—संज्ञाओं में कुछ कुदंत जोड़ने से दूसरी संज्ञाएँ और

विशेषण बतते हैं। ये यथार्थ में समाप्त हैं; पर सुभीते के कारण यहाँ लिखे जाते हैं।

अंदाज़ (फेंकनेवाला) —

बर्क (विजली)—बर्कदाज़ (सिपाही), तीर-तीरदाज़, गोला (हिं०)—गोलंदाज़, दस्तंदाज़ ।

आवेज़ (लटकानेवाला) —दस्तावेज़ (हाथ का कामज़ जिससे सहारा मिलता है) ।

कुनौं (करनेवाला)—कारकुन, नसीहतकुन ।

खोर (खानेवाला) —हलालखोर (भंगी), हरामखोर, सूद-खोर, चुगुन्नखोर ।

गीर (पकड़नेवाला) —राहगीर (बटोही), जहाँगीर (जगत-प्राही), दस्तगीर (सहायक) ।

दान (जाननेवाला) —

कारदान, कदरदान, हिसाबदान ।

[स०—अंतिम न का उचारण बहुधा अनुनासिक होता है; जैसे, कदरदान ।]

दार (रखनेवाला) —

जमींदार

दूकानदार

चोबदार

तरहदार

फौजदार

मालदार

[स०—यह प्रत्यय हिंदी शब्दों में भी लगा दुआ मिलता है; जैसे, चमकदार, नातेदार, धानेदार, फलदार, रसदार, 'खरीदार' में 'खरीद' शब्द के 'द' का लोप होता है पर कोई-कोई लेखक इसे 'भूल' से 'खरीद-दार' लिखते हैं ।

नुमा (दिखानेवाला)—

कुतुबनुमा किशलानुमा

किश्तीनुमा (नाव के आकार का)

नवीस (लिखनेवाला)—

अरजीनवीस स्याहनवीस

बासिलबाकीनवीस चिटनवीस

नशीन (बैठनेवाला)—तख्तनशीन, परदानशीन ।

बंद (बाँधनेवाला)—

नालबंद, कमरबंद, इज़ारबंद, बिस्तरबंद ।

[स० — हिंदी-शब्दों में भी यह प्रत्यय पाया जाता है; जैसे, हथियार-
बंद, गलाबंद, नाकेबंदी ।]

**पोश (पहिनेवाला, छुपानेवाला)—जीनपोश, पापोश
(जूता), सरपोश (ढक्कन), सकेदपोश (सभ्य) ।**

साज (बनानेवाला)—जालसाज, जीनसाज, घड़ीसाज

[स० — पिछले उदाहरण में 'घड़ी' हिंदी है ।]

बर (लेनेवाला)—

**पैगाम (पैगाम = संदेशा)—पैगंबर (ईश्वर-दूत), दिल-दिलबर
(प्रेमी) ।**

बरदार (चढ़ानेवाला)—

बाज (खेलनेवाला; प्रेम करनेवाला)—

दशाबाज, नशेबाज, शतरंजबाज

[स० — यह प्रत्यय बहुधा हिंदी-शब्दों में भी लगा दिया जाता है;
जैसे, ठड्डेबाज, धोखेबाज, चालबाज ।]

बीन (देखनेवाला)—

खुर्द (छोटा)—खुर्दबीन, दूरबीन, तमाशबीन ।

माल (मलनेवाला, पॉछनेवाला)—

रू (मुँह)—रूमाल, दस्तमाल ।

धड़—संज्ञाओं में नीचे लिखे शब्दों और प्रत्ययों को जोड़ने से स्थानवाचक संज्ञाएँ बनती हैं—

आवाद (बसा हुआ)—

हैदराबाद इलाहाबाद अहमदाबाद शाहजहानाबाद

खाना (स्थान)—

कारखाना

दौलखाना

कैदखाना

गाह—

ईदगाह, शिकारगाह, बंदरगाह, चरागाह, दरगाह ।

इस्तान—

अरबिस्तान

अफगानिस्तान

तुर्किस्तान

हिंदुस्तान

कत्रिस्तान

[स०—फारसी का “इस्तान” प्रत्यय रूप और अर्थ में संतुलत के “स्थान” शब्द के सदृश होने के कारण, हिंदी शब्दों के साथ बहुधा “स्थान” ही का प्रयोग करते हैं; जैसे, हिंदुस्थान, राजस्थान ।]

शन—गुलशन (बाग)

जार—गुलजार (पुष्प-स्थान) । (हिंदी में गुलजार शब्द का अर्थ बहुधा “रमणीय” होता है ।) बाजार (अबा = भोजन)

बार—दरबार, जंगबार (जंजीरार)

सार—शर्मसार, खाकसार (खाक = धूत) ।

[६०—कारसी समासों के उदाहरण आगे समास प्रकरण में दिये जायेगे ।]

(२) अरबी प्रत्यय ।

(क) अरबी कुदंत ।

४४०—अरबी के प्रायः सभी शब्द किसी न किसी धातु से बने हुए होते हैं और अधिकांश धातु त्रिवर्ण रहते हैं । कुछ धातु चार वर्णों के और कुछ पाँच वर्णों के भी होते हैं । धातुओं के अक्षरों के मान (वजन) के अन्वर सब कुदंतों में पाये जाते हैं और वे मूलाक्षर कहाते हैं । इन मूलाक्षरों के सिवा कुछ और भी अन्वर कुदंतों की रचना में प्रयुक्त हाते हैं जिन्हें अधिकाक्षर कहते हैं । ये अधिकाक्षर सात हैं—आ, त, स, म, न, ظ, ي और इन्हें स्मरण रखने के लिये इनसे “अतसमनूय” शब्द बना लिया गया है । एक धातु से बने हुए सभी कुदंत हिंदी में नहीं आते; और जो आते हैं उनमें भी बहुधा उच्चारण को सुगमता के लिए रूपांतर कर लिया जाता है ।

अरबी में धातुओं और कुदंतों के संपूर्ण रूप बजन अर्थात् नमूने पर बनाये जाते हैं; और क, ا, ل, م, ن, ظ, ي को मूलाक्षर मानकर इन्हों से सब प्रकार के बजन बनाते हैं । ج, ب, ك, م, ن, و, ي कभी चार या पाँच मूलाक्षरों का काम पढ़ता है तब ल को दो बातीन बार काम में लाते हैं ।

४४० (क)—त्रिवर्ण धातु के मूल रूप से कई एक कियार्थक संज्ञाएँ बनती हैं । इनमें से जो हिंदी में प्रचलित हैं उनके बजन और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

नं०	बजने	उदाहरण
१	फञ्चल	कर्त्ता = मार डालना
२	फिञ्चल	इलम = जानना
३	फुञ्चल	हुक्म = आङ्गा देना
४	फञ्चल	तलब = खोजना
५	फञ्चलत	रहमत = दया करना
६	फिञ्चलत	खिदूमत = सेवा करना
७	फुञ्चलत	कुद्रत = योग्य होना
८	फञ्चलत	हरकत = चलना
९	फइलत	सरिका = चोरी
१०	फञ्चला	दञ्चवा (दावा) = हक
११	फआल	सलाम = कुशल होना,
१२	फिआल	कियाम = ठहरना
१३	कुआल	सुवाल = पूछना
१४	फऊल	कबूल = स्वीकार
१५	कुऊल	जुहर = रूप
१६	फञ्चलान	दबरान = संचार
१७	फआलत	बगावत = बलवा
१८	फिआलत	किताबत = लिखना
१९	फऊलत	जरूरत = आवश्यकता
२०	मफञ्चलत	मरहमत = दया

[स०—(१) एक ही धातु से ऊपर लिखे सब बजनों के शब्द अद्यतन नहीं होते; किसी-किसी से दो या तीन, और किसी-किसी से केवल एक ही बजन बनता है ।

(२) जिन क्रियार्थक, संशाओं के अंत में त रहता है ऐसे बहुचा-

दूसरी क्रियार्थक संज्ञाओं में इस प्रत्यय के जोड़ने से बनती हैं; जैसे, रहम=रहमत ।]

कुदंत-विशेषण ।

४४१—दूसरे मुख्य व्युत्पन्न शब्द कुदंत-विशेषण हैं। अधिक प्रचलित शब्दों के बजन ये हैं—

(१) काइल—अपूर्ण कुदंत अथवा कर्तृवाचक संज्ञा; जैसे, आलिम = विद्वान् (अलम = ज्ञानना से), हाकिम = अधिकारी (हकम = न्याय करना से), गाफिल = भूलनेवाला (गफल = भूलना से) ।

(२) मफ्झल—भूतकालिक (कर्मवाचक) कुदंत; जैसे, मअलूम = जाना हुआ (अलम = जानना से), मन्जूर = स्वीकृत (नजर = देखना से), मशहूर = प्रसिद्ध, (शहर = प्रसिद्ध करना से) ।

(३) फईल—इस रूप से गुण की स्थिरता अथवा अधिकता का वोध होता है; जैसे, हकीम = साधु, वैद्य (हकम = न्याय करना से), रहीम = बड़ा दंयालु (रहम = दया करने से) ।

[स०—ऊपर लिखे तीनों बजनों के शब्द बहुधा संज्ञा के समान प्रयुक्त होते हैं]

(४) फ़क़ल—इसका अर्थ तीसरे रूप के समान है; जैसे, गफूर = अधिक लमाशील (गफज = लमा करने से), जरूर = आवश्यक (जरूर = सताना से) ।

(५) अफ़अल—इस बजन पर त्रिवर्ण कुदंत विशेषण से उत्कर्ष-बोधक विशेषण बनते हैं; जैसे, अकवर = बहुत बड़ा (कबीर = बड़ा से), अहमद = परम प्रशंसनीय (हमीद = प्रशंसनीय से) ।

(६) कश्चाल—इस नमूने पर व्यापार की कर्तव्याचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे, जल्लाद, (जलद = कोड़ा मारना), सराफ (सरफ = बदलना, हिं० — सराफ), बज्जाज (हिं० — बजाज), बक्काल ।

४४२—त्रिवणु धातुओं से क्रियार्थक संज्ञाओं के और भी रूप बनते हैं जिनमें दो वा अधिक अधिकाक्षर आते हैं । मूल क्रियार्थक संज्ञाओं के अनुरूप इन क्रियार्थक संज्ञाओं से भी कर्तव्याचक और कर्मवाचक विशेषण बनते हैं । दानों के मुख्य साँचे नीचे दिये जाते हैं ।

(क) क्रियार्थक संज्ञाओं के अन्य रूप ।

(१) तकरील—जैसे, तअलीम = शिक्षा (अलम = जानना से, हिं० — तालीम), तहसील = प्राप्ति (हसल = पाना से) ।

(२) मुकाबलत—मुकाबला = सामना (कबल = सामने होना से), मुआमला = विषय, उद्योग (अमल = अधिकार चलाना से) ।

(३) इक्काल—इन्कार = नाहीं (नकर = न जानना से), इनसाफ = न्याय (नसफ = न्याय करना से) ।

(४) तकल्लूज—जैसे, तअल्लुक = संवंध (अलक = आसरा करना से), तखल्लुस = उपनाम (खल्लस = रचित होना से), तकल्लुफ (कलफ = आदर करना से) ।

(५) इस्तिक्काल—जैसे, इम्तिहान = परीक्षा (महन = परीक्षा करना से), ऐतराज = आपत्ति (अरज = आगे रखना से), ऐतवार = विश्वास (अवर = विश्वास करना से) ।

(६) इस्तिफ्काल—इस्तिभाल = उपयोग (अमल = काम में लाना से), इसातमरार = स्थरता (मर = होता रहना से) ।

(ख) क्रियार्थक विशेषणों के अन्य रूप ।

कर्तव्याचक और कर्मवाचक विशेषणों के बजन नीचे लिखे

जाते हैं। इनके रूपों में यह अंतर है कि पहले के अंत्यान्तर में ह और दूसरे के अंत्यान्तर में अ रहता है—

कर्तृवाचक विशेषण का बजन	उदाहरण	कर्मवाचक विशेषण का बजन	उदाहरण
१. मुकाइल	मुआङ्गम = शिक्षक (‘इलम’ से)	मुफ्रश्वल	मुञ्जङ्गम=शिष्य
२. मुकाइल	मुहाफ़िज़ = रक्खक (‘हिफ़ज़’ से)	मुफाअल	मुहाफ़ज़=रक्षित
३. मुक्कल	मुनसफ़ = न्यायाधीश (‘नसफ़’ से)	मुक्कल	मुनसफ़=न्याय पानेवाला
४. मुत्काइल	मुत्त्वाइल = बदलनेवाला (‘बदल’ से)	मुतफ्रश्वल	मुत्त्वाइल=बदला हुआ
५. मुन्साइल	मुन्सारेम = शासक (‘सरम’ से)	मुन्फ्रश्ल	मुन्सरम=शासित
६. मुत्काइल	मुत्त्वातिर = लगातार (‘वतर’ से)	मुत्काअल	मुत्त्वातर=निर्विघ्न
७. मुस्तक्कहल	मुस्तक्कविल = भविष्य (‘कवल’ से)	मुस्तफ्रश्ल	मुस्तक्कवल=चित्र

स्थानवाचक और कालवाचक संज्ञाएँ ।

४४२—स्थानवाचक और कालवाचक संज्ञाएँ बहुधा मफ्रश्वल या मफ्रूल के बजन पर होती हैं और उनके आदि में म अवश्य रहता है; जैसे, मक्तव = वह स्थान जिसमें लिखना सिखाया जाता है। (कतव = लिखना से); मक्तल = कतल करने की जगह (कतल = मार डालना से); मजलिस = वह स्थान जहाँ अथवा वह समय जब कई लोग बैठते हैं (जलस = बैठना से); मस्जिद = पूजा की जगह (सजद = पूजा करना से); मंजिल = पढ़ाव (नजल = उतरना से) ।

[८०—स्थानवाचक संज्ञाओं में कभी-कभी ह जोड़ दिया जाता है; जैसे, मक्कवरह, मद्रसह ।]

(ख) अरबी तद्वित ।

आनी—इस प्रत्यय के योग से विशेषण बनते हैं; जैसे, जिसम (शरीर)—जिसमानी (शारीरिक), रुद (आत्मा)—रुदानी (आत्मिक) ।

इयत—(भाववाचक); जैसे; इंसान (मनुष्य)—इंसानियत (मनुष्यत्व), कैक (कैसे ?)—कैकियत, मा (क्या ?)—माहियत (मूल) ।

ई—(गुणवाचक); जैसे, इल्म—इल्मी, अरब-अरबी, ईसा—ईसवी, इंसान—इंसानी ।

ची—इस तुर्की प्रत्यय से व्यापारवाचक संज्ञाएँ बनती हैं; जैसे, मशालची (हिं०—मशालची), तबलची, खजानची, बाबर (विश्वास)—बाबरची (रसोइया) ।

म—इस तुर्की प्रत्यय से कुछ खीलिंग संज्ञाएँ बनाई जाती हैं; जैसे, बेग—बेगम, खान—खानम ।

४४४—अरबी में समास के लिये दो संज्ञाओं के बीच में उल् (का) संबंध-सूचक रख देते हैं और भेद्य को भेदक के पहले लाते हैं; जैसे, जलाल (प्रभुत्व)+उल्+दीन (धर्म)=जलालु-दीन (धर्म-प्रभुत्व) । इस उदाहरण में उल् का अंत्य ल् अरबी भाषा की संधि के अनुसार द् होकर “दीन” के आद्य “द्” में मिल गया है । इसी प्रकार दार (घर)+उल्+सल्तनत (राज्य) = दारसल्तनत (राजधानी); हबीब (मित्र)+उल्+अल्लाह (ईश्वर)=हबीबुल्लाह (ईश्वर-मित्र); निजामुल्-मुल्क (राज्य-व्यवस्थापक) ।

(क)—बलद (अप० बलद = पुत्र) दो हिंदी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के बीच में पिता-पुत्र का संबंध बताने के लिए आता है; जैसे, मोहन बलद सोहन (सोहन का पुत्र मोहन) । यह कानूनी हिंदी का एक उदाहरण है ।

छठा अध्याय ।

समास ।

४४५—दो या अधिक शब्दों का परस्पर संबंध बतानेवाले शब्दों अथवा प्रत्ययों का लोप होने पर उन दो या अधिक शब्दों से जो एक स्वतंत्र शब्द बनता है, उस शब्द को सामासिक शब्द कहते हैं और उन दो या अधिक शब्दों का जो संयोग होता है वह समास कहलाता है । उदा०—प्रेमसागर अर्थात् प्रेम का समुद्र । इस उदाहरण में प्रेम और सागर, इन दो शब्दों का परस्पर संबंध बतानेवाले संबंधकारक के 'का' प्रत्यय का लोप होने से 'प्रेमसागर' एक स्वतंत्र शब्द बना है; इसलिए 'प्रेमसागर' सामासिक शब्द है और इस शब्द में प्रेम और सागर, इन दो शब्दों का संयोग है; इसलिये इस संयोग को समास कहते हैं ।

समास के और उदाहरण—रसोईघर, राजकुमार, कालीमित्र, मिठबोला ।

[य०—दथपि “समास” शब्द का मूल अर्थ वही है जो ऊपर दिया गया है, तथापि वह सामासिक शब्द के अर्थ में भी आता है और इस पुस्तक में भी कहीं-कहीं यह अर्थ लिया गया है ।]

४४६—जब दो या अधिक शब्द इस प्रकार जोड़ जाते हैं तब उनमें संधि के नियमों का प्रयोग होता है । संस्कृत शब्दों में संधि

अवश्य होती है, पर हिंदी और दूसरी भाषाओं के शब्दों में बहुधा नहीं होती ।

उदाह—राम + अवतार = रामावतार, पत्र + उत्तर = पत्रोत्तर, मनस् + योग = मनोयोग । वयस् + वृद्ध = वयोवृद्ध । परंतु घर + आँगन = घर-आँगन, राम + आसरे = राम-आसरे । वे + ईमान = वेईमान ही रहता है ।

[स०—छोटे-छोटे और साधारण सामासिक शब्द बहुधा दूसरे से मिलाकर लिखे जाते हैं, पर वहें-वहें और असाधारण सामासिक शब्द योजक चिन्ह के द्वारा, जो अँगरेजी के 'हाइफन' का अनुकरण है, मिलाये जाते हैं; जैसे, (१) रामपुर, धूपघड़ी, स्त्रीशिर्जा, आसपास, रसोईधर, कैदखाना (२) चित्रन-चना, नाटक-शाला, पथ-प्रदर्शक, सात-समुर, भला-चंगा । कभी-कभी संस्कृत के ऐसे सामासिक शब्द भी जो संधि के नियमों से मिल सकते हैं, केवल योजक (हाइफन) के द्वारा मिलाये जाते हैं; जैसे, बल-आभूपय, मत-एकता, हरिन-चन्दा । कविता में यह बात विशेष रूप से पाई जाती है; जैसे,

“पराधीन-सम दीन कुम्रद मुद-हीन हुए हैं;

पर-उच्चति को देख शोक में लीन हुए हैं ।—सर० ।]

भृष्ट—सामासिक शब्दों का संबंध ठ्यक्क कर दिखाने की रीति को विग्रह कहते हैं । “धन-संपन्न” समास का विग्रह “धन से संपन्न” है, जिससे जान पढ़ता है कि “धन” और “संपन्न” शब्द करण-कारक से संबद्ध हैं । इसी प्रकार जाति-भेद, चंद्रमुख, और त्रिभुज शब्दों का विग्रह यथाक्रम “जाति का भेद”, “चंद्र के समान मुख” और “तीन हैं भुज जिसमें” है ।

भृष्ट—किसी भी सामासिक शब्द में विभक्ति लगाने का प्रयोजन हो तो उसे समास के अंतिम शब्द में जोड़ते हैं; जैसे, मावाप से, राजकुल में, भाई-बहिनों को ।

[स०—(१) संस्कृत में इस नियम का एक भी अधिकाद नहीं है; परंतु हिंदी के किसी-किसी द्वंद्व समास में उपात्य आकारात्* शब्द विकृत रूप में आता है; जैसे, भले-नुरे से, छोटे-बड़ों ने, लड़के-बच्चे को। इस विषय का और विवेचन द्वंद्व-समास के प्रकरण में मिलेगा ।

(२) हिंदी में संस्कृत सामासिक शब्दों का प्रचार साधारण है; पर आजकल यह प्रचार बहु रहा है । दूसरी भाषाओं और शिशु कर अँग-रेजी के विचारों को हिंदी में व्यक्त करने के लिए संस्कृत के सामासिक शब्दों का उपयोग करने में सुभीता है, जिससे इस प्रकार के बहुत से शब्द आजकल हिंदी में प्रयुक्त होने लगे हैं । निरे हिंदी सामासिक शब्द बहुत कम मिलते हैं और वे बहुधा दोही शब्दों से बने रहते हैं । संस्कृत-समास बहुधा लबे होते हैं और कोई-कोई लेखक अथवा कवि आम ह-पूर्वक लंबे-लंबे समासों का उपयोग करने में अपनी कुशलता समझते हैं । “जनमनमंजु-मुकुर-मल-हरनी” (राम०) हिंदी में प्रचलित एक सबसे बड़े समास का उदाहरण है; पर इस प्रकार के समासों के लिए हिंदी की स्वाभाविक प्रहृति नहीं है । हमारी भाषा में तो दो अथवा अधिक से अधिक तीन शब्दों ही के समास उचित और मधुर जान पढ़ते हैं ।]

४४६—समासों के मुख्य चार भेद हैं । जिन दो शब्दों में समास होता है उनको प्रधानता अथवा अप्रधानता के विभाग-तत्त्व पर ये भेद किये गये हैं ।

जिस समास में पहला शब्द प्रायः प्रधान होता है उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं । जिस समास में दूसरा शब्द प्रधान रहता है उसे तत्पुरुष कहते हैं । जिसमें दोनों पद प्रधान होते हैं वह द्वंद्व कहलाता है । और जिसमें कोई भी शब्द प्रधान नहीं होता उसे बहुत्रोहि कहते हैं ।

* अंक—३१० और आगे देखो ।

इन चार मुख्य भेदों के कई उपभेद भी हैं जो न्यूनाधिक महत्व के हैं। इन सबका विवेचन आगे यथास्थान किया जायगा ।

अव्ययीभाव ।

४५०—जिस समास में पहला शब्द प्रधान होता है और जो समूचा शब्द किया-विशेषण अव्यय होता है, उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं; जैसे, यथाविधि, प्रतिदिन, भरसक ।

[४०—संस्कृत में अव्ययीभाव-समास का पहला शब्द अव्यय होता है और दूसरा शब्द संज्ञा अथवा विशेषण रहता है । पर हिंदी में इस समास के उदाहरणों में पहले अव्यय के बदले बहुधा संज्ञा ही पाई जाती है । यह बात आगे अं० ४५२ में स्पष्ट होगी ।]

४५१—(अ) जिन समासों में यथा (अनुसार), आ (तक), प्रति (प्रत्येक), यावत् (तक) वि (विना) पहले आते हैं; ऐसे, संस्कृत अव्ययीभाव-समास हिंदी में बहुधा आते हैं; जैसे,

यथाविधि	आजन्म
यथास्थान	आमरण
यथाक्रम	यावज्जीवन
यथासंभव	प्रतिदिन
यथाशक्ति	प्रतिमास
यथासाध्य	व्यर्थी

(आ) अचि (नेत्र) शब्द अव्ययीभाव-समास के अंत में अच हो जाता है; जैसे, प्रत्यक्ष (आँख के आगे), समच (सामने), परोक्ष (आँख के पीछे, पीठ-पीछे) ।

४५२—हिंदी में संस्कृत पद्धति के निरे (हिंदी) अव्ययीभाव समास बहुत ही कम पाये जाते हैं । इस प्रकार के जो शब्द हिंदी में प्रचलित हैं वे तीन प्रकार के हैं ।

(अ) हिंदी—जैसे, निढर, निष्ठुडक, भरपेट, भरदौड़, अनजाने ।

(आ) उदू अर्थात् फारसी अथवा अरबी; जैसे, हररोज, हरसाल, बेशक, बेकायदा, बर्जिस, बखूबी, नाहक ।

(इ) मिश्रित अर्थात् भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्दों के मेल से बने हुए; जैसे, हरघड़ी, हरदिन, बेकाम, बेखटके ।

[त० — ऊपर के उदाहरणों में जो “हर” शब्द आया है, वह यथार्थ में विशेषण है; इसलिये उसके योग से बने हुए शब्दों को कर्मधारय मानने का अनुमति हो सकता है । पर इन समस्त शब्दों का उपयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है; इसलिए इन्हें अव्ययीभाव ही मानना चाहिए ।]

४४३—प्रतिदिन, प्रतिवर्ष इत्यादि संस्कृत अव्ययीभाव-समासों के विप्रह (उदा० — दिने दिने प्रतिदिनम्) पर ध्यान करने से जाना जाता है कि यद्यपि प्रति शब्द का अर्थ प्रत्येक है तो भी वह अगली संज्ञा की द्विरुक्ति मिटाने के लिए लाया जाता है । पर हिंदी में प्रति का उपयोग न कर अगली संज्ञा की ही द्विरुक्ति करके अव्ययीभाव-समास बनाते हैं । इस समास में हिंदी का प्रथम शब्द बहुधा विकृत रूप में आता है । उदा० — घरघर, हाथोहाथ, पलपल, दिनोदिन, रातोरात, कोठेकोठे, इत्यादि ।

(अ) पुश्तानपुश्त, साल-दरसाल आदि शब्दों में दर (फारसी) और आन (सं०—अनु) अव्ययों का प्रयोग हुआ है । ये शब्द भी अव्ययीभाव समास के उदाहरण हैं ।

(आ) कभी-कभी द्विरुक्त शब्दों के बीच में ही वा ही अथवा आ आता है; जैसे, मनहीं-मन, घरहीं-घर, आपहो-आप, मुँहा-मुँह, सरासर (पूर्णतया), एकाएक ।

[त० — ऊपर लिखे शब्दों का उपयोग संशाल्पों और विशेषणों के

समान भी होता है; जैसे, कौड़ी-कौड़ी जोड़कर, उसकी नस-नस में ऐर भरा है, “तिल-तिल भूमि जीत यवनों के कर से” (सर०) । ये समास कर्मधारय हैं ।]

४५४—संज्ञाओं के समान अव्ययों की द्विरुक्ति से भी अव्ययीभाव समास होता है; जैसे, बीचोंबीच, घड़ाघड़, पहले-पहल, बराबर, धोरे-धीरे ।

तत्पुरुष ।

४५५—जिस समास में दूसरा शब्द प्रधान होता है उसे तत्पुरुष कहते हैं । इस समास में पहला शब्द बहुधा संज्ञा अथवा विशेषण होता है और इसके विप्रह में इस शब्द के साथ कर्ता और संबोधन कारकों को छोड़ शेष कारकों का विभक्तियाँ लगती हैं ।

४५६—तत्पुरुष-समास के मुख्य दो भेद हैं, एक व्यधिकरण तत्पुरुष और दूसरा समानाधिकरण तत्पुरुष । जिस तत्पुरुष-समास के विप्रह में उसके अव्ययों में भिन्न-भिन्न विभक्तियाँ लगाई जाती हैं उसे व्यधिकरण तत्पुरुष कहते हैं । व्याकरण की पुस्तकों में तत्पुरुष के नाम से जिस समास का वर्णन रहता है वह यही व्यधिकरण तत्पुरुष है । समानाधिकरण तत्पुरुष के विप्रह में उसके दोनों शब्दों में एकही विभक्ति लगती है । समानाधिकरण तत्पुरुष का प्रचलित नाम कर्मधारय है और यह कोई अलग समास नहीं है, किंतु तत्पुरुष का केवल एक उपभेद है ।

४५७—व्यधिकरण तत्पुरुष के प्रथम शब्द में जिस विभक्ति का लोप होता है उसी के कारक के अनुसार इस समास का नाम*

* संस्कृत में विभक्ति ही का नाम दिया जाता है; जैसे, द्वितीया-तत्पुरुष, चतुर्थी-तत्पुरुष, षष्ठी-तत्पुरुष, इत्यादि ।

होता है। यह समास नीचे लिखे विभागों में विभक्त हो सकता है—

कर्म-तत्पुरुष (संस्कृत-उदाहरण)—

स्वर्गप्राप्त, जलपिपासु, आशातीत (आशा को लौटकर गया हुआ), देशन्यत ।

करण तत्पुरुष—

(संस्कृत) ईश्वरदत्त, तुलसीकृत, भक्तिवश, मदांध, कष्टसाध्य, गुणहीन, शाराहृत, अकालपीडित, इत्यादि ।

(हिंदी) मनमाना, गुहमरा, दईमारा, कपहङ्कृत, मुँहमौंगा, दुरुना, मदमाता, इत्यादि ।

(उर्दू) دستکاری، پیادہ مہاں، ہند را باد ।

संप्रदान-तत्पुरुष—(संस्कृत) कृष्णार्पण, देशभक्ति, बलिपशु रण-नियंत्रण, विद्यागृह, इत्यादि ।

(हिंदी) रसोईघर, घुडबच, ठकुर-सुहाती, हथकड़ी, रोकडबही ।

(उर्दू) راہ خوارچ، شاہر پنناہ، کارباؤں سارا یاں ।

अपादान-तत्पुरुष—

(संस्कृत) जन्मान्ध, शृणुक्त, पदच्युत जातिभ्रष्ट, धर्म-विमुख, भवतारण, इत्यादि ।

(हिंदी) देश-निकाला, गुहमाई, कामचोर, नाम-साल, इत्यादि ।

(उर्दू) شاہ جا دا ہ ।

संबंध-तत्पुरुष—

(संस्कृत) राजपुत्र, प्रजापति, देवालय, नरेश, पराधीन, विद्याभ्यास, सेनानायक, लक्ष्मीपति, पितृ-गृह, इत्यादि ।

- (हिंदी) बनमानुस, घुड़-दौड़, बैलगाड़ी, राजपूत, लखपती, पनचको, रामकहानो, सुरांगीना, राजदरबार रेतघड़ी, अमचूर, इत्यादि ।
 (उर्दू) हुक्मनामा, बंदरगाह, नूरजहाँ, शकरपारा,
 (शकर का टुकड़ा = मेवा, पकवान) ।

[स०—षष्ठी तत्पुरुष के उदाहरण प्रायः सभी माषाओं में बहुतायत से मिलते हैं । अधिकांश व्यक्तिवाचक संशार्द इसी समास से बनती है ।]

अधिकरण-तत्पुरुष—

- (संस्कृत) ग्रामवास, गृहस्थ, निशाचर, कलाप्रवीण कविश्रेष्ठ, गृहप्रवेश, वचनचातुरी, जलज, दानवीर, कूपमंडूक, खग, देशाटन, प्रेम-मग्न ।
 (हिंदी) मनमौजी, आप-बीतो, कानाफूंडी, इत्यादि ।
 (उर्दू) हर-फन-मौला ।

[स०—इन सब प्रकार के उदाहरणों में विभक्तियों के संबंध से मत-मेद होने की संभावना है; पर वह विशेष महत्व का नहीं है । जब तक इस विषय में संदेह नहीं है कि ऊपर के सब उदाहरण तत्पुरुष के हैं तब तक यह बात अप्रधान है कि कोई एक तत्पुरुष इस कारक का है या उस कारक का । “वचन-चातुरी” शब्द अधिकरण-तत्पुरुष का उदाहरण है; परंतु यदि कोई इसका विग्रह “वचन-चातुरी” करके इसे संबंध-तत्पुरुष माने, तो इस (हिंदी के) विग्रह के अनुसार उस शब्द को संबंध-तत्पुरुष मानिना अशुद्ध नहीं है । कोई एक तत्पुरुष समात किस कारक का है, इस बात का निश्चय उस समास के योग्य विग्रह पर अवलम्बित है ।]

४९८—जिस छ्याधिकरण तत्पुरुष समास में पहले पद की विभक्ति का लोप नहीं होता उसे अलुक् समास कहते हैं; जैसे, मनसिज, युधिष्ठिर, खेचर, चाचस्पति, कर्त्तरिप्रयोग, आत्मनेपद ।

हिं०—ऊटपटाँग (यह शब्द बहुधा बहुतोहि में 'आता है'), चूहेमार ।

(क) 'दीनानाथ' शब्द व्याकरण की हाइ से विचारणीय है । यह शब्द यथार्थ में 'दीननाथ' होना चाहिए, पर "दीन" शब्द के "न" को दीर्घ बोलने (और लिखने) की रुद्धि चल पड़ी है । इस दीर्घ आ की योजना का यथार्थी कारण विदित नहीं हुआ है, पर संभव है कि दो हस्त 'न' अन्तरों का उचारण एकसाथ करने की कठिनाई से पूर्व 'न' दीर्घ कर दिया गया हो । 'दीनानाथ' समास अवश्य है और उसे संबंध तत्पुरुष ही मानना ठीक होगा । किसी-किसी व्याकरण के मतानुसार यह शब्द दीना + नाथ के योग से बना है ।

४५६—जब तत्पुरुष समास का दूसरा पद ऐसा कुदंत होता है जिसका स्वतंत्र उपयोग नहीं हो सकता, तब उस समास को उपपद समास कहते हैं; जैसे, प्रथकार, तटस्थ, जलद, उरग, कृतधन, कृतज्ञ, नृप । जलधर, पापहर, जलचर, आदि उपपद समास नहीं हैं, क्योंकि इनमें जो धर, हर और चर कुदंत हैं उनका प्रयोग अन्यत्र स्वतंत्रतापूर्वक होता है । ये केवल तत्पुरुष के उदाहरण हैं ।

हिंदी-उपपद समासों के उदाहरण—लकड़फोड़, तिलचट्ठा, कनकटा (कान काटनेवाला), सुङ्गचीरा, बटमार, चिड़ीमार, पन-खुद्धी, घर-घुसा, छुड़चंदा ।

उद्दू-उदाहरण—गरीब-निवाज (दीन-पालक), कलम-तंराश (कलम काटनेवाला, चाकू), चोबदार (दंडधारी), सौदागर ।

[स०—हिंदी में स्वतंत्र कर्मादि तत्पुरुषों की संख्या अधिक न होने के कारण बहुधा उपपद समास को इन्हीं के अंतर्गत मानते हैं ।]

४६०—अभाव किंवा निषेध के अर्थ में शब्दों के पूर्व

अ वा अन् लगाने से जो तत्पुरुष बनता है उसे नव् तत्पुरुष कहते हैं ।

उदा०—(सं०) अधर्म (न धर्म), अन्याय (न न्याय), अयोग्य (न योग्य), अनाचार (न आचार), अनिष्ट (न इष्ट) ।

हिंदी—अनवन, अनभल, अनचाहा, अधूरा, अनजाना, अदृट, अनगढ़ा, अकाज, अलग, अनरीत, अनहोनी ।

उर्दू—नापसंद, नालायक, नावालिग, गैरजाजिर, गैरखाजिब ।

(अ किसी-किसी स्थान में निषेधार्थी न अवश्य आता है ; जैसे, नज़ारा, नास्तिक, नपुंसक ।

[स०—निषेध के नीचे लिखे अर्थ होते हैं—

(१) भिजता—अब्राहण अर्थात् ब्राहण से भिज कोई जाति, जैसे, वैश्य, शूद्र, आदि ।

(२) अभाव—अब्राहन अर्थात् ज्ञान का अभाव ।

(३) अयोग्यता—अकाल अर्थात् अनुचित काल ।

(४) विरोध—अनीति अर्थात् नीति का उल्लंघन ।]

पृष्ठ१—जिस तत्पुरुष समास के प्रथम स्थान में उपसर्ग आता है उसे संस्कृत व्याकरण में प्रादि-समास कहते हैं ।

उदा०—प्रतिध्वनि (समान ध्वनि), अतिकम (आगे जाना) । इसी प्रकार प्रतिविच, अतिवृष्टि, उपवेद, प्रगति, दुर्गुण ।

(क) 'ई' के योग से बने हुए संस्कृत-समास भी एक प्रकार के तत्पुरुष हैं, जैसे, वशीकरण, कञ्जीभूत, स्पष्टीकरण, शुची-भाव ।

समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय

पृष्ठ२—जिस तत्पुरुष समास के विग्रह में दोनों पदों के साथ एक ही (कर्त्ता-कारक की) विभक्ति आती है उसे समानाधिकरण

करण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय कहते हैं। कर्मधारय समास दो प्रकार का है—

(१) जिस समास से विशेष्य-विशेषण भाव सूचित होता है उसे विशेषतावाचक कर्मधारय कहते हैं; और (२) जिससे उपमानोपमेय-भाव जाना जाता है उसे उपमावाचक कर्मधारय कहते हैं।

धृद३—विशेषतावाचक कर्मधारय समास के नीचे लिखे सात भेद हो सकते हैं—

(१) विशेषण-पूर्वपद—जिसमें प्रथम पद विशेषण होता है।

संस्कृत-उदाहरण—महाजन, पूर्वकाल, पीतांबर, शुभागमन, नीलकमल, सदगुण, पूर्णोन्दु, परमानंद।

हिंदी-उदाहरण—नीलगाय, कालीमिर्च, ममधार, तलघर, खड़ी-चोली, सुंदरलाल, पुच्छलतारा, भलामानस, कालापानी, छुटभैया, साढ़ेतीन।

उद्दृ॒-उदाहरण—खुशबू॑, बदबू॑, जबाँमद॑, नौरोज।

[स०—विशेषण-पूर्व-पद कर्मधारय-समास के संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि हिंदी में इस समास के ऐवल चुने हुए उदाहरण मिलते हैं। इसका कारण यह है कि हिंदी में, संस्कृत के समान, विशेष के साथ विशेषणों में विभक्ति का योग नहीं होता—अर्थात् विशेषण विभक्ति त्याग-कर विशेष में नहीं मिलता। इसलए हिंदी में कर्मधारय समास उन्हीं विशेषणों के साथ होता है जिनमें कुछ रूपांतर हो जाता है; अथवा जिनके कारण विशेष से किसी विशेष बख्त का बोध होता है। जैसे; छुटभैया, कालीमिर्च, बढ़ाघर।]

(२) विशेषणोत्तर-पद—जिसमें दूसरा पद विशेषण होता है।

संस्कृत-उदा०—चन्मांतर (अंतर = अन्य), पुरुषोत्तम, नरा-
शम, मुनिवर । पिछले तीन शब्दों का विग्रह दूसरे प्रकार से करने
से ये तत्पुरुष हो जाते हैं; जैसे, पुरुषों में उत्तम = पुरुषोत्तम ।

हिंदी-उदा०—प्रभुदयाल, शिवदीन, रामदहिन ।

(३) वियेषणोभयपद—जिसमें दोनों पद विशेषण होते हैं ।

संस्कृत-उदाहरण—नीलपीत, शीतोष्ण, श्यामसुंदर, शुद्धाशुद्ध,
मृदु-मंद ।

हिंदी-उदा०—लालपीला, भलाबुरा, ऊँचनीच, खटमिठा,
बड़ा-छोटा, मोटाताजा ।

उदू०-उदा०—सखत-सुस्त, नेक-बद, कम-वेश ।

(४) विषयपूर्वपद—धर्मबुद्धि (धर्म है, यह बुद्धि—धर्म-
विषयक बुद्धि), विध्य-पर्वत (विध्य नामक पर्वत) ।

(५) अव्ययपूर्वपद—दुर्वचन, निराशा, सुयोग, कुवेश ।

हिंदी-उदा०—अधमरा, दुकाल ।

(६) संख्यापूर्वपद—जिस कर्मधारय समास में पहला पद
संख्यावाचक होता है और जिससे समुदाय (समाहार) का बोध
होता है उसे संख्यापूर्वपद कर्मधारय कहते हैं । इसी समास को
संस्कृत व्याकरण में द्विगु कहते हैं ।

उदा०—त्रिभुवन (तीन भुवनों का समाहार), त्रैलोक्य
(तीनों लोकों का समाहार)—इस शब्द का रूप त्रिलोकी भी
होता है । चतुष्पदी (चार पदों का समुदाय), पंचवटी, त्रिकाल,
अष्टाधयार्यी ।

हिंदी-उदा०—पंसेरी, दोपहर, चौथोला, चौमासा, सत्तसई,
सतनज्जा, चौराहा, अठवाड़ा, छदाम, चौघड़ा, दुपट्टा, तुआन्नी ।

उद्दू-उद्दाऽ—सिमाही (अप०—तिमाही), चहार-दीवारी, शशमाही (अप०—छमाहो) ।

(७) मध्यमपदलोपी—जिस समास में पहले पद का संबंध दूसरे पद से बतानेवाला शब्द अध्याहृत रहता है उस समास को मध्यमपदलोपी अथवा लुप्त-पद समास कहते हैं । इस समास के विषय में समासगत दोनों पदों का संबंध स्पष्ट करने के लिए उस अध्याहृत शब्द का उल्लेख करना पड़ता है; नहीं तो विषय होना संभव नहीं है । इस समास में अध्याहृत पद बहुधा वीच में आता है; इसलिए इस समास को मध्यमलोपी कहते हैं ।

संस्कृत-उद्दाहरण—घृतान्न (घृत-मिश्रित अन्न), पर्णशाला (पर्णनिर्मित शाला), छायातरु (छाया-प्रधान तरु), देव-ब्राह्मण (देव-पूजक ब्राह्मण) ।

हिंदी-उद्दाऽ—दही-बड़ा (दही में दूध हुआ बड़ा), गुडम्बा (गुडमें उधाला आम), गुडधानी, तिलचारिला, गोबरगनेश, जेव-बड़ी, चितकबरा, पतकपड़ा, गीदड़भबकी ।

४६४—उपमायाचक कर्मधारय के चार भेद हैं—

(१) उपमान-पूर्वपद—जिस वस्तु की उपमा देते हैं उसका वाचक शब्द जिस समास के आरंभ में आता है उसे उपमान-पूर्व-पद समास कहते हैं ।

उद्दाऽ—चंद्रमुख (चंद्र सरीखा मुख), घनश्याम (घन सरीखा श्याम), वज्रदेह, प्राण-प्रिय ।

(२) उपमानोन्तरपद—चरण-कमल, राजर्षि, पाणिपङ्कव ।

(३) अवधारणापूर्वपद—जिस समास में पूर्वपद के अर्थी परउ त्तर पद का अर्थ अवलंबित होता है उसे अवधारणापूर्वपद

कर्मधारय कहते हैं ; जैसे, गुरुदेव (गुरु ही देव अथवा गुरु-रूपी देव), कर्म-बंव, पुरुष-रत्न, धर्म-सेतु, बुद्धिवल ।

(४) अवधारणोत्तरपद—जिस समास में दूसरे पद के अर्थ पर पहले पद का अर्थ अवलंबित रहता है उसे अवधारणोत्तर पद कहते हैं ; जैसे, साधु-समाज-प्रयाग (साधु-समाज-रूपी प्रयाग) (राम०) । इस उदाहरण में दूसरे शब्द 'प्रयाग' के अर्थ पर प्रथम शब्द साधु-समाज का अर्थ अवलंबित है ।

[स०—कर्म-भारय समास में वे रंग-वाचक विशेषण भी आते हैं जिनके साथ अधिकता के अर्थ में उनका समानार्थी कोई विशेषण या संज्ञा जोड़ी जाती है ; जैसे, लाल-सुर्ख, काला-भुजंग, फक्त-उजला । (अं० ३४४—ए) ।]

द्वंद्व ।

४६५—जिस समास में सब पद अथवा उनका समाहार प्रधान रहता है उसे द्वंद्व समास कहते हैं । द्वंद्व समास तीन प्रकार का होता है—

(१) इतरेतर-द्वंद्व—जिस समास के सब पद "ओर" समुच्चय-बोधक से जुड़े हुए हों, पर इस समुच्चयबोधक का लोप हो, उसे इतरेतर द्वंद्व कहते हैं ; जैसे, राधाकृष्ण, ऋषि-मुनि, कंद-मूल-फल ।

हिंदी-उदाहरण—

गाय-बैल	बेटा-बेटी	आई-बहिन
सुख-दुःख	घटी-बढ़ी	नाक-कान
माँ-बाप	दाल-भात	दूध-रोटी
चिट्ठी-पाती	तन-मन-धन	इकतीस
तैतालीस		

(अ) इस समास में द्रव्यबाचक हिंदी समस्त संज्ञाएँ बहुधा एकवचन में आती हैं। यदि दोनों शब्द मिलकर प्रायः एक ही वर्तु सूचित करते हैं तो वे भी एकवचन में आते हैं; जैसे,

घो-गुड़	दाल-रोटी	दूध-भात
खान-पान	नोन-मिर्च	हुक्का-पानी
	गोद-लंडा	

शेष दुन्दु-समास बहुधा बहुवचन में आते हैं।

(आ) एक ही लिंग के शब्दों से बने समास का मूल लिंग रहता है; परंतु भिन्न-भिन्न लिंगों के शब्दों में बहुधा पुलिंग हाता है; और कभी-कभी अंतिम और कभी-कभी प्रथम शब्द का भी लिंग आता है; जैसे, गाय-बैल (पु०), नाक-कान (पु०), घी-शकर (पु०), दूध-रोटी (खी०), चिट्ठी-पाती (खी०), भाई-बहिन (पु०), माँ-बाप (पु०) ।

[स०—उद्दू के आओ-हवा, नामो-निशान, आमदो-रफ्त आदि शब्द समास नहीं कहे जा सकते, क्योंकि इनमें 'ओ' समूच्य-बोधक का लोप नहीं होता। हिंदी में 'ओ' का लोप कर इन शब्दों को समास बना लेते हैं; जैसे, नाम-निशान, आव-हवा, आमद-रफ्त ।]

(२) समाहार-दुन्दु—जिस दुन्दु समास से उसके पदों के अर्थ के सिवा उसी प्रकार का और भी अर्थ सूचित हो उसे समाहार-दुन्दु कहते हैं; जैसे, आहार-निद्रा-भय (केवल आहार, निद्रा और भय ही नहीं, किंतु प्राणियों के सब धर्म), सेठ-साहूकार (सेठ और साहूकारों के सिवा और-और भी दूसरे धनी लोग), भूल-चूक, हाथ-पाँव; दाल-रोटी, रुपया-पैसा, देव-पितर, इत्यादि । हिंदी में समाहार दुन्दु की संख्या बहुत है और उसके नीचे लिखे भेद हो सकते हैं—

(क) प्रायः एक ही अर्थ के पदों के मेल से बने हुए—

कपड़े-लत्ते	वासन-बर्त्तन	चाल-चलन
मार-पीट	लूट-मार	घास-फूस
दिया-बत्ती	साग-पात	मंत्र-जंत्र
चमक-दमक	भला-चंगा	मोटा-ताजा
हाट-पुष्ट	कुड़ा-कच्चरा	कील-कॉटा
कंकर-पत्थर	भूत-प्रेत	काम-काज
बोल-चाल	बाल-बछा	जीव-जंतु

[स०—इस प्रकार के सामान्यिक शब्दों में कभी-कभी एक शब्द हिंदी और दूसरा उद्भूत रहता है; जैसे, धन-दौलत, जी-जान, मोटा-ताजा, चीज-वस्तु, तन-बदन, कागज-पत्र, रीति-रसम, बैरी-नुश्मन, भाई-बिरादर ।]

(ख) भिलवे-जुलते अर्थ के पदों के मेल से बने हुए—

अन्न-जल	आचार-विचार	धर-द्वार
पान-फूल	गोला-चारूद	नाच-रंग
माला-तोल	खाना-पीना	पान-तमासा
जंमला-झाड़ी	तीन-तेरह	दिन-दोपहर
बैसा-तैसा	साँप-चिच्छा	नोन-तेल

(ग) परस्पर विरुद्ध अर्थवाले पदों का मेल; जैसे,

आगा-पीछा	चढ़ा-उतरी
लेन-देन	कहा-सुनी

[स०—इस प्रकार के कोई-कोई विशेषणोभयपद भी पाये जाते हैं। जब इनका प्रयोग संशा के समान होता है तब ये द्वंद्व होते हैं, और जब ये विशेषण के समान आते हैं तब कर्मधारय होते हैं। उदाह—लैंगड़ा-लूला, भूखा-प्यासा, जैसा-तैसा, नंगा उधारा, कँचा-पूरा, भरा-पूरा ।]

(घ) ऐसे समास जिनमें एक शब्द सार्थक और दूसरा शब्द अर्थहीन, अप्रचलित अथवा पहले का समानुप्रास हो—जैसे,

आमने-सामने, आस-पास, अड़ोस-पड़ोस, बात-चीत, देख-भाल, दौड़-धूप, भीड़-भाड़, अदला-बदला, चाल-ढाल, काट-कूट ।

[स०—(१) अनुप्रास के लिए जो शब्द लाया जाता है उसके आदि में दूसरे (मुख्य) शब्द का स्वर रखकर उस (मुख्य) शब्द के शेष भाग को पुनरुक्त कर देते हैं; जैसे, डेरे-एरे, थोड़ा-थोड़ा, कपड़े-अपड़े । कभी-कभी मुख्य शब्द के आद्य वर्ण के स्थान में स का प्रयोग करते हैं; जैसे, उलटा-मुलटा, गँवार-संवार, मिठाई-सिठाई । उदू में बहुधा 'व' लाते हैं; जैसे, पान-वान, खत-वत, कागज-बागज । बुँदेलखण्डी में बहुधा म का प्रयोग किया जाता है; जैसे पान-मान, चिढ़ी-मिढ़ी, पागल-मागल, गौवि-मौवि ।

(२) कभी-कभी पूरा शब्द पुनरुक्त होता है और कभी प्रथम शब्द के अंत में आ और दूसरे शब्द के अंत में ई कर देते हैं; जैसे, काम-काम, भागा-भाग, देला देली, तड़ातड़ी, देला-भाली, दोआदाई ।]

(३) वैकल्पिक दंद—जब दो पद "वा", "व्यवा", आदि विकल्पसूचक समुच्चय बोधक के द्वारा मिले हों और उस समुच्चय-बोधक का लोप हो जाय, तब उन पदों के समास को वैकल्पिक दंद कहते हैं । इस समास में बहुधा परस्पर-विरोधी शब्दों का मेल होता है; जैसे, जात-कुजात, पाप-पुण्य, धर्मी-धर्मी, ऊँचा-नीचा, थोड़ा-बहुत, भला-बुगा ।

[स०—दो-तीन, नौ-दस, बीस-पचीस, आदि अनिश्चित गणनावाचक सामासिक विशेषण कभी-कभी संज्ञा के समान प्रयुक्त होते हैं । उस समय उन्हें वैकल्पिक दंद कहना उचित है; जैसे, मैं दो-चार को कुछ नहीं समझता ।]

बहुब्रीहि

४६६—जिस समास में कोई भी पद प्रधान नहीं होता और जो अपने पदों से भिन्न किसी संज्ञा का विशेषण होता है उसे

बहुब्रीहि समास कहते हैं; जैसे, चंद्रमौलि (चंद्र है सिर पर जिसके अर्थात् शिव), अनंत (नहीं है अंत जिसका अर्थात् ईश्वर), कृतकार्य (कृत अर्थात् किया गया है काम जिसके द्वारा—वह मनुष्य) ।

[सू०—पहले कहे हुए प्रायः सभी प्रकार के समास किसी दूसरी संज्ञा के विशेषण होने पर बहुब्रीहि हो जाते हैं; जैसे, 'मन्द-मति' (कर्म-धारय विशेषण के अर्थ में बहुब्रीहि है । पहले अर्थ में 'मन्द-मति' केवल 'धीमी बुद्धि' का वाचक है; पर पिछले अर्थ में इस शब्द का विग्रह यो होगा—मंद है मति जिसकी वह मनुष्य । यदि 'पीलाओंवर' शब्द का अर्थ केवल 'पीला कपड़ा' है तो वह कर्मधारय है; परंतु यदि उससे 'पीला कपड़ा है जिसका, अर्थात् 'विष्णु' का अर्थ लिया जाय तो वह बहुब्रीहि है ।]

४६७—इस समास के विग्रह में संबंधवाचक सर्वानाम के साथ कर्ता और संबोधन कारकों को छोड़कर शेष जिन कारकों की विभक्तियाँ लगती हैं उन्हीं के नामों के अनुसार इस समास का नाम होता है; जैसे,

कर्म-बहुब्रीहि—इस जाति के संस्कृत समासों का प्रचार हिंदी में नहीं है और न हिंदी ही में कोई ऐसे समास हैं। इनके संस्कृत-उदाहरण ये हैं—प्राप्तोदक (प्राप्त हुआ है जल जिसको वह प्राप्तोदक प्राप्त), आरूढ़वानर (आरूढ़ है बानर जिस पर वह आरूढ़-वानर—वृक्ष) ।

करण-बहुब्रीहि—कृतकार्य (किया गया है कार्य जिसके द्वारा), दत्तचित्त (दिया है चित्त जिसने), धृतचाप, प्राप्तकाम ।

संप्रदान-बहुब्रीहि—यह समास भी हिंदी में बहुधा नहीं आता। इसके संस्कृत-उदाहरण ये हैं—दत्तधन (दिया गया है धन जिसको), उपहृत-पशु (भेट में दिया गया है पशु जिसको)

अपादान-बहुब्रीहि—निर्जन (निकल गया है जन समूह जिसमें से), निर्विकार, विमल, लुप्तपद ।

संवंध-बहुब्रीहि—इशानन (दश हैं मुँह जिसके), सहस्र-बाहु (सहस्र हैं चाहु जिसके), पीतांबर (पीत है अंबर—कपड़ा-जिसका), चुम्भुत, नीलकंठ, चक्रपाणि, तपोष्ठन, चंद्रमौलि, पतिव्रता ।

हिंदी-उदा०—कनकटा, दुधमुँहा, मिठाशोका, बारहसिंगा, अनमोल, हँसमुख, सिरकटा, दुटपुंजिया, बड़भागी, बहुरूपिया, मनचला, छुड़मुँहा ।

उदू—कमजार, बदनसीब, सुशदिल, नेकनाम ।

अधिकरण बहुब्रीहि—प्रफुल्ल-कमल (खिले हैं कमल जिसमें—बहु तालाब), इंद्रादि (इंद्र है आदि में जिनके—वे देवता), स्वरांत (शब्द) ।

हिंदी-उदा०—त्रिकोन, सतखंडा, पतझड़, चौलड़ी ।

[स०—अधिकांश पुस्तकों और सामयिक पत्रों के नाम इसी समास में समाविष्ट होते हैं ।]

४६८—जिस बहुब्रीहि-समास के विप्रह में दोनों पदों के साथ एक ही विभक्ति आती है उसे समानाधिकरण बहुब्रीहि कहते हैं; और जिसके विप्रह में दोनों पदों के साथ भिन्न-भिन्न विभक्तियाँ आती हैं वह व्यधिकरण बहुब्रीहि कहलाता है । ऊपर के उदा-हरणों में कुतकुत्य, दशानन, नीलकंठ, सिरकटा, समानाधिकरण बहुब्रीहि हैं और चंद्रमौलि, इंद्रादि, सतखंडा, व्यधिकरण बहुब्रीहि हैं । 'नीलकंठ' शब्द में 'नील' और 'कंठ' (नीला है कंठ जिसका) एक ही अर्थात् कर्ता-कारक में हैं; और 'चंद्रमौलि' शब्द में 'चंद्र'

तथा 'मौलि' (चंद्र है मौलि में जिसके) अलग-अलग, अर्थात् कमशः कर्त्ता और अधिकरण-कारकों में हैं ।

धृष्टि—बहुत्रीहि समास के पदों के स्थान अथवा उनके अर्थ की विशेषता के आधार पर उसके नीचे लिखे भेद हो कहते हैं—

(१) विशेषण-पूर्वपद—पीतांबर, मंद-बुद्ध, लंब-कर्णी दीर्घ-बाहु ।

हिंदी-उदाहरण—बड़पेटा, लाल-कुर्ती, लमटंगा, लगातार, मिठ-बोला ।

उदू—उदाहरण—साक्षिल, जबरदस्त, बद्रंग ।

(२) विशेषणोत्तर-पद—शाकप्रिय (शाक है प्रिय जिसको), नाट्यप्रिय ।

हिंदी-उदाहरण—कनकटा, सिरकटा, मनचला ।

(३) उपमान-पूर्वपद—राजीव-लोचन, चंद्रमुखी, पाषाण-हृदय, बजदेही ।

(४) विषय-पूर्वपद—शिवशब्द (शिव है शब्द जिसका— वह तपस्वी), अहमभिमान (अहम् अर्थात् मैं, यह अभिमान है जिसको) ।

(५) अवधारणा-पूर्वपद—यशोधन (यश ही धन है जिसका), तपोबल, चित्याधन ।

(६) मध्यमपदलोपी—कोकिलकंठा (कोकिल के कंठ के समान कंठ है जिसका वह स्त्री), मृगनेत्रा, गजानन, अभिज्ञान-शाकुंतल, मुद्राराज्ञस ।

उदू—उदाहरण—गावदुम, कीलपा ।

हिंदी-उदाहरण—बुइमुहा, भौंरकली (गहना), बालतोड (फोड़ा), हाथी-पौव (बीमारी) ।

(७) नव्यवहुब्रीहि—असार (सार नहीं है जिसमें), अद्वितीय, अव्यय, अनाथ, अकर्मक, नाक (नहीं है अक-दुख जिसमें वह स्वर्ग) ।

हिंदी—अनमोल, अज्ञान, अथाह, अचेत, अमान, अनरितती ।

(८) संख्यापूर्वपद—एकरूप, त्रिभुज, चतुष्पद, पंचानन, दशमुख ।

हिंदी—एकजी, दुनाली, चौकोन, तिमंजला, सतलड़ी, दुसूली ।
उद्दृ-उदाह—सितार (तीन हैं तार जिसमें), पंजाब, दुआव ।

(९) संख्योत्तरपद—उपदश (दश के पास है जो अर्थात् नौ वा चारह), त्रिसप्त (तीन सात हैं जिसमें, वह संख्या—इक्सीस) ।

(१०) सह-बहुब्रीहि—सपुत्र (पुत्र के साथ), सकर्मक, सदेह, सावधान, सपरिवार, सफ़ज़, सार्थक ।

हिंदी-उदाह—सबेरा, सचेत, साड़े ।

(११) दिगंतराल बहुब्रीहि—पञ्चिमोत्तर (वायव्य), दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) ।

(१२) व्यतिहार बहुब्रीहि—जिस समय से एक प्रकार का युद्ध, दोनों दलों के समान युद्ध-साधन और उनका आचात-प्रत्याघात सूचित होता है उसे व्यतिहार-बहुब्रीहि कहते हैं ।

सं० उदाह—मुष्टामुष्टि (एक दूसरे को मुष्टि अर्थात् मुक्का मार-कर किया हुआ युद्ध), इस्ताहस्ति, दंडादंडि । संस्कृत में ये समास नपुंसक लिंग, एक वचन और अव्यय रूप में आते हैं ।

हिंदी-उदाहरण—लठालड़ी, मारामारी, बदाबदी, कहाकही, धक्काधक्की, घूसाघूसी ।

[स०—(क) हिंदी में ये समास लीलिंग और एकवचन में आते हैं। इनमें पहले शब्द के अंत में बहुधा आ और दूसरे शब्द के अंत में ई आदेश होती है। कभी-कभी पहले शब्द के अंत में म और दूसरे शब्द के अंत में आ आता है; जैसे, लड़मलड़ा, छक्कमचक्का, कुश्तमकुश्ता, खुस्तमखुस्ता। इस प्रकार के शब्द पुँजिंग, एकवचन में आते हैं।

(ख) कभी-कभी दूसरा शब्द भिन्नार्थी, अर्थहीन अथवा समानुप्राप्त होता है; जैसे, माराकूटी, कहासुनी, लीचातानी, ऐचालेंची, मारानूरी। इस प्रकार के शब्द बहुधा दो कृदंतों के योग से बनते हैं।]

(१२) ग्रादि अथवा अव्ययपूर्व बहुब्रीहि—निर्दय (निर्गता अर्थात् गई हुई है दया जिसकी), विफल, विघ्वा, कुरुप, निर्धन।

हिंदी-उदाहरण—सुडौल, कुड़गा, रंगचिरंगा। पिछले शब्द में संज्ञा की पुनरुक्ति हुई है।

संस्कृत-समासों के कुछ विशेष नियम ।

४७०—किसी-किसी बहुब्रीहि समास का उपयोग अव्ययीभाव-समास के समान होता है; जैसे, प्रेमपूर्वक, विनयपूर्वक, सादर, सविनय, सप्रेम।

४७१—तत्पुरुष समास में नीचे लिखे विशेष नियम पाये जाते हैं—

(अ) अहन् शब्द किसी-किसी समास के अंत में अह हो जाता है; जैसे, पूर्वाहु, अपराहु, मध्याहु।

(आ) राजन् शब्दों के अंत्य व्यंजन का लोप हो जाता है; जैसे, राजपुरुष, महाराज, राजकुमार, जनकराज।

(इ) इस समास में जब पहला पद सर्वनाम होता है तब भिन्न-भिन्न सर्वनामों के विकृत रूपों का प्रयोग होता है—

हिंदी	संस्कृत	विकृत रूप	उदाहरण
मैं	अहम्	मत्	मत्पुत्र
हम	बयम्	अस्मत्	अस्मत्पिता
तू	त्वम्	त्वत्	त्वद्गृह
तुम	{ यूयम् भवान्	युष्मत् भवत्	युष्मत्कुल भवन्माया
वह, वे	तद्	तत्	तत्काल, तद्रूप
यह, ये	एतद्	एतत्	एतदेशीय
जो	यद्	यत्	यत्कृपा

(ई) कभी-कभी तत्पुरुष-समास का प्रधान पद पहले ही आता है; जैसे, पूर्वकाय (काया अर्थात् शरीर का पूर्व अर्थात् अगला भाग), मध्याह (अहः अर्थात् दिन का मध्य), राजहंस (हंसों का राजा) ।

(उ) जब अन्नंत और इन्नंत शब्द तत्पुरुष समास के प्रथम स्थान में आते हैं तब उनके अंत्य न् का लोप होता है; जैसे, आत्म-बल, ब्रह्मज्ञान, हस्तिदंत, योगिराज, स्वामिभक्त ।

(ऊ) विद्वान्, भगवान्, श्रीमान्, इत्यादि शब्दों के मूल रूप विद्वस्, भगवत्, समास में आते हैं; जैसे, विद्वज्ञन, भगवद्गुरु, श्रीमद्भागवत ।

(ऋ) नियम-विरुद्ध शब्द—बाचस्पति, बलाहक (बारीशां बाहक, जल का बाहक—मेघ), पिशाच (पिशित अर्थात् मांस भक्षण करतेवाले), बृहस्पति, बनस्पति, प्रायश्चित, इत्यादि ।

पुण्ड्र—कर्मधारय-समास के संबंध में नीचे लिखे नियम पाये जाते हैं—

(अ) महात् शब्द का रूप महा होता है; जैसे, महाराज, महादशा, महादेव महाकाव्य, महालक्ष्मी, महासभा ।

अपवाद—महदंतर, महदुपकार, महत्कार्य ।

(आ) अन्त शब्द के द्वितीय स्थान में आने पर अंत्य नकार का लोप हो जाता है; जैसे, महाराज, महोच (बड़ा चैल) ।

(इ) रात्रि शब्द समास के अंत में रात्र हो जाता है; जैसे, पूर्वरात्र; अपररात्र, मध्यरात्र, नवरात्र ।

(ई) कु के बदले किसी-किसी शब्द के आरंभ में कत्, कब और का हो जाता है; जैसे, कदन, कटुषण, कबोषण, कापुरुष ।

४७३—बहुत्रीहि समास के विशेष नियम ये हैं—

(अ) सह और समान के स्थान में प्रायः स आता है; जैसे, सादर, सविस्मय, सवर्ण, सज्जात, सरूप ।

(आ) अन्ति (आँख), सखि (मित्र), नाभि, इत्यादि कुछ इकारांत शब्द समास के अंत में आकारांत हो जाते हैं; जैसे, पुंडरीकाच्छ, मरुत्सख, पद्मनाभ (पद्म है नाभि में जिसके अर्थात् विष्णु) ।

(इ) किसी-किसी समास के अंत में क जोड़ दिया जाता है; जैसे, सपनीक, शिर्जाविषयक, अल्पवयस्क, ईश्वरकर्तृक, सकर्मीक, अकर्मीक, निरर्थीक ।

(ई) नियम-विरुद्ध शब्द—द्वीप (जिसके दोनों ओर पानी है अर्थात् टापू), अंतरीप (द्वीप; हिंदी में स्थल का अग्रभाग जो पानी में चला गया हो), समीप (पानी के पास, निकट), शतघन्वा, सपत्नी (समान पति हैं जिसका, सौत), सुगंधि, सुदंती, (सुंदर दाँत हैं जिसके, वह रुखी) ।

४७४—द्वंद्व समास के कुछ विशेष नियम—

(अ) कहीं-कहीं प्रथम पद के पीछे अन्त में दीर्घ आ हो जाता सै; जैसे, मित्रावरुण।

(आ) नियम-विरुद्ध शब्द—जाया + पति = दंपति; जंपती जायापती; अन्य + अन्य = अनोन्य; पर + पर = परस्पर, अहन् + रात्रि = अहोरात्र।

४७५—यदि किसी समास से अन्त में आ वा ई (स्त्री प्रत्यय) हो और समास का अर्थ उसके अवयवों से भिन्न हो तो उस प्रत्यय को हस्त कर देते हैं; जैसे, निर्लङ्घ, सकरुण, लघ्वप्रतिष्ठ, हृषप्रतिष्ठ। 'ई' के उदाहरण हिंदी में नहीं आते।

हिंदी समासों के विशेष नियम ।

४७६—तत्पुरु-समास में यदि प्रथम पद का आद्य स्वर दीर्घ हो तो वह बहुधा हस्त हो जाता है और यदि पद आकारांत वा ईकारांत हो तो वह अकारांत हो जाता है; जैसे, चुड़दीङ, पन-भरा, मुँहचीरा, कनकटा, रजबाहा, अमचूर, कपड़छन।

४७०—घोड़ागाढ़ी, रामकहानी, राजदरबार, सोनामाखी।

४७७—कर्मधारय-समास में प्रथम स्थान में आनेवाले छोटा, बड़ा, लंबा, खट्टा, आधा, आदि आकारांत विशेषण बहुधा अकारांत हो जाते हैं; और उनका आद्य स्वर हस्त हो जाता है; जैसे, छुटभैया, बड़गाँव, लमड़ीर, खटभिट्टा, अधपका।

अपवाद—भोलानाथ, भूरामल।

[८०—“लाल” शब्द के साथ छोटा, गोरा, भूरा, नन्हा, बाँका आदि विशेषणों के अन्त्य आ के स्थान में ए होता है; जैसे, भूरेलाल, छोटेलाल, बाँकेलाल, नन्हेलाल। “काला” के बदले कालू अथवा कल्लू होता है; जैसे, कालूराम, कल्लूसिंह।]

४७८—बहुब्रीहि-समास के प्रथम स्थान में आनेवाले आकारांत शब्द (संज्ञा और विशेषण) आकारांत हो जाते हैं और दूसरे

शब्द के अंत में बहुधा आ जोड़ दिया जाता है। यदि दोनों पदों के आद्य स्वर दीर्घ हों तो उन्हें बहुधा हस्त कर देते हैं; जैसे, दुधमुँहा, बड़पेटा, लमकना (चूहा), नकटा (नाक है कटी हुई जिसकी), कनफटा, टुटपुँजिया, मुँछमुँडा ।

अपवाद—लालकुर्ती, बड़भागी, बहुरंगी ।

[**४३—बहुब्रीहि-समासों का प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है और आकारात् शब्द पुँजिंग होते हैं । खीलिंग में इन शब्दों के अंत में ही वा नी कर देते हैं; जैसे, दुधमुँही, नकटी, बड़पेटी, टुटपुँजनी ।]**

४७६—बहुब्रीहि और दूसरे समासों में जो संख्यावाचक विशेषण आते हैं उनका रूप बहुधा बदल जाता है । ऐसे कुछ विकृत रूपों के उदाहरण ये हैं—

मूल शब्द	विकृत रूप	उदाहरण
दो	दु	दुलडी, दुचित्ता, दुगुना, दुराज, दुपट्ठा ।
तीन	ति, तिर	तिपाई, तिरसठ, तिबासी, तिखूंटी ।
चार	चौ	चौखूंटा, चौदह
पाँच	पच	पचमेल, पचमहला, पचलोना, पचलडी ।
छः	छ	छरपय, छटाँक, छदाम, छकड़ी ।
सात	सत	सतनजा, सतमासा, सतखंडा, सतसैया ।
आठ	अठ	अठखेली, अठन्नी, अठोतर ।
४८०—समास में बहुधा पुँजिंग शब्द पहले और खीलिंग		

शब्द पीछे आता है; जैसे, भाई-बहिन, दूध-रोटी, धी-शक्ता, बेटा-बेटी, देखा-देखी, कुरता-टोपी, लोटा-थाली ।

अप०—मा-बाप, घंटी-घंटा, सामन्सुसुर ।

समासों के सामान्य नियम

४८१—हिंदी (और उर्दू) समास जो पहले से बने हैं वे ही भाषा में प्रचलित हैं । इनके सिवा शिष्ट लेखक किसी विशेष कारण से नये शब्द बना सकते हैं ।

४८२—एक समास में आनेवाले शब्द एक ही भाषा के होने चाहिए । यह एक साधारण नियम है; पर इसके कई अपवाद भी हैं; जैसे, रेलगाड़ी, हरदिन, मनमौजी, इमामबाड़ा, शाहपुरा, धन-दीलत ।

४८३—कभी-कभी एक ही समास का विश्रह अर्थ-भेद से कही प्रकार का होता है; जैसे, “त्रिनेत्र” शब्द “तीन आँखों” के अर्थ में द्विगु है; परन्तु “महादेव” के अर्थ में बहुबीहि है । “सत्यब्रत” शब्द के ओर भी अधिक विश्रह हो सकते हैं; जैसे,

सत्य और ब्रत = द्वंद्व

सत्य ही ब्रत }
सत्य ब्रत } = कर्मधारय

सत्य का ब्रत = तत्पुरुष

सत्य है ब्रत जिसका = बहुबीहि

ऐसी अवस्था में समास का विश्रह केवल पूर्वापर संबंध से हो सकता है ।

(अ) कभी-कभी विना अर्थ-भेद के एक ही समास के एक ही स्थान में दो विश्रह हो सकते हैं; जैसे, लल्मीकांत शब्द तत्पुरुष भी हो सकता है और बहुबीहि भी । पहले में उसका विश्रह लल्मी का कांत (पति) है; और दूसरे में यह

विप्रह होता है कि लक्ष्मी है कान्ता (स्त्री) जिसकी । उन दोनों विप्रहों का एक ही अर्थ है; इसलिए कोई एक विप्रह स्वीकृत हो सकता है और उसीके अनुसार समास का नाम रखा जा सकता है ।

४८४—कहीं-एक तद्रव हिंदी सामासिक शब्दों के रूप में इतना अंग-भंग हो गया है कि उनका मूल रूप पहचानना संकृता-नभिङ्ग लोगों के लिए कठिन है । इसलिए इन शब्दों को ममास न मानकर केवल यौगिक अथवा रूढ़ ही मानना ठीक है; जैसे, (सुसुराल) शब्द यथार्थ में संकृत ‘ श्वशुरालय ’ का अपभ्रंश है, परंतु आलय शब्द आल बन गया है जिसका प्रयोग केवल प्रत्यय के समान होता है । इसी प्रकार “पड़ोस” शब्द (प्रतिवास) का अपभ्रंश है, पर इसके एक भी मूल अवयव का पता नहीं चलता ।

(अ) कहीं एक ठेठ हिंदी सामासिक सब्दों में भी उनके अवयव एक दूसरे से ऐसे मिल गये हैं कि उनका पता, लगाना कठिन है । उदाहरण के लिए “दहोँडी” एक शब्द है जो यथार्थ में दही-हाँड़ी है, पर उसके “हाँड़ी” शब्द का रूप केवल ऐड़ी रह गया है । इसी प्रकार औंगोछा शब्द है जो अँगपौछा का अपभ्रंश है, पर पौछा शब्द “ओछा” हो गया है । ऐसे शब्दों को सामासिक शब्द मानना ठीक नहीं जान पड़ता ।

४८५—हिंदी में सामासिक शब्दों के लिखने की रीति में बहुत गड़बड़ है । जिन शब्दों को सटाकर लिखना चाहिए वे योजक चिन्ह (हाईफन) से मिलाये जाते हैं और जिन्हें केवल योजक से मिलाना उचित है वे सटाकर लिख दिये जाते हैं । फिर, जिस सामासिक शब्द को किसी न किसी प्रकार मिलाकर लिखने को आवश्यकता है, वह अलग-अलग लिखा जाता है ।

[यी०—हिंदी-व्याकरणों में व्युत्पत्ति-प्रकारण बहुत ही संचेप रीति से दिया गया है। इसका कारण यह है कि उनमें पुस्तकों के परिमाण के अनुसार इस विषय को स्थान मिला है। अन्यान्य पुस्तकों को छोड़कर हम यहाँ केवल “प्रवेशिका हिंदी-व्याकरण” के इस विषय के कुछ अंश की परीक्षा करते हैं, क्योंकि इस पुस्तक में यह विषय दूसरी पुस्तकों की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार से दिया गया है। स्थानाभाव के कारण हम इस व्याकरण में दिये गए समासों ही के कुछ उदाहरणों पर विचार करेंगे। तत्पुरव समास के उदाहरणों में लेखक ने “दम भरना”, “भूख (१) मरना”, “ध्यान करना”, “काम आना”, इत्यादि कुदंत-व्याकरणों को सम्मिलित किया है, और इनका नियम संभवतः भट्टजी के “हिंदी-व्याकरण” से लिया है। संस्कृत में राशीकरण, यकीमवन आदि संयुक्त कुदंतों को समास मानते हैं, क्योंकि इनमें विभक्ति का लोप और पूर्व-वद में रूपांतर हो जाता है, पर हिंदी के पूर्वोक्त कुदंत-व्याकरणों में न विभक्ति का नियमित लोप ही होता है और न रूपांतर ही पाया जाता है। “काम आना” को विकल्प से “काम में आना” भी कहते हैं। किर इन व्याकरणों के पदों के बीच, समास के नियम के विवर, अन्यान्य शब्द भी आ जाते हैं; जैसे, काम न आना, ध्यान ही करना, दम भी भरना, इत्यादि। संस्कृत में केवल कु, भू, आदि दो-तीन धातुओं से ऐसे नियमित समास बनते हैं, पर हिंदी में ऐसे प्रयोग अनियमित और अनेक हैं। इसके सिवा यदि “काम करना” को समास मानें तो “आगे चलना” को भी समास मानना पड़ेगा, क्योंकि ‘आगे’ के पश्चात् भी विकल्प से विभक्ति प्रकट वा लुप्त रह सकती है। ऐसी अवस्था में उन शब्दों को भी समास मानना होगा जिनमें विभक्ति का लोग रहने पर भी स्वतंत्र व्याकरणीय संबंध है। “प्रवेशिका हिंदी-व्याकरण” में दिए हुए इन कुदंतव्याकरणों को पूर्खोक्त कारणों से संयुक्त धातु भी नहीं मान सकते (अं०—४२०—४०)। अतएव इन सब उदाहरणों को समास मानना भूल है।]

सातवाँ अध्याय

पुनरुक्त शब्द

४८६—पुनरुक्त शब्द यौगिक शब्दों का एक भेद है और इनमें से बहुत से सामासिक भी हैं। इनका विवेचन पुस्तक में यत्र-तत्र बहुत कुछ हो चुका है। बोलचाल में इनका प्रचार सामासिक शब्दों ही के लगभग है, पर इनकी व्युत्पत्ति में सामासिक शब्दों से बहुत कुछ भिन्नता भी है। अतएव इनके एकत्र और नियमित विवेचन की आवश्यकता है। इन शब्दों का संयोग बहुधा विभक्ति अथवा संर्थकी शब्द का लोप करने से नहीं होता।

४८७—पुनरुक्त शब्द तीन प्रकार के हैं—पूर्ण-पुनरुक्त, अपूर्ण-पुनरुक्त और अनुकरणवाचक।

४८८—जब कोई एक शब्द एकही-साथ लगातार दो-बार अथवा तीन-बार प्रयुक्त होता है तब उन सबको पूर्ण-पुनरुक्त शब्द कहते हैं; जैसे, देश-देश, बड़े-बड़े, चलते-चलते, जय-जय-जय।

४८९—जब किसी शब्द के साथ कोई समानुप्रास सार्थक वा निरर्थक शब्द आता है तब वे दोनों शब्द अपूर्ण-पुनरुक्त कहाते हैं, जैसे आस पास, आमने-सामने, देख-भाल इत्यादि।

४९०—पदार्थ की यथार्थी अथवा, कलिपत ध्वनि को ध्यान में रखकर जो शब्द बनाये जाते हैं उन्हें अनुकरणवाचक शब्द कहते हैं; जैसे, फटफट, गडगडाहट, अरीना।

पूर्ण-पुनरुक्त-शब्द

४९१—ये शब्द कई प्रकार के हैं। कभी-कभी समूचे शब्द की पुनरुक्ति ही से एक शब्द बनता है, और कभी-कभी दोनों शब्दों के बीच में एकाध अक्षर का आदेश हो जाता है।

[स०—पुनरुक्त शब्दों को प्रथम शब्द के पश्चात् २ लिखकर सूचित करना अशुद्ध है; जैसे, चीरे २, राम २ ।]

४६२—संज्ञा की पुनरुक्ति नीचे लिखे अर्थों में होती है—

(१) संज्ञा से सूचित होनेवाली वस्तुओं का अलग-अलग निर्देश-जैसे, घर-घर ढोलत दीन है, जन-जन जाँचत जाय। कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी। मेरे रोम-रोम प्रसन्न हो रहे हैं।

[स०—यदि इन पुनरुक्त शब्दों का प्रयोग संशा अथवा विशेषण के समान हो तो इन्हें कर्मधारय और किया-विशेषण के समान हो तो अव्ययी भाव कहना चाहिए। ऊपर के उदाहरणों में “जन-जन” (संशा), “कौड़ी-कौड़ी ” विशेषण तथा “रोम-रोम” (संशा) कर्मधारय समास हैं और “घर-घर” (कि० वि०) अव्ययीभाव-समास है।

(२) अतिशयता—जैसे, बर्तन दुकड़े-दुकड़े हो गया, राम-राम कहि राम कहि, उसने मुझे दाने-दाने को कर दिया, हँसी-हँसी में लड़ाई हो पड़ी, इत्यादि ।

(३) परस्पर-संबंध-भाई-भाई का प्रेम, बहिन-बहिन की बात-चीत, मित्र-मित्र का व्यवहार, ठठेरे-ठठेरे बदलाई ।

(४) एकजातीयता—जैसे, फूल-फूल अलग रख दो, ब्राह्मण-ब्राह्मण की जेवनार, लड़के-लड़के यहाँ बैठे हैं।

(५) मिज्रता—“आदमी-आदमी अंतर”, “देश-देश के भूपति नाना,” बात-बात में भेद है, रंग-रंग के फूल, इत्यादि ।

(६) रीति-पौंछ-पौंछ चलना, लाटें-लोटे जल भरना (पहले एक लोटा, फिर दूसरा लोटा और इसी क्रम से आगे) ।

[स०—(१) पूर्ण-पुनरुक्त-शब्दों के अंत्य शब्द में विभक्ति का योग होता है, परन्तु उसके पूर्व दोनों शब्द विकृत रूप में आते हैं; जैसे, लड़के-लड़के की लड़ाई, फूलों-फूलों को अलग रख दो । यह विकृत रूप

आकारांत शब्दों के दोनों बचनों में और दूसरे शब्दों के केवल बहुवचन में होता है।

(२) कभी-कभी विभक्ति का स्रोप हो जाता है, और विकृत रूप केवल प्रथम शब्द में अथवा कभी-कभी दोनों शब्दों में पाया जाता है। जैसे, हाथोंहाथ, रातोंरात, बीचोंबीच, दिनोदिन, जंगलों-जंगलों, इत्यादि ।]

४६३—सर्वानामों की पुनरुक्ति संज्ञाओं हो के समान होती है। यह विषय सर्वानामों के अध्याय में आ चुका है।

४६४—विशेषणों की भी पुनरुक्ति का विचार विशेषणों के अध्याय में हो चुका है। यहाँ गुणवाचक विशेषणों की पुनरुक्ति के कुछ विशेष अर्थों लिखे जाते हैं—

(१) भिन्नता—जैसे, “हरी-हरी पुकारती हरी-हरी लतान में ।” नये-नये सुख, अनूठे-अनूठे खेल ।

(२) एकजातीयता—बड़े-बड़े लोगों को कुरसी दी गई, छोटे-छोटे लड़के अलग बिठाये गये ।

(३) अतिशयता—मीठे-मीठे आम, अच्छे-अच्छे कपड़े, ऊचे-ऊचे घर, काले-काले केरा, फूले-फूले चुन लिये । (कवीर) ।

(४) न्यूनता—फीका-फीका स्वाद, तरकारी खट्टी-खट्टी लगती है, छोटी-छोटी आँखें, इत्यादि ।

४६५—क्रिया की पुनरुक्ति से नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—

(१) हठ—मैं यह काम करूँगा, करूँगा और फिर करूँगा । वह आयगा, आयगा और फिर आयगा । तुम आओगे, आओगे और फिर आओगे ।

(२) संशय—आप आयेंगे आयेंगे कहते हैं, पर आते नहीं । वह गया, गया, न गया न गया । पिछले बाक्य में कुछ शब्दों का

अध्याहार भी माना जा सकता है; जैसे, (जो) वह गया (तो) गया (और) न गया (तो) न गया।

(३) विधिकाल की द्विरुक्ति से आदर, उतावलों, आपहाँ और अनादर सूचित होता है; जैसे, आइये आइये, आज किथर भूल पड़े! देखो, देखो, वह आदमी भाग रहा है। जाओ, जाओ।

४६६—सहायक क्रियाओं का काम करनेवाले कुदंतों की भी पुनरुक्ति होती है और उनसे नीचे लिखे अर्थ पाये जाते हैं—

(१) पौनःपुन्य—पतो वह-वहकर आते हैं, वह (मेरे) पास आ-आकर बैठता है, घर में कौन लड़कियाँ छोटी न्योत-न्योत लावेगी, मैं तुन्हारा घर पूछता-पूछता यहाँ तक आया हूँ।

(२) अतिशयता—लड़का चलते-चलते थक गया, इंद्र रो-रोकर कहने लगा, वह मारा-मारा फिरता है।

(३) निरंतरता—हम बैठे-बैठे क्या करें? श्रीकृष्ण को बैठे-बैठे पूर्व-जन्म की सुधि आई। पुस्तके पढ़ते-पढ़ते आयु बीत गई। लड़का सोते-सोते चौंक पड़ा।

(४) अवधि—इस रीति से चले-चले राज-मंदिर में जा विराजे। आपके आते-आते सभा विसर्जन हो गई। वहाँ पहुँचते-पहुँचते रात हो जायगी।

(५) “होते-होते” का अर्थ “धीरे-धीरे” है।

(६) कभी-कभी अपूर्ण क्रिया-शोतक कुदंतों के बीच में ‘न’ का आगम होता है; जैसे, उसके आते न आते काम हो जायगा।

४६७—अवधारणके अर्थ में कभी-कभी निषेधवाचक क्रिया के साथ उसी क्रिया से बना हुआ भूतकालिक अथवा पूरी क्रिया-शोतक कुदंत आता है; जैसे, सो किसी भाँति मेदे न मिटेंगे, यह

आदमी उठाये नहीं उठता, (धनुष) टरै न टारा, वह किसी का बचाया न बचेगा ।

४६—क्रियाविशेषणों की पुनरुक्ति पौनःपुन्य, अतिशयता, आदि अर्थों में होती है; जैसे, धीरे-धीरे, कभी-कभी, जब-जब, नीचे-नीचे, ऊपर-ऊपर, पास-पास, आगे-आगे, पीछे-पीछे, साथ-साथ, कहाँ-कहाँ, कहीं-कहीं, पहले-पहले, अभी-अभी ।

[स०—“पहले-पहल” शब्द का अर्थ प्रथम बार है ।]

(अ) जिन क्रियाविशेषणों का उपयोग संबंधसूचकों के समान होता है वे इस (दूसरे) अर्थ में भी पुनरुक्त होते हैं; जैसे, सढ़क के पास-पास, नौकर के साथ-साथ, कपड़े के ऊपर-ऊपर, पानी के नीचे-नीचे ।

४७—विस्मयादिबोधक अव्ययों की पुनरुक्ति मनोविकारों का उत्कर्ष अथवा आवेग सूचित करने के लिए होती है; जैसे, हा-हा ! हाय-हाय ! छिः-छिः ! अरे-अरे ! राम-राम ।

(अ) कोई-कोई विस्मयादिबोधक तीन बार उक्त होते हैं; जैसे, जय-जय-जय गिरिराज किशोरी । देख री मा, देख री मा, देख लिए जाय ! फाड़ के दो टूक किये, हाय हाय हाय !

४००—समुच्चयबोधक अव्ययों की पुनरुक्ति नहीं होती ।

४०१—अतिशयता के अर्थ में कभी-कभी शब्दों की पुनरुक्ति के साथ-साथ उनके बीच में ‘ही’ का आगम होता है; मन ही मन में, बातों-ही-बातों में, आगे-ही-आगे, साथ-ही-साथ, काला-ही काला, दूध-ही-दूध । इस रचना से कभी-कभी निश्चय भी सूचित होता है ।

४०२—कभी-कभी पुनरुक्त शब्दों के बीच में संबंधकारक की विभक्तियाँ आती हैं । इस प्रकार की पुनरुक्ति विशेष कर संज्ञाओं में होती है, इसलिए इसका विवेचन कारक-प्रकरण में किया

जायगा । यहाँ केवल अव्ययों की इस पुनरुक्ति के अर्थों का विचार किया जाता है—

(१) अव्यय की और वाच्य अवस्थाओं को छोड़ केवल मूल दशा का स्वीकार—जैसे, सेना पीछे की पीछे रह गई, नौकर बाहर का बाहर लौट गया, कपड़े भीतर के भीतर खो गये, लड़का अभी का अभी कहाँ गया ?

(२) दशांतर—गाड़ी कहाँ की कहाँ पहुँची । तुमने वह पुस्तक कहाँ की कहीं रख दो । यह काम कब का कवच हुआ ।

[स०—कभी-कभी दूसरा शब्द अवधारणा-बोधक रूप में (ही के साथ) आता है; जैसे, नीचे का नीचे ही, यहाँ का यहाँ, वहाँ का वहाँ ।]

अपूर्ण-पुनरुक्त-शब्द

५०३—इन शब्दों का बहुत-कुछ विचार ढंड-समास के विवेचन में हो चुका है । यहाँ इनके रूपों का विस्तृत विवेचन किया जाता है । ये शब्द नीचे लिखी रीतियों से बनते हैं—

(अ) दो सार्थक शब्दों के मेल से, जिनमें दूसरा शब्द पहिले का समानुप्रास होता है; जैसे,

संज्ञाएँ—बीच-बचाव, बाल-बच्चे, दाल-इलिया, मगढ़ा-झाँसा, काम-काज, धौल-धप, जोर-शोर, हलचल ।

विशेषण—जूला-लँगड़ा, ऐसा-चैसा, काला-कलूटा, फटा-दूटा, चौड़ा-चकरा, भरा-पूरा ।

क्रिया—समझना-बूझना, लेना-देना, लड़ना-भिड़ना, बोलना-चालना, सोचना-विचारना ।

अव्यय—यहाँ-वहाँ, इधर-उधर, जहाँ-तहाँ, दाँ-बाँ, आर-पार, साँझ-सबेरे, जब-तब, सदा-सर्वदा, जैसे-तैसे ।

[य०—ऊपर दिए हुए अव्यय के उदाहरणों में समूचे शब्द का अर्थ उसके अवयवों के अर्थ से प्रायः भिन्न है; जैसे, जहाँ-तहाँ = सर्वथ; जब तब = सदा; जैसे-तैसे = किसी न किसी प्रकार ।]

(आ) एक सार्थक और एक निरर्थक शब्द के मेल से, जिसमें निरर्थक शब्द बहुधा सार्थक शब्द का समानुप्राप्त रहता है; जैसे,

संज्ञाएँ—टालमटोल, पूछताछ, हूँड-ढाँड़, भाड़-मंखार, गाली-गलौज, बातचीत, चाल-ढाल, भीड़-भाड़ ।

विशेषण—टेढ़ा-मेढ़ा, सीधा-साधा, भोला-भाला, ठीक-ठाक, ढीला-ढाला, उलटा-पुलटा ।

क्रिया—देखना-भालना, धोना-धाना, खीचना-खाँचना, होना-हवाना, पूछना-ताढ़ना ।

अव्यय—ओने-पौने, आमने-सामने, आस-पास ।

[य०—द्वंद्व-समाप्त के विवेचन में दो हुई रीति के अनुसार जो पुनरुक्त निरर्थक शब्द बनते हैं उनका भी ऐसा ही उपयोग होता है; जैसे, पानी-आनी, चिढ़ी-इड़ी,]

(इ) दो निरर्थक शब्दों के मेल से, जो एक-दूसरे के समानुप्राप्त रहते हैं; जैसे, अटर-सटर, अट-सट, आगड़-बगड़, टीम-टाम, सटर-पटर, हटा-कटा ।

[य०—अपूर्ण-पुनरुक्त शब्दों का प्रचार बोल-चाल की भाषा में अधिक होता है और शिष्ट तथा शिक्षित लोग भी इनका उपयोग करते हैं। उपन्यासों तथा नाटकों में बहुधा बोलचाल की भाषा लिखी जाने के कारण, इन शब्दों के प्रयोग से एक प्रकार की स्वामाविकता तथा सुंदरता आती है ।]

अनुकरणावाचक शब्द

५०४—अनुकरणावाचक शब्दों का लक्षण पहले कह दिया-

गया है । (अं०—४६०) । यहाँ उनके सब प्रकार के उदाहरण दिये जाते हैं—

(अ) संज्ञा—बड़-बड़, भन-भन, खटखट, चोची, गिटपिट, गडगड़, फनफन, पटपट, बकवक इत्यादि ।

[स०—कई एक आइट-प्रत्ययोंत शब्द भी अनुकरणबाचक हैं; जैसे, गडगडाइट, भरभराइट, सनसनाइट, गुडगुडाइट ।]

(आ) विशेषण—कुछ अनुकरणबाचक संज्ञाओं में इया प्रत्यय जोड़ने से अनुकरणबाचक विशेषण बनते हैं; जैसे, गड-बड़िया, खटपटिया, भरभरिया ।

(इ) क्रिया—हिनहिनाना, सनसनाना, बकवकाना, पट-पटाना, फनफनाना, भिनभिनाना, गडगडाना, छुरछराना ।

(ई) क्रियाविशेषण—ये शब्द बहुत प्रचलित हैं—

उदा०—मटपट, तड़तड़, पटपट, छुमछुम, थरथर, गटगट, लपकप, भदभद, खदपद, सडसड, दनादन, भड़ाभड़, कटाकट, घड़ाघड़, कड़ाकड़, छमाछम ।

५०५—यहाँ तक जिन यौगिक शब्दों का विचार किया गया है उनके सिवा एक और प्रकार के शब्द होते हैं जिससे कोई स्पष्ट अर्थ सूचित नहीं होता और जो अनियमित रूप से मनमाने रखे जा सकते हैं । इन शब्दों को अनर्गल शब्द कहते हैं ।

उदा०—टॉय-टॉय-फिस, लबड़बौंधौं, लट्पौंडे, जल-कुकुड़ा, ढपोलशंख, अगड़बगड़ ।

[स०—ये शब्द यथार्थ में अनुकरणबाचक शब्दों के अंतर्गत हैं; इसलिए इनका अलग मेद मानने की आवश्यकता नहीं है । अपूर्णपुनरुक्त और अनुकरणबाचक शब्दों के समान इनका प्रचार बोलचाल की भाषा में अधिक होता है, पर साहित्यिक भाषा में इनके प्रयोग से एक प्रकार की दीनता पाई जाती है ।]

[थी०—हिंदी के प्रचलित व्याकरणों में पुनरुक्त शब्दों का विवेचन बहुत कम पाया जाता है। इस कमी का कारण यह जान पड़ता है कि लेखक लोग कदाचित् ऐसे शब्दों को निरे साधारण मानते हैं और इनके आधार पर व्याकरण के (उच्च) नियमों की रचना करना अनावश्यक समझते हैं। इस उदासीनता का एक कारण यह भी हो सकता है कि वे लेखक इन शब्दों को अपनी मातृभाषा के होने के कारण कदाचित् इतने कठिन न समझते हों कि इनके लिए नियम बनाने की आवश्यकता हो। जो हो, ये शब्द इस प्रकार के नहीं हैं कि व्याकरण में इनका संग्रह और विचार न किया जाय। पुनरुक्त शब्द हिंदी भाषा की एक विशेषता है और यह विशेषता भरतखंड की दूसरी आर्य-भाषाओं में भी पाई जाती है। हमने इन शब्दों का जो विवेचन किया है उसमें अपूर्णता, असंगति आदि दोष संभव हैं; तो भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस पुस्तक में इनका पूर्ण विवेचन करने की चेष्टा की गई है और वह हिंदी की अन्य व्याकरण-पुस्तकों में नहीं पाई जाती।]

पुनरुक्त शब्दों के संबंध में यह संदेह हो सकता है कि जब कई एक पुनरुक्त शब्द सामासिक शब्द भी हैं तब उनका अलग वर्ग मानने की क्या आवश्यकता है। इस शंका का समाधान इसी अध्याय के आदि में किया गया है। इस विषय में यहाँ पर इतना और लिखा जाता है कि सभी पुनरुक्त शब्द सामासिक नहीं हैं, इसलिए इनका अलग वर्ग मानने की आवश्यकता है।]

तीसरा भाग ।

वाक्य-विन्यास ।

पहला पृथिव्वेद ।

वाक्य-रचना ।

पहला अध्याय ।

ग्रस्तावना ।

५०६—व्याकरण का मुख्य उद्देश्य वाक्यार्थ का स्पष्टीकरण है और इस स्पष्टीकरण के लिए वाक्य के अवयवों का केवल रूपांतर और प्रयोग ही नहीं, किंतु उनका परस्पर-संबंध भी जानना आवश्यक है। यह पिछला विषय व्याकरण के उस भाग में आता है जिसे वाक्य-विन्यास कहते हैं। वाक्य-विन्यास में, शब्दों को उनके परस्पर सम्बन्ध के अनुसार यथाक्रम रखने की और उनसे वाक्य बनाने की रीति का भी वर्णन किया जाता है।

वाक्य का लक्षण पहले लिखा जा चुका है। (अं०—८) ।

(क) अर्थ के अनुसार वाक्य आठ प्रकार के होते हैं—

(१) विधानार्थक—जिससे किसी बात का होना पाया जाय; जैसे, इंदौर पहले एक गाँव था। मनुष्य अब खाता है।

(२) निशेध-वाचक—जो किसी विषय का अभाव सूचित करता है; जैसे, बिना पानी के कोई जीवधारी नहीं जी सकता। आपका जाना उचित नहीं है।

- (३) आज्ञार्थक—जिससे आज्ञा, विनती या उपदेश का अर्थ सूचित होता है; जैसे, यहाँ आओ । ब्रह्म मत जाना । माता-पिता का कहना मानो ।
- (४) प्रश्नार्थक—जिससे प्रश्न का वोध होता है; जैसे, यह लड़का कौन है ? यह काम कैसे किया जायगा ?
- (५) विस्मयादिवोधक—जो आश्चर्य, विस्मय, आदि भाव बताता है; जैसे, वह कैसा भूख है ! ऐ ! धंटा बज गया !
- (६) इच्छावोधक—जिससे इच्छा वा आशीष सूचित होती है; जैसे, ईश्वर सबका भला करे । तुम्हारी बढ़ती हो ।
- (७) संदेहसूचक—जो संदेह या संभावना प्रकट करता है; यथा, शायद आज पानी बरसे । यह काम उस लड़के ने किया होगा । गाड़ी आती होगी ।
- (८) संकेतार्थक—जिससे संकेत अर्थात् शर्त पाई जाती है, जैसे, आप कहें तो मैं जाऊँ । पानी न बरसता तो धान सुख जाता ।
- ५०६—बाक्य में शब्दों का परस्पर ठीक-ठीक संबंध जानने के लिए उनका एक दूसरे से अन्वय, एक दूसरे पर उनका अधिकार और उनका क्रम जानने की आवश्यकता होती है; इसलिए बाक्य-विन्यास में इन तीनों विषयों का विचार किया जाता है ।
- (क) दो शब्दों में लिंग, वचन, पुरुष, कारक अथवा काल की जो समानता रहती है उसे अन्वय कहते हैं; जैसे, छोटा लड़का रोता है । इस बाक्य में “छोटा” शब्द का “लड़का” शब्द से लिंग और वचन का अन्वय है; और “रोता है” शब्द “लड़का” शब्द से लिंग, वचन और पुरुष में अन्वित है ।

(ख) अधिकार उस संबंध को कहते हैं, जिसके कारण किसी एक शब्द के प्रयोग से दूसरी संज्ञा या सर्वनाम किसी विशेष कारक में आता है; जैसे, लड़का बंदर से डरता है। इस वाक्य में डरना किया के योग से “बंदर” शब्द अपादानकारक में आया है।

(ग) शब्दों को, उनके अर्थी और संबंध की प्रधानता के अनुसार, वाक्य में यथा-स्थान रखना क्रम कहलाता है।

[स०—इस पुस्तक में अन्वय, अधिकार और क्रम के नियम अलग-अलग लिखने का पूरा प्रयत्न नहीं किया गया है; किंतु क्रम के प्रत्येक शब्द-मेद के विषय में कई बार विचार करना पड़ता, और इन विषयों के अलग-अलग विभाग करने में कठिनाई होती है। इसलिए अधिकार शब्द-मेदों की वाक्य-विन्यास-संबंधी प्रायः सभी बातें एक शब्द-मेद के साथ एक ही स्थान में लिखी गई हैं।]

५०८—वाक्य में शब्दों का परस्पर संबंध दो रीतियों से बतलाया जा सकता है—(१) शब्दों को उनके अर्थी और प्रयोग के अनुसार मिलाकर वाक्य बनाने से और (२) वाक्य के अवयवों को उनके अर्थी और प्रयोग के अनुसार अलग-अलग करने से। पहली रीति को वाक्य-रचना और दूसरी रीति को वाक्य-पृथक-रण कहते हैं। यह पिछली रीति हिंदी में अँगरेजी से आई है; और वाक्य के अर्थी-बोध में इससे बहुत सहायता मिलती है। (इस पुस्तक में दोनों रीतियों का बर्णन किया जायगा।)

५०९—वाक्य में मुख्य दो शब्द होते हैं—(१) उद्देश्य और (२) विधेय। वाक्य में जिस वस्तु के विषय में विधान किया जाता है उसे सूचित करनेवाले शब्द को उद्देश्य कहते हैं; और उद्देश्य के विषय में विधान करनेवाला शब्द विधेय कहलाता है।

उदा०—“पानी गिरा”। इस वाक्य में “पानी” शब्द उद्देश्य और “गिरा” विधेय है। जब वाक्य में दो ही शब्द रहते हैं तब उद्देश्य में संज्ञा अथवा सर्वनाम और विधेय में क्रिया आती है। उद्देश्य की संज्ञा बहुधा कर्त्ताकारक में रहती है और क्रिया किसी एक काल, पुरुष, लिंग, वचन, वाच्य अर्थ और प्रयोग में आती है। यदि क्रिया सकर्मक हो तो इसके साथ कर्म भी आता है; जैसे, लड़का चित्र खींचता है। इस वाक्य में चित्र कर्म है। वाक्य के और भी खंड होते हैं; पर वे सब मुख्य दोनों खंडों के आश्रित रहते हैं। यिन दोनों अवयवों (अर्थात् उद्देश्य और विधेय) के वाक्या नहीं बन सकता और प्रत्येक वाक्य में एक संज्ञा और एक क्रिया अवश्य रहती है।

[स०—उद्देश्य और विधेय का विशेष विवेचन इसी भाग के दूसरे परिच्छेद में किया जायगा ।]

दूसरा अध्याय ।

कारकों के अर्थ और प्रयोग ।

५१०—संज्ञाओं (और सर्वनामों) का, दूसरे शब्दों के साथ, ठीक-ठीक संबंध जानने के लिए उनके कारकों के भिन्न-भिन्न अर्थ और प्रयोग जानना आवश्यक है।

(१) कर्त्ता-कारक ।

५११—हिंदी में कर्त्ता-कारक के दो रूप हैं—(१) अप्रत्यय (प्रधान), (२) सप्रत्यय (अप्रधान) ।

अप्रत्यय कर्त्ता-कारक नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(क) प्रातिपादिक के अर्थ में (किसी वस्तु के उल्लेख मात्र में); जैसे, पुण्य, पाप, लड़का, बेद, सत्संग, कागज ।

[स०—शब्द-कोशों और लेखों के शब्दोंको में संश्लेषण इसी रूप में आती है । इस पुस्तक में अलग-अलग अक्षरों और शब्दों के जो उदाहरण दिए गए हैं वे सब इसी अर्थ में कर्त्ता-कारक हैं ।]

(ख) उद्देश्य में—पानी गिरा, नौकर काम पर भेजा जायगा; हम तुम्हें चुलाते हैं ।

(ग) उद्देश्य-पूर्ति में—घाड़ा एक जानवर है, मंत्री राजा हो गया; साधु चोर निकला, सिपाही सेनापति बनाया गया ।

(घ) स्वतंत्र कर्त्ता के अर्थ में—इस भगवती की कुणा से सब चिंताएँ दूर होकर बुद्धि निर्मल हुई (शिव०), रात बीतकर आस्मान के किनारों पर लाली दीड़ आई थी (गुटका), इससे आहार पचकर उदर हल्का हो जाता है (शक०), कोयला जल भई राख, नौ बजकर दस मिनट हुए हैं; हमारे मित्र, जो काशी में रहते हैं, उनके लड़के का विवाह है, मामला अदालत के सामने पेश होकर, कही आदमी इलजाम में पकड़े गये (सर० ४) ।

[स०—जिस संशा या सर्वनाम का वाक्य के किसी शब्द से संबंध नहीं रहता, अथवा जो केवल पूर्वांकिक अथवा अपूर्ण कियायोतक रूदंत से संबंध रखता है और कर्त्ताकारक में आता है उसे स्वतंत्र कर्त्ता कहते हैं । हिंदी में इस स्वतंत्र कर्त्ता का प्रयोग अधिक नहीं होता । कभी-कभी कियार्थक संशा के साथ भी स्वतंत्र कर्त्ता आता है; जैसे, मालवे पर गुजरात-वालों का अधिकार होना सिद्ध है । (सर०) ।]

(ङ) स्वतंत्र उद्देश्य-पूर्ति में—मंत्री का राजा होना सबको बुरा लगा, लड़के का स्त्री बनना ठीक नहीं है ।

५१२—कुछ कालवाचक संज्ञाएँ, बहुवचन के विकृत रूप में ही कर्त्ता-कारक में आती हैं; जैसे, मुझे परदेश में बरसों बीत गये, इस काम में महीनों लगते हैं।

५१३—नहाना, छीकना, खासना, आदि कुछ शारीर-व्यापार-सूचक क्रियाओं के भूतकालिक कुदंत से बने हुए कालों को छोड़ शेष अकर्मक क्रियाओं के और बकता, भूलना, आदि कही एक सकर्मक क्रियाओं के सब कालों में अप्रत्यय कर्त्ता-कारक आता है। उदाहरण में जाता है, लड़का आया, स्त्री सोती थी, वह कुछ नहीं बोला। (संयुक्त क्रियाओं के साथ इस कारक के प्रयोग के लिए ६३८ वाँ अंक देखो ।)

५१४—सप्रत्यय कर्त्ता-कारक वाक्य में केवल उद्देश्य ही के अर्थ में आता है; जैसे, लड़के ने चिठ्ठी लिखी, मैंने नौकर को बुलाया, हमने अभी नहाया है।

५१५—बोलना, भूलना, बकना, लाना, समझना, जनना, आदि सकर्मक क्रियाओं को छोड़ शेष सकर्मक क्रियाओं के और नहाना, छीकना, खासना, आदि अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कुदंत से बने हुए कालों के साथ सप्रत्यय कर्त्ता-कारक आता है; जैसे, तुमने क्यों छीका, रानी ने ब्राह्मण को दक्षिणा दी, नौकर ने कोठा भाड़ा होगा, यदि मैंने उसे देखा होता तो मैं उसे अवश्य बुलाता।

५१६—सप्रत्यय कर्त्ता-कारक केवल नीचे लिखी संयुक्त सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कुदंत से बने हुए कालों के साथ आता है—

(क) अनुमति-बोधक—उसने मुझे बोलने न दिया और न बहाँ रहने दिया।

(ख) इच्छानोधक—हमने उसे देखा (देखना), चाहा, राजा ने क्या लेनी चाही ।

(ग) अव्वकाश-बोधक—(विकल्प से) जब वह पूर्वकालिक कुदंत के योग से बनती है; वौसे, मैंने उससे यह बात न कह पाई । (अथवा) मैं उससे यह बात न कह पाया । (अं०—६३७) ।

(घ) अवधारण-बोधक—जब उसका उत्तरार्द्ध सकर्मक होता है; वौसे, लड़के ने पाठ पढ़ लिया, उसने अपने साथी को सार दिया, नौकर ने चिट्ठी फाड़ डाली, हमने सो लिया, इत्यादि ।

५१७—प्राचीन हिंदी के पद्य में और बहुधा गद्य में भी सप्रत्यय कर्त्ता-कारक का प्रयोग बहुत कम मिलता है; वौसे, “सीताहि चितै कही प्रभु बाता”, “सन्यासियन मेरे विल ते सब धन काढ़ लियो” (राज०) ।

(२) कर्म-कारक ।

५१८—कर्म-कारक का प्रयोग सकर्मक किया के साथ होता है और कर्त्ता-कारक के समान वह दो रूपों में आता है—(१) अप्रत्यय (२) सप्रत्यय ।

अप्रत्यय कर्म-कारक से बहुधा नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—

(क) मुख्य कर्म—राजा ने ब्राह्मण को धन दिया, गुरु शिष्य को गृणित पढ़ाता है, नट ने लोगों को खेल दिखाया ।

(ख) कर्म-पूर्ति—अहल्या ने गंगाधर को दीवान बनाया, मैंने चोर को साधु समझ लिया, राजा ब्राह्मण को गुरु मानता है ।

(ग) सजातीय कर्म (ब्रहुधा अकर्मक क्रियाओं के साथ)—सिपाही कई लड़ाइयाँ लड़ा, “सोओ सुख-निंदिया, प्यारे

लल्लन” (नील०), किसान ने चोर को खूब मार मारी, वही यह नाच नाचते हैं । (विचित्र०) ।

(घ) अपरिचित वा अनिश्चित कर्म—मैंने शेर देखा है, पानी लाओ, लड़का चिट्ठी लिखता है, हम एक नौकर खोजते हैं ।

५१६—नामबोधक संयुक्त सकर्मक क्रियाओं को सहकारी शब्द अप्रत्यय कर्म-कारक में आता है; जैसे, स्वीकार करना, नाश करना, त्याग करना, दिखाई देना, सुनाई देना ।

५२०—सप्रत्यय कर्म-कारक बहुधा नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(क) निश्चित कर्म में—चोर ने लड़के को मारा, हमने शेर को देखा है, लड़का चिट्ठी को पढ़ता है, मालिक ने नौकर को निकाल दिया, चित्र को बनाओ ।

(ख) व्यक्तिवाचक, अधिकारवाचक तथा संबंध-वाचक कर्म में; जैसे, हम मोहन को जानते हैं, राजा ने ब्राह्मण को देखा ढाकू गाँव के मुखिया को खोजते थे, महाजन ने अपने भाई को अलग कर दिया, गुरु शिष्य को बुलावेंगे ।

(ग) मनुष्यवाचक सार्वनामिक कर्म में—राजा ने उसे दिया, सिपाही तुमको पकड़ लेगा, लड़का किसी को देखता है, आप किसको खोजते हैं ?

(घ) करना, बनना, समझना, मानना इत्यादि अपूर्ण क्रियाओं का कर्म, जब उसके साथ कर्म-पूर्ति आती है; जैसे, ईश्वर राई को पर्वत करता है; अहल्या ने गंगाधर को दीवान बनाया ।

(ग) कर्मवाच्य के भावे प्रयोग के उद्देश्य में—फिर उन्हें एक बहुमूल्य चादर पर लिटाया जाता (सर०), भारत के प्रदर्शन में बालक कृष्णामूर्ति को उसका सिर और मिसेज ऐंटी बिसेन्ट को उसका संरक्षक बनाया गया है (नामरी०), कभी-कभी डाक्टर कैलास बाबू को तो सभा की ओर से निमंत्रित किया जाया करे (शिव०) । (अ०—३६८) .

४२१—जिन विशेषणों का प्रयोग संज्ञा के समान होता है उनमें सप्रत्यय कर्मकारक आता है ; जैसे, दीन को मत सताओ, अनाथों को पालो, धनवाले को सब चाहते हैं ।

४२२—जब वाक्य में अपादान, संबंध अथवा अधिकरण-कारक की विवर्ज्ञा नहीं होती, तब उनके बदले कर्म-कारक आता है ; जैसे, मैं गाय दुहता हूँ (अर्थात् गाय से दूध), थाली परोसो (अर्थात् थाली में भोजन), नौकर कोठा खोलेगा (अर्थात् कोठे के किंवाड़) ।

४२३—बुलाना, पुकारना, कोसना, सुलाना, जगाना, आदि कुछ रुढ़ और यौगिक क्रियाओं के साथ सप्रत्यय कर्मकारक आता है ; जैसे, वह कुचे को बुलाता है ; खी बचे को सुलाती थी, नौकर ने मालिक को जगाया ।

४२४—“मारना” के साथ कर्मकारक के दोनों रूपों का प्रयोग होता है ; पर उनके अर्थ में बहुत अंतर पड़ जाता है ; जैसे, चोर ने लड़का मारा, चोर ने लड़के को मारा, चोर ने लड़के को पत्थर मारा ।

४२५—निश्चित कालवाचक संज्ञा में और गतिवाचक क्रिया के साथ बहुधा अधिकरण के अर्थ में सप्रत्यय कर्म-कारक आता

हैं; जैसे, रात का पानी गिरा, सोमवार का सभा होगी,) हम दो पहर को घर में थे, राम बन को गये, हस्तिनापुर को छलिये, वह कचहरी को नहीं आया ।

[स०—कभी-कभी इस अर्थ में करण-कारक की विभक्ति का लोप भी हो जाता है; जैसे, हम घर गये, वह गाँव में रात रहा, गत वर्ष लूट वर्षी हुई, इसी से हम तुमको स्वर्ग भेजेंगे (सत्य०) ।]

५२६—कविता में ऊपर लिखे नियमों का बहुधा व्यतिक्रम हो जाता है; जैसे, जारद देखा विकल जयन्ता, जगत जनायो जिहिं सकल सो हरि जान्यो नाहिं । (सत०) । किन्तु कभी हत-भाग्य नहीं सुख को पाता है (सर०) ।

(३) करण-कारक ।

५२७—करण-कारक से नीचे लिखे अर्थ पाये जाते हैं—

(क) करण अर्धात् साधन—नाक से साँस लेते हैं, पैरों से चलते हैं, शिकारी ने शेर को बन्दूक से मारा ।

(ख) कारण—आपके दर्शन से लाभ हुआ, धन से प्रतिष्ठा बढ़ती है, वह किसी पाप से अजगर हुआ था ।

[स०—इस अर्थ में कारण, हेतु, हच्छा, विचार आदि शब्द भी करण-कारण में आते हैं; जैसे, इस कारण से, इस हेतु से ।]

(ग) रीति—लड़के क्रम से बैठे हैं, मेरी बात ध्यान से सुतो, उसने उसकी ओर क्रोध से ढाइ की, नौकर धीरज से काम करता है ।

[स०—(३) इस अर्थ में बहुधा रीति, प्रकार, विधि, भाँति, तथा, आदि शब्द करण-कारक में आते हैं। (४) अनुकरणवाचक,

शब्दों में इस कारक के योग से कियाविशेषण बनते हैं; जैसे, धम से, फक्त से, घड़ाम से ।]

(घ) साहित्य—विवाह धूम से हुआ, आम खाने से काम या पेड़ गिनने से, सर्वसम्मति से निश्चय हुआ, सबसों राखो प्रेम, उनसे मेरा संबंध है, धो से रोटी खाना, हम यह बात धर्म से कहते हैं ।

(ङ) विकार—हम क्या से क्या हो गये, वह आदमी शूद्र से लक्षित बन गया; मनुष्य बालक से बढ़ होता है ।

(च) दशा—शरीर से हटा-कटा, स्वभाव से कोधी, हृदय से दयालु ।

[द०—इस अर्थ में करण-कारक का प्रयोग बहुधा विशेषण के साथ होता है ।]

(छ) भाव और पलटा—गेहूँ किस भाव से विकता है, तुमने व्याज किस हिसाब से लिया, वे अनाज से धी बदलते हैं ।

(ज) कर्मचाच्य, भावचाच्य और प्रेरणार्थक कियाओं का कर्त्ता—मुझसे चला नहीं जाता, यह काम किसी से न किया जायगा, राजा ने ब्राह्मण से यज्ञ करवाया, दासी से और कोई उपाय न बन पड़ा ।

५२८—कहना, पूछना, बोलना, बकना, प्रार्थना करना, बात करना, आदि कियाओं के साथ गौण कर्म के अर्द्ध में करण-कारक आता है; जैसे, रानी ने दासी से सब हाल कहा, मैंने उससे लड़ाई का कारण पूछा, हम आप से इस बात की प्रतिक्रिया

करते हैं, साथी नीच तुम्हारे मुझसे जब तब अनुचित बकते हैं (हिं० प्र०) ।

[स०—बताना किया के साथ विकल्प से करण अथवा संप्रदान कारक आता है; जैसे, मैं तुमसे (तुमको) यह भेद बताता हूँ ।]

५२८—प्राचीन कथिता में इन कियाओं के साथ बहुधा संप्रदान-कारक आता है; जैसे, मोकहूँ कहा कहव रघुनाथा (राम०), यशुदहिं नंद डराई (ब्रज०)

५६०—करण-कारक की विभक्ति का लोप हो जाने के कारण बल, भरोसे, सहारे, द्वारा, कारण, निमित्त, आदि शब्दों का प्रयोग संबंध-सूचक अव्यय के समान होता है (अं०-२३६); जैसे, लड़का पेड़ के सहारे खड़ा है, डाक के द्वारा, धर्म के कारण ।

५३१—भूख, प्यास, जाड़ा, हाथ, आँख, कान, आदि शब्द इस कारक में बहुधा बहुवचन में आते हैं और इनके पश्चात् विभक्ति का लोप हो जाता है; जैसे, भूखों मरना, जाड़ों मरना, मैंने नौकर के हाथों रुपया भेजा, न आँखों देखा, न कानों सुना ।

(४) संप्रदान-कारक ।

५३२—संप्रदान-कारक नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(क) द्विकर्मक किया के गौण कर्म में—राजा ने ब्राह्मण को धन दिया, गुरु शिष्य को व्याकरण सिखाता है, ढोरों को मैला पानी न पिलाना चाहिये, सौंपि गये मोहिं रघुवर थाती ।

(ख) अपूर्ण सकर्मक किया के मुख्य कर्म में अहल्या ने गंगाधर को दीवान बनाया, मैं चोर को साधु समझा, राम

गोविंद को अपना भाई बताता है, वे तुम्हें मूर्ख कहते हैं, हम जीव को ईश्वर नहीं मानते, नृपहिं दास, दासहिं नृपति ।

[द०—“कहना” किया कभी दिकर्मक और कभी अपूर्ण सकर्मक होती है; और दोनों अर्थों में, और-और दिकर्मक कियाओं के समान, इसके दो कर्म होते हैं; जैसे, मैं तुमसे समाचार कहता हूँ, और मैं तुमसे (तुमको) भाई कहता हूँ । इन दोनों अर्थों में इस किया के साथ जहाँ संप्रादन-कारक आता है वहाँ कभी-कभी विकल्प से करण-कारक भी आता है, जैसा ऊपर के उदाहरणों में आया है । इस किया के पिछले अर्थ के दोनों प्रयोगों का एक उदाहरण यह है —देवता तैं सुर और असुर कहें दानव तैं, दाईं को सुषाय, दाल पैतिये लहत हैं ।]

(ग) फल वा निमित्त—ईश्वर ने सुनने को दो कान दिये हैं, लड़के सैर को गये, राजा लोग इसे शोभा के लिए पालते हैं, वह धन के लिए मरा जाता है, हम अभी आश्रम के दर्शन को जाते हैं, लड़का विद्वान् होने को विद्या पढ़ता है ।

[द०—फल वा निमित्त के अर्थ में बहुधा कियार्थक संज्ञा के संप्रदान कारक का प्रयोग होता है; जैसे, जा रहे हैं वीर लड़ने के लिए (हित०), मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये (प्रेम०), तुम क्या मारने को लाये हो (चंद्र०) । “होना” किया के साथ कियार्थक संज्ञा का संप्रदान-कारक तत्परता अथवा शेष का अर्थ सुचित करता है; जैसे, गाड़ी आने को है, भरात चलने को हुई, अभी बहुत काम होने को है ।]

(घ) प्राप्ति—मुझे बहुत काम रहता है, उसे भरपूर आदर मिला, है लड़के को गाना आता है, लिखना मुझे न आता (सर०) ।

(ड) विनिमय वा मूल्य—हमको तुक एक, अनेक तुम्हें हम जैसे को तैसा मिले, यह पुस्तक चार आने को मिलती है ।

[स०—मूल्य के अर्थ में विकल्प से अधिकरण-कारक भी आता है; जैसे, यह पुस्तक चार आने में मिलती है । (अं०—५४६—८—८०)]

(च) मनोविकार—उसको देह की सुध न रही, तुमहिं न सोच सोहाग बल, करुणाकर कों करुणा कल्पु आई । इस बात में किसीको शंका न होगी ।

(छ) प्रयोजन—मुझे उनसे कुछ नहीं कहना है, उसको इसमें कुछ लाभ नहीं, तुमको इसमें क्या करना है ?

(ज) कर्तव्य, आवश्यकता और योग्यता—मुझे वहाँ जाना चाहिये, यह बात तुमको कब योग्य है (शकु०), ऐसा करना मनुष्यको उचित नहीं है, उनको वहाँ जाना था ।

(झ) अवधारण के अर्थ में मुख्य क्रिया की क्रियार्थीक संज्ञा के साथ संप्रदान-कारक आता है; जैसे, जाने को तो मैं जा सकता हूँ, लिखने को तो यह चिट्ठी अभी लिखी जायगी ।

५३३—संवंध के अर्थ में कोई कोई लेखक संप्रदान-कारक का प्रयोग करते हैं; जैसे, राजा को नौ पुत्र थे (मुद्रा०), जमदग्नि को परशुराम हुए (सत्य०) । इस प्रकार की रचना बहुधा काशी और विहार के लेखक करते हैं और भारतेंदु जी इसके प्रबन्धक जान पड़ते हैं । मराठी में इस रचना का बहुत प्रचार है; जैसे, त्याला दोन भाऊ आहेत । हिंदी में यह रचना इसलिए अशुद्ध है कि इसका प्रयोग न तो पुरानी भाषा में पाया जाता है और न

आधुनिक शिष्ट लेखक ही इसका अनुमोदन करते हैं। इस रचना के बदले हिंदी में स्वतंत्र संवंध-कारक आता है; जैसे,
एक बार भूपति मन माहीं। भई ग़लानि मोरे सुत नाहीं।
(राम०) ।

मधुकर शाह नरेश के इतने भये कुमार। (कवि०) ।

चाहे साहूकार के संतान हो चाहे न हो (शह०) ।

इस अंतर में उनके एक लड़की और एक लड़का भी हो गया
(गुटका०) ।

इस समय इनके केवल एक कन्या है (हिं० को०) ।

२३४—नीचे लिखे शब्दों के योग से बहुधा संप्रदान-कारक
आता है—

(क) लगना, रुचना, मिलना, दिखना, भासना, आजा,
पढ़ना, होना, आदि अकर्मक क्रियाएँ; जैसे, क्या तुमको बुरा
जगा, मुझे खटाई नहीं भाती, हमें ऐसा दिखता है, राजा को
संकट पहा, तुम्हको क्या हुआ है, मोहिं न बहुत प्रपञ्च सुहाई
(राम०) ।

(ख) प्रणाम, नमस्कार, धन्य, धन्यवाद, धधाई, धिकार,
आदि संज्ञाएँ; जैसे, गुरु को प्रणाम है, जगदीश्वर को धन्य है,
इस कृपा के लिए आपको धन्यवाद है; तुलसी, ऐसे पतित के
बार बार धिकार। संस्कृत उदा०—श्रीगणेशाय नमः ।

(ग) चाहिये, उचित, योग्य, आवश्यक, सहज, कठिन, आदि
विशेषण; जैसे, अंतहृं उचित नृपहिं बनवासू, मुझे उपदेश नहीं
चाहिये, मेरे मित्र का कुछ धन आवश्यक है, सघहिं सुलभ ।

५३५—नीचे लिखी संयुक्त क्रियाओं के साथ उद्देश्य बहुधा संप्रदान-कारक में आता है—

(क) आवश्यकता-बोधक क्रियाएँ—जैसे, मुझे वहाँ जाना पड़ा, तुमको यह काम करना होगा, उसे ऐसा नहीं कहना था ।

[स०—यदि इन क्रियाओं का उद्देश्य अप्राणिवाचक हो, तो वह अप्रत्यय कर्त्ता कारक में आता है; जैसे, धंटा बजना चाहिए, अभी बहुत काम होना है । चिन्हों भेजी जानी थी ।]

(ख) पढ़ना और आना के योग से बनी हुई कुछ अवधारणा-बोधक क्रियाएँ—जैसे, बहिन, तुम्हें भी देख पड़गी ये सब बातें आगे (सर०), रोगी को कुछ न सुन पड़ा, उसकी दशा देखकर मुझे रो आया ।

(ग) देना अथवा पढ़ना के योग्य से बनी हुई नाम-बोधक क्रियाएँ—जैसे, मुझे शब्द सुनाई पड़ा, उसे रात को दिखाई नहीं देता ।

५३६—क्रिया की अवधि के अर्थ में कृदंत अठ्यय का प्राणि-वाचक कर्त्ता संप्रदानकारक में आता है; जैसे, मुझे सारी रात तकफते थीं, उनको गए एक साल हुआ, नौकर के लौटते रात हो जायगी, तुम्हें यहाँ आये कई दिन हुए, महाराज का आकर एक महीना होता है ।

(५) अपादान-कारक ।

५३७—अपादान-कारक के अर्थ और प्रयोग नीचे लिखे अनुसार होते हैं—

(क) काल तथा स्थान का आरंभ—वह लखनऊ से आया है, मैं कल से बेकल हूँ, गंगा हिमालय से निकलती है ।

(ख) उत्पत्ति—ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए हैं, दूध से दही बनता है, कोयज्जा खदान से निकाला जाता है, उन से कपड़े बनाये जाते हैं, दीपक तें काजल प्रगट, कमल कीच तें होय ।

(ग) काल वा स्थान का अंतर—अटक से कटक तक, सबेरे से सौंक तक, नख से शिख तक, इत्यादि ।

[दू०—इस अर्थ में कभी-कभी “लेकर” (“ले”) पूर्वकालिक कुदंत का प्रयोग किया जाता है; जैसे, हिमालय से लेकर सेतुबंध-रामेश्वर तक । यात्रक से लेकर बूढ़े तक ।]

(घ) भिन्नता—यह कपड़ा उससे अलग है, आत्मा देह से भिन्न है, गोकुल से मथुरा न्यारी ।

(ङ) तुलना—मुझसे बढ़कर पापी कौन होगा ? कुलिश अस्थि तें, उपल तें लोह कराल कठोर, भारी सें भारी बजन, छोटे से छोटा प्राणी ।

(च) वियोग—वह मुझसे अलग रहता है, पेड़ से पत्ते गिरते हैं, मेरे हाथ से छड़ी छूट पड़ी ।

(छ) निर्दीरण (निश्चित करना)—इन कपड़ों में से आप कौन सा लेते हैं, हिंदुओं में से कई लोग विलायत को गये हैं ।

[दू०—निर्दीरण में बहुधा अधिकरण कारक भी आता है; जैसे, को तुम तीन देव महें कोऊ । हिंदी के कथियों में तुलसीदास श्रेष्ठ हैं । अधिकरण और अपादान के मेल से कभी-कभी “वहाँ होकर” का अर्थ निक-

लता है; जैसे, पानी नाली में से बहता है, रास्ता जंगल में से था, ली कोडे पर से तमाशा देखती है, घोड़े पर से = घोड़े से ।]

(ज) माँगना, लेना, लाना, बचना, नटना, रोकना, छूटना, डरना, छिपना, आदि कियाओं का स्थान वा कारण; जैसे, ब्राह्मण ने मुझसे सारा राज्य माँग लिया, गाड़ी से बचकर चलो, मैं लोटे से जल लेता हूँ, तुम मुझे वहाँ जाने से क्यों रोकते हो ? लड़का दिल्ली से डरता है ।

[य०—“डरना” किया के कारण के अर्थ में विकल्प से कर्म-कारक भी आता है; जैसे, मैं शेर को नहों डरता, अभय होय जो तुमहि डराई ।

(झ) परे, बाहर, दूर, आगे, हटकर, आदि अव्ययों के साथ; जैसे, जाति से बाहर, दिल्ली से परे, घर से दूर, गाँव से आगे सड़क से हटकर ।

[य०—परे, बाहर और आगे संबंध-कारक के साथ भी आते हैं; जैसे, गाँव के बाहर, सड़क के आगे ।]

(६) संबंध-कारक

५३८—संबंध-कारक से अनेक प्रकार के अर्थ सूचित होते हैं, जिनका पूरा-पूरा वर्णकरण कठिन है; इसलिए यहाँ केवल मुख्य-मुख्य अर्थ लिखे जाते हैं—

(क) स्व-स्वाभिभाव*—देश का राजा, राजा का देश, मालिक का घर, घर का मालिक, मेरा कोठा ।

(ख) अंगांगिभाव—लड़के का हाथ, लड़ी के केश, हाथ की अँगुलियाँ, दस पन्ने की पुस्तक, तीन खंड का मकान ।

* स्व = धन, सम्पत्ति ।

(ग) जन्य-जनक-भाव—राजा का बेटा, लड़के का चाप, तुम्हारी माता, ईश्वर की सृष्टि, जगत का कर्ता ।

(घ) कर्तृकर्म-भाव—तुलसीदास की रामायण, रविवर्मा के चित्र, पुस्तक का लेखक, नाटक का कथि, विहारी की सतसई ।

(ङ) कार्यकारण—सोने की अँगूठी, चाँदी का पलंग, मूर्ति का पत्थर, किंवाड़ की लकड़ी, लकड़ी का किंवाड़, मूठ की चाँदी ।

(च) आधाराधेयभाव—नगर के लोग, ब्राह्मणों का पुरा, दूध का कटोरा, कटोरे का दूध, नहर का पानी, पानी की नहर ।

(छ) सेव्य-सेवक-भाव—राजा की सेना, ईश्वर का भक्त, गाँव का जोगी, आन गाँव का सिद्ध ।

(ज) गुणगुणीभाव—मनुष्य की बड़ाई, आम की खटाई, नौकर का विश्वास, भरोसे का नौकर, बड़ाई का काम ।

(झ) बाधा-बाहकभाव—घोड़े की गाड़ी, गाड़ी का घोड़ा, कोल्हू का बैल, बैल का छकड़ा, गधे का बोझ, सवारी का ऊंट ।

(झ) नाता—राजा का भाई, लड़के का फूफा, स्त्री का पति, मेरा काका, वह तुम्हारा कौन है ?

(ट) प्रयोजन—बैठने का कोठा, पीने का पानी, नहाने की जगह, तेल का बासन, दिये की बत्ती, खेती का बैल ।

(ठ) मोल वा माल—पैसे का गुड़, गुड़ का पैसा, सात सेर का चावल, रुपये के सात सेर चावल, रुपये की लकड़ी, लकड़ी का रुपया ।

(ड) परिमाण—दो हाथ की लाठी, खेती एक हर की (गंगा०), दस बीचे का खेत, कम उँचाई की दीवाल, चार सेर की नाप ।

[स०—दस सेर आठा, एक तोला सोना, एक गज रुपड़ा, आदि

वार्षिकों में कोई-कोई वैयाकरण आया, सोना, कपड़ा, आदि शब्दों को संबंध कारक में समझकर दूसरे शब्दों के साथ उनका परिमाण का संबंध मानते हैं, जैसे, आटे के दस सेर, सोने का एक तोला, कपड़े का एक गज। परंतु ये सब शब्द किसी और कारक में भी आ सकते हैं; जैसे, दस सेर आटे में दो सेर धी मिलाओ। यहाँ “आटा” शब्द अधिकरण-कारक और धी शब्द अप्रत्यय कर्म-कारक है; इसलिए इन्हें केवल संबंध-कारक मानना भूल है। ये शब्द यथार्थ में समानाधिकरण के उदाहरण हैं (अं०—१४४) ।]

(ढ) काल और वयस—एक समय की चात, दो हजार वर्ष का इतिहास, दस वर्स की लड़की, छः महीने का बच्चा, चार दिन की चाँदनी ।

(ण) अभेद किंवा जाति—असाक का महीना, खजूर का पेड़, कर्म की फौस, चन्दन की लकड़ी, प्लेग की बीमारी, क्या सौ रुपये की पूँजी, क्या एक बेटे की सन्तात, जय की ध्वनि “मारो-मारो” का शब्द, जाति का शुद्ध, जयपुर का राज्य, दिल्ली का शहर ।

(त) समस्तता—इस अर्थ में किसी एक शब्द के सम्बन्ध कारक के पश्चात् उसी शब्द की पुनरुक्ति करते हैं, जैसे, गाँव का गाँव, घर का घर, मुहळा का मुहळा, कोठा का कोठा। “यह वास्तिक, सारा का सारा, पश्चात्मक है” (सर०) ।

(थ) अविकार—इस अर्थ में भी ऊपर की तरह रचना होती है; जैसे, मूर्ख का मूर्ख, दूध का दूध, पानी का पानी, जैसा का तैसा, जहाँ का तहाँ, वयों की त्यों, “मनुष्य अन्त में कोरा का कोरा बना रहे” (सर०), “नलबल जल ऊँचो चढ़, अन्त नीच को नीच” (सर०) ।

(द) अवधारण—आम के आम, गुठलियों के दाम, बैल

का बैल और डॉड का डॉड, धन का धन गया और ऊपर से बदनामी हुई। घर के घर में लड़ाई होने लगी। बात की बात में = तुरन्त ।

[स०—उपर्युक्त तीनों प्रकार की रचना में आकारांत संज्ञा विभक्ति के बोग से विकृत रूप में नहीं आती; पर बहुवचन में और वाक्यांश के पश्चात् विभक्ति आने पर नियम के अनुसार आ के स्थान में ए हो जाता है; जैसे, वे लोग खड़े के खड़े रह गये, लड़के कोठे के कोठे में चले गये, समाज के समाज ऐसे पाये जाते हैं, सारे के सारे मुसाफिर (सर०) ।]

“बैसा का तैसा” और “बैसे का तैसा”, इन दो वाक्यांशों में रूप और अर्थ का सद्दम मेद है। पहले से अविकार सुचित होता है; पर दूसरे से जन्य-जनक अथवा कार्य-कारण की समता पाई जाती है ।]

(ध) नियमितपन—इस अर्थ में भी ऊपर किसी रचना होती है; पर यह बहुधा विकृत कारकों में आती है और इसमें आकारांत शब्द एकारांत हो जाते हैं; जैसे, सोमवार के सोमवार मेला भरता है, महीने के महीने तनखाह मिलती है, दोपहर के दोपहर, होली के होली, दिवाली के दिवाली, दशहरे के दशहरे ।

(न) दर्शांतर—राहि का पर्वत, मंत्री का राजा होना, दिन की रात हो गई, बात का बतकड़, कुछ का कुछ, फिर राँग का सोना हुआ (सर०) ।

(प) विषय—कान का कचा, आँख का अंधा, गाँठ का पूरा, बात का पछा, धन की इच्छा, “शपथ तुम्हार, भरत के आना” (राम०), गंगा की जय, नाम की भूख ।

५३६—योग्यता अथवा निश्चय के अर्थ में क्रियार्थक संज्ञा का

संबंध-कारक बहुधा “नहीं” के साथ आता है; जैसे, यह बात नहीं होने की (विचित्र), मैं जाने का नहीं हूँ, यह राज्य अविटिकने का नहीं है, रोगी मरने का नहीं, मेरा विचार जाने का नहीं था ।

५४०—क्रियार्थिक संज्ञा और भूतकालिक कृदंत विशेषण के योग से बहुधा संबंध-कारक का प्रयोग होता है और उससे दूसरे कारकों का अर्थ पाया जाता है; जैसे,

कर्त्ता—मेरे जाने पर, कवि की लिखी हुई पुस्तक, भगवान का दिया हुआ सब कुछ ।

कर्म—गाँव की लट, कथा का सुनना, नौकर का भेजा जाना, ऊँट की चोरी ।

करण—कलम का लिखना, भूख का मारा, कल का सिला हुआ, “मोल को लीन्हों”, चूने की छाप, दूध का जला ।

अपादान—डाल का टूटा, जेल का भागा हुआ, बंबई का चला हुआ, दिसावर का आया हुआ ।

(क) कई एक क्रियाओं और दूसरे शब्दों के साथ काल-बाचक संज्ञाओं में अपादान के अर्थ में संबंध-कारक आता है; जैसे, बेटा, मैं कव की पुकार रही हूँ, वह कभी का आ चुका, मैं यहाँ सवेरे का बैठा हूँ, जन्म का दरिद्री ।

अधिकरण—ताँगे का बैठना, पहाड़ का चढ़ना, घर का बिगड़ा हुआ, गोद का खिलाया लड़का, खेत का उपजा हुआ अनाज ।

५४१—क्रियायोतक और तत्कालबोधक कृदंत अव्ययों के साथ बहुधा कर्त्ता और कर्म के अर्थ में संबंध-कारक की “के”

(स्वतंत्र) विभक्ति आती है; जैसे, सरकार अँगरेजी के बनाये सब कुछ बन सकता है (शिव०), मेरे रहते किसी का सामर्थ्य नहीं है, इतनी बात के सुनते ही हरि बोले (प्रेम०), राजा के यह कहते ही सब शांत हो गये ।

५४२—अधिकांश संबंध-सूचकों के योग से संबंध-कारक का प्रयोग होता है (अं०—२३३) ।

५४३—संबंध (अं०—५३३), स्वामित्व और संप्रदान के अर्थ में संबंध-कारक का संबंध किया के साथ होता है और उसकी “के” विभक्ति आती है; जैसे, अब इनके कोई संवान नहीं है, मेरे एक बहिन न हुई (गुटका०), महाजन के बहुत धन है, जिसके आँखें न हों वह क्या जाने ? नाथ, एक बड़े संशय मोरे (राम०), ब्राह्मण यजमानों के राखी बाँधते हैं, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ, हवशी के तमाचा इस जोर से लगा (सर०) ।

[स०—इस प्रकार की रचना का समावान “के” के पश्चात् “पास” “यहाँ” अथवा इसी अर्थ के किसी और शब्द का अध्याहार मानने से हो सकता है । किसी-किसी का मत है कि इन उदाहरणों में “के” संबंध-कारक की “के” विभक्ति नहीं है, किंतु उससे भिन्न एक स्वतंत्र संबंध-सूचक अव्यय है, जो भेद के लिंग-वचन के अनुसार नहीं बदलता ।]

५४४—संबंध-कारक को कभी-कभी (भेद के अध्याहार के कारण) आकारांत संझा मानकर उसमें विभक्तियों का योग करते हैं (अं०—३७७ अ); जैसे, रौँडके को बकने दीजिए (शकु०), एक बार सब धरकों ने महाभारत की कथा सुनी ।

(अ) राजा की चोरी हो गई = राजा के धन की चोरी ।

(आ) जेठ सुदी पंचमी = जेठ की सुदी पंचमी ।

[स०—मेद के अध्याहार के लिये १२ वाँ अध्याय देखो ।]

(७) अधिकरण-कारक ।

५४५—अधिकरण-कारक की मुख्य दो विभक्तियाँ हैं—मैं और पर । इन दोनों विभक्तियों के अर्थ और प्रयोग अलग-अलग हैं; इसलिए इनका विचार अजग-अलग किया जायगा ।

५४६—‘मैं’ का प्रयोग नीचे लिखे अर्थों में होता है—

(क) अभिव्यापक आधार—दूध में मिठास, तिल में तेल, फूल में सुगंध, आत्मा सबमें व्याप्त है ।

[स०—आधार को व्याकरण में अधिकरण कहते हैं और बहुधा तीन प्रकार का होता है । अभिव्यापक आधार वह है जिसके प्रत्येक भाग में आवेद्य पाया जाय । इसे व्याक्ति-आधार भी कहते हैं । औपश्लेषिक आधार वह कहलाता है जिसके किसी एक भाग में आवेद्य रहता है; जैसे, नौकर कोठे में सोता है, लड़का घोड़े पर बैठा है । इसे एक-देशाधार भी कहते हैं । तीसरा आधार वैषायिक कहलाता है और उससे विषय का बोध होता है; जैसे, धर्म में रुचि, विद्या में प्रेम । इसका नाम विषयाधार भी है ।]

(ख) औपश्लेषिक आधार—वह वन में रहता है किसान नदी में नहाता है, मछलियाँ समुद्र में रहती हैं, पुस्तक कोठे में रखती है ।

(ग) वैषिक आधार—नौकर काम में है, विद्या में उसकी रुचि है, इस विषय में कोई मत-भेद नहीं है, रूप में सुंदर, डील में कँचा, गुण में पूरा ।

(घ) मोल—पुस्तक चार आने में मिली, उसने बीस रुपये में गाय ली, यह कपड़ा तुमने कितने में बेचा ?

[स०—मोल के अर्थ में संप्रदान, संबंध और अधिकरण-कारक आते हैं। इन तीनों प्रकार के अर्थों में यह अंतर जान पड़ता है कि संप्रदान-कारक से कुछ अधिक दामों का, अधिकरण-कारक से कुछ कम दामों का और संबंध-कारक से उचित दामों का बोध होता है; जैसे, मैंने वीस रूपये की गाय ली, मैंने वीस रूपये में गाय ली और मैंने वीस रूपये को गाय ली।]

(ड) मेल तथा अंतर—हममें तुममें कोई भेद नहीं, भाई-भाई में प्रीति है, उन दोनों में अनवन है।

(च) कारण—व्यापार में उसे टोटा पड़ा, क्रोध में शरीर छीजता है, बातों में उड़ाना, ऐसा करो जिसमें (वा जिससे) प्रयोजन सिद्ध हो जाय।

(छ) निर्धारण—देवताओं में कौन अधिक पूज्य है? सती स्त्रियों में पश्चिनी प्रसिद्ध है, सबमें छोटा, अंधों में काने राजा, तिन-महँ रावण कबन तुम? नव महँ जिनके एको होइ।
(अं०—५३७ छ)

(ज) स्थिति—सिपाही चिंता में है, उसका भाई युद्ध में मारा गया, रोगी होश में नहीं है, नौकर मुझे रास्ते में मिला, लड़के चैन में हैं।

(झ) निश्चित काल की स्थिति—वह एक घंटे में अच्छा हुआ, दूत कई दिनों में लौटा, संवत् १६५३ में अकाल पड़ा था, प्राचीन समय में भोज नाम का एक प्रतापी राजा हो गया है।

५४७—भरना, समाना, बुसना, मिदना, मिलना, आदि कुछ

कियाओं के साथ व्यापि के अर्थ में अधिकरण का चिन्ह 'में' आता है जैसे, घड़े में पानी भरो, लाल में नीला रंग मिल जाता है, पानी धरती में समा गया।

५४६—गत्यर्थ कियाओं के साथ निश्चित स्थान की वाचक संज्ञाओं में अधिकरण कारक का 'में' चिह्न लगाया जाता है; जैसे, लड़का कोठे में गया, नौकर घर में नहीं आता, वे रात के समय गाँव में पहुँचे, चोर जंगल में जायगा।

[स०—गत्यर्थ कियाओं के साथ और निश्चित कालवाचक संज्ञाओं में अधिकरण के अर्थ में कर्म-कारक भी आता है (अं०—५.२५) । “वह घर की गया”, और “वह घर में गया”, इन दो वाक्यों में कारक के कारण अर्थ का कुछ अंतर है। पहले वाक्य से घर की सीमा तक जाने का बोध होता है; पर दूसरे से घर के भीतर जाने का अर्थ पाया जाता है ।]

५४८—“पर” नीचे लिखे अर्थ सूचित करता है—

(क) एकदेशाधार—सिपाही घोड़े पर बैठा है, लड़का खाट पर सोता है, गाड़ी सड़क पर जा रही है, पेड़ों पर चिड़ियाँ चहचहा रही हैं।

[स०—‘में’ विभक्ति से भी यही अर्थ सूचित होता है। “में” और “पर” के अर्थों में यह अंतर है कि पहले से अंतःस्थ और दूसरे से बाहर स्पर्श का बोध होता है। यही विशेषता बहुधा दूसरे अर्थों में भी पाई जाती है ।]

(ख) सामीप्याधार—मेरा घर सड़क पर है, लड़का द्वार पर खड़ा है, तालाब पर मंदिर बना है, काटक पर सिपाही रहता है।

(ग) दूरस्ता—एक कोस पर, एक एक हाथ के अंतर पर, कुछ आगे जाने पर, एक कोस की दूरी पर ।

(घ) विषयाधार—नौकरों पर देया करो, राजा उस कल्या पर मोहित हो गये, आप पर मेरा विश्वास है, इस बात पर बड़ा विचार हुआ, जाकर जेहि पर सत्य सनेहू, जाति-मेद पर कोई आपेक्षा नहीं करता ।

(ङ) कारण—मेरे बोलने पर वह अप्रसन्न हो गया, इस बात पर सब भगवा मिट जायगा, लेन-देन पर कहान्सुनी हो गई, अच्छे काम पर इनाम मिलता है, पानी के छोटे छीटों पर राजा को बटबोज की याद आई ।

(च) अधिकता—इस अर्थ में संज्ञा की द्विरुक्ति होती है; जैसे, घर से चिड़ियों पर चिड़ियाँ आती हैं (सर०), दिन पर दिन भाव चढ़ रहा है, तगादे पर तगादा भेजा जा रहा है, लड़ाई में सिपाहियों पर सिपाही कट रहे हैं ।

(छ) निश्चित काल—समय पर वर्षा नहीं हुई, नौकर ठीक समय पर गया, गाड़ी नौ बज कर पैंतालीस मिनट पर आती है, एक एक घंटे पर दबा दी जावे ।

(ज) नियम-पालन—वह अपने जेठों की चाल पर चलता है, लड़के माँ-बाप के स्वभाव पर होते हैं, अंत में वह अपनी जाति पर गया, तुम अपनी बात पर नहीं रहते ।

(झ) अनन्तरता—भोजन करने पर पान खाना, बात पर बात निकलती है, आपका पत्र आने पर सब प्रबंध हो जायगा ।

(व) विरोध अथवा अनादर—इस अर्थ में ‘पर’ के पश्चात् बहुधा ‘भी’ आता है; जैसे, यह औषधि बात रोग पर चलती है, जले पर नोन लगाना, लड़का छोटा होने पर भी चतुर है, इतना होने पर भी कोई निश्चय न हुआ, मेरे कई बार समझाने पर भी वह दुष्कर्म नहीं छोड़ता ।

२५०—जहाँ, कहाँ, यहाँ, बहाँ, ऊँचे, नीचे, आदि कुछ स्थान-वाचक क्रिया-विशेषणों के साथ विकल्प से “पर” आता है; जैसे, पहले जहाँ पर सभ्यता हो अंकुरित फूली-फली (भारत), जहाँ अभी समुद्र है वहाँ पर किसी समय जंगल था (सर), अपरबाला पत्थर २० फुट से अधिक ऊँचे पर था (विचित्र) ।

२५१—चढ़ना, मरना (इच्छा करना), घटना, छोड़ना, बारना, निछावर, निर्भर, आदि शब्दों के योग से बहुधा “पर” का प्रयोग होता है; जैसे पहाड़ पर चढ़ना, नाम पर मरना, आज का काम कल पर मत छोड़ो, मेरा जाना आपके आने पर निर्भर है, तो-पर वारों उरवसी ।

२५२—ब्रजभाषा में “पर” का रूप “पै” है; और यह कभी-कभी “से” का पर्याय होकर करण-कारक में आता है; जैसे मोपै चल्यो नाहिं जातु । कभी-कभी यह “पास” के अर्थ में प्रयुक्त होता है; जैसे,—निज भावते पै अबहीं मोहि जाने (जगत्) हमपै एक भी पैसा नहीं है । इस विभक्ति का प्रयोग बहुधा कविता में होता है ।

२५३—कभी-कभी ‘में’ और “पर” आपस में बदल जाते हैं; जैसे क्या आप घर पर (=घर में) मिलेंगे, नौकर दूकान पर (=दूकान में) बैठा है, उसकी देह में (=देह पर) कपड़ा

नहीं है, जल में (=जल पर) गाढ़ी नाव पर, यल गाढ़ी पर नाव ।

५५४—अधिकरण-कारक की विभक्ति के साथ कभी-कभी अपादान और संबंध-कारकों की विभक्तियों का योग होता है*; और जिस शब्द के साथ ये विभक्तियाँ आती हैं, उससे दोनों विभक्तियों का अर्थ पाया जाता है; जैसे, वह घोड़े पर से गिर पड़ा, जहाज पर के यात्रियाँ ने आनंद मचाया, इस नगर में का कोई आदमी तुमको जानता है? हिंदुओं में से कई लोग विलायत को गये हैं, डोरी पर का नाच मुझे बहुत ही भाया (विचित्र०) । (अं०—५३७ छ०) ।

५५५—कई एक कालवाचक और स्थानवाचक क्रिया-विशेषणों में और विशेषकर आकारांत संज्ञाओं में अधिकरण-कारक की विभक्तियों का लोप हो जाता है; जैसे; इन दिनों हर-एक चीज महँगी है, उस समय मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं थी, मैं उनके दरवाजे कभी नहीं गया, छू; बजे सूरज निकलता है, उस जगह बहुत भोड़ थी, हम आपके पाँव पढ़ते हैं ।

(अ) प्राचोन कविता में इन विभक्तियों का लोप बहुधा होता है, जैसे, पुत्रि, फिरिय बन बहुत कलेश् (राम०); ठाड़ी अजिर यशोदा रानी (ब्रज०) ।

जो सिर धरि महिमा मही, लहियत राजा-राव ।

* एक विभक्ति के पश्चात् दूसरी विभक्ति का योग होना हिंदी भाषा की एक विशेषता है जिसके कारण कई एक वैयाकरण इस भाषा के विभक्ति-प्रत्ययों को स्वतंत्र अवयव अथवा उनके अपन्नांश मानते हैं। संस्कृत में विभक्ति के पश्चात् कभी-कभी दूसरा प्रत्यय तो जाता है,—जैसे, अहंकार, ममत्व, आदि में—पर विभक्ति-प्रत्यय नहीं आता ।

प्रगटत जडता आपनी, मुकुट छु पहिरत पाव ॥ (सर०) । :

५५६—अधिकरण की विभक्तियों का नित्य लोप होने के कारण कई एक संज्ञाओं का प्रयोग संबंध-सूचक के समान होने लगा है; जैसे, वश, किनारे, नाम, विषय, लेख, पलटे (अं०—२३६) ।

५५७—कोई-कोई वैयाकरण “तक”, “भर”, “बीच”, “तले”, आदि कई एक अव्ययों को अधिकरण-कारक की विभक्तियों में गिनते हैं; पर ये शब्द बहुधा संबंध-सूचक अथवा क्रिया-विशेषण के समान प्रयोग में आते हैं; इसलिए इन्हें विभक्तियों में गिनना भूल है। इनका विवेचन यथास्थान हो चुका है।

(८) संबोधन-कारक ।

५५८—इस कारक का प्रयोग किसी को चिताने अथवा पुकारने में होता है; जैसे, भाई, तुम कहाँ गये थे ? मित्रो, करो हमारी शीघ्र सहाय (सर०) ।

५५९—संबोधन-कारक के साथ (आगे या पीछे) बहुधा कोई-एक विस्मयादि-बोधक आता है जो भूल से इस कारक की विभक्ति मान लिया जाता है; जैसे, तजो, रे मन, हरि-विमुखन को संग (सूर०), हे प्रभु, रक्षा करो हमारी, भैया हो, यहाँ तो आओ ।

(क) कविता में कवि लोग बहुधा अपने नाम का प्रयोग करते हैं जिसे छाप कहते हैं और जिसका अर्थ कभी-कभी संबोधन-कारक का होता है; जैसे, रहिमन, निज मन की व्यथा, सुरदास, स्वामी करुणामय । यह शब्द अपने अर्थ के अनुसार और-और कारकों में आता है; जैसे, कहि गिरिधर कविराय, कलिकाल तुलसी से शठहिं हठि राम संमुख करत को ?

तीसरा अध्याय ।

समानाधिकरण शब्द ।

५६०—जो शब्द या वाक्यांश किसी समानार्थी शब्द का अर्थ संघट करने के लिए वाक्य में आता है उसे उस शब्द का समानाधिकरण कहते हैं; जैसे, दशरथ के पुत्र, राम बन को गये, पिता-पुत्र दोनों वहाँ बैठे हैं, भूले हुओं को पथ दिखाना, यह हमारा कार्य था । (भारत०) ।

इन वाक्यों में राम, दोनों और यह क्रमशः पुत्र, पिता-पुत्र और पढ़ना के समानाधिकरण शब्द अथवा वाक्यांश बहुधा नीचे लिखे अर्थ सूचित करते हैं ।

५६१—हिंदी में समानाधिकरण शब्द अथवा वाक्यांश बहुधा नीचे लिखे अर्थ सूचित करते हैं—

(अ) नाम, पदबी, दशा अथवा जाति—जैसे, महाराजा प्रतापसिंह, नारद मुनि, गोसाई तुलसीदास, रामशंकर त्रिपाठी, गोपाल नाम का लड़का, मुझ आफत को टालने के लिए ।

(आ) परिणाम—दो सेर आटा, एक तोला सोना, दो बीघे धरती, एक गज कपड़ा, दो हाथ चौड़ाई ।

(इ) निष्ठय—अच्छी तरह से पढ़ना, यह एक गुण है, पुत्र दोनों बैठे हैं, को यह चल्यो रुद्र सम आवत (सत्य० ।

(ई) समुदाय—सोना, चाँदी, ताँबा आदि धातु कहाते हैं, राज-पाट, धन-धाम सब छूटा (सत्य०), वे सबके सब भाग गये (विचित्र०), धन-धरती सबका सब हाथ से निकल गया ।

(गुटका०) ।

(उ) पृथक्ता—पोथी-पत्रा, पूजा-पाठ, दान-होम-जप, कुछ भी काम न आया (सत्य०), विपत्ति में भाईं-बंधु, स्त्री-पुत्र, कुटुंब-परिवार कोई साथी नहीं होता ।

(ऊ) शब्दार्थ—जहाँ से नगरकोट (शहरपनाह) का फाटक सौ गज दूर था (विचित्र०), संवत् ११६३ (सन् ११०६) में (नागरी०), किस दशा में—इस हालत में, समाज के बनाये हुए नियम अर्थात् कायदे हर आदमी को मानना मुनासिब समझा जायगा (स्वा०) ?

(ऋ) भूल-संशोधन—इसका उपाय (उपयोग ?) सीमा के बाहर हो जाता है (सर०), मैं उस समय कचहरी को—नहीं बाजार को जा रहा था ।

(ऋ) अवधारण—चंद्रहास मेरी संपत्ति—अतुल संपत्ति का अधिकारी होगा (चंद्र०), अच्छी शिक्षा पाये हुए मुसलमान और हिंदू भी—विशेष करके मुसलमान फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं (सर०) ।

५६२—‘सब’, ‘कोई’, ‘कुछ’, ‘दोनों’ और ‘यह’, बहुधा दूसरे शब्दों के समानाधिकरण होकर आते हैं; और ‘आदि’ ‘नामक’, ‘अर्थात्’, ‘सरीखा’, ‘जैसे’, बहुधा दो समानाधिकरण शब्दों के बीच में आते हैं । इन सबके उदाहरण ऊपर आ चुके हैं ।

५६३—समानाधिकरण शब्द जिस कारक में आता है उसी में उसका मुख्य शब्द भी रहता है; जैसे, राजा जनक की पुत्री सीता के विवाह के लिए स्वयंबर रचा गया । इस बाक्य में मुख्य शब्द राजा और पुत्री संबंध-कारक में हैं, क्योंकि उनके समानाधिकरण शब्द जनक और सीता संबंध-कारक में आये हैं ।

(अ) समानाधिकरण शब्द का अर्थ और कारक मूल शब्द के अर्थ और कारक से भिन्न न होना चाहिए । नीचे लिखे वाक्य इस नियम के विरुद्ध होने के कारण अशुद्ध हैं—

जब राजकुमार सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध का पहला नाम) २६ वर्ष के हुए (स. १०), गत वर्ष का (सन् १६१४) हिसाब ।

(आ) कभी-कभी एक वाक्य भी समानाधिकरण होता है; जैसे, वह पूरा भरोसा रखता है कि मेरे श्रम का फल मुझे ही मिलेगा । इस वाक्य में “कि” से आरंभ होनेवाला उपवाक्य “भरोसा” शब्द का समानाधिकरण है ।

[स०—वाक्यों का विशेष विचार इस भाग के दूसरे परिच्छेद में किया जायगा ।]

चौथा अध्याय ।

उद्देश्य, कर्म और क्रिया का अन्वय ।

(१) उद्देश्य और क्रिया का अन्वय ।

५.६४—जब अप्रत्यय कर्ता-कारक वाक्य का उद्देश्य होता है, तब उसके लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष होते हैं; जैसे, लड़का जाता है, तुम कव आओगे, लियाँ गीत गाती थीं, नौकर गाँव को भेजा जायगा, घंटी बजाई गई । (अं०—३६६, ३६७) ।

[स०—संभाव्य भविष्यत् तथा विधिकाल के कर्तृवाक्य में और स्थितिदर्शक “होना” क्रिया के सामान्य वर्तमानकाल में लिंग के कारण क्रिया का रूपांतर नहीं होता; जैसे, लड़का जावे, लियाँ गीत गावें, इम यहाँ हैं, लड़की तू जा ।

५६५—आदर के अर्थ में एक वचन उद्देश्य के साथ बहुवचन किया आती है; जैसे, मेरे बड़े भाई आये हैं, बोले राम जोरि जुग पानी, महारानी दीन स्त्रियों पर दया करती थीं, राजकुमार सभा में बुलाये गये ।

(क) कविता में कभी-कभी विधिकाल अथवा संभाव्यभविष्यत् का मध्यम-पुरुष अन्य-पुरुष उद्देश्य के साथ आता है; जैसे, कलहु सो मम उर धाम, जरौ सुसंपति, सदन, सुख ।

५६६—जब जातिवाचक संज्ञा के स्थान में कोई समुदायवाचक संज्ञा (एक-वचन में) आती है, तब किया का लिंग-वचन समुदायवाचक संज्ञा के अनुसार होता है; जैसे, सिपाहियों का एक मुँड जा रहा है, उनके कोई संतान नहीं हुई, सभा में बहुत भीड़ थी ।

५६७—यदि पूरी किया की उद्देश्य-पूर्ति के लिंग-वचन-पुरुष उद्देश्य के लिंग-वचन-पुरुष से भिन्न हों तो किया के लिंग-वचन-पुरुष बहुधा उद्देश्य ही के अनुसार होते हैं; जैसे, वह टकसाल न समझा जावेगा, (सत्य०), बेटी किसी दिन पराए घर का धन होती है (शक०), हम क्या से क्या हो गये (सर०), काले कपड़े शोक का चिन्ह माने जाते हैं । दूर देश में बसनेवाली जाति वहाँ के असली रहनेवालों को नष्ट करने का कारण हुई । (सर०) ।

अप०—यदि उद्देश्य-पूर्ति का अर्थ मुख्य हो अथवा उसमें उत्तम या मध्यम पुरुष, सर्वनाम आवे, तो किया के लिंग-वचन-पुरुष उद्देश्यपूर्ति के अनुसार होते हैं और उसके पूर्व संबंध-कारक की विभक्ति बहुधा उसीके लिंग के अनुसार होती है, जैसे,—

हिजो और रूपांतर का प्रमाण हिंदी हो सकती है (सर०), उनको एक रकाबी मेरा एक निवाला होता (विचित्र०), इन सब समाओं का मुख्य उद्देश्य मैं ही था, उनकी आशा तुम्हीं हो, मूँ बोलना उसकी आदत हो गई है, इस बोर युद्ध का कारण प्रजा की संपत्ति थी ।

[स०—शिष्ट लेखक बहुधा इस बात का विचार रखते हैं कि उद्देश्य-पूर्ति के लिंग-वचन यथा-संभव वही हों जो उद्देश्य के होते हैं; जैसे, मोड़ी लिपि कैथी की भी काकी है (सर०); उसका कवि भी हम लोगों का एक जीवन है (सत्य०); हम लोगों के पूर्व पुरुष महाराज हरिश्चंद्र भी थे (तथा); यह तुम्हारी सखी उनकी बेटी बयोकर हुई (शकु०); महाराज उसके हाथ के खिलौने थे (विचित्र०) ।]

५६८—यदि संयोजक समुच्चय-बोधक से जुड़ी हुई एक पुरुष और एक ही लिंग की एक से अधिक एकवचन प्राणिवाचक संहाये आप्रत्यय कर्त्ताकारक में आकर उद्देश्य हों तो उनके योग से किया उसी पुरुष और उसी लिंग के बहुवचन में आएगी; जैसे, किसी घन में हिरन और कौआ रहते थे; मोहन और सोहन सड़क पर खेल रहे हैं; बहू और लड़की काम कर रही हैं; चांडाल के भेष में धर्म और सत्य आते हैं (सत्य०); नाई और ब्राह्मण टीका लेकर भेजे गये; घोड़ा और कुत्ता एक गजह बाँधे जाते थे; तितली और पंखी ऊँचे नहीं उड़ीं ।

अप०—उद्देश्यों की पृथक्ता के अर्थ में किया बहुधा एकवचन में आती है; जैसे, बैल और घोड़ा अभी पहुँचा है; मेरे पास एक गाय और एक भैंस है; राजधानी में राजा और उसका मंत्री रहता है; वहाँ एक बुद्धिया और लड़की आई; कुदुंब का प्रत्येक बालक और बृद्ध इस बात का प्रयत्न करता है (सर०) ।

५६६—संयोजक समुच्चय-बोधक से जुड़ी हुई एक ही पुरुष और लिंग की दो वा अधिक प्राणिवाचक अथवा भाववाचक संज्ञाएँ यदि एकवचन में आवें तो किया बहुधा एकवचन ही में रहती है; जैसे, लड़के की देह में केवल लोहू और माँस रह गया, है; उसकी बुद्धि का बल और राज का अच्छा नियम इसी एक काम से मालूम हो जावेगा (गुटका०); मेरी बातें सुनकर महारानी को हर्ष तथा आश्चार्य हुआ; कुएँ में से घोड़ा और लोटा निकला; कठोर संकीर्णता में क्या कभी बालकों की मानसिक पुष्टि, चित्त की विस्तृति, और चरित्र की बलिष्ठता हो सकती है (सर०) ।

(अ) ऐसे उदाहरणों में कोई-कोई लेखक बहुवचन की किया लाते हैं; जैसे, मन और शरीर नष्टब्रष्ट हो जाते हैं (सर०); माता के खान-पान पर भी बच्चे की नीरोगता और जीवन अवलंबित हैं (तथा०) ।

५७०—यदि भिन्न-भिन्न लिंगों की दो (वा अधिक) प्राणिवाचक संज्ञाएँ एकवचन में आवें तो किया बहुधा पुङ्गि, बहुवचन में आती हैं; जैसे, राजा और रानी भी मूर्च्छित हो गये (सर०); राजपुत्र और मल्यवती उद्यान को जा रहे हैं (तथा); कश्यप और अदिति बातें करते हुए दिखाई दिये (शकु०); महाराज और महारानी बहुत प्यार करते थे (विचित्र०); बैल और गया चरते हैं ।

(अ) कई एक द्वंद्व समासों का प्रयोग इसी प्रकार होता है; जैसे, भी-पुत्र भी अपने नहीं रहते (गुटका०); बेटा-बेटी सबके घर होते हैं; उनके मा-बाप गरीब थे ।

[६०—इस नियम का सिद्धांत यह है कि पुङ्गि बहुवचन किया से भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की केवल संख्या ही सूचित करने की आवश्यकता है,

उनकी जाति नहीं । यदि किया स्त्रीलिंग, वहूवचन में रखली जायगी, तो यह अर्थ होगा कि स्त्री-जाति के दो प्राणियों के विषय में कहा गया है, जो बात यथार्थ में नहीं है ।]

५७१—यदि भिन्न-भिन्न लिंग-वचन की एक से अधिक संज्ञाएँ अप्रत्यय कर्त्ता-कारक में आवें तो किया के लिंग-वचन अतिम कर्त्ता के अनुसार होते हैं; जैसे, महाराज और समूची सभा उसके दोषों को भली भाँति जानती है (विचित्र०); गर्भी और हवा के भक्तों और भी क्लेश देते थे (हित०); नदियों में रेत और कूल-फलियाँ खेतों में हैं (ठेठ०); इसके तीन नेत्र और चार भुजाएँ थीं, इसा की जीवनी में उनके हिसाब का खाता तथा ढायरी न मिलेगी (सर०); हास में मुँह, गाल और और्डों फूली हुई जान पड़ती हैं (नागरो०) ।

५७२—भिन्न-भिन्न पुरुषों के कर्त्ताओं में यदि उत्तम पुरुष आवे तो किया उत्तम पुरुष में होगी; और यदि मध्यम तथा अन्य पुरुष कर्त्ता हों तो किया मध्यम पुरुष में रहेगी; जैसे, हम और तुम वहाँ चलेंगे; तू और वह कल आना; तुम और वे कब आओगे; वह और मैं साथ पढ़ती थी; हम और यूरप के सभ्य देश इस दोष से बचे हैं (विचित्र०) ।

५७३—जब अनेक संज्ञाएँ कर्त्ता-कारक में आकर किसी एक ही प्राणी वा पदार्थ को सूचित करती हैं, तब उनकी किया एक-वचन में आती है; जैसे, यह प्रसिद्ध नाविक और प्रवासी सन् १५०६ ई० में परलोक को सिधारा; उनके बंश में कोई नामलेवा और पानीदेवा नहीं रहा ।

(अ) यही नियम पुस्तकों आदि के संयुक्त नामों में घटित होता है; जैसे “पार्वती और यशोदा” इंडियन प्रेस में छपी है; “यशोदा और श्रीकृष्ण” किसका लिखा हुआ है ।

५७४—यदि कहीं कर्ता विभाजक समुच्चयबोधक के द्वारा जुड़े हों तो अंतिम कर्ता किया से अनिवार होता है; जैसे, इस काम में कोई हानि अथवा लाभ नहीं हुआ; मैं या मेरा भाई जायगा; माया मिली न राम; पोथियाँ या साहित्य किस चिह्निया का नाम है (विचित्र०); वे अथवा तुम वहाँ ठहर जाना ।

५७५—यदि एक वा अधिक उद्देश्यों का कोई समानाधिकरण शब्द हो तो किया उसी के अनुसार होती है; जैसे अष्टमहासिद्धि, नवनिष्ठि और बारहों प्रयोग, आदि देवता आते हैं (सत्य०); मर्द, औरत सभी चौकोर चेहरे के होते हैं (सर०); धन, धरती सबका सब हाथ से निकल गया (गुटका०); स्त्री और पुत्र कोई साथ नहीं जाता; ऐसी पतित्रता स्त्री, ऐसा आङ्गाकारी पुत्र, और ऐसे तुम आप—यह संयोग ऐसा हुआ मानो अद्वा और वित्त और विधि तीनों इक्छे हुए (शकु०); सुरा और सुन्दरी दो ही तो प्राणियों को पागल बनाने की शक्ति रखती हैं (तिलो०) ।

[स०—“विचित्र-विचरण” में “इमान और जान दोनों ही बची”, यह वाक्य आया है। इसमें किया पुण्डिंग में चाहिए, क्योंकि उद्देश्य की दोनों संज्ञाएँ, भिन्न-भिन्न लिंग की हैं (अं०—५७०—स०), और उनके लिए जो समुदायवाचक शब्द आया है वह भी दोनों का बोध करता है। सुन्भव है कि “बची” शब्द छापे की भूल हो ।]

(२) कर्म और किया का अन्वय ।

५७६—सकर्मक कियाओं के भूतकालिक कुदंत से बने हुए दालों के साथ जब सप्रत्यय कर्ता-कारक और अप्रत्यय कर्म-कारक आता है तब कर्म के लिंग-वचन-पुरुष के अनुसार किया के लिंगादि होते हैं (अं०—५१८), जैसे, लड़के ने पुस्तक पढ़ी;

हमने खेक देखा है; स्त्री ने चित्र बनायें थे; पंडितों ने यह लिखा होगा ।

५७७—कर्म-कारक और क्रिया के अन्वय के अधिकांश नियम उद्देश्य और क्रिया के अन्वय ही के समान हैं; इसलिए हम उन्हें यहाँ संलेप में लिखकर उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करते हैं—

(अ) एक ही लिंग और एकवचन को अनेक प्राणिवाचक संज्ञाएँ अप्रत्यय कर्म-कारक में आवें तो क्रिया उसी लिंग के बहु-वचन में आती है; जैसे, मैंने गाय और मैंस मोल लीं; शिकारी ने भेड़िया और चीता देखे; महाजन ने बहाँ लड़का और भतीजा भेजे; हमने नाती और पोता देखे ।

[स० — अप्रत्यय कर्म-कारक में उत्तम और मध्यम पुरुष नहीं आते ।]

(आ) यदि अनेक संज्ञाओं से पृथक् ता का बोध हो तो क्रिया एकवचन में आयगी; जैसे, मैंने एक घोड़ा और एक बैल बेचा; महाजन ने अपना लड़का और भतीजा भेजा; किसान ने एक गाय और एक भैंस मोल ली; हमने नाती और पोता देखा ।

(इ) यदि एक ही लिंग की एकवचन अप्राणिवाचक अथवा भाववाचक संज्ञाएँ कर्म हों तो क्रिया एकवचन में आयगी; जैसे, मैंने कुएँ में से घड़ा और लोटा निकाला; उसने सुई और कंधी संदूक में रख दी; सिपाही ने युद्ध में साहस और धीरज दिखाया था ।

(ई) यदि भिन्न-भिन्न लिंगों की अनेक प्राणिवाचक संज्ञाएँ एकवचन में आवें तो क्रिया बहुधा पुलिंग बहुवचन में आती है; जैसे, हमने लड़का और लड़की देखे; राजा ने दास और दासी भेजे; किसान ने बैल और गाय बेचे थे ।

(उ) यदि भिन्न-भिन्न लिंग-वचन की एक से अधिक संज्ञाएँ अप्रत्यय कर्म-कारक में आवें तो क्रिया अंतिम कर्म के अनुसार

होगी; जैसे, उसने मेरे बास्ते सात कमीजें और कई कपड़े तैयार किये थे (विचित्र०); मैंने किश्ती में एक सौ मरे बैल, तीन सौ भेड़ें और खाने-रोने के लिए रोटियाँ और शराब भरपूर रख ली थी (तथा); उसने बहाँ देखरेख और प्रबंध किया ।

(ऊ) जब अनेक संज्ञायें अप्रत्यय कर्म-कारक में आकर किसी एक ही वस्तु को सूचित करती हैं तब किया एकवचन में आती है; जैसे, मैंने एक अच्छा पढ़ासी और मित्र पाया है; लड़की ने “माता और कन्या” पढ़ी ।

(ऋ) यदि कई कर्म विभाजक समुद्धय-बोधक के द्वारा जुड़े हों तो किया अंतिम कर्म के अनुसार होती है; जैसे, तुमने टोपी या कुर्ता लिया होगा; लड़के ने पुस्तक, कागज अथवा पेसिल पाई थी ।

(ए) यदि कर्म या कर्मों का कोई समानाधिकरण शब्द हो तो किया इसी के अनुसार होती है; जैसे, उसने घन, संतान, आरोग्यता आदि सब सुख पाया; हरिशंद्र ने राज-पाट, पुत्र-स्त्री, घर द्वार सब कुछ त्याग दिया ।

(ऐ) यदि अपूर्ण सकर्मक क्रियाओं की पूर्ति (अं०-१६५) लिंग-बचन से कर्म के लिंग-बचन भिन्न हों तो किया के लिंग-बचन-पुरुष कर्म के अनुसार होते हैं; जैसे, उसने अपना शरीर मिट्टी कर लिया; हमने अपनी छाती पत्थर कर ली, क्या तुमने मेरा घर अपनी बपौती समझ लिया ?

(ओ) यदि कर्म-पूर्ति के अर्थ की प्रधानता हो तो कभी-कभी किया के लिंग-बचन उसी के अनुसार होते हैं; जैसे, हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाई है (सत्य०) !

५७८—नीचे लिखी रचनाओं में किया सदैव पुङ्गि, एक वचन और अन्य पुरुष में रहती है (अ०—३६८) ।

(क) यदि अकर्मक क्रिया का उद्देश्य सप्रत्यय हो; जैसे, मैंने नहीं नहाया; लड़की को जाना था; रोगी से बैठा नहीं जाता; यह बात सुनते ही उसे रो आया ।

(ख) यदि सकर्मक क्रिया का उद्देश्य और मुख्य धर्म, दोनों सप्रत्यय हों; जैसे, मैंने लड़की को देखा; उन्हें बहुमूल्य चादर पर लिटाया जाता (सर०); मिसेज ऐनी बेसेंट को उसका संरक्षक बनाया गया है (नागरी०); रानी ने सहेलियों को बुलाया; विधाता ने इसे दासी बनाया (सत्य०); साधु ने खी को रानी समझा; मीर कासिम ने मुगेर ही को अपनी राजधानी बनाया (सर०) ।

(ग) जब वाक्य अथवा अकर्मक क्रियार्थक संज्ञा उद्देश्य हो, जैसे, मालूम होता है कि आज पानी गिरेगा; हो सकता है कि हम वहाँ से लौट आयें; सबेरे उठना लाभकारी होता है ।

(घ) जब सप्रत्यय उद्देश्य के साथ वाक्य अथवा क्रियार्थक संज्ञा कर्म हो; जैसे, लड़के ने कहा कि मैं आऊँगा; हमने नटों का बौस पर जाचना देखा; हमने बात करना न सीखा ।

५७९—यदि दो वा अधिक संयोजक समानाधिकरण वाक्य “और” (संयोजक समुच्चयबोधक) जुड़े हों और उनमें भिन्न मिल रूपों के (सप्रत्यय तथा अप्रत्यय) कर्त्ता-कारक आवें तो बहुधा पिछले कर्त्ता-कारक का अध्याहार हो जाता है; परंतु क्रिया के लिम-वचन-पुरुष यथा-नियम (कर्त्ता, कर्म अथवा भाव के

अनुसार) रहते हैं; जैसे, मैं बहुत देश-देशांतरों में धूम चुका हूँ; पर ० ऐसी आवादी कहीं नहीं देखी (विचित्र०); मैंने यह पद त्यांग दिया और ० एक दूसरे स्थान में जाकर धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करने लगा (सर०) ।

[स०—इस प्रकार की रचना से जान पड़ता है कि हिंदी में सप्रत्यय कर्त्ता-कारक की सकर्मक क्रिया कर्मवाच्य नहीं मानी जाती और न सप्रत्यय कर्त्ता-कारक करण-कारक माना जाता है, जैसा कि कोई-कोई वैयाकरण समझते हैं ।]

पौँचवॉँ अध्याय ।

सर्वनाम ।

४८०—सर्वनामों के अधिकांश अर्थ और प्रयोग तथा वर्गीकरण शब्द-साधन के प्रकरणों में लिखे जा चुके हैं । यहाँ उनके प्रयोगों का विचार दूसरे शब्दों के संबंध से किया जाता है ।

४८१—पुरुषवाचक, निश्चयवाचक और संबंधवाचक सर्वनाम जिन संज्ञाओं के बदले में आते हैं उनके लिंग और वचन सर्वनामों में पाये जाते हैं; परंतु संज्ञाओं का कारक सर्वनामों में होना आवश्यक नहीं है; जैसे लड़के ने कहा कि मैं जाता हूँ; पिता ने पुत्रियों से पूछा कि तुम किसके भाग्य से खाती हो; जो न सुनै तेहि का कहिये, लड़के बाहर खड़े हैं; उन्हें भीतर बुलाओ ।

(क) यदि अप्रधान पुरुषवाचक सर्वनाम व्यापक अर्थ में उद्देश्य वा कर्म होकर आवे तो क्रिया बहुधा पुङ्गिंग रहती है, जैसे, कोई कुछ कहता है, कोई कुछ ; सब अपनी बड़ाई चाहते हैं; क्या हुआ ? उसने जो किया सो ठीक किया ।

३० श्ल२—जब कोई लेखक वा वक्ता दूसरे के भाषण को उद्धृत करता अथवा दुहराता है, तब मूल भाषण के सर्वनामों में नीचे लिखा परिवर्त्तन और अर्थ-भेद होता है—

(क) यदि मूल भाषण का दूरवर्त्ती अन्यपुरुष स्वयं उस भाषण का संवाददाता हो अथवा भाषण दुहराये जाने के समय उपस्थित हो, तो उसके लिए निकटवर्ती अन्यपुरुष का प्रयोग होगा, जैसे, (कृष्ण ने कहा कि) गोपाल (मेरे विषय में) कहता था कि यह (कृष्ण) बड़ा चतुर है। (हरि ने राम से कहा कि) गोपाल (तुम्हारे विषय में) कहता था कि यह (राम) बड़ा चतुर है।

(ख) पुनरुक्त भाषण में जो उत्तम पुरुष सर्वनाम आता है उसका यथार्थ संकेत तो प्रसंग ही से जाना जाता है; पर संभाषण में जिस व्यक्ति की प्रधानता होती है वहुधा उसी के लिए उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है; जैसे, (१) विश्वामित्र ने हरिचंद्र से पूछा कि क्या तू (मुझे) नहीं जानता कि मैं कौन हूँ? (२) वाल्मीकि ने राम से कहा कि तुमने मुझसे (अपने विषय में) पूछा कि मैं कहाँ रहूँ (पर) मैं आपसे कहते हुए सकुचाता हूँ।

(ग) किसी की ओर से दूसरे का संदेशा सुनाने में संवाद-दाता दोनों के लिए विकल्प से क्रमशः अन्यपुरुष और मध्यम पुरुष का प्रयोग करता है; जैसे, बाबू साहब ने मुझसे आपसे यह लिखने के लिए कहा था कि हम (बाबू साहब) उनके (आपके) पत्र का उत्तर कुछ विलंब से देंगे; (अथवा) बाबू साहब ने मुझसे आपको यह लिखने के लिए कहा था कि वे (बाबू साहब) आपके पत्र का उत्तर कुछ विलंब से देंगे।

[सू०—जहाँ सर्वनामों का अर्थ संदिग्ध रहता है वहाँ जिस व्यक्ति के, लिए सर्वनाम का प्रयोग किया गया है, उसका कुछ भी उल्लेख कर देने-

से संदिग्धता भिट जाती है; जैसे, क्या तुम (मेरे विषय में) समझते हो कि मैं मूर्ख हूँ ? क्या तुम (अपने विषय में) सोचते हो कि मैं विद्वान् हूँ ? गोपाल ने राम से कहा कि मैं तेरी नौकरी करूँगा ?]

५८३—आदरसूचक “आप” शब्द वाक्य में उद्देश्य हो तो क्रिया अन्य पुरुष बहुवचन में आती है; और परोक्ष विधि में गांत रूप आता है; जैसे, आप कशा चाहते हैं; आप बढ़ाँ अवश्य पधारियेगा ।

अप०—अं०—१२३ (ऊ) ।

५८४—जब एक ही वाक्य में उद्देश्य की ओर संकेत करने-वाले सर्वनामों के संबंध-कारक का प्रयोग, कर्त्ता को छोड़कर शेष कारकों में आनेवाली संज्ञा के साथ होता है, तब उसके बदले निज-वाचक सर्वनाम का संबंध-कारक लाया जाता है; जैसे, मैं अपने घर से आ रहा हूँ, आप अपने भाई के नौकर को क्यों नहीं बुलाते ? घोड़े ने अपनी पूँछ से मक्किल्याँ उड़ाईं; कोई अपने दही को खट्टा नहीं कहता; लड़के से अपना काम नहीं किया जाता ।

(अ) यदि वाक्य में दो अलग-अलग उद्देश्य हों और पहले उद्देश्य के संबंध से दूसरे उद्देश्य की संज्ञा का उल्लेख करना हो तो निज-वाचक के संबंध-कारक का प्रयोग नहीं होता, किंतु पुरुष-वाचक के संबंध-कारक का प्रयोग होता है; जैसे एक बुड़ा मनुष्य और उसका लड़का बाजार को जाते थे । एक महाजन आया और उसके पीछे उसका नौकर आया ।

(आ) जब कर्त्ता-कारक को छोड़कर अन्य कारकों में आने-वाली संज्ञा (वा सर्वनाम) के संबंध से किसी दूसरी संज्ञा का उल्लेख करना हो तो विकल्प से निज-वाचक अथवा पुरुषवाचक

सर्वनाम का संबंध-कारक आता है; जैसे, मैंने लड़के को अपने (वा उसके) पर भेज दिया; तुम किसी से अपना (उसका) भेद मत पूछो; मालिक नौकर को अपनी (उसकी) माता के साथ नहीं रहने देता ।

(इ) यदि 'अपना' का संकेत वाक्य के उद्देश्य के बदले विषय के उद्देश्य की ओर हो तो उसका प्रयोग कर्त्ता-कारक में आनेवाली संझा के साथ हो सकता है; जैसे, अपनी बड़ाई सबको भाती है (शकु०); अपना दोष किसी को नहीं दिखाई देता ।

(ई) सर्वसाधारण के उल्लेख में "अपना" का प्रयोग स्वतंत्रता से होता है; जैसे, अपना हाथ जगन्नाथ; अपनी-अपनी छफली अपना-अपना राग, अपना दुख अपने साथ है ।

(उ) बोलचाल में कभी-कभी "अपना" का संकेत वक्ता की ओर होता है; जैसे, यह देखकर अपना (मेरा) भी चित्त चलाय-मान हो गया; इतने में अपने (हमारे) नौकर आ गये ।

(ऊ) बहुधा बुद्धेश्वर्ण भंड में (जहाँ "हम लोग" के लिए मराठी "आपण" के अनुकरण पर "अपन" शब्द भी व्यवहृत होता है) "हमारा" के प्रतिनिधि अर्थ में "अपना" का प्रयोग होता है; जैसे, यह चित्र अपने (हम लोगों के) महाराजा का है; यह सब अपने देश में नहीं होता; प्राचीन और नवीन अपनी सब दशा आलोच्य है (भारत०); आराम और खुशी से कटती है उम्र अपनी, विरतानिया ने हमको हमलों से है बचाया (सर०) ।

[दू०—ऊपर (उ) और (ऊ) में दिये गये प्रयोग अनुकरणीय

नहीं है, क्योंकि इनका प्रचार एकदेशीय है। ऐसे प्रयोगों में बहुधा अर्थ
की अस्पष्टता पाई जाती है; जैसे, शत्रु ने अपने (हमारे अथवा निज के),
सर्व सिपाही मार डाले ।]

(अ) कहीं-कहीं आदराधिक्य में “आपका” के बदले
“अपना” आता है; जैसे, महाराज, अपना (आपका) घर कहाँ
है। यह प्रयोग भी एकदेशीय है; अतएव अनुकरणीय नहीं है।

(ए) कभी-कभी अवधारणा के लिए “निज” के अर्थ में संज्ञा,
अथवा सर्वनाम के संबंध-कारक के साथ “अपना” जोड़ दिया
जाता है; जैसे, यह सम्मति मेरी अपनी (निज की) है।

छठा अध्याय ।

विशेषण और संबंध-कारक ।

५८५—यदि विशेष्य विकृत रूप में आवे (अं०—३३६), तो
आकारांत विशेषणों में उसके लिंग, वचन, कारक के कारण
विकार होता है; जैसे, छोटे लड़के, ऊँचे घर में, छोटी कढ़की ।

५८६—विशेष्य-विशेषण और विशेष्य का अन्वय नीचे लिखे
नियमों के अनुसार होता है—

(१) यदि अनेक विशेष्यों का एक ही विकारी विशेषण हो
तो वह प्रथम विशेष्य के लिंग-वचनानुसार बदलता है; जैसे, वह
कौन सा जप-तप, तीर्थ-यात्रा, होम-यज्ञ और प्रायशिच्छा है (गुट-
का०); आपने छोटी-छोटी रिकावियाँ और प्याले रख दिये
(चिचित्र०); उसकी स्त्री और लड़के ।

(२) यदि एक विशेष्य के पूर्व अनेक विशेषण हों तो सभी
विशेष्य-निन्न विशेषणों में विशेष्य के अनुसार विकार होगा; जैसे,
एक लंबी, मोटी और गोल छड़ी लाओ’ पैने और टेढ़े कौंटे ।

(३) काल, दूरता, माप, धन, दिशा और रीति-वाचक संज्ञाओं के पहले जब संख्यावाचक विशेषण आता है और संज्ञाओं से समुदाय का बोध नहीं होता है, तब वे विकृत कारकों में भी बहुधा एकवचन ही के रूप में आती हैं; जैसे, तीन दिन में; दो कौस का अंतर; चार मन की गौन; दो हजार रुपये में; दो प्रकार से; तीन और से ।

(४) तीन दिन में; तीन दिनों में; तीनों दिन में और तीनों दिनों में—इन वाक्यांशों के अर्थ में सूक्ष्म अंतर है। पहले में भावधारण गिननी है, दूसरे में अवधारण है और तीसरे तथा चौथे में समुदाय का अर्थ है ।

(५) विशेषण बहुधा प्रत्ययांत संज्ञा की भी विशेषता बतलाता है और इसके अनुसार इसका रूपांतर होता है; जैसे बड़ी आमदनीवाला; काले घोड़ेवाली गाड़ी ।

५८७—संबंध-कारक में आकारांत विशेषण के समान विकार होता है। संबंध-कारक को भेदक और उसके संबंधी शब्द को भेद्य कहते हैं [अं०—३०६ (४)] । यदि भेद्य विकृत रूप में आवे तो भेदक में भी वैसा ही विकार होता है; जैसे, राजा के महल में; सिपाहियों के कपड़े; लड़के की छड़ी ।

५८८—यदि अनेक भेद्यों का एक ही भेदक हो तो यह प्रथम भेद्य से अनिवत होता है; जैसे, जाति के सर्वगुण-संपन्न बालक और बालिकाओं ही का विवाह होने देना चाहिए (सर०) ; जिसमें शब्दों के भेद, अवस्था और व्युत्पत्ति का वर्णन हो ।

५८९—यदि भेद्य से केवल वरतु की जाति का अर्थ इष्ट हो (संख्या की नहीं), तो भेदक बहुवचन होने पर भी भेद्य एकवचन

रहता है; जैसे, साधुओं का चित्त को मल होता है; राजाओं की नीति विलङ्घण होती है; महात्माओं के उपदेश से हम लोग अपना आचरण सुधार सकते हैं।

(अ) यद्यपि भेदक में उसका मूल लिंग-वचन रहता है तथापि उसमें भेद का लिंग-वचन माना जाता है; जैसे, लड़के ने कहा कि मेरी पुस्तकें खो गईं । इस वाक्य में 'मेरी' शब्द 'लड़का' संज्ञा के अनुरोधसे पुलिंग और एकवचन है, परंतु 'पुस्तकें' संज्ञा के योग से उसे स्त्रीलिंग और बहुवचन कहेंगे ।

५६०—यदि विद्येय-विशेषण आकारांत हो तो विभक्ति-रहित कर्ता के साथ उसमें उद्देश्य-विशेषण के समान विकार होता है; जैसे, सोना पीला होता है; धास हरी है; लड़की छोटी दीखती है; बात उलटी हो गई; मेरी बात पूरी होना कठिन है ।

(अ) यदि क्रियार्थक संज्ञा अथवा तात्कालिक कुदंत का कर्ता संबंध-कारक में आवे तो विद्येय-विशेषण उसके लिंग-वचन के अनुसार विकल्प से बदलता है; जैसे, इनका (दुर्वासा का) थोड़ा सीधा होना भी बहुत है (शकु०) आँख का तिरछा (तिरछी) होना अच्छा नहीं है, माता के न्यारे (न्यारी) होते ही सब काम बिगड़ने लगा, पत्तों के पीला (पीले) पड़ते ही पौधे को पानी देना चाहिए ।

५६१—विद्येय में आनेवाले संबंध-कारक में विद्येय-विशेषण के समान विकार होता है (अ० ५६०), जैसे यह छड़ी तुम्हारी दिखती है, वे घोड़े राजा के निकले, राजा को प्रजा के धर्म का

होना आवश्यक है, आपका ज्ञात्रिय-कुल का (वा ज्ञात्रिय-कुल के) बनना ठीक नहीं है, वह खी यहाँ से जाने की नहीं ।

(आ) यदि विधेय में आनेवाली संज्ञा उद्देश्य से भिन्न लिंग में आये, तो उसके पूर्ववर्ती संबंध-कारक का लिंग बहुधा उद्देश्य के अनुसार होता है, जैसे, सरकार प्रजा की माँ-बाप है, पुलिस प्रजा की सेवक है, रानी पतिव्रता स्त्रियों को मुकुट थी, तुम मेरे गलेके (गले का) हार हो, मैं तुम्हारी जान की (जान का) जंजाल हो गई हूँ (अं ५६७) ।

अप०—संतान घर का उजाला है, यह लड़का मेरे वंश की शोभा है ।

५६२—विभक्ति-रहित कर्म के पश्चात् आनेवाला अकारांत विधेय-विशेषण उस कर्म के साथ लिंग-वचन में अनिवार होता है, जैसे, गाड़ी सुड़ी करो, दरजी ने कपड़े ढीले बनाये, मैं तुम्हारी बात पक्की समझता हूँ ।

(आ) यदि कर्म सप्रत्यय हो तो विधेय-विशेषण के लिंग-वचन कर्म के अनुसार विकल्प से होते हैं, जैसे, छोड़, होने दे, तड़पकर अभी ठुंडा हमको (हि० व्या०); रहो बात को अपनी करते बढ़ी तुम (तथा); जहाँ मुनि, ऋषि देवताओं को बैठे पाता था (प्रेम०); इन्हें बन में अकेले मत छोड़ियो (तथा); आप इस लड़की को अच्छा (अच्छी) कर सकते हैं ?

(आ) कर्तृवाच्य के भावेप्रयोग में [अं०—३६८—(१)] विधेय-विशेषण के संबंध से तीन ग्रकार की रचना पाई जाती है; जैसे—

(१) तुमने मुझ दासी को जंगल में अकेली छोड़ी
(गुटका०) ।

(२) आपने मुझ अबला को अकेली जंगल में छोड़ा
(गुटका०) ।

(३) (मैंने) इसको (लड़की को) इतना बढ़ा बनाया
(सर०) ।

इस विषय के अन्य उदाहरण

(१) तुसने मुझे बन में तजो अकेलो (प्रेम०) ।

(२) रघु ने नन्दिनी को अपने सामने खड़ी देखा (रघु०) ।

(३) मैंने (इन्हें) कुछ सीधे कर लिये (शकु०) ।

(४) उसने सब गाड़ियों को खड़ा किया ।

इन रचनाओं में विवेय-विशेषण और किया का एकसा रूपांतर कर्णा-मधुर जान पड़ता है; जसे, रघु ने नन्दिनी को अपने सामने खड़ी देखी अथवा रघु ने नन्दिनी को अपने सामने खड़ा देखा । अनमिल विकार के लिए सिद्धांत का कोई आधार नहीं है ।

[स०—इस प्रकार के विशेषणों को कोई-कोई वैयाकरण, किया-विशेषण मानते हैं (अं०—४२७—१), क्योंकि इनसे कभी कभी किया की विशेषता सूचित होती है । जहाँ इनसे ऐसा अर्थ पाया जाता है, वहाँ इन्हें किया-विशेषण मानना ठीक है; जैसे, पेड़ों को सीधे लगायो ।]

सातवैं अध्याय ।

कालों के अर्थ और प्रयोग ।

(१) संभाव्य भविष्यत्-काल ।

५६३—संभाव्य भविष्यत्-काल नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(अ) संभावना—आज (शायद) पानी बरसे; (कहीं) वह लौट न आवे; हो न हो; राम जाने ।

इस अर्थ में संभाव्य-भविष्यत् के साथ बहुधा “शायद” (कदाचित्), “कहीं ”, आदि आते हैं ।

(आ) निराशा अथवा परामर्श—अब मैं क्या करूँ ? हम यह लड़की किसको दें ?

यह अर्थ बहुधा प्रश्नवाचक वाक्यों में होता है ।

(इ) इच्छा, आशीर्वाद, शाप—मैं यह बात राजा को सुनाऊँ; आपना भला हो; ईश्वर आपकी बढ़ती करें; मैं चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की बाद लेवे (गुटकां); गाज परै उन लोगन पै ।

(ई) कर्तव्य, आवश्यकता—तुमको कब योग्य है कि उन में बसो; इस काम के लिए कोई उपाय आवश्य किया जावे ।

(उ) उद्देश, हेतु—ऐसा करो जिसमें बात बन जाय; इस बात की चर्चा हमने इसलिए की है कि उसकी शंका दूर हो जाय ।

(ऊ) विरोध—तुम हमें देखो न देखो, हम तुम्हें देखा करें; कोई कुछ भी कहे; चाहे जो हो; अनुभव ऐसे विरह का क्यों न करे बेहाल ।

(ऋ) उत्प्रेक्षा (तुलना)—तुम ऐसी बातें करते हो मानो कहीं के राजा होओ ऋषि ने तुम्हारे अपराध को भूल अपनी कन्या ऐसे भेज दी है जैसे कोई चोर के पास अपना धन भेज दे; जैसे किसी की रुचि लुहारों से हटकर इमली पर लगे तैसे ही तुम रनवास की स्त्रियों को छोड़ इस गँवारी पर आसक्त हुए हो (शकु०) ।

(ए) अनिश्चय—जब मैं घोलूँ, तब तुम तुरंत उठकर भागना; जो कोई यहाँ आवे उसे आने दो ।

इस अर्थ में क्रिया के साथ बहुधा संबंध-वाचक सर्वनाम अथवा क्रिया-विशेषण आता है ।

(ए) सांकेतिक संभावना—तुम चाहो तो अभी भगड़ा मिट जाय; आझा हो तो इम घर जायें; जो तू एक बेर उसको देखे तो फिर ऐसी न कहे (शकु०) ।

इस अर्थ में जो (अगर, यदि)—तो से मिले हुए बाक्य आते हैं ।

५६४—कविता और कहावतों में संभाव्य-भविष्यत् बहुधा सामान्य-वर्तमान के अर्थ में आता है । कभी-कभी इससे भूत-काल के अभ्यास का भी बोध होता है । उदा०—बढ़त-बढ़त संपत्ति-सङ्कलन मन-सरोज बढ़ि जाय (सत०); उत्तर देव लाड़ीं बिनु मारे (राम०); वक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू (तथा); देख न कोई सके खड़े हो इस प्रकार से (क० क०); नया नौकर हिरन मारै (कहा०); एक मास रितु आगे धावै (कहा०); सुखी उद्धृ

मैं रोज सबेरे (हिं० मं०); मुझे रहें सखियाँ नित घेरे (तथा);
सबके गृह-गृह होइ पुराना (राम०) ।

(२) सामान्य भविष्यत् काल ।

५६५—इस काल से अनारंभ कार्य अथवा दशा के अतिरिक्त नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—

(अ) निष्पत्र की कल्पना—ऐसा वर और कहीं न मिलेगा;
जहाँ तुम जाओगे वहाँ मैं भी जाऊँगा; उस शृणि का हृदय बड़ा कठोर होगा ।

(आ) प्रार्थना—प्रश्नवाचक वाक्यों में यह अर्थ पाया जाता है; जौसे, क्या आप कल वहाँ चलेंगे ? क्या तुम मेरा इतना काम कर दोगे ? क्या वे मेरी बात सुनेंगे ?

(इ) संभावना—वह मुझे कभी न कभी मिलेगा । किसी किसी तरह यह काम हो जायगा । कबहुँ तो दीनानाथ के मनक पड़ेंगी कान ।

(ई) संकेत—यदि रोगी की सेवा होगी; तो वह अच्छा हो जायगा; अगर हवा चलेगी तो गरमी कम हो जायगी ।

(उ) संदेह, उदासीनता—‘होना’ क्रिया का सामान्य भविष्यत् काल बहुधा इस अर्थ में आता है; जौसे, कृष्ण गोपाल का भाई होगा; नौकर इस समय बाजार में होगा; क्या उनके लड़की हैं ? होगी; क्या वह आदमी पागल है ? होगा; कौन जाने; अगर वह जायगा तो जायगा, नहीं तो मैं जाऊँगा ।

(३) प्रत्यक्ष विधि ।

५६६—इस काल के अर्थों के हैं—

(अ) अनुमति, प्रश्न—उत्तम पुरुष के दोनों वचनों में किसी की अनुमति अथवा परामर्श ग्रहण करने में इस काल का उपयोग होता है; जैसे, क्या मैं जाऊँ ? हम लोग यहाँ बैठें ?

(आ) सम्मति—उत्तम पुरुष के दोनों वचनों में कभी-कभी इस काल से श्रोता की सम्मति का बोध होता है; जैसे, चलें, उस रोगी की परीक्षा करें । हम लोग मोहन को यहाँ बुलावें ।

“देखना” किया से इस प्रयोग में कभी-कभी धमकी सूचित होती है; जैसे, देखें, तुम क्या करते हो ! देखें, वह कहाँ जाता है !

(इ) आज्ञा और उपदेश—यहाँ बैठो; किसी को गाली मत दो; तज़ारे मन हरितिमुखन को संग (सूर०); नौकर अभी यहाँ से जावे ।

(ई) प्रार्थना—आप मुझ पर कृपा करें; नाथ, मेरी इतनी विनती मानिये (सत्य०); नाथ करहु बालक पर छोहू (गम०) ।

(उ) आप्रह—अब चलो, देर होती है । उठो, उठो, जनि सोबत रहहू ।

[स०—आप्रह के अर्थ में बहुधा “तो सही” किया-विशेषण याक्यारा जोड़ दिया जाता है; जैसे, चलो तो सही ; आर बैठिये तो सही; वह आवे तो सही ।]

५६७—आदर के अर्थ में इस काल के अन्य पुरुष बहुवचन का, अथवा “इये”—प्रत्ययात् रूप का प्रयोग होता है; जैसे, महाराज इस मार्ग से आवें; आप यहाँ बैठिये; नाथ, मेरी इतनी विनती मानिये । इन दोनों रूपों में पहला रूप अधिक शिष्टा-चार सूचित करता है ।

(अ) आदर-सूचक विधिकाल का रूप कभी-कभी संभाव्य-भविष्यत् के अर्थ में आता है; जैसे, मन में आती है कि सब छोड़-छाड़ यहीं बैठ रहिये (शक०); मनुष्य-जाति की स्थिरों में इतनी दमक कहाँ पाइये (तथा); देखिये, इसका कल क्या होता है ? अगर दिये के आसपास गंधक और फिटकरी छिड़क दीजिये, तो (कैसी ही हवा चले) दिया न शुरूएगा (अं०—३८६—३—ई)
इन उदाहरणों में 'रहिये' भाववाच्य और 'पाइये', 'देखिये' तथा 'दीजिये' कर्मवाच्य हैं ।

(आ) "चाहिए" भी एक प्रकार का कर्मवाच्य संभाव्य भविष्यत्-काल है, क्योंकि इसका उपयोग आदर-सूचक विधि के अर्थ में कभी नहीं होता, किंतु इससे वक्तमानकाल की आवश्यकता ही का बोध होता है (अं०—४०५) ।

(इ) "लेना" और "चलना" क्रियाओं का प्रत्यक्ष विधिकाल बहुधा उदासीनता के अर्थ में विस्मयादि-बोधक के समान प्रयुक्त होता है; जैसे, ले मैं जाता हूँ; लो मैं यह चला; मैंने कहा कि लो, अब कुछ देरी नहीं है; चलो, आपने यह काम कर लिया ।

(४) परोक्ष विधि ।

५६८—परोक्ष विधि से आज्ञा, उपदेश, प्रार्थना, आदि के साथ भविष्यत्-काल का अर्थ पाया जाता है; जैसे, कल मेरे यहाँ आना ; हमारी शीघ्र ही सुधि लीजियो; (भारत०); कीजौं सदा धर्म से शासन, स्वत्व प्रजा के मत हरियो (सर०) ।

५६९—"आप" के साथ परोक्ष विधि में गांत आदरसूचक विधि का प्रयोग होता है; जैसे, कल आप वहाँ जाइयेगा । "आप जाइयो" शुद्ध प्रयोग नहीं है ।

६००—निषेध के लिए विधि-कालों में बहुधा न, नहीं और मत तीनों अव्ययों का प्रयोग होता है; पर “आप” के साथ परोक्ष विधि में और उत्तम तथा अन्य-पुरुषों में “मत” नहीं आता। “न” से साधारण निषेध, “मत” से कुछ अधिक और “नहीं” से और भी अधिक निषेध सूचित होता है; जैसे, वहाँ न जाना, पुत्र (एकांतं); पुत्री, अब बहुत लाज मत कर (शकुः); ब्राह्मण देवता, बालकों के अपराध से नहीं रुट होना (सत्यं); आप वहाँ न जाइयेगा (अं०—६४२)।

(५) सामान्य संकेतार्थ-काल ।

६०१—यह काल नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(अ) क्रिया की असिद्धता का संकेत (तीनों कालों में); जैसे, मेरे एक भी भाई होता, तो मुझे वड़ा सुख मिलता (भूत)। जो उसका काम न होता तो वह अभी न आता (चर्त्तमान)। यदि कल आप मेरे साथ चलते, तो वह काम अवश्य हो जाता। (भविष्यत्) ।

[स०—सामान्य संकेतार्थ-काल में बहुधा दो वाक्य यदि-तो से लुढ़े हुए आते हैं और दोनों वाक्यों की क्रियाएँ एक ही काल में रहती हैं। कभी-कभी मुख्य वाक्य को क्रिया सामान्य-भूत अथवा पूर्ण-भूत में आती है; जैसे, जो तुम उसके पास जाते तो अच्छा था। यदि मेरा नौकर न आता तो मेरा काम हो गया था।]

(आ) असिद्ध इच्छा—जैसे, हा ! जगमोहनसिंह, आज तुम जीवित होते; कुछ दिन के पश्चात् नीद निज अंतिम सोते !

६०२—कभी-कभी सामान्य संकेतार्थ-काल से, संभाव्य भविष्यत्-काल के अर्थ में, इच्छा सूचित होती है; जैसे, मैं आहता हूँ

कि वह सुझसे मिलता (=मिले) । यदि आप कहते (=कहें) तो मैं उसे बुलाता (=बुलाऊँ) । इसके लिए यही उपाय है कि आप जल्दी आते ।

६०३—भूतकाल की किसी घटना के विषय में संदेह का उत्तर देने के लिए सामान्य संकेतार्थी-काल का उपयोग बहुधा प्रश्नवाचक और निषेधवाचक बाक्य में होता है; जैसे, अजुन की क्या सामर्थ्य थी कि वह हमारी बहिन को ले जाए ? मैं इस पेड़ को क्यों न सीचती ?

(६) सामान्य वर्तमान-काल ।

६०४—इस काल के अर्थ ये हैं—

(अ) बोलने के समय की घटना—जैसे, अभी पानी बरसता है । गाड़ी आती है । वे आपको बुलाते हैं ।

(आ) ऐतिहासिक वर्तमान—भूतकाल की घटना का इस प्रकार वर्णन करना मानो वह प्रत्यक्ष हो रही हो; जैसे, तुलसी-दासजी ऐसा कहते हैं । राजा हरिशचंद्र मंत्रियों सहित आते हैं । शोक विकल सब रोवहिं रानी (राम०) ।

(इ) स्थिर सत्य—साधारण नियम किंवा सिद्धांत बताने से अर्थात् ऐसी बात कहने में जो सदैव और सत्य है, इस काल का प्रयोग दिया जाता है; जैसे, सूर्य पूर्व में उदय होता है । पक्षी अंडे देते हैं । सोना पीला होता है । आत्मा अमर है । “चिंता से सब आशा रोगी निज जीवन को खोता है” (सर०) । हंबशी काले होते हैं ।

(ही) वर्तमान-काल की अपूर्णता; जैसे, पंडितजी स्नान करते हैं (कर रहे हैं) । मैं अभी लिखता हूँ ।

(उ) अभ्यास—जैसे, हम बड़े तड़के उठते हैं । सिपाही रात

की पहरा देता है। गाढ़ी दोपहर को आती है। दुखित-दोष-गुन गतहिंन साधु (राम०) ।

(३) आसन्न-भूत—आपको राजा सभा में बुलाते हैं। मैं अभी अयोध्या से आता हूँ (सत्य०) । क्या हम तेरी जाति-पाँति पूछते हैं (शक०) ?

(४) आसन्न-भविष्यत्—मैं तुम्हें अभी देखता हूँ। अब तो वह मरता है ! लो, गाढ़ी अब आती है ।

(५) संकेत-वाचक वाक्यों में भी सामान्य-वर्त्तमान का प्रयोग होता है; जैसे, चीटी की मौत आती है तो पर निकलते हैं। जो मैं उससे कुछ कहता हूँ तो वह अप्रसन्न हो जाता है ।

(६) बोलचाल की कविता में कभी-कभी संभाव्य-भविष्यत् के आगे होना किया के योग से बने हुए सामान्य-वर्त्तमान काल का प्रयोग करते हैं; जैसे, कहाँ जलै है वह आगी (एकांत०) यह रचना अब अप्रचलित हो रही है (अ७—३८८, ३—आ)

(७). अपूर्ण भूत-काल ।

६०५—इस काल से नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—

(अ) भूतकाल की किसी किया की अपूर्ण दशा—किसी जगह रुक्या होती थी। चिन्हाती थी वह रो-रोकर ।

(आ) भूतकाल की किसी अवधि में एक काम का बार-बार होना—जहाँ-जहाँ रामचंद्रजी जाते थे, वहाँ-वहाँ आकाश में मेघ छाया करते थे। वह जो-जो कहता था उसका उत्तर मैं देता जाता था ।

(इ) भूतकालिक अभ्यास—पहले यह बहुत सोता था। मैं उसे जितना पानी पिलाता था, उतना वह पीता था ।

(ई) 'कव' के साथ इस काल से अयोग्यता सूचित होती है;

जैसे, वंह बहाँ कब रहता था ? राजा की आँखें इस पर कब ठहर सकती थीं ? बह राजपूत (उसे) कब छोड़ता था ?

(उ) भूतकालीन उद्देश्य—मैं आपके पास आता था । बह कपड़े पहिनता ही था कि नौकर ने उसे पुकारा ।

[स०—इस अर्थ में किया के साथ बहुधा 'ही' अव्यय का प्रयोग होता है ।]

(क) वर्त्तमान-काल की किसी बात को दुहराने में इसका प्रयोग होता है; जैसे, हम चाहते थे (और फिर भी चाहते हैं) कि आप मेरे साथ चलें । आप कहते थे कि वे आनेवाले हैं ।

(च) संभाव्य वर्त्तमान-काल ।

६०६—इस काल के अर्थ ये हैं—

(अ) वर्त्तमान-काल की (अपूर्ण) किया की संभावना—कदाचित् इस गाड़ी में मेरा भाई आता हो । मुझे डर है कि कहीं कोई देखता न हो ।

[स०—आशंका सुचित करने के लिए इस काल के साथ बहुधा "न" का प्रयोग करते हैं ।]

(आ) अभ्यास (स्वाभव वा धर्म)—ऐसा घोड़ा लाओ जो धंडे में दस मील जाता हो । हम ऐसा घर चाहते हैं जिसमें धूप आती हो ।

(इ) भूत अथवा भविष्यत्-काल की अपूर्णता की संभावना—जब आप आये, तब मैं भोजन करता होऊँ । अगर मैं लिखता होऊँ तो मुझे न बुलाना ।

(ई) उत्प्रेक्षा—आप ऐसे बोलते हैं मानो मुख से फूल फड़ते हों । ऐसा शब्द हो रहा था कि जैसे मेघ गरजता हो ।

(उ) सांकेतिक वाक्यों में भी बहुधा इस काल का प्रयोग

होता है; जैसे, अगर वे आते हों, तो मैं उनके लिए रसोई का प्रबंध करूँ।

[६०—उपर्युक्त वाक्यों में कभी-कभी सहायक किया 'होना' भूतकाल के रूप में आती है; जैसे, अगर वह आता हुआ, तो क्या होगा ?]

(६) संदिग्ध वर्तमान-काल ।

६०७—यह काल नीचे लिखे अर्थों में आता है—

(अ) वर्तमान-काल की किया का संदेह—गाढ़ी आती होगी। वे मेरी सब कथा जानते होंगे। तेरे लिए गौतमी अकुलाती होगी।

(आ) तर्क—चाय पत्तियों से बनती होगी। यह तेल खदान से निकलता होगा। आप सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करते होंगे।

(इ) भूतकाल की अपूर्णता का संदेह—उस समय मैं वह काम करता होऊँगा। जब आप उनके पास गये, तब वे चिट्ठी लिखते होंगे।

(ई) उदासीनता वा तिरस्कार—यहाँ पंडितजी आते हैं?—आते होंगे।

(१०) अपूर्ण संकेतार्थ-काल ।

६०८—इस काल से नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—

(अ) अपूर्ण किया की असिद्धता का संकेत—अगर वह काम करता होता, तो अब तक चतुर हो जाता। अगर हम कमाते होते, तो ये चातें क्यों सुनना पड़तीं।

(आ) वर्तमान वा भूतकाल की कोई असिद्ध इच्छा—मैं चाहता हूँ कि यह लड़का पढ़ता होता। उसकी इच्छा थी कि मेरा माई मेरे साथ काम करता होता।

(इ) कभी-कभी पूर्व-वाक्य का लोप कर दिया जाता है और केवल उत्तर-वाक्य बोला जाता है, जैसे, इस समय वह लड़का पढ़ता होता (= अगर वह जीता रहता तो पढ़ने में मन लगता) ।

(११) सामान्य भूतकाल ।

६०६—सामान्य भूतकाल नीचे लिखे अर्थ सूचित करता है—

(अ) बोलने वा लिखने के पूर्व किया की स्वतंत्र घटना—जैसे, विधना ने इस दुख पर भी वियोग दिया । गाढ़ी सबेरे आई । अस कहि कुटिल भई उठि ठाड़ी ।

(आ) आसन्न-भविष्यत्—आल चलिए, मैं अभी आया, अब यह बेमौत मरा ।

(इ) सांकेतिक अथवा संबंधवाचक वाक्यों में इस काल से साधारण वा निश्चित भविष्यत का बोध होता है, जैसे, अगर तुम एक भी कदम बढ़े (बढ़ोगे); तो तुम्हारा दुरा हाल होगा । ज्योंही पानी रुका (रुकेगा), त्योंही हम भागे (भागेंगे) । जहाँमैंने कुछ कहा, वहाँ वह तुरंत उठकर चला ।

(ई) अभ्यास, संबोधन अथवा स्थिर सत्य सूचित करने के लिए इस काल का उपयोग सामान्य-वर्तमान के समान होता है, जैसे, ज्योंही वह उठा (उठता है) त्योंही उसने पानी माँगा (माँगता है) । लो, मैं यह चला । जिसने न पी गौंजे की कली (जो नहीं पीता है) । पढ़ा जिन्होंने छुंद-प्रभाकर, काया पलट हुए पद्माकर ।

[६०—(१) 'होना' किया के सामान्य भूतकाल के निषेधवाचक रूप से वर्तमान-काल की इच्छा सूचित होती है; जैसे, आज मेरे कोई

वहिन न हुई, नहीं तो आज मैं भी उसके घर जाकर खाता (गुट्ठा०) ।
मेरे पास तलबार न हुई, नहीं तो उन्हें अन्याय का स्वाद चला देता ।

(२) होना, ठहरना, कहलाना के सामान्य भूतकाल से वर्तमान का निष्पत्र सूचित होता है; जैसे, आप लोग साधु हुए (ठहरे वा कहलाये), आपको कोई कमी नहीं हो सकती ।]

(३) 'आना' क्रिया के भूतकाल से कभी-कभी तिरस्कार के साथ वर्तमान-कालिक अवस्था सूचित होती है; जैसे, ये आये दुनिया भर के होशियार । दाता को बिकवाकर छोड़ा, आये विश्वामित्र बड़े (सर०) !

(४) प्रश्न करने में समझना, देखना, आदि क्रियाओं के सामान्य भूत से वर्तमान-काल का बोध होता है; जैसे, वह आपको वहाँ भेजता है—समझे ? देखा, कैसी बात कहता है ?

[स०—कल्पना में मानना क्रिया का सामान्य-भूत वर्तमान-काल सूचित करता है; जैसे, माना कि उसे स्वर्ग लेने की इच्छा न हो ।]

(५) संकेतार्थक वाक्यों में इस काल से बहुधा संभाव्य-भविष्यत्-काल का अर्थ सूचित होता है; जैसे, यदि मैं वहाँ गया भो, तो कोई लाभ नहीं है । यह काम चाहे उसने किया, चाहे उसके भाई ने किया, पर वह पूरा न होगा ।

(६) आसन्न भूतकाल (पूर्ण वर्तमान-काल) ।

५१०—इस काल के अर्थ ये हैं—

(अ) किसी भूतकालिक क्रिया का वर्तमान-काल में पूरा होना; जैसे नगर में एक साधु आये हैं । उसने अभी नहाया है ।

(आ) ऐसी भूतकालिक क्रिया की पूर्णता जिसका प्रभाव वर्तमान-काल में पाया जावे; जैसे, विहारी कवि ने सतसई

लिखी है। दयानंद सरस्वती ने शुगवेद का अनुवाद किया है। भारतवर्ष में अनेक दानी राजा हो गये हैं।

(इ) चैठना, लेटना, सोना, पड़ना, उठना, थकना, मरना, आदि शरीर-ब्यापार अथवा शरीरस्थिति-भूतक कियाओं के आसनभूत-काल के रूप से बहुधा वर्तमान स्थिति का बोध होता है; जैसे, राजा बैठे हैं (बैठे हुए हैं); मरा घोड़ा खेत में पड़ा है (पड़ा हुआ है); लड़का थका है।

[स०—यथार्थ में ऊपर लिखे वाक्यों के भूतकालिक क्रमांत्र स्वतंत्र विशेषण हैं और उनका प्रयोग विधेय के साथ हुआ है। ऐसी अवस्था में उन्हें किया के साथ मिलाकर आसन भूतकाल मानना भूल है। इन कियाओं के आसन भूतकाल के शुद्ध उदाहरण ये हैं—राजा अभी बैठे हैं (अर्थात् वे अब तक खड़े थे)। लड़का अभी सोया है।]

(है) भूतकालिक किया की आवृत्ति सूचित करने में बहुधा आसन भूतकाल आता है; जैसे, जब-जब अनावृति हुई है, तब-तब अकाल पड़ा है। जब-जब वह मुझे मिला है, तब-तब उसने धोखा दिया है।

(उ) किसी किया का अभ्यास—जैसे, उसने बढ़ई का काम किया है। आपने कई पुस्तकों लिखी हैं।

(१३) पूर्ण भूतकाल ।

६११—इस काल का प्रयोग नीचे लिखे अर्थों में होता है—

(अ) बोलने वा लिखने के बहुत ही पहिले की किया; जैसे, सिकंदर ने हिंदुस्तान पर चढ़ाई की थी। लड़कपन में हमने अँग-रेझी सीखी थी। सं० १६५६ में इस देश में अकाल पड़ा था। आज सबेरे मैं आपके यहाँ गया था।

[स०—भूतकाल की निकटता वा दूरता अपेक्षा और आशय से जानी जाती है। यक्ता की दृष्टि से एक ही समय कमी-कमी निकट और

कभी-कभी दूर प्रतीत होता है । आठ बजे सबेरे आनेवाले किसी आदमी से, दिनके बारह बजे, दूसरा आदमी इस अवधिको दीर्घ मानकर यह कह सकता है कि तुम सबेरे आठ बजे आये थे; और फिर उस अवधि को अल्प मानकर वह यह भी कह सकता है कि तुम सबेरे आठ बजे आये हो ।]

(आ) दो भूतकालिक घटनाओं की समकालीनता—वे योद्धी ही दूर गये थे कि एक और महाशय मिले । कथा पूरी न होने पाई थी कि सब लोग जले गये ।

(इ) सांकेतिक वाक्यों में इस काल से असिद्ध संकेत सूचित होता है; जैसे, यदि नौकर एक हाथ और मारता, तो चोर मर ही गया था । जो तुमने मेरी सहायता न की होती तो, तो मेरा काम बिगड़ चुका था ।

(ई) यह काल कभी-कभी आसन्नभूत के अर्थ में भी आता है; जैसे, अभी मैं आपसे यह कहने आया था कि मैं घर में रहूँगा (आया था = आया हूँ) । हमने आपको इसलिए बुलाया था कि आप मेरे प्रश्न का उत्तर देवें ।

(१४) संभाव्य भूतकाल ।

६१२—इस काल से नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—

(अ) भूतकाल की (पूर्ण) क्रिया की संभावना—जैसे, हो सकता है कि उसने यह बात सुनी हो । जो कुछ तुमने सोचा हो उसे साफ-साफ कहो ।

(आ) आशंका वा संदेह—कहीं चोरों ने उसे मार न डाला हो ; विवाह की बात सखी ने हसी में न कही हो । पठवा बालि होइ मन मैला (राम०) ।

(इ) भूतकालीन उत्पेक्षा में—वह मुझे ऐसे दबाता है मानो मैंने कोई भारी अपराध किया हो । वह ऐसी बातें बताता है मानो उसने कुछ भी न देखा हो ।

(ई) सांकेतिक वाक्यों में भी इस काल का प्रयोग होता है; जैसे, यदि मुझसे कोई दोष हुआ हो तो आप उसे चामा कीजियेगा । अगर तुमने मेरी किताब ली हो तो सच-सच क्यों नहीं कह देते ।

(१५) संदिग्ध भूतकाल ।

६१३—इस काल के अर्थ ये हैं—

(आ) भूतकालिक किया का संदेह—जैसे, उसे हमारी चिट्ठी मिली होगी । तुम्हारी घड़ी नौकर ने कहीं रख दी होगी ।

(आ) अनुमान—कहीं पानी बरसा होगा, क्योंकि ठंडी हवा चल रही है । रोहिताश्व भी अब इतना बहा हुआ होगा । लाठ साहच कल उदयपुर पहुँचे होंगे ।

(इ) जिज्ञासा—श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन कैसे उठाया होगा ? कएव मुनि ने क्या सँदेश भेजा होगा ?

[स०—यह प्रयोग बहुधा प्रश्नबाचक वाक्यों में होता है ।]

[ई] तिरस्कार वा घृणा—पंडितजी ने एक पुस्तक लिखी है—लिखी होगी ।

[उ] सांकेतिक वाक्यों में इस काल से संभावना की कुछ मात्रा सूचित होती है; जैसे, यदि मैंने आपकी बुराई की होगी, तो ईश्वर मुझे दंड देगा । अगर उसने मुझे बुलाया होगा, तो मुझसे उसका कुछ काम अवश्य होगा ।

(१६) पूर्ण संकेतार्थ-काल ।

६१४—इस संकेतार्थ काल से नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं और इसका उपयोग बहुधा सांकेतिक वाक्यों में होता है—

(आ) पूर्ण क्रिया का असिद्ध संकेत—जैसे, जो मैंने अपनी लड़की न मारी होती, तो अच्छा था । यदि तूने भगवान् को इस मंदिर में बिठाया होता, तो यह अशुद्ध क्यों रहता ।

[स०—कभी-कभी पूर्ण संकेतार्थ-काल दोनों साकेतिक वाक्यों में आता है; और कभी-कभी केवल एक में ।]

(आ) भूतकाल को असिद्ध इच्छा—जब वह तुम्हारे पास आये थे, तब तुमने उन्हें बिठलाया तो होता । तुमने अपना काम एक बार तो कर लिया होता ।

[स०—इस अर्थ में बहुधा अवधारणा-बोधक क्रियाविशेषण ‘तो’ का प्रयोग होता है ।]

आठवाँ अध्याय ।

क्रियार्थक संज्ञा ।

६१५—क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग साधारणतः भाववाचक संज्ञा के समान होता है, इसलिए इसका प्रयोग बहुवचन में नहीं होता; जैसे, कहना सहज है, पर करना कठिन है ।

(अ) इस संज्ञा का रूपांतर आकारांत संज्ञा के समान होता है; और जब इसका उपयोग विशेषण के समान होता है, तब इसमें कभी-कभी लिंग और वचन के कारण विकार होता है । यह संज्ञा बहुधा संबोधन कारक में नहीं आती (अ०—३७२—अ), (६१६) ।

(आ) क्रियार्थक संज्ञा का उद्देश्य संबंध कारक में आता है; परंतु अप्राणिवाचक कर्ता की विभक्ति बहुधा लुप्त रहती है; जैसे, लड़के का जाना ठीक नहीं है हिंदुओं के गाय का मारा जाना सहन नहीं होता । रात को पानी बरसना शुरू हुआ । पिछले उदाहरण में पानी का बरसना भी कह सकते हैं ।

[य०—दो भूतिकालिक क्रियाओं की समकालीनता इतने के लिए पहली क्रिया “था” के साथ क्रियार्थक संज्ञा के रूप में आती है; जैसे, उसका वहाँ पहुँचना था कि चिढ़ी आ गई ।]

(इ) संज्ञा के समान क्रियार्थक संज्ञा के पर्व विशेषण और परचात् संबंध-सूचक अव्यय आ सकता है; जैसे, सुन्दर लिखने के लिए उसे इनाम मिला ।

(ई) सकर्मक क्रियार्थक संज्ञा के साथ उसका कर्म और अपूरण क्रियार्थक संज्ञा के साथ उसकी पूर्ति आ सकती है और सब प्रकार की क्रियाओं से बनी क्रियार्थक संज्ञाओं के साथ क्रिया-विशेषण (अथवा अन्य कारक) आ सकते हैं; जैसे, यह काम जलदी करने में लाभ है । मंत्री के आचानक राजा बन जाने से देश में गढ़बढ़ मच गई । मूठ को सच कर दिखाना कोई हमसे सीख जाय । पत्नी का पति के साथ चिता में भस्म होना हिंदुओं में प्राचीन काल से चला आता है ।

(३) किसी-किसी क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग जातिवाचक संज्ञा के समान होता है; जैसे, गाना (= गीत); खाना (= भोजन, मुसलमानों में), झरना (= सोता) ।

(ऊ) जब क्रियार्थक संज्ञा विधेय में आती है तब उसका प्राणिवाचक उद्देश्य संप्रदान-कारक में, और अप्राणिवाचक उद्देश्य कर्त्ता-कारक में रहता है; जैसे, नुमें जाना है । लड़के को अपना काम करना था । इस संगुन से क्या फल होना है । जो होना था सो हो लिया ।

६१६—जब क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग, विकल्प से, विशेषण के समान होता है, उस समय उसके लिंग-व्यवन कर्त्ता अथवा कर्म के अनुसार होते हैं; जैसे, मुझे दवाई पीनी पड़ेगी । जो बात

होनी थी, सो हो ली । मुझे सबके नाम लिखने होंगे । इन उदाहरणों में क्रमशः पीना, होना और लिखना भी शुद्ध हैं । होनी = भवनीया, पीनी = पानीया और लिखने = लेखनीयाः ।

६१७—क्रियार्थिक संज्ञा का संप्रदान-कारक बहुधा निमित्त वा प्रयोजन के अर्थ में आता है; पर कभी-कभी उसकी विभक्ति का लोप हो जाता है; जैसे, वे उम्हें लेने को गये हैं । मैं इसी लड़की के मारने को तलबार लाया हूँ (गुटकऽ०) । आपसे कुछ माँगने आये हैं ।

(अ) बोलचाल में बहुधा वाक्य की मुख्य क्रिया से बनी हुई क्रियार्थिक संज्ञा का संप्रदान कारक इच्छा वा विशेषता का अर्थ सूचित करता है; जैसे, जाने को तो मैं वहाँ जा सकता हूँ, लिखने को तो वह यह लेख लिख सकता है ।

(आ) “कहना” क्रियार्थिक संज्ञा का संप्रदान-कारक प्रत्यक्षता अथवा उदाहरण के अर्थ में आता है; जैसे, कहने को तो उनके पास बहुत धन है; पर कर्ज़ भी बहुत है । उन्होंने कहने को मेरा काम कर दिया ।

(इ) “होना” क्रिया के साथ विधेय में क्रियार्थिक संज्ञा का संप्रदान-कारक तत्परता के अर्थ में आता है; जैसे, नौकर आने को है । वह जाने को हुआ ।

६१८—निश्चय के अर्थ में क्रियार्थिक संज्ञा विधेय में नहीं के साथ संबंध-कारक में आती है । जैसे, वह वहाँ जाने की नहीं । मैं यहाँ से नहीं उठने का ।

[स०—इन उदाहरणों में मुख्य क्रिया का बहुधा लोप रहता है, और क्रियार्थिक संज्ञा के लिंग-वचन उद्देश्य के अनुसार होते हैं ।]

६१६—कियार्थक संज्ञाओं का उपयोग कई एक संयुक्त क्रियाओं में होता है जिसका विवेचन यथास्थान हो चुका है (अं०—५०५—४०६) ।

(अ) क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग परोक्षविधि के अर्थ में भी क्रिया जाता है—[अं०—३८६ (४)] ।

(आ) दशा अथवा स्वभाव सूचित करने में बहुधा मुख्य वाक्य के साथ आनेवाले निषेद्वाचक वाक्यों में क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग होता है; ऐसे, कुँआरजी का अनूप रूप क्या कहूँ ? कुछ कहने में नहीं आता ; न खाना, न पीना, न किसी से कुछ कहना न सुनना । इन उदाहरणों में क्रियार्थक संज्ञा कर्ता-कारक में मानी जा सकती है और उसके साथ “अच्छा लगता है” क्रिया अध्याहत समझी जा सकती है ।

नवौँ अध्याय ।

कुदंत

६२०—क्रियार्थक संज्ञा के सिवा हिंदी में जो और कुदंत हैं वे रूपांतर के आधार पर दो प्रकार के होते हैं—(१) विकारी (२) अविकारी । फिर इनमें से प्रत्येक के अर्थ के अनुसार कई भेद होते हैं, यथा—

- | | |
|--------------|--|
| (१) विकारी | $\left\{ \begin{array}{l} (१) \text{ वर्तमान-कालिक कुदंत} \\ (२) \text{ भूतकालिक कुदंत} \\ (३) \text{ कर्त्तव्याचक कुदंत} \end{array} \right.$ |
|--------------|--|

(५८)

- | | |
|---------------|---|
| (२) अविकारी | { (१) अपूर्ण क्रियाद्योतक कुदंत
{ (२) पूर्णक्रियाद्योतक कुदंत
{ (३) तात्कालिक कुदंत
{ (४) पूर्वकालिक कुदंत |
|---------------|---|

[१] वर्तमान-कालिक कुदंत ।

५२१—इस कुदंत का उपयोग विशेषण वा संज्ञा के समान होता है और इसमें आकारांत शब्द की नाई' विकार होते हैं, जैसे चलती चक्की देखकर, बहता पानी, मारतों के आगे, भागतों के पीछे, हूबते को तिनके का सहारा ।

(अ) वर्तमानकालिक कुदंत विधेय में आकर कर्ता वा कर्म की विशेषता (दशा) बतलाता है, जैसे कोई शूद्र गाय को मारता हुआ आता है । सिपाही ने कई चोर भागते हुए देखे । दूसरा घोड़ा जीता हुआ लौट आया । खियाँ गीत गाती हुई गई' । सड़क पर एक आदमी आता हुआ खिलाई देता है । मैं लड़के को दौड़ाता लाऊँगा ।

(आ) जाते समय, लौटते वक्त, मरती बेरा, जीते जी, फिरती थार, आदि उदाहरणों में वर्तमान-कालिक कुदंत का प्रयोग विशेषण के समान हुआ है । आकार के स्थान में यहोने का कारण यह है कि उस विशेषण के विशेष्य में विभक्ति का संस्कार है । इन उदाहरणोंमें समय, वक्त, बेरा, जी इत्यादि संज्ञाएँ व्यथार्थी विशेष्य नहीं हैं, किंतु केवल एक प्रकार की लक्षणाः से विशेष्य मानी जा सकती

६ लक्षणा शब्द की यह वृत्ति (शक्ति) है जिससे उसके किसी व्यर्थ से मिलता-जुलता अर्थ सूचित होता है; जैसे उसका हृदय पत्थर है ।

हैं । जाते = जाने के, लौटते = लौटने के । इस विचार से यहाँ जाते, लौटते, आदि संबंध-कारक हैं और संबंध-कारक विशेषण का एक रूपांतर ही है ।

(इ) कभी-कभी वर्तमानकालिक कुदंत विशेषण विशेष्य-निधन होने पर भी किया की विशेषता बतलाता है; जैसे, हिरन चौकड़ी भरता हुआ भागा । हाथी भूमता हुआ चलता है । लड़की अटकती हुई बोलती है । इस अर्थ में वर्तमानकालिक कुदंत की द्विरूपिता भी होती है; जैसे, यात्री अनेक देशों में घूमता-घूमता लौटा । खियाँ रसोई करते-करते थक गईं ।

[२] भूतकालिक कुदंत

६२२—अकर्मक क्रिया से बना हुआ भूतकालिक कुदंत कर्त्तव्याचक और सकर्मक क्रिया से बना हुआ कर्मवाचक होता है और दोनों का प्रयोग विशेषण के समान होता है, जैसे, रमा हुआ घोड़ा खेत में पड़ा है; एक आदमी जली हुई लकड़ियाँ बटोरता था; दूर से आया हुआ मुसाफिर ।

(अ) यह कुदंत विधेय-विशेषण होकर भी आता है; जैसे, वह मन में फूला नहीं समाता । वहाँ एक पलैंग विछा हुआ था । आप तो मुझसे भी गये थीते हैं । इसका सबसे ऊँचा भाग सदा बर्फ से ढँका रहता है । लड़के ने एक पेड़ में कुछ फल लगे हुए देखे । चौर घबराया हुआ भागा ।

(आ) कभी-कभी सकर्मक भूतकालिक कुदंत का उपयोग कर्त्तव्याचक होता है और तब उसका विशेष्य उसका कर्म नहीं, किंतु कर्त्ता अथवा दूसरा शब्द होता है । कर्म विशेषण के पूर्व आकर विशेषण का अर्थ पूर्ण नहरता है; जैसे, काम सीखा हुआ

नौकर; इनाम पाया हुआ लड़का; पर कटा हुआ गिर्धा। (सत्य०)
नीचे नाम दी हुई पुस्तकें (सर०) । यह पिछला प्रयोग विशेष
प्रचलित नहीं है ।

[स०—किसी-किसी की सम्मति में ये उदाहरण सामाजिक शब्दों के
हैं और इन्हें निलाकर लिखना चाहिए; जैसे इनाम-पाया हुआ; नाम-
दी हुई ।]

(इ) भूतकालिक कृदंत का प्रयोग बहुधा संज्ञा के समान भी
होता है और उसके साथ कभी-कभी “विना” का योग होता है;
जैसे, किये का फल । जले पर लोन । मरे को मारना । विना
विचारे जो करे, सो पांछे पछताय । लड़के इसको विना छेड़े
न छोड़ते ।

(ई) भूतकालिक कृदंत बहुधा अपनी संबंधी संज्ञा के संबंध-
कारक के साथ आता है; जैसे, मेरी लिखी पुस्तकें । कपास का
बना कपड़ा; घर का सिला कुरता (अं०—५४०) ।

(३) कर्तव्याचक कृदंत ।

६२३—इस कृदंत का उपयोग संज्ञा अथवा विशेषण के
समान होता है और पिछले प्रयोग में इससे कभी-कभी आसन्न-
भविष्यत् का अर्थ सूचित होता है; जैसे, किसी लिखनेवाले को
बुलाओ । मूठ बोलनेवाला मनुष्य आदर नहीं पाता । गाड़ी
आनेवाली है ।

(अ) और-और कृदंतों के समान सकर्मक क्रिया से बना
हुआ यह कृदंत भी कर्म के साथ आता है और यदि यह अपूर्ण
क्रिया से बना हो तो इसके साथ इसकी पूर्ति आती है; जैसे, घड़ी
बनानेवाला; मूठ को सच बतानेवाला; बढ़ा दोनेवाला ।

(४) अपूर्ण क्रिया-योतक कुदंत ।

६२४—यह कुदंत सदा अविकारी (एकारांत) रूप में रहता है और इसका प्रयोग क्रिया-विशेषण के समान होता है; जैसे, उसको वहाँ रहते (= रहने में) दो महीने हो गये । मुझे सारी रात तलफते बीती । यह कहते मुझे बड़ा हर्ष होता है ।

(अ) अपूर्ण क्रिया-योतक कुदंत का उपयोग बहुधा तथा होता है, जब कुदंत और सुख्ल्य क्रिया के उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं और कुदंत का उद्देश्य (कभी-कभी) लुप्त रहता है; जैसे, दिन रहते यह काम हो जायगा । मेरे रहते कोई कुछ नहीं कर सकता । वहाँ से लौटते रात हो जायगी । बात कहते दिन जाते हैं ।

(आ) जब वाक्य में कर्ता और कर्म अपनी-अपनी विभक्ति के साथ आते हैं, तब उनका वर्त्तलानकालिक कुदंत उनके पीछे अविकारी रूप में आता है और उसका उपयोग बहुधा क्रिया-विशेषण के समान होता है; जैसे, उसने चलते हुए सुक्ष्मे यह कहा था । मैंने उन स्थिरों को लौटते हुए देखा । मैं नौकर को कुछ बड़-बड़ाते हुए सुन रहा था ।

(इ) अपूर्ण क्रिया-योतक कुदंत की बहुधा द्विरुक्ति होती है, और उससे नित्यता का बोध होता है; जैसे, बात करते-करते उसकी बोली बन्द हो गई; मैं उरते-डरते उसके पास गया; हँसते-हँसते प्रसन्नतापूर्वक देवता के चरणों में अपने सारे सुखों का बलिदान कर देना ही परम धर्म है ।

वह मरते-मरते चचा = वह लगभग मरने से चचा ।

(ई) विरोध सूचित करने के लिए अपूर्ण क्रिया-योतक कुदंत

के पश्चात् 'भी' अठयय का योग किया जाता है; जैसे, मंगल-साधन करते भी जो विषयत्ति आन पढ़े तो संतोष करना चाहिए; वह धर्म करते हुए भी, दैवयोग से, धनदीन हो गया, नौकर मरते-मरते भी सच न बोला ।

(३) अपूर्ण कियाद्योतक कुदंत का कर्त्ता कभी कर्त्ता-कारक में, कभी स्वतंत्र होकर, कभी संप्रदान-कारक में और कभी संबंध-कारक में आता है; जैसे, मुझे यह कहते आनंद होता है; दिन रहते यह काम हो जायगा; आपके होते कोई कठिनाई न होगी; उसने चलते हुए यह कहा ।

(४) पुनरुक्त अपूर्ण कियाद्योतक का कर्त्ता कभी-कभी लुप्त रहता है, और तब यह कुदंत स्वतंत्र दशा में आता है; जैसे, होते-होते अपने अपने पते सवने खोले; चलते-चलते उन्हें एक माँव मिला ।

(५) वर्त्मानकालिक कुदंत और अपूर्ण कियाद्योतक कुदंत कभी-कभी समान अर्थ में आते हैं; जैसे, पार्वती को पुस्तक पढ़ते देखकर उसके शरीर में आग लग गई (सर०); तुम इस चक्रवर्ती की सेवा-योग्य बालक और स्त्री को विकता देखकर दुकड़े दुकड़े क्यों नहीं हो जाते ? (सत्य०) ।

[स०—वर्त्मानकालिक कुदंत के पुण्डिग-वहुवचन का रूप अपूर्ण कियाद्योतक कुदंत के समान होता है; पर दोनों के अर्थ और प्रयोग भिन्न-भिन्न हैं; जैसे, सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई देते हैं। (वर्त्मान-कालिक कुदंत) । (सत्य०) । तन रहते उत्साह दिखावेगा यह जीवन (अपूर्ण कियाद्योतक कुदंत) । (सर०) ।]

पूर्ण क्रियाद्योतक कुदंत ।

६२५—यह कुदंत भी सदा अविकारी रूप में रहता है और क्रिया-विशेषण के समान उपयोग में आता है; जैसे, राजा को मरे दो वर्ष हो गये । उनके कहे क्या होता है ? सोना जानिये कहे आदमी जानिये बसे ।

(अ) इस कुदंत का उपयोग भी बहुधा तभी होता है जब इसका कर्ता और सुख्य क्रिया का कर्ता भिन्न-भिन्न होते हैं; जैसे, पहर दिन चढ़े इम लोग बाहर निकले; कितने एक दिन बीते राजा फिर बन को गये ।

(आ) सकर्मक पूर्ण क्रियाद्योतक कुदंत से क्रिया और उद्देश्य की दशा सूचित होती है; जैसे, एक कुत्ता मुह में रोटी का टुकड़ा दबाये जा रहा था; तुम्हारी लड़की छाता लिये जाती थी । यह कौन महा भयंकर भेष, अंग में भूमूल पोते, एही तक जटा लटकाये त्रिशूल घुमाता चला आता है; (सत्य०) । वह एक नौकर रखते हैं । साँप मुह में मेढ़क दबाये था ।

(इ) नित्यता वा अतिशयता के अर्थ में इस कुदंत की द्विरुक्ति होती है; जैसे, वह बुलाये-बुलाये नहीं आता; लड़की बैठे-बैठे उकता गई; बैठे-बिठाये यह आफत कहाँ से आई ? सिर पर बोक लादे-लादे वह बहुत दूर चला गया ।

(ई) अपूर्ण और पूर्ण क्रियाद्योतक कुदंत बहुधा कर्ता से संबंध रखते हैं; पर कभी-कभी उनका संबंध कर्म से भी रहता है और यह बात उनके अर्थी और स्थान-क्रम से सूचित होती है; जैसे, मैंने लड़के को खेलते हुए देखा; सिपाही ने चोर को माल लिये हुए पकड़ा; इन बाक्यों में कुदंतों का संबंध कर्म से है । उसने

चलते हुए नौकर को बुलाया; मैंने सिर झुकाये हुए राजा को प्रणाम किया । ये वाक्य यथापि दुर्धर्थी जान पढ़ते हैं, तो भी इनमें कृदंतों का संबंध कर्ता से है ।

(३) पूर्ण कियायोतक कृदंत का कर्ता, अपूर्ण कियायोतक कृदंत के कर्ता के समान, अर्थ के अनुसार अलग-अलग कारकों में आता है; जैसे, इनके मरे न रोइये; मुझे घर छोड़े एक युग बीत गया । दस बजे गाड़ी आई ।

(४) कभी-कभी इस कृदंत का प्रयोग 'विना' के साथ होता है; जैसे, विना आपके आये हुए यह काम न होगा ।

(५) अपूर्ण और पूर्ण कियायोतक कृदंत बहुधा कर्मवाच्य में नहीं आते । यदि आवश्यकता हो तो कर्मवाच्य का अर्थ कर्तृ-वाच्य ही से लिया जाता है, जैसे, वह बुलाये (बुलाये गये) विना यहाँ न आयगा । गाते-गाते (गाये जाते-जाते) चुके नहीं वह ।

(एकांत०) ।

[६] तात्कालिक कृदंत ।

६२६—इस कृदंत से मुख्य क्रिया के समय के साथ ही होने-बाली घटना का बोध होता है; और यह अपूर्ण कियायोतक कृदंत के अंत 'मैं' ही जोड़ने से बनता है; जैसे, बाप के मरतेही लड़कों ने बुरी आदतें सीखीं; सूरज निकलतेही वे लोग भागे; इतना सुनतेही वह आग-बबूला हो गया; लड़का मुझे देखतेही छिप जाता है ।

(६) इस कृदंत की पुमरुक्ति भी होती है और उससे काल की अवस्थिति का बोध होता है; जैसे, वह मूर्च्छा देखतेही-देखते खोप हो गई; आपको लिखतेही-लिखते कई बंदे लग जाते हैं ।

(आ) इस कुदंत का कर्त्ता, अर्थ के अनुसार, कभी-कभी मुख्य किया का कर्त्ता और कभी-कभी स्वतंत्र होता है; जैसे, उसने आतेही उपद्रव मचाया; उसके आतेही उपद्रव मच गया ।

[७] पूर्वकालिक कुदंत ।

६२७—पूर्वकालिक फुट बहुधा मुख्य किया के उद्देश्य से संबंध रखता है, जो कर्त्ता-कारक में आता है; जैसे, मुझे देखकर वह चला गया; काशी से कोई बड़े पंडित यहाँ आकर ठहरे हैं; देव ने उस मनुष्य की सचाई पर प्रसन्न होकर वे तीनों कुलहाडियाँ उसे दे दीं ।

(अ) कभी-कभी पूर्वकालिक कुदंत कर्त्ता-कारक को छोड़ अन्य कारकों से संबंध रखता है, जैसे, आगे चलकर उन्हें एक आदमी मिला; भाई को देखकर उसका मन शांत हुआ ।

(आ) यदि मुख्य किया कर्मवाच्य हो तो पूर्वकालिक कुदंत भी कर्मवाच्य होना चाहिये; पर व्यवहार में उसे कर्मवाच्य ही रखते हैं; जैसे, धरती खोदकर एकसी कर दी गई (खोदकर = खोदी जाकर), उसका भाई मन्सूर पकड़कर अकबर के दरबार में लाया गया (सर०); (पकड़कर = पकड़ा जाकर) ।

[स०—“कविता-कलाप” में पूर्वकालिक किया के कर्मवाच्य का यह उदाहरण आया है—

फिर निज परिचय पूछे जाकर,
बोलो यम यो उससे सादर ।

इस वाक्य में ‘पूछे जाकर’ किया का प्रयोग एक विशेष अर्थ (पूछना = परवाह करना) में व्याकरण से शुद्ध माना जा सकता है, पर

उसके साथ 'परिचय' कर्म का प्रयोग अशुद्ध है, क्योंकि "परिचय पूछें जाकर" न-संबुक्त किया ही है और न समाप्त है। इसके सिवा वह कर्म-यात्र्य की रचना के विषय भी है। (अं०—३५६)]

(इ) कभी-कभी पूर्वकालिक कुदंत के साथ स्वतंत्र कर्त्ता आता है जिसका मुख्य किया से कोई संबंध नहीं रहता; जैसे, चार बजकर दस मिनट हुए; खर्च जाकर पाँच रुपये की बचत होगी; आज अर्जी पेश होकर यह दुकुम हुआ। इस राग से परिश्रमी का दुःख मिटकर चित्त नया सा हो गया है; (शक०); हानि होकर यों हमारी दुर्दशा होती नहीं; (भारत०)। (अं—५११—८) ।

(ई) कभी-कभी स्वतंत्र कर्त्ता लुप्त रहता है और पूर्वकालिक कुदंत स्वतंत्र दशा में आता है; जैसे, आगे जाकर एक गाँव दिखाई दिया। समय पाकर उसे गर्भ रहा। सब मिलाकर इस पुस्तक में कोई दो सौ पृष्ठ हैं।

(उ) कभी-कभी पूर्वोक्त किया पूर्वकालिक कुदंत में दुहराई जाती है; जैसे, वह उठा और उठकर बाहर गया; अर्क बहकर वर्तन में जमा होता है और जमा होकर जम जाता है।

(ऊ) बढ़ना, करना, हटना और होना क्रियाओं के पूर्वकालिक कुदंत कुछ विशेष अर्थों में भी आते हैं; जैसे, चित्र से बढ़कर चित्रेरे की बढ़ाई कीजिए (सर०), (अधिक, विशेषण)।

किला सड़क से कुछ हटकर है, (दूर, कि० चि०) ।

वे शास्त्री करके प्रसिद्ध हैं (नाम से, सं० सू०) ।

तुम ब्राह्मण होकर संस्कृत नहीं जानते (होने पर भी) ।

(वे) एक बार जंगल में होकर किसी गाँव को जाते थे (से) ।

(अ) लेकर—यह पूर्वकालिक कुदंत काल, संख्या, अवस्था और स्थान का आरंभ सूचित करता है; जैसे, सबेरे से लेकर सौंभ तक; पाँच से लेकर पचास तक। हिमालय से लेकर सेतुबंध-रामे श्वर तक; राजा से लेकर रंक तक। इन सब अर्थों में इस कुदंत-का प्रयोग स्वतंत्र होता है।

[द०—बङ्गला ‘लहया’ के अनुकरण पर कभी-कभी हिंदी में ‘लेकर’ विवाद का कारण सूचित करता है; जैसे, आजकल घर्म को लेकर कई बखेडे होते हैं। यह प्रयोग शिष्ट-सम्मत नहीं है।]

दसवाँ अध्याय ।

संयुक्त क्रियाएँ ।

६२८—जिन अवधारण-बोधक संयुक्त क्रियाओं (बोलना, कहना, रोना, हँसना, आदि) के साथ अच्चानकता के अर्थ में “आना” किया आती है, उनके साथ बहुधा प्राणिवाचक कर्त्ता रहता है और वह संप्रदान-कारक में आता है; जैसे, उसकी बात सुनकर मुझे रो आया; बोध में मनुष्य को कुछ कह आता है।

६२९—आवश्यकता-बोधक क्रियाओं का प्राणिवाचक उद्देश्य संप्रदान-कारक में आता है और अप्राणिवाचक उद्देश्य कर्त्ता-कारक में रहता है; जैसे, मुझको जाना है; आपको बैठना पड़ेगा; इमें यह काम करना चाहिये; अभी बहुत काम होना है; घंटा बजना चाहिये। ‘पहना’ क्रिया के साथ बहुधा प्राणिवाचक कर्त्ता आता है।

६३०—‘चाहिये’ किया में कर्ता वा कर्म के पुरुष और लिंग के अनुसार कोई विकार नहीं होता; परंतु कर्म के बचन के अनुसार यह कभी-कभी बदल जाती है; जैसे, हमें सब काम करने चाहिये (परी०) । यह प्रयोग सार्वत्रिक नहीं है ।

(अ) सामान्य भूतकाल में ‘चाहिये’ के साथ ‘था’ किया आती है, जो कर्म के अनुसार विकल्प से बदलती है; जैसे, मुझे उनकी सेवा करना चाहिये था अथवा करना चाहिये थी । यहाँ ‘करना’ कियार्थक संज्ञा का भी रूपांतर हो सकता है । (अं०—४०५) ।

६३१—देना अथवा पढ़ना के योग से बनी हुई नामबोधक क्रियाओं का इश्य संप्रदान-कारक में आता है; जैसे, मुझे शब्द सुनाई दिया; लड़के को दिखाई नहीं देता; उसे कम सुनाई पढ़ता है । (अं०—५३५) ।

६३२—जिन सकर्मक अवधारणा-बोधक क्रियाओं के साथ अकर्मक सहकारी क्रियाएँ आती हैं वे (कर्तव्याच्य में) सदैव कर्तृरिप्रयोग में रहती हैं; जैसे, लड़का पुस्तक ले गया; सिपाही चोर को मार दैठा ; दासी पानी ला रही है ।

(अ) जिन सकर्मक क्रियाओं के साथ ‘आना’ किया अचानकता के अर्थ में आती है उनमें अप्रत्यय कर्म के साथ कर्मणि-प्रयोग और सप्रत्यय कर्म के साथ भावे प्रयोग होता है; जैसे, मुझे वह बात कह आई; उस नौकर को बुला आया । कहो चाहे कहूँ तो कहूँ कहि आवै । (जगत्०) ।

(आ) अकर्मक क्रिया के साथ ऊपर लिखे अर्थ में ‘आना’ क्रिया सदैव भावेप्रयोग में रहती है; जैसे, बूढ़े को देखकर लड़के को हँस आया, लड़की को बात करने में रो आता है ।

६३३—जिन अकर्मक साधारण-बोधक क्रियाओं के साथ सकर्मक सहकारी क्रियाएँ आती हैं उनके साथ सप्रत्यय कर्त्ताकारक रहता है; और वे भावेप्रयोग में आती हैं, जैसे, लड़के ने सो लिया, दासी ने हँस दिया, मेरी लड़ी और बहिन ने एक दूसरे को देखकर मुसकुरा दिया (सर०) ।

अप०—(१) “होना” के साथ “लेना” क्रिया सदैव कर्त्तरिप्रयोग में आती है, जैसे, वे साधु हो लिये । जो बात होनी थी सो हो ली । यहाँ “लेना” क्रिया “चुकना” के अर्थ में आई है । हो ली = हो चुकी ।

अप०—(२) “चलना” क्रिया के साथ “देना” क्रिया विकल्प से कर्त्तरि वा भावेप्रयोग में आती है, जैसे, वह मनुष्य तत्काल वहाँ से चल दिया (परी०) । उन्होंने उनकी आङ्गा से रथ पर सवार होकर चल दिया (रघु०) ।

(अ) अप्राणिवाचक कर्त्ता के साथ बहुधा कर्त्तरिप्रयोग ही आता है, जैसे, गाढ़ी चल दी ।

६३४—आवश्यकता-बोधक सकर्मक क्रियाएँ (कर्त्तवाच्य में) विकल्प से कर्मणि वा भावेप्रयोग में आती हैं, जैसे, मुझे ये दान ब्राह्मणों को देने हैं (शकु०) । कहाँ तक दस्तन्दजी करना चाहिये (स्वा०) । तुमको किताब लाना पढ़ेगा, वा लाना पढ़ेगी (अथवा लानी पढ़ेगी ।)

६३५—आवश्यकता-बोधक अकर्मक क्रियाओं का कर्त्ता प्राणिवाचक हो तो बहुधा भावेप्रयोग और अप्राणिवाचक हो तो बहुधा कर्त्तरिप्रयोग होता है, जैसे, आपको बैठना पढ़ेगा, घंटी बजना थी ।

६३६—अनुमति-बोधक किया सदा सकर्मक रहती है और यदि उसकी मुख्य किया भी सकर्मक हो तो संयुक्त किया द्विकर्मक होती है; जैसे, उसे यहाँ बैठने दो, बाप ने लड़के को कच्चा फल न खाने दिया, हमने उसे चिट्ठी न लिखने दी।

(अ) यदि अनुमति-बोधक संयुक्त किया में मुख्य किया द्विकर्मक हो, तो उसके दोनों कर्मों के सिवा, सहायक किया का संप्रदान कारक भी बाक्य में आ सकता है, जैसे, मुझे उनका यह बात बताने दीजिये। (लड़के को) अपने भाई को सहायता देने दो।

६३७—क्रियार्थक संज्ञासे बनी हुई अवकाशबोधक क्रियाएँ बहुधा कर्त्तरिप्रयोग में आती हैं, जैसे, बातें न होने पाईं, जल्दी के मारे मैं चिट्ठी न लिखने पाया। तात न देखन पायड़ तोहर्छ (राम०)।

(अ) पूर्वकालिक कुदंत के योग से बनी हुई सकर्मक अवकाशबोधक क्रिया बहुधा कर्मणि अथवा भावेप्रयोग में आती है, जैसे उसने अपना कथन पूरा न कर पाया था (सर०)। कुछ लोगों ने बड़ी कठिनाई से श्रीमान् को एक हाणि देख पाया।

(आ) यदि ऊपर (अ में) लिखी किया अकर्मक हो तो कर्त्तरिप्रयोग होता है, जैसे, बैकुण्ठ बाबू की बात पूरी न हो पाई थी (सर०)।

६३८—नीचे लिखी (सकर्मक वा अकर्मक) संयुक्त क्रियाएँ (कर्तुवाच्य) में भूतकालिक कुदंत से बने हुए कालों में सदैव कर्त्तरिप्रयोग में आती हैं।

(१) आरंभ-बोधक—लड़का पढ़ने लगा। लड़कियाँ काम करने लगीं।

(२) नित्यताबोधक—हम बातें करते रहे। बह मुझे बुलाता रहा है।

(३) अभ्यासबोधक—यों वह दीन दुःखिनी बाला रोया की दुख में उस रात (हिं० प्र०) । बारह बरस दिल्ली रहे, पर भाड़ ही भोंका किये (भारत०) ।

(४) शक्तिबोधक—लड़की काम न कर सकी; हम उसको बात कठिनाई से समझ सके थे ।

(५) पूर्णताबोधक—नौकर कोठा भाड़ चुका । स्त्री रसोई बना चुकी है ।

(६) वे नामबोधक कियाएँ जो देना वा पढ़ना के योग से बनती हैं; जैसे, ओर थोड़ी दूर दिखाई दिया; वह शब्द ही ठीक-ठीक न सुनाई पड़ा ।

न्यारहवाँ अध्याय ।

अव्यय ।

६३६—संबंधवाचक क्रिया-विशेषण क्रिया की विशेषता बताने के सिवा वाक्यों को भी जोड़ते हैं; जैसे, जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कथि; जब-तक जीना, तब-तक सीना ।

६४०—‘जब-तक’ क्रिया-विशेषण बहुधा संभाव्य भविष्यत् तथा दूसरे कालों के साथ आता है और क्रिया के पूर्व नियेष्वाचक अव्यय लाया जाता है; जैसे, जब तक मैं न आऊँ, तब तक तुम यहाँ ठहरना; जब तक मैंने उनसे रुपये की बात नहीं निकाली, तब तक वे मेरे यहाँ आते रहे ।

६४१—जब ‘जहाँ’ का अर्थ काल वा अवस्था का होता है तब उसके साथ बहुधा अपूर्ण-भूतकाल आता है; जैसे, इस काम में जहाँ पहले दिन लगते थे, वहाँ अब घंटे लगते हैं; जहाँ वह मुफ्त से सीखते थे, वहाँ अब मुक्ते सिखाते हैं ।

६४२—न, नहीं, मत । “न” सामान्य-वर्तमान, अपर्णा-भूत और आसन्न-भूत (पर्णा-वर्तमान) कालों को छोड़कर बहुधा अन्य कालों में आता है । ‘नहीं’ संभाव्य-भविष्यत्, क्रियार्थिक संज्ञा तथा दूसरे कुदंत, विधि और संकेतार्थी कालों में बहुधा नहीं आता । ‘मत’ केवल विधिकाल में आता है । उदाह—जड़का बहाँ न गया; नौकर कभी न आवेगा; मेरे साथ कोई न रहे; हम कहाँ ठहर नहीं सकते, “बदला” न लेना शत्रु से कैसा अधर्म अनर्थ है ! ” (क० क०) । उसका धर्म मत छुड़ाओ (सत्य०) ।

६४३—संयोजक समुच्चय-बोधक समान शब्द-भेद, संज्ञाओं के समान कारक और क्रियाओं के समान अर्थी और कालों को जोड़ते हैं; जैसे, आलू, गोभी और बैगन की तरकारी और दाल-भात । हड्डताल वास्तव में, मजदूरों के हाथ में एक बड़ा ही विकट और कार्य सिद्ध करनेवाला हथियार है । उन लोगों ने इसका खूब ही स्वागत किया होगा और बड़े चैन से दिन काटे होंगे ।

(अ) यदि बाक्य की क्रियाओं का संबंध भिन्न-भिन्न कालों से हो तो वे भिन्न-भिन्न कालों में रहकर भी संयोजक समुच्चय-बोधक के द्वारा जोड़ी जा सकती हैं; जैसे, मैं इस घर में रहा हूँ, रहता हूँ और रहूँगा; वह सबेरे आया था और शाम को चला जायगा ।

६४४—संकेतवाचक समुच्चय-बोधक बहुधा संभावनार्थी और संकेतार्थी कालों में आते हैं; जैसे, जो मैं न आऊँ, तो तुम चले जाना । यदि समय पर पानी बरसता, तो फसल नष्ट न होती ।

६४५—‘चाहे-चाहे’ संभाव्य भविष्यत्-काल के साथ और ‘मानो’ बहुधा संभाव्य-वर्तमान के साथ आता है; जैसे, आप चाहे दरबार में रहें, चाहे मनमाना खर्ची लेकर तीर्थ-यात्रा को जावें; वहाँ अचानक ऐसा शब्द हुआ मानो चादल गरजते हों ।

६४६—जब न-न का अर्थ संकेतवाचक होता है, तब वह

सामान्य संकेतार्थी अथवा भविष्यत्-काल के साथ आता है; जैसे, न आप यह बात कहते, न मैं आपसे अप्रसन्न होता; न मुझे समय मिलेगा, न मैं आपसे मिल सकूँगा ।

६४७—जब 'कि' का अर्थ कालवाचक होता है तब भूतकाल की घटना सूचित करने में इसके पूर्व बहुधा पूर्ण-भूतकाल आता है; जैसे, वे थोड़ी ही दूर गये थे कि एक महाशय मिले । बात पूरी भी न होने पाई थी कि वह बोल उठा ।

(अ) इस अर्थ में कभी-कभी इसके पूर्व क्रियार्थक संज्ञा के साथ 'या' का प्रयोग होता है; जैसे, उसका बोलना था कि लोगों ने उसे पकड़ लिया । सिपाही का आना था कि सब लोग भाग गये ।

६४८—कथापि—तथापि के बदले कभी-कभी "कितना" वा "कैसा" के साथ "ही" का प्रयोग करके क्रिया के पूर्व "क्यों न" क्रिया-विशेषण लाते हैं और क्रिया को संभावनार्थी के किसी एक काल में रखते हैं; जैसे, कोई कितना ही मूर्ख क्यों न हो, विद्य-भ्यास करने से उसमें कुछ बुद्धि आ ही जाती है; लड़के कैसे ही चतुर क्यों न हों, पर माता पिता उन्हें शिक्षा देते रहते हैं ।

६४९—जब बाक्य में दो शब्द-भेद संयोजक या विभाजक समुच्चय-बोधकों के द्वारा जोड़े जाते हैं तब ये अव्यय उन दो शब्दों के बीच में आते हैं; और जब जुड़े हुए शब्द दो से अधिक होते हैं तब समुच्चय-बोधक अंतिम शब्द के पूर्व अथवा जोड़े से आये हुए सब्दों के मध्य में रखे जाते हैं; जैसे, युवक और युवती के बीच एक दूसरे की ओर देखने में मन थे; मैं लंडन, न्यूयार्क और टोकियो में भारतीय यात्रियों, विद्यार्थियों और व्यवसाइयों के लिए भारत-भवन बनवाऊँगा । दोनों मिलकर एक गीत गाओ या एक ही को गाने दो या दोनों मौन धारण करो, या आओ, तीनों मिलकर गावें ।

६५०—संज्ञा और उसकी विभक्ति अथवा संबंध—सूचक अव्यय के बीच में कोई वाक्य या क्रिया-विशेषण वाक्यांश नहीं आ सकता, क्योंकि, इससे शब्दों का संबंध टूट जाता है, और वाक्य में दुर्बोधता आ जाती है; जैसे, फौली साहब के बाग (जिसका बर्णन किसी दूसरे लेख में किया जायगा) की झज्जक लेते पथिक आगे बढ़ता है (लदमी०) । मंदिर बालाजी वाजीराब (तृतीय पेशवा सन् १७४० से १७६१ तक) ने बनवाया ।

बारहवाँ अध्याय

अध्याहार ।

६५१—कभी-कभी वाक्य में संचेप अथवा गौरव लाने के लिए कुछ ऐसे शब्द छोड़ दिये जाते हैं जो वाक्य के अर्थ पर से सहज ही जाने अथवा समझे जा सकते हैं । भाषा के इस व्यवहार को अध्याहार कहते हैं । उदाहरण—मैं तेरी एक भी () न सुनूँगा । दूर के ढोल सुहावने () । कोई-कोई जंतु तैरते फिरते हैं, जैसे मछलियाँ () ।

६५२—अध्याहार दो प्रकार का होता है—(१)पूर्ण (२) अपूर्ण ।

(१) पूर्ण अध्याहार में छोड़ा हुआ शब्द पहले कभी नहीं आता; जैसे, हमारी और उनकी () अच्छी निभी; मोरि () सुधारहिं से सब भाँती (राम०) ।

(२) अपूर्ण अध्याहार में छोड़ा हुआ शब्द एक बार पहले आ चुकता है; जैसे, राम इतना चतुर नहीं है जितना श्याम () । गरमी से पानी फैलता () और () हलका होता है ।

६५३—पूर्ण अध्याहार नीचे लिखे शब्दों में होता है—

(अ) देखना, कहना और सुनना क्रियाओं के सामान्य वर्त्त-

मान और आसन्न भूतकालों में कर्त्ता बहुधा लुप्त रहता है; जैसे, () देखते हैं कि युद्ध दिन-दिन बढ़ता जाता है; () कहा भी है कि जैसी करनी चैसी भरनी; () सुनते हैं कि वे आज जायेंगे।

(आ) विधि-काल में कर्त्ता बहुधा लुप्त रहता है; जैसे, () आइये; () वहाँ मत जाना ।

(इ) यदि प्रसंग से अर्थ स्पष्ट हो सके तो बहुधा कर्त्ता और संबंध-कारक का लोप कर देते हैं; जैसे, उसका बाप बड़ा धनाढ़ी था; () घर के आगे सदा हाथी मूमा करता था; () धन के मद में सबसे गौरविरोध रखता था; () वीरसिंह को पाँच ही बरस का छोड़ के मर गया (गुटका०) ।

(ई) संबंधवाचक क्रियाविशेषण और संकेतवाचक समुच्चय-बोधक के साथ “होना,” “हो सकना”; “बनना”, “बन सकना”, आदि क्रियाओं का उद्देश्य—जैसे, जहाँ तक () हो जल्दी आना; जो मुझसे () न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता; जैसे () बना, तैसे उन्हें प्रसन्न रखने का प्रयत्न आप सदैव करते रहे ।

(उ) “जानना” क्रिया के संभाव्य भविष्यत्-काल में अन्य-पुरुष कर्त्ता—जैसे, तुम्हारे मन में () न जाने क्या सोच है; () क्या जाने किसीके मन में क्या है ।

(ऊ) छोटे-छोटे प्रश्नवाचक तथा अन्य बाक्यों में जब कर्त्ता का अनुमान क्रिया के रूप से हो सकता है तब उसका लोप कर देते हैं; जैसे, क्या () वहाँ जाते हो ? हाँ, () जाता हूँ। अब तो () मरते हैं ।

(ऋ) व्यापक अर्थवाली सकर्मक क्रियाओं का कर्म लुप्त रहता है; जैसे, अद्विन तुम्हारी () भाड़ रही है। लड़का ()

पढ़ सकता है, पर () लिख नहीं सकता। अहिरो () सुनै, गूँग पुनि () बोलै।

(ऋ) विशेषण अथवा संबंधकारक के पश्चात् “बास”, “हाल”, “संगति” आदि अथवा लोप का लोप हो जाता है; जैसे, दूसरों की क्या () चलाई, इसमें राजा भी कुछ नहीं कर सकता; जहाँ चारों इकट्ठी हों वहाँ का () क्या कहना; सुधरी () बिगरै बेगही, बिगरी () फिर सुधरै न; हमारी और उनकी () अच्छी निभी।

(ए) “द्वाना” किया के वर्तमान-काल के रूप बहुधा कहावतों में, निषेधवाचक विधेय में तथा उद्गार में लुप्त रहते हैं; जैसे, दूर के ढोख सुहावने (); मैं वहाँ जाने का नहीं (); महाराज की जय (); आपको प्रणाम ()।

(ऐ) कभी-कभी स्वरूप-बोधक समुच्चय-बोधक का लोप विकल्प से होता है; जैसे, नौकर बोला () महाराज, पुरोहितजी आये हैं। क्या जाने () किसी के मन में क्या भरा है। कविता में इसका लोप बहुधा होता है; जैसे, लघन लखेड़, भा अनरथ आजू। तिय हँसिकै पिय सों कहौ, लखौ दिठौना दीन्ह।

(ओ) “यदि” और “यद्यपि” और उनके नित्य-संबंधी समुच्चय-बोधकों का भी कभी-कभी लोप होता है; जैसे, () आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ; हम जो ऐसे दुःख में हैं () हमें कोई छुड़ानेवाला चाहिये।

(औ) “ओ”, “इसलिए”, आदि समुच्चय-बोधक भी कभी-कभी लुप्त रहते हैं; जैसे, तौबा खदान से निकलता है; इसका रंग लाल होता है। मेरे भक्तों पर भीड़ पड़ी है; इस समय चलकर उनकी चिंता मेटा चाहिये।

६५४—अपूर्ण अध्याहार नीचे लिखे स्थानों में होता है—

(अ) एक वाक्य में कर्ता का उल्लेख कर दूसरे वाक्य में बहुधा उसका अध्याहार कर देते हैं; जैसे, हम लोग रघुवंशी कन्या नहीं पालते, और () कभी किसी के साले-सुरे नहीं कहलाते। आप अपने-अपने लड़कों को भेजें और () व्यय आदि की कुछ चिन्ता न करें ।

(आ) यदि एक वाक्य में सप्रत्यय कर्ताकारक आये और दूसरे में अप्रत्यय, तो पिछले कर्ता का अध्याहार कर दिया जाता है; जैसे, मैं बहुत देश-देशांतरों में धूम-धूका हूँ, पर () ऐसी आवादी कहीं नहीं देखी (विचित्र०); मैंने यह पद त्याग दिया और () एक दूसरे स्थान में जाकर धर्म-प्रयत्नों का अव्ययन करने लगा (सर०) ।

(इ) यदि अनेक विशेषणों का एक ही विशेष्य हो और उससे एकवचन का बोध हो, तो उसका एक ही बार उल्लेख होता है; जैसे, काली और नीली स्याही । गोल और सुंदर चेहरा ।

(ई) यदि एक ही क्रिया का अन्वय कई उद्देश्यों के साथ होता उसका उल्लेख केवल एक ही बार होता है; जैसे, राजा रानी और राजकुमार राजधानी को लौट आये; पेह में फल और फूल दिखाई देते हैं ।

(उ) अनेक मुख्य क्रियाओं की एक ही सहायक क्रिया होता उसका उपयोग केवल एक बार अंतिम क्रिया के साथ होता है; जैसे, मित्रता हमारे आनंद को बढ़ाती और कष्ट को घटाती है; यहाँ मिट्टी के खिलौने बनाये और बेचे जाते हैं ।

(ऊ) समतासूचक वाक्यों में उपमानवाले वाक्य के उद्देश्य को छोड़कर बहुधा और सब शब्दों का लोप कर देते हैं; जैसे, राजा ऐसे दीप्तमान हैं मानो सान का चढ़ा हीरा । कोई-कोई जंतु तैरते फिरते हैं, जैसे, मछलियाँ ।

(ऋ॒) जब पञ्चांतर के संबंध में प्रश्न करने के लिए 'या' के साथ 'नहीं' का उपयोग करते हैं तब पहले वाक्य का लोप कर देते हैं; जैसे, तुम वहाँ जाओगे या नहीं ? उसने तुम्हें बुलाया था या नहीं ?

(ऋ॒) प्रश्नार्थक वाक्य के उत्तर में बहुधा वही एक शब्द रखा जाता है जिसके विषय में प्रश्न किया जाता है; जैसे, यह पुस्तक किसकी है ? मेरी; क्या वह आता है ? हाँ, आता है ।

(ए॑) प्रश्नवाचक अथवा "क्या" का बहुधा लोप हो जाता है; तब लेख में प्रश्न-चिन्ह से और भाषण में स्वर के भटके से प्रश्न समझा जाता है; जैसे, तुम जाओगे ? नौकर घर में है ?

६५५—हिंदी में शब्दों के समान बहुधा प्रत्ययों का भी अध्याहार हो जाता है; और अन्यान्य प्रत्ययों की अपेक्षा विभक्ति-प्रत्ययों का अध्याहार कुछ अधिक होता है ।

(अ॑) यदि कई संज्ञाओं में एक ही विभक्ति का योग हो तो उसका उपयोग केवल अंतिम शब्द के साथ होता है और शेष शब्द साधारण अथवा विकृत रूप में आते हैं, जैसे, इसके रंग, रूप और गुण में भेद हो चला (नागरी०) । वे फर्श, कुर्सी और कोचों पर उठते-बैठते हैं (विद्या०) । गायों, भैंसों, बकरियों, भेड़ों आदि की नसल सुधारना (सर०) ।

(आ॑) कर्म, करण और अधिकरण कारकों के प्रत्ययों का ग्रहुधा लोप होता है, जैसे, पानी लालो, यात्री बृह देखारे खड़ा हो गया । लड़का किस दिन आयगा ?

(इ॑) सामान्य भविष्यत्-काल का प्रत्यय कभी-कभी दो पास-पास आनेवाली कियाओं में से बहुधा पिछली क्रिया ही में जोड़ा जाता है, जैसे, वहाँ हम लोग कुछ खाएं-पियेंगे । क्या वहाँ कोई आय-जायगा नहीं ?

(ई) कर, वाला, मय, पूर्वक, आदि प्रत्ययों का भी कभी-कभी अध्याहार होता है, जैसे, देख और सुनकर, आने और जाने-वाले, जल अथवा थलमय प्रदेश, भक्ति तथा प्रेम-पूर्वक ।

[त०—अध्याहार के अन्यान्य उदाहरण तत्संबंधी नियमों के साथ यथास्थान दिये गये हैं ।]

तेरहवाँ अध्याय ।

पदक्रम ।

६५६—रूपांतरशील भाषाओं में पदक्रम पर अधिक ध्यान दिया जाता, क्योंकि उनमें बहुधा शब्दों के रूपों ही से उनका अर्थ और संबंध सूचित हो जाता है । पर अल्पविकृत भाषाओंमें पदक्रम का अधिक महत्व है । संकृत पहले प्रकार की और अङ्गरेजी दूसरे प्रकार की भाषा है । हिन्दी-भाषा संस्कृत से निकली है, इसलिए इनमें पदक्रम का महत्व अङ्गरेजी के समान नहीं है । तो भी वह इसमें एक प्रकार से स्वाभाविक और निश्चित हैं । विशेष प्रसंग पर (वक्ता और कविता में) वक्ता और लेखक की इच्छा के अनुसार पदक्रम में जो अंतर पड़ता है उसको आलंकारिक पदक्रम कहते हैं । इसके विरुद्ध दूसरा पदक्रम साधारण किंवा व्याकरणीय पदक्रम कहलाता है ।

आलंकारिक पदक्रम के नियम बनाना बहुत कठिन है और यह विषय व्याकरण से भिन्न भी है, इसलिए यहाँ केवल साधारण पदक्रम के नियम लिखे जायेंगे ।

६५७—वाक्यमें पदक्रम का सबसे साधारण यह नियम है कि पहले कर्ता वा उद्देश्य, किंतु कर्म वा पूर्ति और अंत में किया रखते

हैं, जैसे, लड़का पुस्तक पढ़ता है, सिपाही सूचेदार बनाया गया, मोहन चतुर जान पढ़ता है, हथा चली ।

६५८—द्विकर्मक क्रियाओं में गौण कर्म के पहले और मुख्य कर्म पीछे आता है, जैसे, हमने अपने मित्र को चिट्ठी भेजी, राजा ने सिपाही को सूचेदार बनाया ।

६५९—इनके सिवा दूसरे कारकों में आनेवाले शब्द उन शब्दों के पूर्व आते हैं जिससे उनका संबंध रहता है, जैसे, मेरे मित्र की चिट्ठी कई दिन में आई, यह गाढ़ी बंबई से कलकत्ते तक जाती है ।

६६०—विशेषण संज्ञा के पहले और क्रिया विशेषण (वा क्रियाविशेषण-वाक्यांश) बहुधा क्रिया के पहले आते हैं, जैसे, एक भेड़िया किसी नदी में, ऊपर की तपक पानी पी रहा था, राजा आज नगर में आये हैं ।

६६१—अवधारण के लिए ऊपर लिखे क्रम में बहुत कुछ अंतर पड़ जाता लै, जैसे—

(अ) कर्ता और कर्म का स्थानांतर—लड़के को मैंने नहीं देखा । घड़ी कोई उठा ले गया ।

(आ) संप्रदान का स्थानांतर—तुम यह चिट्ठी मंत्री को देना । उसने अपना नाम मुझको नहीं बताया; ऐसा कहना तुमको उचित न था ।

(इ) क्रिया का स्थानांतर—मैंने बुलाया एक को और आये दस । तुम्हारा पुण्य है बहुत और पाप है थोड़ा । धिक्कार है ऐसे जीने को । कपड़ा है तो सस्ता, पर मोटा है ।

(ई) क्रिया-विशेषण का स्थानांतर—आज सबेरे पानी गिरा, किसी समय दो बटोही साथ-साथ जाते थे, इत्यादि ।

६६२—समानाधिकरण शब्द मुख्य शब्द के पीछे आता है

और पिछले शब्द में विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे, कल्ला, तेरा भाई बाहर खड़ा है; भवानी सुनार को बुलाओ ।

६६३—अवधारण के लिए भेदक और भेद्य के बीच में संहा-विशेषण और किया-विशेषण आ सकते हैं; जैसे, मैं तेरा क्योंकर भरोसा करूँ; विधाता का भी तुम पर कुछ बस न चलेगा ।

(अ) यदि भेद्य क्रियार्थक संहा हो तो उसके संबंधी शब्द उसके और भेदक के बीच में आते हैं; जैसे, राम का बन को जाना । स्थिर हुआ; आपका इस प्रकार बातें बनाना ठीक नहीं ।

६६४—संबंधवाचक और उसके अनुसंबंधी सर्वनाम के कर्मादि कारक बहुधा वाक्य के आदि में आते हैं; जैसे, उसके पास एक पुस्तक है जिसमें देवताओं के चित्र हैं; वह नौकर कहाँ है जिसे आपने मेरे पास भेजा था । जिससे आप घृणा करते हैं उस पर दूसरे लोग प्रेम करते हैं ।

६६५—प्रश्नवाचक किया-विशेषण और सर्वनाम के अवधारण के लिए मुख्य किया और सहायक किया के बीच में भी आ सकते हैं; जैसे, वह जाता कब था ? हम वहाँ जा कैसे सकते ? ये सा कहना क्यों चाहिये ? तू होता कौन है ? वह चाहता क्या है ?

(अ) प्रश्नवाचक अव्यय 'क्या' बहुधा वाक्य के आदि में और कभी-कभी बीच में अथवा अंत में आता है; जैसे, क्या गाड़ी आ गई ? गाड़ी क्या आ गई ? गाड़ी आ गई क्या ?

(आ) प्रश्नवाचक अव्यय 'न' वाक्य के अंत में आता है; जैसे, आप वहाँ चलेंगे नहीं? राजपुत्र तो कुशल से हैं न ? भला, देखेंगे न ? (सत्य०) ।

६६६—तो, भी, ही, भर, तक और मात्र वाक्यों में उन्हीं शब्दों के प्रचात् आते हैं जिन पर इनके कारण अवधारण होता

है; और इनके स्थानांतर से वाक्य में अर्थांतर हो जाता सै; जैसे, हम भी गाँव को जाते हैं; हम तो गाँव को जाते हैं; हम गाँव को तो जाते हैं।

(अ) 'मात्र' को छोड़ दूसरे अव्यय मुख्य किया और सहायक किया के बीच में भी आ सकते हैं और 'भी' तथा 'तो' को छोड़ शेष अव्यय संज्ञा और विभक्ति के बीच में आ सकते हैं। 'ही' कर्तवाचक कुदंत तथा सामान्य भविष्यत्-काल में प्रत्येक के पहले भी आ जाता है; जैसे, हम वहाँ जाते भी हैं। लड़का अपने मित्र तक की बात नहीं मानता; अब उन्हें बुलाना भर है; यह काम आप ही ने (अथवा आपने ही) किया है; ऐसा तो होवेही गा; हम वहाँ जाने ही बाले थे ।

(आ) 'केवल' संबंधी शब्द के पूर्व में ही आता है ।

६६७—संबंध-वाचक किया-विशेषण, जहाँ-तहाँ, जब-नब, जैसे-नैसे, आदि, बहुधा वाक्य के आरंभ में आते हैं; जैसे, जब मैं बोलूँ तब तुम तुरंत उठकर भागियो । जहाँ तेरे सींप समाएं तहाँ जा ।

६६८—निषेधवाचक अव्यय 'न', 'नहीं' और 'मत' बहुमा किया के पूर्व आते हैं; जैसे, मैं न जाऊँगा, वह नहीं गया तुम मत जाओ ।

(अ) 'नहीं' और 'मत' किया के पीछे भी आते हैं; जैसे, उसने आपको देखा नहीं । वह जाने का नहीं । उसे बुलाना मत ।

(आ) यदि किया संयुक्त हो अथवा संयुक्त काल में आवे तो ये अव्यय मुख्य किया और सहायक किया के बीच में आते हैं; जैसे, मैं लिख नहीं सकता; वहाँ कोई किसी से बोलता न था, तब तक तुम खा मत लेना ।

६६९—संबंधसूचक अव्यय जिस संज्ञा से संबंध रखते हैं, उसके पीछे आते हैं; पर मारे, बिना, सिवा, आदि कुछ अव्यय

उसके पर्व भी आते हैं; जैसे, दरजी कपड़ों समेत तर हो गया; वह मारे चिंता के मरी जाती थी ।

६७०—समुच्चय-बोधक अव्यय जिन शब्दों अथवा वाक्यों को जाह्नते हैं उनके बोच में आते हैं; जैसे, डम उन्हें सुख देंगे, क्योंकि उन्होंने हमारे लिए बड़ा तप किया है । ग्रह और उपग्रह सूर्य के आस-पास घूमते हैं ।

(अ) यदि संयोजक समुच्चय-बोधक कई शब्दों या वाक्यों को जाह्नता हो तो वह अंतिम शब्द या वाक्य के पर्व आता है; जैसे, हास में मुँह, गाल और और्खे फूली हुई जान पढ़ती हैं (नागरी०); और-और पञ्चियों के बच्चे चपल होते, तुरंत दौड़ने लगते और अपना भोजन भी आप खोज लेते हैं ।

(आ) संकेतवाचक समुच्चय-बोधक, 'यदि—तो', 'यद्यपि—तथापि' बहुधा वाक्य के आरंभ में आते हैं; जैसे, जो यह 'प्रसंग चलता, तो मैं भी सुनता; यदि ठंड न लगे, तो यह हवा बहुत दूर तक चली जाती है ।

यद्यपि यह समुक्त हौं नीके ।

तदपि होत परितोषन जी के ॥

६७१—विस्मयादिक-बोधक और संबोधन-कारक बहुधा वाक्य के आरंभ में आते हैं; जैसे, 'अरे ! यह क्या हुआ ? मित्र ! तुम कहाँ थे ?

६७२—वाक्य किसी भी अर्थ का हो (अं०—५०६), उसके शब्दों का कम हिंदी में प्रायः एक ही सा रहता है; जैसे—

(१) विधानार्थक—राजा नगर में आये ।

(२) निषेधवाचक—राजा नगर में नहीं आये ।

(३) आशार्थक—राजन्, नगर में आइये ।

(४) प्रश्नार्थक—राजा नगर में आये ?

(५) विस्मयादिबोधक—राजा नगर में आये !

(६) इच्छाबोधक—राजा नगर में आये ।

(७) संदेहसूचक—राजा नगर में आये होंगे ।

(८) संकेतार्थक—राजा नगर में आते तो अच्छा होता ।

[स०—बोलचाल की भाषा में पदक्रम के संबंध में पूरी स्वतंत्रता पाई जाती है; जैसे, देखते हैं, अभी हम तुमको । दे चाहे जहाँ से सब दक्षिणा (सत्य०) ।]

चौंदहवौँ अध्याय ।

पद-परिचय ।

६७३—बाक्य का अर्थ पूर्णतया समझने के लिए व्याकरण-शास्त्र की सहायता अपेक्षित है; और यह सहायता बाक्य-गत शब्दों के रूप और उनका परस्पर संबंध ज्ञानने में पड़ती है। इस प्रक्रिया को पद-परिचय* कहते हैं। यह (पद-परिचय) व्याकरण-संबंधी

* कोई-कोई 'पद-निर्देश' और कोई-कोई 'व्याख्या' कहते हैं। राजा शिवप्रसाद ने इसका नाम 'अन्वय' लिखा है, और इसका वर्णन फारसी पद्धति पर किया है जिसका उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

सनदधाद जहाजी की दूसरी यात्रा का वर्णन । सनदधाद विशेष्य । जहाजी विशेषण । विशेष्य-विशेषण मिलकर संबंध । की संबंध का चिह्न । दूसरी विशेषण । यात्रा विशेष्य । विशेष्य-विशेषण मिलकर संबंधवान् । संबंध-संबंधवान् मिलकर संबंध । का संबंध का चिह्न । वर्णन संबंधवान् । संबंध-संबंधवान् मिलकर कर्ता । होता है किया गुप्त ।

इस पद्धति में एक बड़ा दोष यह है कि इसमें शब्दों के रूपों का ठीक-ठीक वर्णन नहीं होता ।

ज्ञान की परीक्षा और उस विद्या के सिद्धांतों का व्याख्यातिक उपयोग है।

६७४—प्रत्येक शब्द-भेद की व्याख्या में जो-जो वर्णन आवश्यक है वह नीचे लिखा जाता है—

- (१) संज्ञा—प्रकार, लिंग, वचन, कारक, संबंध ।
- (२) सर्वनाम—प्रकार, प्रतिनिहित संज्ञा, लिंग, वचन, कारक, संबंध ।
- (३) विशेषण—प्रकार, विशेष्य, लिंग, वचन, विकार (हो तो), संबंध ।
- (४) क्रिया—प्रकार, वाच्य, अर्थ, काल, पुरुष, लिंग, वचन, प्रयोग ।
- (५) क्रियाविशेषण—प्रकार, विशेष्य, विकार (हो तो), संबंध ।
- (६) समुच्चय-बोधक—प्रकार, अनिवात शब्द, वाक्यांश अथवा वाक्य ।
- (७) संबंध-सूचक—प्रकार, विकार (हो तो), संबंध ।
- (८) विस्मयादि-बोधक—प्रकार, संबंध (हो तो) ।

[स०—शब्दों का प्रकार बताते समय उनके व्युत्पत्ति-संबंधी भेद-रूप, यौगिक और योगरूप—भी बताना आवश्यक है ।]

६७५—अब पद-परिचय के कई एक उदाहरण दिये जाते हैं। पहले सरल वाक्य-रचना के और फिर कठिन वाक्य-रचना के शब्दों की व्याख्या लिखी जायगी ।

(क) सहज वाक्य-रचना के शब्द ।

(१) वाह ! क्या ही आनंद का समय है !

वाह—रूप विस्मयादि-बोधक अव्यय, आश्चर्य-बोधक ।

ब्याही—यौगिक, विशेषण, अवधारणा-बोधक, प्रकारबाचक, सार्वनामिक, विशेष्य 'आनंद', अविकारी शब्द ।

आनंद का—यौगिक संज्ञा, भावबाचक, पुँजिंग, एकवचन, संबंध-कारक, संबंधी शब्द 'समय' ।

समय—रुद्ध संज्ञा, भावबाचक, पुँजिंग, एकवचन, प्रधान कर्त्त्वाकारक, 'है' किया से अन्वित ।

है—मूल अकर्मक किया, स्थितिबोधक, कर्त्त्वाच्य, निश्चयार्थ, सामान्य वर्त्तमान-काल, अन्यपुरुष, पुँजिंग, एकवचन, 'समय' कर्त्त्वा-कारक से अन्वित, कर्त्त्वारि प्रयोग ।

(२) वाक्य—जो अपने वचन को नहीं पालता वह विश्वास के योग्य नहीं है ।

जो—रुद्ध सर्वनाम, संबंधबाचक 'मनुष्य' संज्ञा की ओर संकेत करता है, अन्य पुरुष, पुँजिंग, एकवचन, प्रधान कर्त्त्वाकारक, 'पालता' किया का ।

अपने—रुद्ध सर्वनाम, निजबाचक, 'जो' सर्वनाम की ओर संकेत करता है, अन्य पुरुष, पुँजिंग, एकवचन, संबंध-कारक, संबंधी शब्द 'वचन को', विभक्ति युक्त विशेष्य के कारण विकृत रूप ।

[स०—संज्ञा और सर्वनाम के संबंध-कारक की व्याख्या में लिंग और वचन का निर्णय करना कुछ कठिन है, क्योंकि इनमें निज के लिंग-वचन के साथ-साथ मेद्य के लिंग-वचन के कारण रूपांतर होता है । ऐसी अवस्था में इनकी व्याख्या में दोनों रूपों का उल्लेख होना चाहिये । (अं०—पृ०—अ) ।]

वचन को—यौगिक संज्ञा, भावबाचक, पुँजिंग, एकवचन, सप्रत्यय कर्मकारक; 'पालता' सकर्मक किया से अधिकृत ।

नहीं—यौगिक क्रिया-विशेषण, निषेधवाचक, विशेष्य 'पालता' क्रिया ।

पालता—मूल क्रिया, सकर्मक, कर्तुवाच्य, निश्चयार्थी, सामान्य वर्तमान-काल, अन्यपुरुष,-पुङ्गि, एकवचन; जो कर्ता से अनिवार्य, 'वचन को' कर्म पर अधिकार । कर्तारिप्रयोग । (नहीं के यांग से "है" सहायक क्रिया का लोप, अं०—६५३—ए) ।

वह—रुद्र सर्वनाम, निश्चयवाचक, 'जो' सर्वनाम की ओर संकेत करता है, अन्यपुरुष, पुङ्गि, एकवचन, प्रधान कर्त्ताकारक 'है' क्रिया का ।

विश्वास के—यौगिक संज्ञा, भाववाचक, पुङ्गि, एकवचन, संबंध-कारक, संघवी शब्द 'योग्य' । इस विशेषण के योग से विकृप रूप ।

योग्य—यौगिक विशेषण, गुणवाचक, विशेष्य 'वह', पुङ्गि एकवचन, विधेय-विशेषण । इसका प्रयोग संबंधसूचक के समान हुआ है । (अं०—२३६) ।

नहीं—यौगिकक्रिया-विशेषण, निषेधवाचक, विशेष्य "है" ।

है—मूल अपूर्ण-क्रिया, स्थितिवोधक, अकर्मक, कर्तुवाच्य, निश्चयार्थी, सामान्य वर्तमान-काल, अन्यपुरुष, पुङ्गि, एकवचन, 'वह' कर्ता से अनिवार्य । कर्तारि-प्रयोग ।

(३) चाक्य—यहाँ उन्होंने अपने खोये हुए राज्य को फेर लिया और फिर दमयंती को बेटा-बेटी समेत पास बुलाकर बहुत काल तक सुख-चैन से रहे ।

यहौँ—यौगिक क्रिया-विशेषण, स्थान-वाचक, विशेष्य 'फेर लया' ।

उन्होंने—रुद्र सर्वनाम, निश्चय-वाचक, लुप्त 'नक्ष' संज्ञा की ओर संकेत करता है, अन्यपुरुष, पुर्णिंग, आदरार्थी बहुवचन, अप्रधान कर्त्ताकारक, 'फेर लिया' किया का ।

अपने—रुद्र सर्वनाम, निजवाचक, 'उन्होंने' सर्वनाम की ओर संकेत करता है, अन्यपुरुष, पुर्णिंग, एकवचन, संबंध-कारक, संबंधी-शब्द 'राज्य के' । विभक्ति-युक्त विशेष्य के कारण विकृत रूप ।

खाये हुए—मूल सकर्मक भूतकालिक कुदंत विशेषण (कर्म-वाचक), विशेष्य 'राज्य के', पुर्णिंग, एकवचन । विभक्ति-युक्त विशेष्य के कारण विकृत रूप ।

राज्य को—योगिक संज्ञा, जातिवाचक, पुर्णिंग, एकवचन, सप्रत्यय कर्मकारक, 'फेर लिया' सकर्मक क्रिया से अधिकृत ।

फेर लिया—संयुक्त सकर्मक क्रिया, अवधारण-बोधक, कर्त्तवाच्य, निश्चयार्थी, सामान्य भूतकाल, अन्यपुरुष, पुर्णिंग, एकवचन, इसका कर्त्ता 'उन्होंने' । कर्म 'राज्य के' । भावेप्रयोग ।

और—रुद्र संयोजक समुच्चय-बोधक अव्यय; दो वाक्यों को मिलाता है—

(१) यहाँ उन्होंने.....फेर लिया ।

(२) फिर दमयंती को.....रहे ।

फिर—रुद्र क्रियाविशेषण अव्यय, कालवाचक, 'रहे' क्रिया की विशेषता बतलाता है ।

दमयंती को—रुद्र व्यक्तिवाचक संज्ञा, रुद्रिंग, एकवचन, सप्रत्यय कर्म-कारक, 'बुलाकर' पूर्वकालिक कुदंत से अधिकृत ।

वेटा-वेटी—दुङ्ड्र-समास, जातिवाचक संज्ञा, पुर्णिंग, बहु-

वचन, अविकृत रूप, 'समेत' संबंधसूचक अव्यय से संबंध।
(अ०—२३२—ख) ।

समेत—यौगिक संबंधसूचक अव्यय, 'बेटा-बेटी' संज्ञा के अविकृत रूप के आगे आकर 'बुलाकर' पूर्वकालिक कुदंत से उसका संबंध मिलता है ।

पास—रुद्र क्रियाविशेषण अव्यय, स्थान-वाचक, 'बुलाकर' पूर्वकालिक कुदंत की विशेषता बतलाता है ।

बुलाकर—यौगिक सकर्मक पूर्वकालिक कुदंत, कर्तृवाच्य, 'दमयंती को' कम पर अधिकार, मुख्य क्रिया 'रहे' की विशेषता बताता है ।

बहुत—रुद्र विशेषण, परिमाण-वाचक, विशेष्य 'काल', पुँजिंग, एकवचन ।

काल—रुद्र संज्ञा, जातिवाचक, पुँजिंग, एकवचन, अविकृत रूप, "तक" संबंधसूचक अव्यय से संबंध ।

तक—रुद्र संबंधसूचक अव्यय, 'काल' संज्ञा के (अविकृत रूप के) आगे आकर 'रहे' क्रिया से उसका संबंध मिलता है ।

[स०—"काल तक" की व्याख्या एक-साथ भी हो सकती है । इसे क्रिया-विशेषण वाक्यांश अथवा (किसी-किसी के मतानुसार) अवधि-वाचक अधिकरण-कारक कह सकते हैं ।]

सुख-चैन से—द्वंद्व-समास, भाववाचक संज्ञा, पुँजिंग, एकवचन, करण-कारक, साहित्यार्थ, 'रहे' क्रिया से संबंध ।

रहे—मूल क्रिया, अकर्मक, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ, सामान्य भूतकाल, अन्यपुरुष, पुँजिंग, आदरार्थ, बहुवचन, इसका कर्ता 'वे' (लुप), कर्त्तरिप्रयोग ।

(ख) कठिन वाक्य-रचना के शब्द ।

[सू०—इन शब्दों के उदाहरणों में प्रत्येक शब्द का पद-परिचय न देकर केवल मुख्य-मुख्य शब्दों की व्याख्या दी जायगी । किसी-किसी शब्द की व्याख्या में केवल मुख्य थारें ही कही जायेंगी ।]

(१) सिंह दिन को सोता है ।

दिन को—अधिकरण के अर्थ में सप्रत्यय कर्मकारक । (दिन को=दिन में । अं०—५२५)

(२) मुझे बहाँ जाना था ।

मुझे—रुढ़ पुरुषवाचक सर्वनाम, वक्ता के नाम की ओर संकेत करता है, उत्तमपुरुष, उभयलिंग, एकवचन, कर्ता के अर्थ में संप्रदानकारक, 'जाना था' किया से संबंध ।

जाना था—संयुक्त किया, आवश्यकताबोधक, अकर्मक, कर्तु-वाच्य, निश्चयार्थ^१, सामान्य भूतकाल, अन्यपुरुष, पुलिंग, एकवचन, कर्ता 'मुझे', भावेप्रयोग ।

[सू०—किसी-किसी का मत है कि इस प्रकार के वाक्यों में किया-र्थक संशा 'जाना' कर्ता है और उसका अन्वय इकही किया "था" से है । इस मत के अनुसार प्रत्युत वाक्य का यह अर्थ होगा कि मेरा वहाँ जाने का व्यवहार था जो अब नहीं है । इस अर्थ-मेद के कारण "जाना था" की संयुक्त किया ही मानना ठीक है ।]

(३) संवत्—१९५७ वि० में बड़ा अकाल पड़ा था ।

संवत्—अधिकरण-कारक ।

१९५७—कर्मधार्य-समास, क्रम-संख्यावाचक, विशेष्य 'संवत्', पुलिंग, एकवचन ।

वि० (विकल्पी)—यौगिक विशेषण, गुणवाचक, विशेष्य 'संवत्', पुलिंग, एकवचन ।

(४) किसी की निंदा न करनी चाहिये ।

करनी चाहिये—संयुक्त क्रिया, कर्त्तव्यबोधक, सकर्मक, कर्त्तवाच्य, निश्चयार्थ, संभाव्य भविष्यत्-काल, (अर्थ सामान्य वर्तमान), अन्यपुरुष, पुलिंग, एकवचन, कर्त्ता 'मनुष्य को' (लुप), कर्म निंदा, कर्मणिप्रयोग ।

(५) उस समय एक बड़ी भयानक आँखी आई ।

उस—सार्वनामिक निश्चयवाचक विशेषण, विशेष्य, समय, पुलिंग, एकवचन, विशेष्य 'समय' विकृत कारक में होने के कारण विशेषण का विकृत रूप ।

समय—अधिकरण कारक, विभक्ति लुप है (अ०—५५५) ।

बड़ी—परिमाणवाचक क्रिया विशेषण, विशेष्य 'भयानक' विशेषण । मूल में आकारांत विशेषण होने के कारण विकृत रूप । (खोलिंग) ।

(६) यह लड़का गानेवाला है ।

(क) गानेवाला—यौगिक कर्त्तवाचक कुदंत, सकर्मक, संज्ञा, जातिवाचक, कर्त्ता-कारक, 'लड़का' संज्ञा का समानाधिकरण, 'है' क्रिया की पूर्ति ।

(ख) गानेवाला—भविष्यत्-काल-वाचक सकर्मक कुदंत, विशेषण, विशेष्य 'लड़का', विवेद-विशेषण, पुलिंग, एकवचन । यह पदपरिचय अर्थात् में है ।

(७) रानी ने सहेलियों को बुलाया ।

बुलाया—कर्त्तवाच्य, भावेप्रयोग ।

(८) दुर्गंध के मारे यहाँ कैसे बैठा जायगा ।

मारे—यौगिक संबंधसूचक अवयव, 'दुर्गंध' संज्ञा के संबंधकारक के साथ आकर उसका संबंध 'बैठा जायगा' किया से मिलाता है । (यह शब्द 'मारा' भूतकालिक कुदंत का विकृत रूप है ।)

बैठा जायगा—अकर्मक किया, भाववाच्य, निश्चयार्थी, सामान्य भविष्यत् काल, अन्यपुरुष, पुलिंग, एकवचन, इसका उद्देश्य (बैठना) किया के अर्थ में सम्मिलित है, भावेप्रयोग ।

(९) गणित सीखा हुआ आदमी व्यापार में सफल होता है ।

गणित—अप्रत्यय कर्मकारक, 'सीखा हुआ' सकर्मक भूतकालिक कुदंत विशेषण का कर्म ।

सीखा हुआ—सकर्मक भूतकालिक कुदंत, इसका प्रयोग यहाँ कर्त्तवाचक है, 'विशेष्य' 'आदमी' ।

आदमी—यौगिक संज्ञा ।

(१०) कहनेवाले को क्या कहे कोई ।

क्या—प्रश्नवाचक सर्वानाम (नाम) लुप्त संज्ञा की ओर संकेत करता है, अन्यपुरुष, पुलिंग, एकवचन, कर्मकारक, 'कहे' द्विकर्मक किया की कर्म-पूर्ति ।

कहे—किया द्विकर्मक, कर्त्तवाच्य, 'संभावनाथ', संभाव्य भविष्यत् काल, अन्यपुरुष, उभयलिंग, एकवचन, कर्ता 'कोई' से अन्वित, मुख्यकर्म 'कहनेवाले को' और कर्म-पूर्ति 'क्या' पर अधिकार । कर्त्तारिप्रयोग ।

(११) गाड़ी में माल लादा जा रहा है ।

माल—कर्त्ता-कारक, 'लादा जाता है' किया का कर्म; उद्देश्य होकर आया है, क्योंकि किया कर्मवाच है ।

लादा जा रहा है—अवधारण-बोधक संयुक्त किया, सकर्मक, कर्मवाच्य, निश्चयार्थी, अपूर्ण वर्तमानकाल, अन्यपुरुष, पुलिंग, एकवचन, 'माल' अप्रत्यय कर्म (उद्देश्य) से अन्वित; कर्ता लुप्त । कर्मणि-प्रयोग ।

(१२) फिर उन्हें एक बहुमूल्य चादर पर लिटाया जाता ।

उन्हें—कर्म-कारक, 'लिटाया जाता' किया का सप्रत्यय कर्म; उद्देश्य होकर आया है ।

लिटाया जाता—किया, सकर्मक, कर्मवाच्य, निश्चयार्थी, अपूर्ण भूतकाल, सहकारी किया 'था' का लोप, अन्यपुरुष, पुलिंग, एक-वचन, 'उन्हें' सप्रत्यय कर्म उद्देश्य, कर्ता लुप्त । भावेप्रयोग ।

(१३) आठ बजकर दस मिनट हुए हैं ।

आठ—संख्यावाचक विशेषण, यहाँ संज्ञा की नाइं आया है, जातिवाचक संज्ञा, पुलिंग, बहुवचन, कर्त्ता-कारक, 'बजकर' पूर्ण-कालिक कृदंत का स्वतंत्र कर्ता ।

बजकर—अकर्मक, पूर्णकालिक कृदंत अव्यय, कर्तुवाच्य-इसका स्वतंत्र कर्ता 'आठ', यह मुख्य किया 'हुए हैं' की विशेषता बताता है ।

(१४) यह सुनतेही मा-बाप कुँवर के पास दौड़े आये ।

सुनतेही—यौगिक तात्कालिक कृदंत, अव्यय सकर्मक, कर्तु-वाच्य, 'यह' कर्म पर अधिकार; 'आये' मुख्य किया की विशेषता बतलाता है ।

दौड़े—अकर्मक भूतकालिक कुदंत विशेषण, विशेष्य ‘मा बाप’, पुलिंग, बहुवचन ।

(१५) **गिनते-गिनते** नी महीने पूरे हुए ।

गिनते-गिनते—पुनरुक्त अपूर्णे क्रियाद्योतक कुदंत अव्यय, कर्तृवाच्य (अर्थ^१ कर्मवाच्य), उद्देश्य ‘महीने’, कर्त्ता लुप्त; ‘हुए’ क्रिया की विशेषता बतलाता है ।

(१६) **सुकको हँसते देख सब-कोई हँस पड़े ।**

हँसते—अकर्मक वर्त्तमानकालिक कुदंत विशेषण, विशेष्य ‘मुझको’, विभक्ति-युक्त विशेष्य के कारण अविकारी रूप ।

सब-कोई—संयुक्त अनिश्चयवाचक सर्वानाम, “लोग” (लुप्त) संज्ञा की ओर संकेत करता है, अन्यपुरुष, पुलिंग, बहुवचन, कर्त्ता-कारक ‘हँस पड़े’ क्रिया की ।

हँस-पड़े—संयुक्त अकर्मक क्रिया, अचानकता-बोधक, सामान्य भूतकाल, कर्त्तारिप्रयोग ।

(१७) **शिष्य को चाहिये कि गुरु की सेवा करे ।**

चाहिये—क्रिया सकर्मक, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ संभाव्य, भविष्यत्काल (अर्थ सामान्य वर्त्तमान-काल), अन्यपुरुष, पुलिंग, एकवचन, कर्त्ता ‘शिष्य को’, कर्म दूसरा वाक्य ‘गुरु’……करे ।’ भावेप्रयोग । “चाहिये” अविकारी क्रिया है ।

(१८) **किसान भी अशर्कियों की गठरी ले चलता हुआ ।**

भी—अवधारण-बोधक अव्यय, ‘किसान’ संज्ञा के विषय में अधिकता सूचित करता है । (यह क्रिया-विशेषण भी माना जा सकता है ; क्योंकि यह ‘चलता हुआ’ के विषय में भी अधिकता सूचित करता है ।)

[य०—कोई कोई इसे संयोजक समुच्चय-बोधक अव्यय समझकर ऐसा मानते हैं कि पहले कहे हुए किसी शब्द को प्रस्तुत वाक्य के निर्दिष्ट शब्द से मिलाता है । इस मत के अनुसार 'भी' 'किसान' संज्ञा को पहले कहा हुई किसी संज्ञा से मिलाता है ।]

चलता—वर्तमानकालिक कुदंत विशेषण, विशेष्य किसान ।

"चलता हुआ" को निश्चयवाचक संयुक्त किया भी मात्र सकते हैं ।" (अ०—४०७—३)

(१६) जो न होत जग जनम भरत को ।

सकल धरम-धुर धरणि धरत को ॥

जो—संकेतवाचक समुच्चय-बोधक अव्यय, दो वाक्यों को जोड़ता है—जो.....भरत को और सकल.....धरत को ।

होत—स्थितिवाचक अकर्मक किया, कर्तु वाच्य, संकेतार्थ, सामान्य संकेतार्थ-काल, अन्यपुरुष, पुलिंग, एकवचन, कर्ता, 'जनम' कर्त्तेरिप्रयोग ।

को (= का)—संबंध-कारक की विभक्ति ।

धरत—सकर्मक किया, कर्तु वाच्य, सामान्य संकेतार्थ-काल, कर्ता 'को', कर्म 'धर्म-धुर', कर्त्तेरिप्रयोग ।

को—प्रश्नवाचक सर्वानाम, कर्ता कारक ।

(२०) उन्होंने चट मुझको भेज पर खड़ा कर दिया ।

चट—कालवाचक किया-विशेषण अव्यय, 'कर दिया' किया की विशेषता बतलाता है ।

खड़ा—विवेय-विशेषण, विशेष्य "मुझको" "कर दिया" अपूर्ण सकर्मक किया की पूर्ति ।

(२१) मेरे राम को तो सब साफ़ मालूम होता था ।

मेरे राम को (=मुझको)—संयुक्त पुरुषवाचक सर्वनाम, उत्तमपुरुष, संप्रदान-कारक, 'होता था' किया से संबंध ।

तो-अवधारणावोधक अव्यय, 'मेरे राम को' सर्वनाम के अर्थ में निश्चय जनाता है ।

साफ़—किया-विशेषण, रीतिवाचक, 'होता था' किया की विशेषता बताता है ।

(२२) धन, धरती, सब का सब हाथ से निकल गया ।

सब का सब—सार्वनामिक वाक्यांश, 'धन, धरती' संज्ञाओं की ओर संकेत करता है, कर्त्ता-कारक, 'निकल गया' किया से अन्वित 'धन' 'धरती' का समानाधिकरण ।

(२३) जो अपने से बहुत बड़े हैं, उनसे घमंड क्या !

अपने से-निजवाचक सर्वनाम, 'मनुष्य' (लुप्त) संज्ञाकी ओर संकेत करता है, अपादान-कारक, 'हैं' किया से संबंध ।

क्या—रीति-वाचक किया-विशेषण, 'हो सकता है' (लुप्त) किया की विशेषता बताता है । क्या—कैसे ।

(२४) क्या मनुष्य निरा पशु है ?

क्या—प्रश्नवाचक अव्यय, 'है' किया की विशेषता बताता है ।

निरा-विशेषण, गुणवाचक, विशेष्य 'पशु' संज्ञा, पुणिग, एकवचन ।

(२५) मुझे भी पूरी आशा थी कि कभी न कभी अवश्य छुटकारा होगा ।

कभी न कभी—किया-विशेषण-वाक्यांश, कालवाचक ।

(२६) यह अपमान भला किससे सहा जायगा ?

भला—विस्मयादिवोधक, अनुमोदन-सूचक ।

(२७) होनेवाली बात मानो उसे पहले ही से मालूम हो गई थी ।

मानो—(मङ्ग में किया) समुच्चयवोधक, समतासूचक, प्रस्तुत वाक्य को पहले वाक्य से मिलाता है ।

पहले ही से—क्रियाविशेषण वाक्यांश, कालवाचक ।

मालूम—‘बात’ संज्ञा का विधेय-विशेषण ।

(२८) अबके तीन-बार जयध्वनि सुन पड़ी ।

अबके—क्रियाविशेषण ।

तीन-बार—क्रियाविशेषण-वाक्यांश ।

[स०—कोई-कोई ‘तीन’ और ‘बार’ शब्दों की अलग-अलग व्याख्या करते हैं । वे ‘बार’ के पश्चात् ‘तक’ संबंधसूचक अव्यय का अध्याद्वार मानकर ‘बार’ को संज्ञा कहते हैं ।]

सुन पड़ी संयुक्त सकर्मक क्रिया, अवधारणवोधक, कर्तुंवाच्य (अर्थ कर्मवाच्य), निश्चयार्थी, सामान्य भूत-काल, अन्यपुरुष, रूलिंग, एकवचन, उद्देश्य ‘जयध्वनि’, कर्तुंरिप्रयोग ।

(२९) यह छः गज लंबा और कम से कम तीन गज मोटा था ।

छः गज—परिमाणवाचक विशेषण, विशेष्य ‘यह’ ।

[स०—छः शब्द संख्यावाचक विशेषण है और गज शब्द जाति-वाचक संज्ञा है; परंतु दोनों मिलकर ‘यह’ सर्वनाम के द्वारा किसी संज्ञा का परिमाण सूचित करते हैं । ‘छः गज’ को परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण भी

मान सकते हैं, क्योंकि वह एक प्रकार से 'लंबा' विशेषण की विशेषता बताता है। किसी-किसी के विचार से छः और गज शब्दों की व्याख्या अलग-अलग होनी चाहिए। ऐसी अवस्था में गज शब्द को या तो संबंध-कारक में (=छः गज का लंबा) मानना पड़ेगा, या उसे 'यह' का समानाधिकरण स्वीकार करना होगा।]

कम से कम—परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण-बाक्यांश,
विशेष्य 'तीन' अथवा 'तीन-गज'

(२०) मैं अभी उसे देखता हूँ न !

न—अवधारण-बोधक अव्यय (क्रिया-विशेषण), 'देखता हूँ'
क्रिया के विषय में निश्चय सूचित करता है।

(२१) क्या घर में, क्या वन में, ईश्वर सब जगह है।

**क्या—क्या—संयोजक समुच्चय-बोधक, 'घर में' और 'वन
में' संज्ञाओं को जोड़ता है।**

तीसरा भाग

वाक्य-विन्यास ।

दूसरा परिच्छेद ।

वाक्य-पृथक्करण ।

पहला अध्याय ।

विषयारंभ ।

६७६—वाक्य-पृथक्करण के द्वारा शब्दों तथा वाक्यों का परस्पर संबंध जाना जाता है और वाक्यार्थ के स्पष्टीकरण में सहायता मिलती है ।

[टी०—पद्धति इस प्रक्रिया के सूक्ष्म तत्त्व संस्कृत भाषा में पापे जाते हैं और वहाँ से हिंदी के कुछ व्याकरणों में लिए गये हैं, तथापि इसके विस्तृत विवेचन की उत्तरति अङ्गरेजी भाषा के व्याकरण से है, जिसमें यह विषय न्यायशास्त्र से लिया गया है और व्याकरण के साथ इसकी संगति मिलाई गई है ।]

(क) वाक्य के साथ, रूप की दृष्टि से, जैसा व्याकरण का निकट संबंध है वैसा ही, अर्थ के विचार से, न्याय-शास्त्र का भी घना संबंध है । व्याकरण का मुख्य विषय वाक्य है; पर शास्त्र का मुख्य विषय वाक्य नहीं, किंतु अनुमान है, जिसके पूर्व उसमें, अर्थ की दृष्टि से, पदों और वाक्यों का विचार किया जाता है । शास्त्र के अनुसार प्रत्येक वाक्य में तीन बातें होनी चाहिए—दो

* कोई-कोई इसे वाक्य-विश्लेशण कहते हैं ।

पढ़ और एक विधान-चिह्न। दोनों पदों को क्रमशः उद्देश्य और विद्येय तथा विधान-चिह्न को संयोजक कहते हैं। वाक्य में जिसके विषय में विधान किया जाता है उसे उद्देश्य कहते हैं और उद्देश्य के विषय में जो विधान किया जाता है वह विद्येय कहलाता है। उद्देश्य और विद्येय में, परस्पर, जो संगति वा विसंगति होती है उसी के संबंध से वाक्य में यथार्थी विधान किया जाता है और इस विधान को संयोजक शब्द से सूचित करते हैं। साधारण बोल-चाल में वाक्यों के ये तीन अवयव बहुधा अलग-अलग अथवा स्पष्ट नहीं रहते, इसलिए भाषा के प्रचलित वाक्य को न्याय-शास्त्र में योग्य स्वरूप दिया जाता है, अर्थात् न्याय-शास्त्र के स्वीकृत वाक्यमें उद्देश्य, विद्येय और संयोजक स्पष्टता से रखे जाते हैं। उदाहरण के लिए, “धोड़ा दौड़ा”, इस साधारण बोल-चाल के वाक्य को न्याय-शास्त्र में “धोड़ा दौड़नेवाला था” कहेंगे। व्याकरण में इस प्रकार का रूपांतर संभव नहीं है, क्योंकि उसमें कर्ता, कर्म, क्रिया, आदि का निश्चय अधिकांश में शब्दों के रूपों की संगति पर अवलंबित है। न्यायशास्त्र में उद्देश्य और विद्येय की संगति पर केवल अर्थ की दृष्टि से ध्यान दिया जाता है; इसलिए व्याकरण के वाक्य को जैसा का तैसा रखकर, उसमें शास्त्र के उद्देश्य और विद्येय का प्रयोग करते हैं। व्याकरण और शास्त्र के इसी मेल का नाम वाक्य-पृथक्करण है। वाक्य-पृथक्करण में केवल व्याकरण की दृष्टि से विचार नहीं कर सकते, और न केवल न्याय-शास्त्र की ही दृष्टि से; किंतु दोनों के मेल पर दृष्टि रखनी पड़ती है।

साधारण बोलचाल के वाक्य में न्याय-शास्त्र का संयोजक शब्द बहुधा मिला हुआ रहता है, और व्याकरण में उसे अलग बताने की आवश्यकता नहीं होती; इसलिए वाक्य-पृथक्करण की दृष्टि

से वाक्य के केवल दोही मुख्य भाग माने जाते हैं—उद्देश्य और विधेय । व्याकरण में कर्म को विधेय से भिन्न मानते हैं, परंतु न्यायशास्त्र में वह विधेय के अंतर्गत ही माना जाता है । यहाँ यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि उद्देश्य और कर्त्ता तथा विधेय और किया समानार्थक शब्द नहीं हैं; यद्यपि व्याकरण के कर्ता और किया बहुधा न्यायशास्त्र के क्रमशः उद्देश्य और विधेय होते हैं ।

दूसरा अध्याय ।

वाक्य और वाक्यों में भेद ।

६७७—एक विचार पूर्णता से प्रगट करनेवाले शब्द समूह को वाक्य कहते हैं । (अं०—८८—अ) ।

६७८—वाक्य के मुख्य दो अवयव होते हैं—(१) उद्देश्य और (२) विधेय ।

(अ) जिस वस्तु के विषय में कुछ कहा जाता है उसे सूचित करनेवाले शब्दों को उद्देश्य कहते हैं; जैसे, आत्मा अमर है, घोड़ा दौड़ रहा है, राम ने रावण को मारा; इन वाक्यों में आत्मा, घोड़ा, और राम ने उद्देश्य हैं; क्योंकि इनके विषय में कुछ कहा गया है अर्थात् विधान किया गया है ।

(आ) उद्देश्य के विषय में जो विधान किया जाता है उसे सूचित करनेवाले शब्दों को विधेय कहते हैं; जैसे ऊपर लिखे वाक्यों में आत्मा, घोड़ा, राम ने, इन उद्देश्यों के विषय में क्रमशः अमर है, दौड़ रहा है, रावण को मारा, ये विधान किये गये हैं; इसलिए इन्हें विधेय कहते हैं ।

६७९—उद्देश्य और विधेय प्रत्येक वाक्य में बहुधा स्पष्ट रहते

हैं; परंतु भाववाच्य में उद्देश्य प्रायः किया ही में सम्मिलित रहता है; जैसे मुझसे चला नहीं जाता, लड़के से बोलते नहीं बनता। इन वाक्यों में क्रमशः चलना और बोलना उद्देश्य किया ही के अर्थ में मिले हुए हैं।

६०—चना के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—
(१) साधारण (२) मिश्र और (३) संयुक्त।

(क) जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय रहता है उसे साधारण वाक्य कहते हैं, जैसे, आज बहुत शानी गिरा। विजली चमकती है।

(ख) जिस वाक्य में मुख्य उद्देश्य और मुख्य विधेय के सिवा एक वा अधिक समापिका कियाएँ रहती हैं उसे मिश्र वाक्य कहते हैं; जैसे, वह कौनसा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो। जब लड़का पाँच बरस का हुआ तब पिता ने उसे मदरसे को भेजा। वैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखें, तो भी उनके अच्छे नहीं बनते।

मिश्र वाक्य के मुख्य उद्देश्य और मुख्य विधेय से जो वाक्य बनता है उसे मुख्य उपवाक्य कहते हैं और दूसरे वाक्यों को आश्रित उप-वाक्य कहते हैं। आश्रित उपवाक्य स्वयं सार्थक नहीं होते, पर मुख्य वाक्य के साथ आने से उनका अर्थ निकलता है। ऊपर के वाक्यों में ‘वह कौनसा मनुष्य है’, ‘तब पिता ने उसे मदरसे को भेजा’, ‘तो भी उनके अच्छे नहीं बनते’, ये मुख्य उपवाक्य हैं और शेष उपवाक्य इनके आश्रित होने के कारण आश्रित उपवाक्य हैं।

(ग) जिस वाक्य में साधारण अथवा मिश्र वाक्यों का मेल रहता है उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। संयुक्त वाक्य के मुख्य

वाक्यों को समानाधिकरण उपवाक्य कहते हैं, क्योंकि वे एक दूसरे के आश्रित नहीं रहते ।

उदाह—संपूर्ण प्रजा अब शांतिपूर्वक एक दूसरे से व्यवहार करती है और जातिद्वेष क्रमशः घटता जाता है । (दो साधारण वाक्य ।)

सिंह में सूँधने की शक्ति नहीं होती; इसलिए जब कोई शिकार उसकी हृषि के बाहर हो जाता है तब वह अपनी जगह को लौट आता है । (एक साधारण और एक मिश्र वाक्य ।)

जब भाफ जमीन के पास इफटी दिखाई देती है तब उसे कुहरा कहते हैं; और जब वह हवा में कुछ ऊपर दीख पड़ती है, तब उसे मेघ वा बादल कहते हैं । (दो मिश्र वाक्य ।)

[दू—मिश्र वाक्य में एक से अधिक आश्रित उपवाक्य एक-दूसरे के समानाधिकरण हो तो उन्हें आश्रित समानाधिकरण उपवाक्य कहते हैं । इसके विरुद्ध, संयुक्त वाक्य के समानाधिकरण उपवाक्य मुख्य समानाधिकरण उपवाक्य कहते हैं ।]

६८—वाक्य और वाक्यांश में अर्थी और रूप, दोनों का अंतर रहता है । (अं०—८८-८९) । वाक्य में एक पूर्ण विचार रहता है; परंतु वाक्यांश में केवल एक वा अधिक भावनाएं रहती हैं । रूप के अनुसार दोनों में यह अंतर है कि वाक्य में एक किया रहती है; परंतु वाक्यांश में बहुधा कुदंत वा संबंध-सूचक अवयव रहता है; जैसे, काम करना, सबेरे जलदी उठना, नदा के किनारे, दूर से आया हुआ ।

(६३४)

तीसरा अध्याय ।

साधारण वाक्य ।

६३२—साधारण वाक्य में एक संज्ञा उद्देश्य और एक क्रिया विधेय होती है और उन्हें क्रमशः साधारण उद्देश्य और साधारण विधेय कहते हैं । उद्देश्य बहुधा कर्त्ता-कारक में रहता है; पर कभी-कभी वह दूसरे कारकों में भी आता है । जैसे—-

(१) प्रधान कर्त्ता-कारक—लड़का दौड़ता है । स्त्री कपड़ा सीती है । बंदर पेड़ पर चढ़ रहे थे ।

(२) अप्रधान कर्त्ता-कारक—मैंने लड़के को बुलाया । सिपाही ने चोर को पकड़ा । हमने अभी नहाया है ।

(३) अप्रत्यय कर्मकारक (कर्मवाच्य में)—चिट्ठी लिखी जायगी, दवाई बनाई गई है ।

(४) सप्रत्यय कर्म-कारक—नौकर को वहाँ भेजा जायगा । शाही जी को सभापति बनाया गया । (अं०—५२०—३)

(५) करण-कारक (भाववाच्य में, किसी-किसी के मता-नुसार)—लड़के से चला नहीं जाता । मुझसे बोलते नहीं बनता । (अं०—६५६) ।

(६) संप्रदान-कारक—आपको ऐसा न कहना चाहिये था । मुझे वहाँ जाना था । काजी को यही हुक्म देते बना ।

६३३—साधारण उद्देश्य में संज्ञा अथवा संज्ञा के समान उपयोग में आनेवाले दूसरे शब्द आते हैं; जैसे,

(अ) संज्ञा—हवा चलती है; लड़का आया ।

(आ) सर्वनाम—तुम पढ़ते थे, वे जावेंगे ।

(इ) विशेषण—विद्वान् सब जगह पूजा जाता है। मरता क्या नहीं करता ।

(ई) किया-विशेषण (कचित्)—(जिनका) भीतर-बाहर एक सा हो (सत्य०) ।

(उ) वाक्यांश—वहाँ जाना अच्छा नहीं है। भूठ बोलना पाप है। खेत का खेत सख्त गया ।

(ऊ) संज्ञा के समान उपयोग में आनेवाले कोई भी शब्द—“दौड़कर” पूर्णकालिक कुदंत है। “क” व्यंजन है।

[स०—एक वाक्य भी उद्देश्य हो सकता है; पर उस अवस्था में वह अकेला नहीं आता, किंतु भिन्न वाक्य का एक अवयव होकर आता है, (अ०—७०२) ।]

६८४—वाक्य के साधारण उद्देश्य में विशेषणादि जोड़कर उसका विस्तार करते हैं। उद्देश्य की संज्ञा नीचे लिखे शब्दों के द्वारा बढ़ाई जा सकती है—

(क) विशेषण—अच्छा लड़का माता-पिता को आझा मानता है। लाखों आदमी हैं जो से मर जाते हैं।

(ख) संबंधकारक—दर्शकों की भीड़ बढ़ गई। भोजन की सब चीजें लाई गईं। इस द्वीप की स्त्रियों वड़ी चंचल होती हैं। जहाज पर के यात्रियों ने आनंद मनाया ।

(ग) समानाधिकरण शब्द—परमहंस, कृष्णस्वामी काशी को गये। उनके पिता, जयसिंह यह बात नहीं चाहते थे ।

(घ) वाक्यांश—दिन का थका हुआ आदमी रात को खूब सोता है। आकाश में फिरता हुआ चंद्रमा

राहु से प्रसा जाता है। काम सीखा हुआ नौकर कठिनाई से मिलता है।

[स०—(१) उद्देश्य का विस्तार करनेवाले शब्द स्वयं अपने गुणवाचक शब्दों के द्वारा बड़ाये जा सकते हैं; जैसे, एक बहुत ही सुंदर लड़की कही जा रही थी। आपके बड़े लड़के का नाम क्या है? जहाज का सबसे ऊपर का हिस्सा पहले दिखाई देता है।

(२) ऊपर लिखे एक अथवा अनेक शब्दों से उद्देश्य का विस्तार हो सकता है; जैसे, तेजो के साथ दौड़ती हुई, छोटी-छोटी, सुन-हरी मछरियाँ साफ दिखाई पड़ती थीं। घोड़ों की टापों की, बढ़ती हुई आवाज दूर-दूर तक फैल रही थी। बाजिद-अली के समय का, ईटों से बना हुआ एक पक्का मकान अभी तक खड़ा है।]

६४—साधारण विवेय में केवल एक समापिका क्रिया रहती है, और वह किसी भी वाच्य, अर्थी, काल, पुरुष, लिंग, वचन और प्रयोग में आ सकती है। “क्रिया” शब्द में संयुक्त क्रिया का भी समावेश होता है। उदा०—

पानी गिरा। लड़का जाता है। पत्थर फेंका जायगा। धीरे-धीरे उजेला होने लगा।

(क) साधारणतः अकर्मक क्रियाएँ अपना अर्थ स्वयं प्रकट करती हैं; परंतु कोई-कोई अकर्मक क्रियाएँ ऐसी हैं कि उनका अर्थ पूरा करने के लिए उनके साथ कोई शब्द लगाने की आवश्यकता होती है। वे क्रियाएँ ये हैं—बनना, दिखना, निकलना, कहलाना, ठहरना, पड़ना, रहना।

इन की अर्थ-पूर्ति के लिए संज्ञा, विशेषण अथवा और कोई गुणवाचक शब्द लगाया जाता है; जैसे, वह आदमी पागल है। उसका लड़का चोर निकला। नौकर मालिक बन गया। वह पुस्तक राम की थी।

(ख) सकर्मक क्रिया का अर्थ कर्म के बिना पूरा नहीं होता और द्विकर्मक क्रियाओं में दो कर्म आते हैं; जैसे, पञ्ची घोंसले बनाते हैं। वह आदमी मुझे बुलाता है। राजा ने ब्राह्मण को दान दिया। यज्ञदत्त देवदत्त को व्याकरण पढ़ाता है।

(ग) करना, बनाना, समझना, पाना, रखना, आदि सकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य के रूप अपूर्ण होते हैं; जैसे, वह सिपाही सरदार बनाया गया। ऐसा आदमी चालाक समझा जाता है। उनका कहना भूठ पाया गया। उस लड़के का नाम शंकर रखा गया।

(घ) जब अपूर्ण क्रियाएँ अपना अर्थ आपही प्रगट करती हैं तब वे अकेली ही विधेय होती हैं; जैसे, ईश्वर है। सबेरा हुआ। चंद्रमा दिखता है। मेरी घड़ी बनाई जायगी।

(ङ) “होना” क्रिया के वर्तमानकाल के रूप कभी-कभी लुप्त रहते हैं; जैसे, मुझे इनसे क्या प्रयोजन (है)। वह अब आने का नहीं (है)।

६८६—कर्म में उद्देश्य के समान संज्ञा अथवा संज्ञा के समान उपयोग में आनेवाला कोई दूसरा शब्द आता है—

(क) संज्ञा—माली फूल तोड़ता है। सौदागर ने घोड़े बेचे।

(ख) सर्वनाम—वह आदमी मुझे बुलाता है। मैंने उसको नहीं देखा।

(ग) विशेषण—दीनों को मत सताओ। उसने हूचते को बचाया।

(घ) क्रिया-विशेषण (क्वचित्)—वह रूपया पटाने में आजकल कर रहा है ।

(ङ) वाक्यांश—वह खेत नापना सीखता है । मैं आप का इस तरह बातें बनाना नहीं सुनूँगा । बकरियों ने खेत का खेत चर लिया ।

(च) संज्ञा के समान उपयोग में आनेवाला कोई भी शब्द-तुलसीदास ने रामायण में 'कि' नहीं लिखी ।

[स०—मुख्य कर्म के स्थान में एक वाक्य भी आ सकता है; परंतु उसके कारण संपूर्ण वाक्य मिथ्य हो जाता है । (अ०—७०२)]

६८७—गौण कर्म में भी ऊपर लिखे शब्द पाये जाते हैं; जैसे,

(क) संज्ञा—यज्ञदत्त देवदत्त को व्याकरण पढ़ाता है ।

(ख) सर्वनाम—उसे यह कपड़ा पहिनाओ ।

(ग) विशेषण—वे भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र देते हैं ।

(घ) क्रिया-विशेषण (क्वचित्)—यह बात अपने वहाँ (= उनको) से नहीं बताई ?

(ङ) वाक्यांश—आपके ऐसा कहने को मैं कुछ भी मान नहीं देता ।

(च) संज्ञा के समान उपयोग में आनेवाला कोई भी शब्द—उनकी 'हों' को मैं मान देता हूँ ।

६८८—मुख्य कर्म अप्रत्यय कर्म-कारक में रहता है और गौण कर्म वहुधा संप्रदान-कारक में आता है; परंतु कहना, बोलना, पूछना, द्विकर्मक क्रियाओं का गौण कर्म करण-कारक में आता

है । उदाह—तुम क्या चाहते हो ? मैंने उसे कहानी सुनाई । बाप लड़के को गिनती सिखाता है । तुमसे यह किसने कहा ?

६६८—कर्मवाच्य में द्विकर्मक क्रियाओं का मुख्य कर्म उद्देश्य हो जाता है और वह कर्त्ताकारक में आता है; परंतु गौण कर्म ज्यों का त्यों बना रहता है; जैसे, ब्राह्मण को दान दिया गया; मुझ से यह बात पूछी जायगी ।

६६०—करना, बनाना, समझना, मानना, पाना, कहना, ठहराना, आदि सकर्मक क्रियाओं के कर्त्ता-वाच्य में कर्म के साथ एक और शब्द आता है जिसे कर्म-पूर्ति कहते हैं; जैसे, ईश्वर राई को पर्वत करता है । मैंने मिट्टी को सोना बनाया ।

कर्म-पूर्ति में नीचे लिखे शब्द आते हैं—

(क) संज्ञा—अहल्या ने गंगाघर को दीवान बनाया ।

(ख) विशेषण—मैंने उसे सावधान किया ।

(ग) संबंधकारक—वे सुने घर का समझते हैं ।

(घ) कुदंत अव्यय—उन्होंने उसे चोरी करते हुए पकड़ा ।

६६१—कुछ अकर्मक क्रियाओं के साथ उन्हींके धातु से बना हुआ कर्म आता है जिसे सजातीय कर्म कहते हैं; जैसे, वह अच्छी चाल चलता है । योद्धा सिंह की बैठक बैठा । पापी कुत्ते की मौत मरेगा । इस कर्म में संज्ञा आती है । (अं०—१६७) ।

६६२—उद्देश्य के समान पूर्ति और कर्म का भी विस्तार होता है; परंतु वाक्य-पृथकरण में उसे अलग बताने की आवश्यकता नहीं है । यहाँ केवल गुरुख कर्म को बढ़ानेवाले शब्दों की सूची दी जाती है—

(क) विशेषण—मैंने एक घड़ी मोल ली । वह उड़ती हुई चिड़िया पहचानता है । तुम बुरी बातें छोड़ दो ।

(ख) समानाधिकरण शब्द—आध सेर धी लाओ । मैं अपने मित्र, गोपाल को बुलाता हूँ ।

(ग) संबंध-कारक—उसने अपना हाथ बढ़ाया । आज का पाठ पढ़ लो । हाकिम ने गाँव के मुखिया को बुलाया ।

(घ) वाक्यांश—मैंने नटों का बाँस पर चढ़ना देखा । लोग हरिश्चंद्र की बनाई किताबें प्रेम से पढ़ते हैं ।

[ख०—उद्देश्य के समान कर्म में भी अनेक गुणवाचक शब्द एक साथ लगाये जा सकते हैं और ये गुणवाचक शब्द स्वयं अपने गुणवाचक शब्दों के द्वारा बढ़ाये जा सकते हैं ।]

६६३—उद्देश्य की संज्ञा के समान, विधेय की क्रिया का भी विस्तार होता है । जिस प्रकार उद्देश्य के विस्तार से उद्देश्य के विषय में अधिक बातें जानी जाती हैं, उसी प्रकार विधेय-विस्तार से विधेय के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त होता है । उद्देश्य का विस्तार बहुधा विशेषण के द्वारा होता है; परंतु विधेय क्रिया-विशेषण अथवा उसके समान उपयोग में आनेवाले शब्दों के द्वारा बढ़ाया जाता है ।

६६४—विधेय का विस्तार नीचे लिखे शब्दों से होता है—

(क) संज्ञा या संज्ञा-वाक्यांश—वह घर गया । सब दिन चले अद्वाई कोस । एक समय बड़ा अकाल पड़ा । उसने कई वर्ष राज्य किया ।

(ख) क्रिया-विशेषण के समान उपयोग में आनेवाला विशे

पण—वह अच्छा लिखता है। रुमि मधुर गाती है। मैं स्वस्थ बैठा हूँ।

(ग) विशेष्य के परे आनेवाला विशेषण—कियों उदास बैठी थीं। उसका लड़का भला-चंगा खड़ा है। मैं चुपचाप चला गया। कुत्ता भौंकता हुआ भागा। तुम मारे-मारे किरोगे।

(घ) पूर्ण तथा अपूर्ण कियाद्योतक कुदंत—कुत्ता पूँछ हिलाते हुए आया। रुमि बकते-बकते चली गई। लड़का बैठे-बैठे उकता गया। तुम्हारी लड़की छाता लिये जाती थी।

(ङ) पूर्वकालिक कुदंत—वह उठकर भागा। तुम दौड़कर चलते हो। वे नहाकर लौट आये।

(च) तत्कालबोधक कुदंत—उसने आते हो उपद्रव मचाया। रुमि गिरते ही मर गई। वह लेटते ही सो गया।

[द०—इन कुदंतों से बने हुए वाक्यांश भी उपयोग में आते हैं।]

(छ) स्वतंत्र वाक्यांश—इससे थकावट दूर होकर, अच्छी नींद आती है। तुम इतनी रात गये क्यों आए? सूरज निकलते ही वे लोग भागे। दिन रहते यह काम हो जायगा। दो बजे गाड़ी आती है। मुझे सारी रात तलफते चीती। उनको गये एक साल हो गया। लाश गड्ढा खोदकर गाड़ दी गई।

(ज) क्रिया-विशेषण वा क्रिया-विशेषण-वाक्यांश—गाड़ी जलदी चलती है। राजा आज आये। वे मुझसे प्रेमपूर्वक बोले। चोर कहीं न कहीं किपा है। पुस्तक हाथों-हाथ बिक गई। उसने जैसे-तैसे काम पूरा किया।

(अ) संबंध-सूचकांत शब्द—चिड़िया [घोती समेत उड़े गईं । वह भूख के मारे मर गया । मैं उनके यहाँ रहता हूँ । अँगरेजों ने कर्मनाशा तक उसका पीछा किया । मरने के सिवा और क्या होगा ? यह काम तुम्हारी सहायता विना न होगा ।

(ब) कर्त्ता, कर्म और संबंध-कारकों को छोड़ शेष कारक—मैंने चाकू से फल काटा । वह नहाने को गया है । बृक्ष से फल गिरा । मैं अपने किये पर पछताता हूँ ।

[स०—(१) संचोधन-कारक बहुधा वाक्य से कोई संबंध नहीं रखता, इसलिए वाक्य-पृथकरण में उसका कोई स्थान नहीं है ।

(२) एक वाक्य भी विधेय-वर्द्धक हो सकता है; परंतु उसके योग से पूरा वाक्य मिश्र हो जाता है (अं०—७०६) ।]

६४५—एक से अधिक विधेय-वर्द्धक एक ही साथ उपयोग में आ सकते हैं; जैसे, इसके बाद, उसने तुरन्त घर के स्वामी से कहकर, लड़के को पढ़ने के लिए, मदरसे को भेजा । मैं अपना काम पूरा करके, बाहर के कमरे में, अखबार पढ़ता हुआ बैठा था ।

६४६—अर्थ के अनुसार विधेय-वर्द्धक के नीचे लिखे भेद होते हैं—

(१) कालबाचक—

(अ) निश्चित काल—मैं कल आया । बचा पैदा होते ही दूध पीने लगता है । आपके जाने के बाद नौकर आया । गाढ़ी पाँच बजे जायगी ।

(५) अवधि—बह दो महीने बीमार रहा । हम दिनभर काम करते हैं । क्या तुम मेरे आने तक न ठहरोगे ? मेरे रहते यह काम हो जायगा ।

(६) पौनःपुन्य—उसने बार-बार यह कहा । बदृई संदूक बना-बनाकर बेचता है । वे रात-रातभर जागते हैं । पंडितजी कथा कहते समय बीच-बीच में चुटकुले सुनाते हैं । सिपाही बाड़ पर बाड़ छोड़ते हुए आगे बढ़े । काम करते-करते अनुभव हो जाता है ।

(२) स्थानवाचक—

(७) स्थिति—पंजाब में हाथियों का बन नहीं है । उसके एक लड़का है । हिंदुस्थान के उत्तर में हिमालय पर्वत है । प्रयाग गंगा के किनारे चसा है ।

(८) गति—(१) आरंभस्थान—त्राणण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए । गंगा हिमालय से निकलती है । वह घोड़े पर से गिर पड़ा ।

(९) ज्यस्थान—गाड़ी बंदर्ह को गई । अँगरेजों ने कर्मनाशा तक उसका पीछा किया । घोड़ा जंगल की तरफ भागा । आगे चले बहुरि रघुराई ।

(३) रीतिवाचक—

(१०) शुद्ध रीति—मोटी लकड़ी बहा बोक अच्छी तरह सम्भालती है । लड़का मन से पढ़ता है । घोड़ा लैंगड़ाता हुआ भागा । सारी रात तलाफते बीती ।

(इ) साधन (अथवा कर्तृत्व)—मंत्री के द्वारा राजा से भेंट हुई । सिपाही ने तलवार से चीते को मारा । यह ताला किसी दूसरी कुंजी से नहीं खुलता । ऐचता राज्ञसों से सताये गये । इस कल्पम से लिखते नहीं बनता ।

(उ) साहित्य—मेरा भाई एक कपड़े से गया । राजा बड़ी सेना लेकर चढ़ आया । मैं तुम्हारे साथ रहूँगा । चिना पानी के कोई जीवधारी नहीं जी सकता ।

(४) परिणामवाचक—

(अ) निश्चय—मैं दस मील चला । धन से विद्या श्रेष्ठ है । यह लड़का तुम्हारे बराबर काम नहीं कर सकता । यह स्त्री आठ-आठ आँख रोती है । सिर से पैर तक आदमी की लंबाई छः फुट के लगभग होती है ।

(इ) अनिश्चय—वह बहुत करके थीमार है । कदाचित् मैं न जा सकूँगा ।

[दू०—नहीं (न, मत) को विषेय-विस्तारक न मानकर साधारण विषेय का अंग मानना उचित है ।]

(५) कार्यकारण-वाचक—

(अ) हेतु वा कारण—तुम्हारे आने से मेरा काम सफल होगा । धूप कड़ी होने के कारण वे पेह की छोया मैं ठहर गये । वह मारे डर के कौपने लगा ।

(इ) कार्य वा निमित्त—पीने को पानी लाओ । हम

नाटक देखने को गये थे । वह मेरे लिए एक किताब लाया । आपको नमस्कार है ।

(१) द्रव्य (उपादान कारण)—गाय के चमड़े के जूते बनाये जाते हैं । शकर से मिठाई बनती है ।

(२) विरोध—भलाई करते बुराई होती है । मेरे देखते भेड़िया बच्चे को उठा ले गया । तूफान आने पर भी उसने जहाज चलाया । मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं है ।

६१७—पूर्वोक्त विवेचन के अनुसार साधारण वाक्य के अवयव जिस क्रम से प्रदर्शित करना चाहिए, उसका विचार यहाँ किया जाता है—

(१) वाक्य का साधारण उद्देश्य लिखो ।

(२) यदि उद्देश्य के कोई गुणवाचक शब्द हों तो उन्हें लिखो ।

(३) साधारण विवेय बताओ, और यदि विवेय में अपूर्ण किया हो तो उसकी पूर्ति लिखो ।

(४) यदि विवेय में सकर्मक किया हो तो उसका कर्म बताओ और यदि किया द्विकर्मक अथवा अपूर्ण सकर्मक हो तो क्रमशः उसका गौण कर्म वा पूर्ति भी लिखो ।

(५) विवेय-पूरक के गुणवाचक शब्दों को विवेय-पूरक के साथ ही लिखो ।

(६) विवेय-वर्द्धक बताओ ।

इस सूची से नीचे लिखे दो कोष्ठक प्राप्त होते हैं—

(६४६)

(१)

उद्देश्य		विधेय		
साधारण	उद्देश्य-वर्द्धक	साधारण विधेय	विधेय-पूरक कर्म	विधेय-विस्तारक पूर्ति

(२)

उद्देश्य	{	साधारण उद्देश्य
		उद्देश्य-वर्द्धक

विधेय	{	साधारण विधेय
	{	विधेय-पूरक	कर्म	...
		विधेय-विस्तारक	पूर्ति	...
		

[द०—इन कोष्ठकों में से पहला अधिक प्रचलित है ।]

६८—पृथकरण के कुछ उदाहरण—

- (१) पानी बरसा ।
- (२) वह आदमी पागल हो गया ।
- (३) समापति ने अपना भाषण पढ़ा ।
- (४) इसमें वह चेचारा क्या कर सकता था ?
- (५) सीढ़ी के सहारे मैं जहाज पर जा पहुँचा ।
- (६) एक सेर धी बस होगा ।
- (७) खेत का खेत सूख गया ।
- (८) यहाँ आये मुझे दो वर्ष हो गये ।
- (९) राजमंदिर से बीस फुट की दूरी पर चारों तरफ दो फुट ऊँचो दीवार है ।
- (१०) दुर्गंध के मारे वहाँ बैठा नहीं जाता था ।
- (११) यह अपमान, भला, किससे सहा जायगा ?
- (१२) नैपालवाले बहुत दिनों से अपना राज्य बढ़ाते चले आते थे ।
- (१३) विद्वान् को सदा धर्म की चिंता करनी चाहिये ।
- (१४) मुझे ये दान ब्राह्मणों को देने हैं ।
- (१५) मीर कासिम ने मुंगेर ही को अपनी राजधानी बनाया ।
- (१६) उसका कहना मूठ समझा गया ।

वाक्य	उद्देश्य		साधारण विवेय	विवेय		विवेय- विस्तारक
	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य- बद्धक		कर्म	पूर्ति	
(१)	पानी	०	गिरा	०	०	०
(२)	आदमी	वह	हो गया	०	पागल	०
(३)	सभापति ने	०	पढ़ा	अपना	०	०
				भाषण		
(४)	वह	वेचाय	कर सकता था	क्या	०	इसमें (स्थान)
(५)	मैं	०	जा पहुँचा	०	०	सीढ़ी के सहारे (साथन); जहाज पर (स्थान)
(६)	धी	एक सेर	होगा	०	बस	०
(७)	खेत का खेत	०	दुल गया	०	०	०
(८)	वर्ष	दो	हो गये	०	०	मुझे यहाँ आये (काल)
(९)	दीवार	दोफुट्ठँची	है	०	०	राजमंदिर से बीस फुट की दूरी पर (स्थान) चारों तरफ (स्थान)
(१०)	बैठना (लुस) (क्रियात्मकत)	०	बैठा नहीं जाता था	०	०	दुर्घट के मारे (कारण); वहाँ (स्थान)
	अथवा किसी से लुत					

वाक्य	उद्देश्य		विधेय			
	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य बढ़क	साधारण विधेय	विधेय-पूरक		विधेय- विस्तारक
				कर्म	पूर्ति	
(११)	अपमान	यह	सहजायगा	०	०	किससे (द्वारा)
(१२)	नैपालवाले	०	चलोआतेये	०	०	उपना राज्य बढ़ते (रीति); बहुत दिनों से (काल)
(१३)	विद्वान् को	०	करनी चाहिये	धर्म की चिंता	०	सदा (काल)
(१४)	मुझे	०	देने हैं	ये दान (मुख्य) ब्राह्मणों को (गौण)	०	०
(१५)	मीर कासिम ने	०	बनाया	मुंगेर को	अपनी राज- धानी	०
(१६)	कहना	उसका	समझा गया	०	भूठ	०

चौथा अध्याय ।

मिश्र वाक्य ।

६६—मिश्र वाक्य में सुख्य उपवाक्य एक ही रहता है; पर आश्रित उपवाक्य एक से अधिक आ सकते हैं । आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—संज्ञा-उपवाक्य, विशेषण-उपवाक्य और क्रिया-विशेषण-उपवाक्य ।

(क) सुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा या संज्ञा-वाक्यांश के बदले जो उपवाक्य आता है उसे संज्ञा-उपवाक्य कहते हैं; जैसे तुमको कब योग्य है कि बन में बसो ? इस वाक्य में ‘बन में बसो’ आश्रित उपवाक्य है और यह उपवाक्य सुख्य उपवाक्य के ‘बन में बसना’ संज्ञा-वाक्यांश के बदले आया है । सुख्य उपवाक्य में इस संज्ञा-उपवाक्यांश का उपयोग इस तरह होगा—तुमको बन में बसना कब योग्य है ? इसी तरह “इस भेले का सुख्य उद्देश्य है कि ध्यापार की वृद्धि हो”, इस मिश्र वाक्य में ‘ध्यापार की वृद्धि’ के बदले आया है ।

(ख) सुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा की विशेषता बताने-बाला उपवाक्य विशेषण-उपवाक्य कहलाता है; जैसे, जो मनुष्य धनवान् होता है उसे सभी चाहते हैं । इस वाक्य में “जो मनुष्य धनवान् होता है”, यह आश्रित उपवाक्य सुख्य उप-वाक्य के ‘धन-वान्’ विशेषण के स्थान में प्रयुक्त हुआ है । सुख्य उपवाक्य में यह विशेषण इस तरह रखा जायगा—धनवान् मनुष्य को सभी चाहते हैं; और यहाँ ‘धनवान्’ विशेषण ‘मनुष्य’ संज्ञा की विशेषता बतलाता है । इसी तरह “यहाँ ऐसे कई लोग हैं जो दूसरों की चिंता नहीं करते”, इस वाक्य में “जो दूसरों की चिंता नहीं करते” यह उपवाक्य सुख्य उपवाक्य के “दूसरों की चिंता न

करनेवाले” विशेषण के बदले आया है जो “मनुष्य” संज्ञा की विशेषता बतलाता है ।

(ग) क्रिया-विशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बतलाता है; जैसे, जब सबेरा हुआ तब हम लोग बाहर गये । इस मिश्र वाक्य में ‘जब सबेरा हुआ’ क्रिया-विशेषण-उपवाक्य है । वह मुख्य उपवाक्य के ‘सबेरे’ क्रियाविशेषण के स्थान में आया है । मुख्य उपवाक्य में इस क्रियाविशेषण का प्रयोग यों होगा—“सबेरे हम लोग बाहर गये” और वहाँ यह क्रियाविशेषण “गये” क्रिया की विशेषता बतलाता है । इसी प्रकार “मैं तुम्हें बहाँ भेजूँगा जहाँ कंस गया है”, इस मिश्र वाक्य में “जहाँ कंस गया है” यह आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के “कंस के जाने के स्थान में” क्रिया-विशेषण-वाक्यांश के बदले आया है जो “भेजूँगा” क्रिया की विशेषता बतलाता है ।

[टी०—ऊपर के विवेचन से सिद्ध होता है कि आश्रित उपवाक्यों के स्थान में, उनकी जाति के अनुरूप, उसी अर्थ की संज्ञा, विशेषण अथवा क्रियाविशेषण रखने से मिश्र वाक्य साधारण वाक्य हो जाता है; और इसके विरुद्ध साधारण वाक्यों की संज्ञा, विशेषण वा क्रिया-विशेषण के बदले, उनकी जाति के अनुरूप, उसी अर्थ के संज्ञा-उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य अथवा क्रियाविशेषण-उपवाक्य रखने से साधारण वाक्य मिश्र वाक्य बन जाता है ।]

७००—जिस प्रकार साधारण वाक्य में समानाधिकरण संज्ञाएँ, विशेषण वा क्रिया-विशेषण आ सकते हैं, उसी प्रकार मिश्र वाक्य में दो वा अधिक समानाधिकरण आश्रित उपवाक्य भी आ सकते हैं । उदा०—हम चाहते हैं कि लड़के निरोगी रहें और वे विद्रान् हों । इस मिश्र वाक्य में “हम चाहते हैं” मुख्य उपवाक्य है और “लड़के निरोगी रहें” और “विद्रान् हों” ये दो

आश्रित उपवाक्य हैं। ये दोनों उपवाक्य “चाहते हैं” क्रिया के कर्म हैं; इसलिए दोनों समानाधिकरण संज्ञा-उपवाक्य हैं। यदि इनके स्थान में संज्ञाएँ रखती जावें तो ये दोनों समानाधिकरण होंगा; जैसे, हम “लड़कों का निरोगी रहना” और “उनका विद्वान् होना” चाहते हैं। इस वाक्य में ‘रहना’ और ‘होना’ संज्ञाओं का ‘चाहते हैं’ क्रिया से ही एक प्रकार का—कर्म का—संबंध है; इसलिए ये दोनों संज्ञाएँ समानाधिकरण हैं।

(क) मिश्रवाक्य में जिस प्रकार प्रधान उपवाक्य के संबंध से आश्रित उपवाक्य आते हैं उसी प्रकार आश्रित उपवाक्यों के संबंध से भी आश्रित उपवाक्य आ सकते हैं; जैसे, नौकर ने कहा कि मैं जिस दूकान में गया था उसमें दवा नहीं मिली। इस वाक्य में “मैं जिस दूकान में गया था”, यह उपवाक्य “उसमें दवा नहीं मिली,” इस संज्ञा-उपवाक्य का विशेषण-उपवाक्य है। इस पूरे वाक्य में एक ही प्रधान उपवाक्य है; इसलिए यह समूचा वाक्य मिश्र ही है।

७०१—आश्रित उपवाक्यों के संज्ञा-उपवाक्य, विशेषण-उपवाक्य और क्रिया-विशेषण-उपवाक्य, ये तीन ही भेद होते हैं। उनके और अधिक भेद नहीं हो सकते, क्योंकि संज्ञा, विशेषण और क्रिया-विशेषण के बदले तो दूसरे उपवाक्य आ सकते हैं; परंतु क्रिया का आशय दूसरे उपवाक्य से प्रकट नहीं किया जा सकता। इनको छोड़कर वाक्य में और कोई ऐसे अवयव नहीं होते जिनके स्थान में वाक्य की योजना की जा सके।

संज्ञा-उपवाक्य ।

७०२—संज्ञा-उपवाक्य मुख्य वाक्य के संबंध से बहुधा नीचे किखे किसी एक स्थान में आता है—

(क) उहैश्य—इससे जान पड़ता है “कि बुरी संगति का

फल बुरा होता है”। मालूम होता है “कि हिंदू लोग भी इसी घाटी से होकर हिंदुस्थान में आये थे ।”

(ख) कर्म—वह जानती भी नहीं “कि धर्म किसे कहते हैं”। मैंने सुना है “कि आपके देश में अच्छा राज-प्रबंध है ।

(ग) पूर्ति—मेरा विचार है “कि हिंदी का एक साप्ताहिक पत्र निकालूँ”। उसकी इच्छा है “कि आपको मारकर दिल्लीप-सिंह को गढ़ी पर बैठावें” ।

(घ) समानाधिकरण शब्द—इसका फल यह होता है “कि इनकी तादाद अधिक नहीं होने पाती”। यह विश्वास दिन पर दिन बढ़ता जाता है “कि मरे हुए मनुष्य इस संसार में लौट आते हैं” ।

[स०—संशा-उपवाक्य केवल मुख्य विवेय ही का कर्म नहीं होता, किंतु मुख्य उपवाक्य में आनेवाले कृदंत का भी कर्म हो सकता है; जैसे, आप यह सुनकर प्रसन्न होगे कि इस नगर में श्रव शांति है। चौर से यह कहना कि तू साहूकार है, यकोकि कहाती है ।

७०३—संशा-उपवाक्य बहुधा स्वरूप-बाचक समुच्चय-बोधक ‘कि’ से आरंभ होता है; जैसे, वह कहता है “कि मैं कल जाऊँगा”। आपको कब योग्य है “कि बन में बसो” ।

(क) पुरानी भाषा में तथा कहीं-कहीं आधुनिक भाषा में ‘कि’ के बदले “जो” का प्रयोग पाया जाता है। यथा—बाया से समझायकर कहो “जो वे मुझे ग्वालों के संग पठाय दें” (प्रेम०)। यही कारण है “जो मर्म ही उनकी समझ में नहीं आता” (स्वा०) ।

(ख) जब आंतित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के पहले आता है, तब ‘कि’ का लोप हो जाता है और मुख्य उपवाक्य में “यह” निश्चयवाचक सर्वनाम आंतित उपवाक्य का समानाधिकरण

होकर आता है; जैसे “परमेश्वर एक है”, यह धर्म की बात है। “मैं आपको भूल जाऊँ,” यह कैसे हो सकता है ?

(ग) कर्म के स्थान में आनेवाले आश्रित उपवाक्य के पूर्व ‘कि’ का बहुधा लोप कर देते हैं; जैसे, पड़ोसिन ने कहा, अब मुझे दबाई की जरूरत नहीं । क्या जाने, किसी के मन में क्या है ।

(घ) कविता में ‘कि’ का प्रयोग यहुत कम करते हैं; जैसे,

लघन लखेड़, भा अनरथ आजू ।
सकल सुकृत कर फल सुत पहू ।
राम-सीय-पद सहज सनेहू ॥

(ङ) संज्ञा-उपवाक्य कभी-कभी प्रश्नवाचक होते हैं, और मुख्य उपवाक्य में बहुधा यह, ऐसा अथवा क्या सर्वनाम का प्रयोग होता है; जैसे, राजा ने यह न जाना “कि मैं क्या कर रहा हूँ” । ऊपर क्या देखती है “कि चारों ओर बिजली चमकने लगी” । एक दिन ऐसा हुआ “कि युद्ध के समय अचानक ग्रहण पड़ा ।”

विशेषण-उपवाक्य ।

७०४—विशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा की विशेषता बतलाता है; इसलिए वाक्य में जिन-जिन स्थानों में संज्ञा आती है उन्हीं स्थानों में उसके साथ विशेषण-उपवाक्य लगाया जा सकता है; जैसे—

(क) उद्देश्य के साथ—जो सोया उसने खोया । एक बड़ा बुद्धिमान् डाक्टर था जो राजनीति के तत्त्व को अच्छी तरह समझता था ।

(ख) कर्म के साथ—बहाँ जो कुछ देखने योग्य था मैंने सब देख लिया । वह ऐसी बातें कहता है जिनसे सबको बुरा लगता है ।

(ग) पूर्ति के साथ—वह कौन सा मनुष्य है जिसने महा-प्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो । राजा का धातक एक सिपाही निकला जिसने एक समय उसके प्राण बचाये थे ।

(घ) विवेय-विस्तारक के साथ—आप उस अपकीर्ति पर ध्यान नहीं देते जो बालहत्या के कारण सारे संसार में होती है । उन्होंने जो कुछ दिया उसीसे मुझे परम संतोष है ।

[स०—ऊरर जो चार मुख्य अवयव बताये गये हैं उनसे यह न समझना चाहिये कि विशेषण-उपबाक्य मुख्य उपबाक्य की और किसी संज्ञा के साथ नहीं आता । यथार्थ में विशेषण-उपबाक्य मुख्य उपबाक्य की किसी संज्ञा की विशेषता बतलाता है । उदा०—आपने इस अनित्य शरीर का, जो अल्प ही काल में नाश हो जायगा, इतना मोह किया ! इस वाक्य में विशेषण-उपबाक्य—“जो अल्प ही काल में नाश हो जायगा”—उद्देश्यवर्द्धक संज्ञा “शरीर” के साथ आया है ।]

७०५—विशेषण-उपबाक्य संबंध-वाचक सर्वनाम “जो” से आरंभ होता है और मुख्य उपबाक्य में उसका नित्य-संबंधी ‘सो’ वा ‘वह’ आता है । कभी-कभी जो और सो से बने हुए जैसा, जितना और वैसा, उतना भी आते हैं । इनमें से पहले दो विशेषण-उपबाक्य में और पिछले दो मुख्य उपबाक्य में रहते हैं । उदा०—जिसकी लाठी उसकी भैस । जैसा देश वैसा भेष ।

(क) विशेषण-उपबाक्य में कभी-कभी संबंधवाचक क्रिया-विशेषण—जब, जहाँ, जैसे और जितने भी आते हैं; यथा, वे उन देशों में पल सकते हैं जहाँ उनकी जाति का पहले नाम-मात्र न था ।

जैसे जाय मोह भ्रम भारी ।
करहु सो यतन विवेक विचारी ॥

इन उदाहरणों में जहाँ = जिस स्थान में, और जैसे = जिस चर्पाय से ।

[स०—इन संयोजक शब्दों के साथ कभी-कभी “कि” अव्यय (फारसी-रचना के अनुकरण पर) लगा दिया जाता है; जैसे, मैंने एक सपना देखा है कि जिसके आगे अब यह सारा खट्टराम सपना मालूम होता है (गुटका०); ऐसी नहीं जैसी कि अब प्रतिकूलता है इक्षु में (भारत०) ।]

(ख) कभी-कभी विशेषण-उपवाक्य में एक से अधिक संबंधवाचक सर्वनाम (वा विशेषण) आते हैं; और मुख्य उपवाक्य में उनमें से प्रत्येक के नित्य-संबंधी शब्द आते हैं; जैसे, जो जैसी संगति करै सो तैसो कल पाय । जो जितना माँगता उसको उतना दिया जाता ।

(ग) कभी-कभी संबंधवाचक और नित्य-संबंधी शब्दों में से किसी एक प्रकार के शब्दों का (अथवा पूरे उपवाक्य का) लोप हो जाता है; जैसे, हुआ सो हुआ । जो हो । जो आज्ञा । सच हो सो कह दो ।

(घ) कभी-कभी संबंधवाचक सर्वनाम के स्थान में प्रश्नवाचक सर्वनाम आता है; परंतु नित्य-संबंधी सर्वनाम नियमानुसार रहता है; जैसे, अब शिर्जण क्या है सो हम तुम्हें बताते हैं । फिर आगे क्या हुआ सो किसी को न जान पड़ा ।

[स०—पहले (७०३-४ में) कहा गया है कि संज्ञा-उपवाक्य प्रश्नवाचक होते हैं; इसलिए प्रश्नवाचक संज्ञा-उपवाक्य और प्रश्नवाचक विशेषण-उपवाक्य का अंतर समझना आवश्यक है । जब पहले प्रकार के उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के पश्चात् आते हैं, तब उनकी पहचान में विशेष कठिनाई नहीं पढ़ती, क्योंकि एक तो वे बहुधा ‘कि’ समुच्चय-बोधक से आरंभ होते हैं; और दूसरे, वे मुख्य उप-वाक्य के किसी लुप्त वा प्रकट

शब्द के समानाधिकरण होते हैं; जैसे, मैं जानता हूँ कि तुम क्या कहने-वाले हो । इस मिथ्य वाक्य में जो आभित उप-वाक्य है वह मुख्य उप-वाक्य के 'यह' (लुत) शब्द का समानाधिकरण है और संशा-उपवाक्य है । अब यदि हम इस उपवाक्य को मुख्य उपवाक्य के पूर्व रखकर इस तरह कहें कि "तुम क्या कहनेवाले हो, यह मैं जानता हूँ," तो यह उप-वाक्य भी संशा-उपवाक्य है, क्योंकि यह मुख्य उपवाक्य के "यह" शब्द का समानाधिकरण है । यथार्थ में 'यह' शब्द प्रश्नवाचक संशा-उपवाक्यों के संबंध से मुख्य उपवाक्य में सदैव आता है अथवा समझा जाता है । पर प्रश्नवाचक विशेषण-वाक्यों के साथ मुख्य वाक्य में बहुधा नित्य-संबंधी 'सो' अथवा 'वह' रहता है और उसका संबंध पूरे वाक्य से न रहकर केवल उसी शब्द से रहता है जिसके साथ प्रश्नवाचक वा संबंध-वाचक सर्वनाम आता है; जैसे, फिर उसकी क्या दशा हुई सो (वह) मैं नहीं जानता । इस वाक्य में 'सो' अथवा 'वह' का संबंध आभित उपवाक्य की 'दशा' संशा से है और यह आभित उपवाक्य विशेषण-उप-वाक्य है ।]

(३) कभी-कभी मुख्य उपवाक्य में संशा और उसका सर्वनाम, दोनों आते हैं; जैसे, पानी जो बादलों से बरसता है, वह मीठा रहता है; पहला कमरा जहाँ मैं गया, उसमें अंधे सिपाहियों को मर्दन अथवा मालिश करने का काम सिखलाया जाता है (सर०) ।

[स०—इस प्रकार की रचना, जिसमें पहले संशा का उपयोग करके पश्चात् उसका संबंधवाचक सर्वनाम रखते हैं और फिर कभी-कभी उस संशा के बदले निश्चयवाचक सर्वनाम भी लाते हैं, अँगरेजी के संबंध-वाचक सर्वनाम की इसी प्रकार की रचना के अनुकरण का फल जान पड़ता है । यह रचना हिंदी में आजकल बढ़ रही है; परंतु पिछले

* प्रेमसागर में भी ऐसी रचना पाई जाती है जिससे प्रकट होता है

निश्चयवाचक सर्वनाम का उपयोग कचित् होता है; जैसे, सर्वदर्शीं सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर का, जो घट घट का अंतर्यामी है, आपके मन में कुछ भी भय उत्पन्न न हुआ (गुटका०) । जंबूद्धीप नाम का प्रदीप, जो दीपक-समान मान को पाता है, प्रसिद्ध द्वेष है (श्यामा०) । कहीं-कहीं नदी की तली मोटी रेत से, जिसमें बहुधा बारीक रेत भी मिली होती है, ढँकी रहती है ।]

(च) कभी-कभी विशेषण-उपवाक्य विशेषण के समान मुख्य उपवाक्य की संज्ञा का अर्थ मर्यादित नहीं करता, किंतु उसके विषय में कुछ अधिक सूचना देता है; जैसे, उसने एक नेवला पाला था, जिस पर उसका बड़ा प्रेम था । इस वाक्य का यह अर्थ नहीं है कि उसने वही नेवला पाला था, जिस पर उसका बड़ा प्रेम था; किंतु इसका यह है कि उसने एक (कोई) नेवला पाला था और उस पर उसका प्रेम हो गया । इसी प्रकार इस (अगले) वाक्य में विशेषण-उपवाक्य मर्यादिक नहीं, किंतु समानाधिकरण है—इन कवियों की आमोद-प्रियता और अपव्यय की अनेक कथाएँ सुनी जाती हैं जिनका उल्लेख यहाँ अनावश्यक है (सर०) । इस अर्थ के विशेषण-उपवाक्य बहुधा मुख्य उपवाक्य के पश्चात् आते हैं और उनके संबंध-वाचक सर्वनाम के बदले विकल्प से “और” के साथ निश्चयवाचक सर्वनाम रखता जा सकता है ।

कि या तो यह रचना हिंदी में बहुत पुरानी है और अँगरेजी रचना से इसका कोई संबंध नहीं है, किंतु फारसी रचना से है, (संस्कृत में ऐसी रचना नहीं है ।) या लज्जाजीलाल पर भी अँगरेजी का प्रभाव पड़ा है । प्रेमसागर का उदाहरण यह है—यह पाप-रूप, काल-आवरण, डरावनी-मूरत जो आपके सम्मुख लगा है, सो पाप है । प्राचीन कविता में बहुधा इस रचना के उदाहरण नहीं मिलते ।

ऐसे उपवाक्यों को विशेषण-उपवाक्य न मानकर समानाधिकरण उपवाक्य मानना चाहिए ।

[६०—इस रचना के संबंध में भी बहुधा यह संदेह हो सकता है कि यह अँगरेजी रचना का अनुकरण है; पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ प्रेमसागर में भी यह रचना है; जैसे, (वे) सब धर्मों से उत्तम धर्म कहेंगे, जिससे तू जन्म-मरण से छूट भवसागर पार होगा । प्राचीन कविता में भी इस रचना के उदाहरण पाये जाते हैं; जैसे—

रामनाम को कल्प-तरु कलि कल्पयाण-निवास ।

जो सुमिरत भये भाग तें तुलसी तुलसीदास ॥

इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि (अँगरेजी के समान) हिंदी में विशेषण-उपवाक्य दो अर्थों में आता है—मर्यादक और समानाधिकरण; और पिछले अर्थ में उसे विशेषण-उपवाक्य नाम देना अशुद्ध है ।]

क्रिया-विशेषण-उपवाक्य ।

७०६—क्रिया-विशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बताता है । जिस प्रकार क्रिया-विशेषण विवेय को बढ़ाने में उसका काल, स्थान, रीति, परिमाण कारण और फल प्रकाशित करता है, उसी प्रकार क्रिया-विशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के विवेय का अर्थ इन्हीं अवस्थाओं में बढ़ाता है । क्रिया-विशेषण के समान क्रिया-विशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के विशेषण अथवा क्रिया-विशेषण की भी विशेषता बताता है; जैसे—

क्रिया की विशेषता—“जो आप आज्ञा देवें,” तो हम जन्म-भूमि देख आवें । (= आपके आज्ञा देने पर) ।

विशेषण की विशेषता—“इन नदियों का पानी इतना ऊँचा पहुँच जाता है कि बड़े-बड़े पूर आ जाते हैं ।” (= बड़े-बड़े पूर आने के योग्य) ।

क्रिया-विशेषण की विशेषता—गाड़ी इतने धीरे चली “कि शहर के बाहर दिन निकल आया ।” (= शहर के बाहर दिन निकलने के समय तक) ।

[स०—मिथ वाक्यों में क्रिया-विशेषण-उपवाक्यों की संख्या अन्य आश्रित उपवाक्यों की अपेक्षा अधिक रहती है ।]

७०५—क्रिया-विशेषण-उपवाक्य पाँच प्रकार के होते हैं—
 (१) कालवाचक (२) स्थानवाचक (३) रीति-वाचक
 (४) परिमाण-वाचक (५) कार्य-कारणवाचक ।

(१) कालवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य ।

७०६ क—कालवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य से नीचे लिखे अर्थ सूचित होते हैं—

(क) निश्चित काल—“जब किसान यह फंदा खोलने को आवे,” तब तुम सौंस रोककर मुर्दे के समान पढ़ जाना । “ज्योंही मैं आपको पत्र लिखने लगा,” त्योंही आपका पत्र आ पहुँचा ।

(ख) कालावस्थिति—“जब तक हाथ से पुस्तकें लिखने की चाल रही”, तब तक मृथ बहुत ही संक्षेप में लिखे जाते थे । “जब औंधी बड़े जोर से चल रही थी,” तब वह एक टापू पर जा पहुँचा ।

(ग) संयोग का पौनःपुन्य—“जब-जब मुझे काम पड़ा,” तब-तब आपने सहायता दी । “जब-कभी कोई दीन-दुखी उसके द्वार पर आता,” तब वह उसे अन्न और वस्त्र देता ।

७०८—काल-वाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य जब, ज्योंही, जब-जब, जब-तक और जब-कभी संबंधवाचक क्रिया-विशेषणों से आरंभ होते हैं; और मुख्य उपवाक्य में उनके नित्य-संबंधी तब, त्योंही, तब-तब, तब-तक आते हैं ।

(२) स्थानवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य ।

७०९—स्थानवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के संबंध से नीचे लिखी अवस्थाएँ सूचित करता है—

(क) स्थिति—“जहाँ अभी समुद्र है” वहाँ किसी समय जंगल था । “जहाँ सुमति” तहाँ संपति नाना ।

(ख) गति का आरंभ—ये लोग भी वहाँ से आये, “जहाँ से आये लोग आये थे” । “जहाँ से शब्द आता था” वहाँ से एक सबार आता हुआ दिखाई दिया ।

(ग) गति का अन्त—“जहाँ तुम ये थे” वहाँ गणेश भी गया था । मैं तुम्हें वहाँ भेजूंगा “जहाँ कंस गया है” ।

७१०—स्थानवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य में जहाँ, जहाँ से, जिधर आते हैं और मुख्य उपवाक्य में उनके नित्य-संबंधी, तहाँ (वहाँ), वहाँ से और उधर रहते हैं ।

[८०—(१) “जहाँ” का अर्थ कभी-कभी कालवाचक होता है; जैसे, “यात्रा में जहाँ पहले दिन लगते थे” वहाँ अब घंटे लगते हैं ।

(२) “जहाँ तक” का अर्थ बहुधा परिमाणवाचक होता है; जैसे, “जहाँ तक हो सके” टेकी गलियाँ सीधी कर दी जावें । (अं०—७१३) ।]

(३) रीतिवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य ।

७११—रीतिवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य से समता और विषमता का अथे पाया जाता है; जैसे, दोनों बीर ऐसे दूटे, जैसे, हाथियोंके ग्रूथ पर सिंह दूटे । “जैसे प्राणी आहार से जीते हैं” जैसे ही पेह खाद से बढ़ते हैं । “जैसे आप बोलते हैं” जैसे मैं नहीं बोल सकता ।

अस कहि कुटिल भई डठि ठाड़ी ।

मानहु रोष-तरंगिनि बाड़ी ॥

७१२—रीतिवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य जैसे, ज्यों (कविता में), 'मानो' से आरंभ होते हैं और मुख्य उपवाक्य में उनके नित्य-संबंधी वैसे, (ऐसे), कैसे, त्यों आते हैं।

(४) परिमाणवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य ।

७१३—परिमाणवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य से अधिकतां, तुल्यता, न्यूनता, अनुपात आदि का बोध होता है; जैसे, "ज्यों-ज्यों भीजै कामरी," त्यों-त्यों भारी होय। "जैसे-जैसे आमदनी बढ़ती है", वैसे-वैसे खर्च भी बढ़ता जाता है। "जहाँ तक हो सके", यह काम अवश्य करना। "जितनी दूर यह रहेगा", उतनी ही कार्य-सिद्धि होगी।

७१४—परिमाणवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य में ज्यों-ज्यों जैसे-जैसे, जहाँ-तक, जितना कि आते हैं और मुख्य उपवाक्य में उनके नित्य-संबंधी वैसे-वैसे (तैसे-तैसे), त्यों-त्यों, बहाँ-तक, उतना, यहाँ तक रहते हैं।

७१५—ऊपर लिखे चार प्रकार के उपवाक्यों में जो संबंधवाचक क्रियाविशेषण और उनके नित्य-संबंधी शब्द आते हैं उनमें से कभी-कभी किसी एक प्रकार के शब्दों का लोप हो जाता है; जैसे जब तक मर्म न जाने, वैद्य औषध नहीं दे सकता। कदाचित् जहाँ पहले महाद्वीप थे, अब समुद्र हों।

वर्धहिं जलाद भूमि नियराये ।

यथा नवहिं बुध विद्या पाये ॥

७१६—कभी-कभी संबंधवाचक क्रियाविशेषणों के बदले संबंधवाचक विशेषण और संज्ञा से बने हुए वाक्यांश, और नित्य-संबंधी शब्दों के बदले निश्चयवाचक विशेषण और संज्ञा से बने हुए वाक्यांश आते हैं। ऐसी अवस्थाओं में आश्रित उपवाक्यों को विशेषण-उपवाक्य मानना उचित है, क्योंकि यद्यपि ये वाक्यांश

क्रिया-विशेषणों के पर्यायी हैं तथापि इनमें संज्ञा की प्रधानता रहती है (अं०-७०५); जैसे, जिस काल श्रीकृष्ण हस्तिनापुर को छले, उस समय की शौभा कुछ बरनी नहीं जाती । जिस जगह से वह आता है उसी जगह लौट जाता है । जिस प्रकार तद्वानों का पता नहीं चलता, उसी प्रकार मनुष्य के मन का रहस्य नहीं मालूम होता ।

(५) कार्य-कारणवाचक क्रियाविशेषण-उपचाक्य ।

७१७—कार्य-कारणवाचक क्रियाविशेषण-उपचाक्यों से नीचे लिखे अर्थ पाथे जाते हैं—

(१) हेतु वा कारण—हम उन्हें सुख देंगे, “क्योंकि उन्होंने हमारे लिए बड़ा दुख सहा है” । वह इसलिए नहाता है “कि प्रहण लगा है” ।

(२) संकेत—“जो यह प्रसंग चलता”, तो मैं भी सुनता । “यदि उनके मत के विरुद्ध कोई कुछ कहता है” तो वे उस तरफ बहुत कम ध्यान देते हैं ।

(३) विरोध—“यद्यपि इस समय मेरी चेतना-शक्ति मूर्छित सी हो रही है,” तो भी वह दृश्य अँखों के सामने घूम रहा है । सब काम वे अकेले नहीं कर सकते, “चाहे वे कैसे ही होशियार क्यों न हों ।”

(४) कायं वा निमित्त—इस बात की चर्चा हमने इसलिए की है “कि उसकी शंका दूर हो जावे ।” “तपोवत-वासियों के कार्य में विनाश न हो,” इसलिए रथ को यहीं रखिये ।

(५) परिमाण वा फल—इन नदियों का पानी इतना ऊँचा पहुँच जाता है “कि बड़े-बड़े पूर आ जाते हैं” । मुझे मरना नहीं “जो मैं तेरा पक्ष करूँ” ।

७१८—कार्य-कारणवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य व्यधिकरण समुच्चय-बोधकों से आरंभ होते हैं, जो बहुधा जोड़े से आते हैं। इनकी सूची नीचे दी जाती है—

आश्रित वाक्य में	मुख्य वाक्य में
कि	{ इसलिए, इतना ऐसा, यहाँ तक
क्योंकि	o
जो, यदि, अगर } यथापि } <td>{ तो, तथापि, तोभी, किन्तु</td>	{ तो, तथापि, तोभी, किन्तु
चाहे—कैसा, कितना, कितना—क्यों,	{ तो भी, पर
जो, जिससे, ताकि	o

७१६—इन दुहरे समुच्चयबोधकों में से कभी-कभी किसी एक का लोप हो जाता है; जैसे, बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। वह कैसा ही कष्ट होता, सह लेता था ।

७२०—अब कुछ मिश्र वाक्यों का पृथक्करण बताया जाता है। इसमें मुख्य और आश्रित उपवाक्यों का परस्पर संबंध बताकर साधारण वाक्यों के समान इनका पृथक्करण किया जाता है—

(१) वहे संतोष की बात है कि ऐसे सहदय सज्जनों के सामने हमें अभिनय दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ है।

यह समूचा वाक्य मिश्र वाक्य है। इसमें “बड़े संतोष की बात है” मुख्य उपवाक्य है और दूसरा उपवाक्य संज्ञा-उपवाक्य है। यह संज्ञा-उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की “बात” संज्ञा का

समानाधिकरण है। इन दोनों उपवाक्यों का पृथक्करण अलग-साधारण वाक्यों के समान करना चाहिये; यथा,

वाक्य	प्रकार	उद्देश्य		विवेद				संयोजक शब्द
		सांख्य स्तर	उपवाक्य स्तर	सांख्य विवेद	कर्म	पूर्वि	विषय- विस्तारक	
बड़े सन्तोष की बात है	मुख्य उपवाक्य	बात	बड़े सन्तोष की	है
कि ऐसे स- हृदय सज्जनों के सामने हमें अभिनय दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ है	संज्ञा-उप- वाक्य, मुख्य उपवाक्य की “शात” संज्ञा का समानाधि- करण	अव- सर	ऐसे सहृदय सज्जनों के सामने अभिनय दिखाने का	हुआ है	...	प्राप्त	हमें	कि

(२) स्वामी, यहाँ कौन तुम्हारा बैरी है जिसके बधने को
कोप कर कुपाण हाथ में ली है। (मिश्र उपवाक्य)

(क) स्वामी, यहाँ कौन तुम्हारा बैरी है। (मुख्य उपवाक्य)

(ख) जिसके बधने को कोप कर कुपाण हाथ में ली है।
[विशेषण-उपवाक्य, (क) का]

वाक्य	प्रकार	उद्देश्य		विधेय				सं० शुल्क सं० विधेय
		साधारण उद्देश्य	उद्देश्य- वर्द्धक	साधारण विधेय	कर्म	पूर्ति	विधेय विस्तारक	
(क)	मुख्य उपवाक्य	कौन	...	है	...	तुम्हारा वैरी	यहाँ	...
(ख)	विशेषण- उपवाक्य, (क) का	तुमने (लुत)	...	ली है कृपाण	...		जिसके बधने को; कोप कर; हाथ में	...

(३) वेग चली आ जिससे सब एक-संग चेम-कुशल से कुटी
में पहुँचे । (मिश्र वाक्य)

(क) वेग चली आ । (मुख्य उपवाक्य)

(ख) जिससे सब एक-संग चेम-कुशल से कुटी में पहुँचे ।

[क्रियाविशेषण-उपवाक्य, (क) का ।]

वाक्य	प्रकार	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य- वर्द्धक	साधारण विधेय	कर्म	पूर्ति	विधेय- विस्तारक	सं०	
								शुल्क	विधेय
(क)	मुख्य उपवाक्य	तू (लुत)	...	चली आ	वेग	...	
(ख)	क्रिया- विशेषण- उपवाक्य; (क) का कार्य	सब	...	पहुँचे	एक-संग; चेम- कुशल से; कुटी में	जिसे	

(४) जो आदमी जिस समाज का है उसके व्यवहारों का कुछ न कुछ असर उसके द्वारा समाज पर जरूर ही पड़ता है।
 (मिश्र वाक्य)

(क) उसके व्यवहारों का कुछ न कुछ असर उसके द्वारा समाज पर जरूर ही पड़ता है। (मुख्य उपवाक्य)

(ख) जो आदमी जिस समाज का है। [विशेषण-उपवाक्य, (क) का]

वाक्य	प्रकार	० क्र. १०	उद्देश्य बद्धक	साधारू विधेय	कर्म	पूर्ति	विधेय- विस्तारक	सं० शा०
(क)	मुख्य उपवाक्य	आदमी	जो	है	... जिस समाज का
(ख)	विशेषण- उपवाक्य, (क) का	असर	उसके व्यवहारों का; कुछ न कुछ	पड़ता है	उसके द्वारा, समाज पर; जरूर ही	...

(५) सुना है, इस बार दैत्यों में भी बड़ा उत्साह फैल रहा है। (मिश्र वाक्य)

(क) सुना है। (मुख्य उपवाक्य)

(ख) इस बार दैत्यों में भी बड़ा उत्साह फैल रहा है।
 [संज्ञा-उपवाक्य, (क) का कर्म]

वाक्य	प्रकार	उद्देश्य-वद्धक	साधारण विचेय	कर्म	पूर्ति	विचेय-विस्तारक	सं० शा०
(क)	मुख्य उपवाक्य (लुत्स)	मैंने (लुत्स)	...	मुना है	(ब) वाक्य
(ख)	संशो-उप-वाक्य; (क)कार्म	उत्साह	बढ़ा	फैल रहा	...	इस बार; दैत्यों में; भी	...

(६) जैसे कोई किसी चीज को मोम से चिपकाता है, उसी तरह तूने अपने भुलाने को प्रशंसा पाने की इच्छा से यह कल इस पेड़ पर लगा लिए थे । (मिश्र वाक्य)

(क) उसी तरह तूने अपने भुलाने को प्रशंसा पाने की इच्छा से यह कल इस पेड़ पर लगा लिए थे । (मुख्य उपवाक्य)

(ख) जैसे, कोई किसी चीज को मोम से चिपकाता है । [विशेषण-उपवाक्य, (क) का; यहाँ जैसे = जिस तरह] ।

वाक्य	प्रकार	उद्देश्य-वद्धक	विचेय	कर्म	पूर्ति	विचेय-विस्तारक	सं० शा०
(क)	मुख्य उपवाक्य	दूने	...	लगा लिये थे	यह फल	अपने भुलाने को; प्रशंसा पाने की इच्छा से; इस पेड़ पर; उसी तरह	...
(ख)	विशेषण-उपवाक्य (क) का	कोई	...	चिप- काता है	किसी चीज को	मोम से; जैसे	...

(७) आज लोगों के मन में यही एक बात समा रही है कि जहाँ तक हो सके शीघ्र ही शत्रुओं से बदला लेना चाहिए ।
(मिश्र उपवाक्य)

(क) आज लोगों के मन में यही एक बात समा रही है ।
(मुख्य उपवाक्य)

(ख) कि शीघ्र ही शत्रुओं से बदला लेना चाहिये । [संज्ञा-उपवाक्य (क) का; बात संज्ञा का समानाधिकरण] ।

(ग) जहाँ तक हो सके । [किया-विशेषण-उपवाक्य, (ल) का, परिमाण] ।

वाक्य	प्रकार	उच्च/उच्च/उच्च/ लिपि/लिपि	उद्देश्य- बद्धक	उच्च/उच्च/ लिपि/लिपि	कर्म	पूर्ति	विवेद विस्तारक	सं० श०
(क)	मुख्य उपवाक्य (ख) का	बात	यही एक	समा रही है	आजकल लोगों के मन में	...
(ख)	संज्ञा-उप- वाक्य (क) का; बात संज्ञा का स- मानाधिकरण	हमें (लुप्त)	...	लेना बदला चाहिये	...	शीघ्र ही; शत्रुओं से		
(ग)	किया-विशेषण- उपवाक्य; (ख) का परिमाण	यह (लुप्त)	...	हो सके	जहाँ-तक	...

(८) शत्रु इसलिए नहीं मारे जा सकते कि उन्होंने वर ही ऐसा ग्रास किया है जिससे उन्हें कोई नहीं मार सकता ।

(क) शत्रु इसलिए नहीं मारे जा सकते । (मुख्य उपवाक्य)

(ख) कि उन्होंने वर ही ऐसा प्राप्त किया है । [क्रिया-विशेषण-उपवाक्य; (क) का कारण] ।

(ग) जिससे उन्हें कोई नहीं मार सकता । [क्रिया-विशेषण-वाक्य (ख) का परिणाम] ।

वाक्य	प्रकार	इ- वा- सा- लि-	उद्देश्य- वर्द्धक	साधारण विधेय	कर्म	पूर्ति	य- हि- ति- कृ-	सं० शा०
(क)	मुख्य उपवाक्य (ख) का	शब्दु	...	नहीं मारे जा सकते	इस- लिए	...
(ख)	क्रिया-विशेष- ण-उपवाक्य; (क) का कारण	उन्होंने	...	किया है	वर ही ऐसा	प्राप्त	...	कि
(ग)	क्रिया-विशेष- ण-उपवाक्य (ख) का परिणाम	कोई	...	नहीं मार सकता	उन्हें	जिससे

(६) समाज को एक सूत्र में बद्ध करने के लिए न्याय यह है कि सबको अपना काम करने के लिए स्वतंत्रता मिले, ताकि किसी को शिकायत करने का मौका न रहे । (मिश्र वाक्य)

(क) समाज को एक सूत्र में बद्ध करने के लिए न्याय यह है । (मुख्य उपवाक्य)

(ख) कि सबको अपना काम करने के लिए त्वरितता मिले । [संज्ञा-उपवाक्त (क) का; 'यह' सर्वनाम का समानाधिकरण] ।

(ग) ताकि किसी को शिकायत करने का मौका न रहे । [क्रिया-विशेषण-उपवाक्य (ख) का कार्य] ।

वाक्य	प्रकार	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य- बद्धक	साधारण कर्म	पूर्ति	विषेष विस्तारक	० ०
(क)	मुख्य उपवाक्य (ख) का	न्याय	...	है	...	यह समाज को एक सूत्र में बद्ध करने के लिए	...
(ख)	संज्ञा-उपवाक्य (क) का; 'यह' सच्चनाम का समानाधिक- करण	स्वतंत्रता	...	मिले	...	सबको; अपना काम करने के लिए	कि
(ग)	कियाविशेषण उपवाक्य(ख) का कार्य	मौका	शिका- यत करने का	न रहे	...	किसी को ताकि	

(१०) में नहीं जानता कि रघुवंशी राजपूतों में यह बुरी
रीति लड़की मारने की क्योंकर चल गई और किसने चलाई।
(मिथ्र वाक्य)

(क) में नहीं जानता। (मुख्य उपवाक्य)।

(ख) कि रघुवंशी राजपूतों में यह बुरी चाल लड़की मारने
की क्योंकर चल गई। [संज्ञा-उपवाक्य, (क) का कर्म]।

(ग) और किसने चलाई। [संज्ञा-उपवाक्य, (क) का
कर्म; (ख) का समानाधिकरण]

वाक्य	प्रकार	साधारण उदरूप	उद्देश्य- बद्धक	साधारण विशेष	कर्म	पूर्ति	विशेष- विस्तारक	संग्रह
(क) मुख्य उपवाक्य (ख) और (ग) का		मैं	...	नहीं जानता	(ल) और (ग) उप- वाक्य
(ख)	संशा-उप- वाक्य (क) का कर्म	रीति	यह हुरी; लड़की मारने की	चल गई	खुबंशी राजपूतों में; क्योंकर	कि
(ग)	संशा-उपवाक्य (क) का कर्म (ख) का समा- नाधिकरण	किसने	...	चलाई	रीति (लुप्त)	और

(११) यथापि स्वामीजी का चरित मुझे विशेष रूप से मालूम नहीं, तथापि जन-श्रुतियोंद्वारा जो सुना है और जो कुछ आँखों देखा है उसे ही लिखता हूँ । (भिन्न वाक्य)

(क) तथापि उसे ही लिखता हूँ । (मुख्य उपवाक्य)

(ख) जन-श्रुतियोंद्वारा जो सुना है । [विशेषण-उपवाक्य,
(क) का] ।

(ग) और जो कुछ आँखों देखा है । [विशेषण-उपवाक्य,
(क) का; (ख) का समानाधिकरण] ।

(घ) यद्यपि स्वामीजी का चरित मुक्ते विशेष रूप से मालूम नहीं । [किया-विशेषण-उपबाक्य, (क) का विरोध] ।

बाक्य	प्रकार	चरित मुक्ते से	उद्देश्य- वद्धक	चरित से	कर्म	पूर्ति	विशेष- विस्तारक	० से
(क)	मुख्य उप- बाक्य	मैं (लुत)	...	लिखता हूँ	उसे	...	ही	तथापि
(ख)	विशेषण- उपबाक्य (क) का	मैंने (लुत)	...	सुना है	जो	...	जनकुतियो द्वारा	...
(ग)	विशेषण-उप- बाक्य (क) का; (ख) का समानाधि- करण	मैंने (लुत)	...	देखा है	जो कुछ	...	आतो (से)	और
(घ)	किया-विशेषण- उपबाक्य(क) का विरोध	चरित	स्वामीजी का	नहीं है (लुत)	...	मालूम	मुक्ते; विशेष रूप से	यद्यपि

पौँचवाँ अध्याय ।

संयुक्त वाक्य ।

७२१—संयुक्त वाक्य में एक से अधिक प्रधान उपवाक्य रहते हैं और इन प्रधान उपवाक्यों के साथ बहुधा इनके आश्रित उपवाक्य भी रहते हैं ।

[सू०—पहले (अ०—६८०—ग में) कहा गया है कि संयुक्त वाक्यों में जो प्रधान (समानाधिकरण) उपवाक्य रहते हैं, वे एक दूसरे के आभित नहीं रहते; पर इससे यह न समझ लेना चाहिये कि उनमें परस्पर आश्रय कुछ भी नहीं होता । बात यह है कि आभित उपवाक्य अधास उपवाक्य पर जितना अवलंबित रहता है उतना एक प्रधान उपवाक्य दूसरे प्रधान उपवाक्य पर नहीं रहता । यदि दोनों प्रधान उपवाक्य एक दूसरे से स्वतंत्र रहें तो उनमें अर्थसंगति कैसे उत्पन्न होगी ? इसी तरह मिथ वाक्य का प्रधान उपवाक्य भी अपने आश्रित उपवाक्य पर थोड़ा-बहुत अवलंबित रहता है ।]

७२२—संयुक्त वाक्यों के समानाधिकरण उपवाक्यों में चार प्रकार का संबंध पाया जाता है—संयोजक, विभाजक, विरोध-दर्शक और परिणामबोधक । यह संबंध बहुधा समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्ययों के द्वारा सूचित होता है; जैसे,

(१) संयोजक—मैं आगे बढ़ गया, और वह पीछे रह गया । विद्या से ज्ञान बढ़ता है, विचार-शक्ति प्राप्त होती है और मान मिलता है । पेड़ के जीवन का आधार केवल पानी ही नहीं है, बरन कई और पदार्थ भी हैं ।

(२) विभाजक—मेरा भाई यहाँ आवेगा या मैं ही उसके पास जाऊँगा । उन्हें न नींद आती थी, न [भूख-प्यास लगती थी । अब तू या छूट ही जायगा, नहीं तो कुत्तों-गिर्दों का भक्षण बनेगा ।

(३) विरोधदर्शक—ये लोग नये बसनेवालों से सदैव लहा करते थे; परंतु धीरे-धीरे जंगल-पहाड़ों में भगा दिये गये। काम-नाथों के प्रबल हो जाने से आदमी दुराचार नहीं करते, किन्तु अंतःकरण के निवाल हो जाने से वे बैसा करते हैं।

(४) परिणामबोधक—शाहजहाँ इस वेगम को बहुत चाहता था; इसलिए उसे इस रौजे के बनाने की बड़ी रुचि हुई। मुके उन लोगों का भेद लेना था; सो मैं वहाँ ठहरकर उनकी बातें सुनने लगा।

७२३—कभी-कभी समानाधिकरण उपवाक्य बिना ही समुच्चय-बोधक के जोड़ दिये जाते हैं; अथवा जोड़ से आनेवाले अब्दयों में से किसी एक का लोप हो जाता है; जैसे, नौकर तो क्या उनके लाला भी जन्म-भर यह बात न भूलेंगे। मेरे भक्तों पर भीढ़ पड़ी है; इस समय चलकर उनकी चिंता मेटा चाहिये। इन्हें आने का हर्ष, न जाने का शोक।

७२४—जिस प्रकार संयुक्त वाक्य के प्रधान उपवाक्य समानाधिकरण समुच्चय-बोधकों के द्वारा जोड़े जाते हैं; उसी प्रकार मिश्र वाक्य के आश्रित उपवाक्य मी इन अब्दयों के द्वारा जोड़े जा सकते हैं (अं०—७००); जैसे, क्या संसार में ऐसे मनुष्य नहीं दिखाई देते, जो करोड़पति तो हैं, पर जिनका सचा मान कुछ भी नहीं हैं। इस परे वाक्य में ‘‘जिनका सचा मान कुछ भी नहीं है’’ आश्रित उपवाक्य है और वह “जो करोड़पति तो हैं”, इस उपवाक्य का विरोध-दर्शक समानाधिकरण है। तो भी इन उपवाक्यों के कारण पूरा वाक्य संयुक्त वाक्य नहीं हो सकता; क्योंकि इसमें केवल एक ही प्रधान उपवाक्य है।

संकुचित संयुक्त वाक्य ।

७२५—जब संयुक्त वाक्य के समानाधिकरण उपवाक्यों में

एक ही उद्देश्य अथवा एक ही विधेय या दूसरा कोई एक ही भाग बार-बार आता है तब उस भाग को पुनरुक्ति मिटाने के लिए उसे एक ही बार लिख कर संयुक्त वाक्य (अं०—६५४) को संकुचित कर देते हैं। चारों प्रकार के संयुक्त वाक्य संकुचित हो सकते हैं; जैसे,

(१) संयोजक—ग्रह और उपग्रह सूर्य के आस-पास घूमते हैं = ग्रह सूर्य के आस-पास घूमते हैं और उपग्रह सूर्य के आस-पास घूमते हैं ।

(२) विभाजक—न उसमें पत्ते न फूल थे = न उसमें पत्ते थे न फूल थे ।

(३) विरोध-दर्शक—इस समय वह गौतम के नाम से नहीं, वरन् बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ = इस समय वह गौतम के नाम से नहीं प्रसिद्ध हुआ, वरन् बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

(४) परिणाम-बोधक—पत्ते सूख रहे हैं; इसलिए पीले दिखाई देते हैं = पत्ते सूख रहे हैं; इसलिए वे पीले दिखाई देते हैं ।

७२६—संकुचित संयुक्त वाक्य में—

(१) दो या अधिक उद्देश्यों का एक ही विधेय हो सकता है; जैसे, मनुष्य और कुत्ते सब जगह पाये जाते हैं । उन्हें आगे पढ़ने के लिये न समय, न धन, न इच्छा होती है ।

(२) एक उद्देश्य के दो या अधिक विधेय हो सकते हैं; जैसे गर्मी से पदार्थ कैलते हैं और ठंड से सिकुड़ते हैं ।

(३) एक विधेय के दो वा अधिक कर्म हो सकते हैं; जैसे, पानी अपने साथ मिट्टी और पत्थर बहा ले जाता है ।

(४) एक विधेय की दो वा अधिक पूर्तियाँ हो सकती हैं; जैसे, सोना सुन्दर और कीमती होता है ।

(५) एक विधेय के दो वा अधिक विधेय-विस्तारक हो सकते

हैं; जैसे, दुरात्मा के धर्मशास्त्र पढ़ने और वेद का अध्ययन करने से कुछ नहीं होता। वह ब्राह्मण अति सन्तुष्ट हो आशीर्वाद दे, वहाँ से उठ राजा भीष्मक के पास गया।

(६) एक उद्देश्य के कई उद्देश्यवर्द्धक हो सकते हैं; जैसे, मेरा और भाई का विवाह एक ही घर में हुआ है।

(७) एक कर्म अथवा पूर्ति के अनेक गुणवाचक शब्द हो सकते हैं; जैसे, सतपुड़ा नर्मदा और तासी के पानी को जुदा करता है। घोड़ा उपयोगी और साहसी जानवर है।

७२७—ऊपर लिखे सभी प्रकार के संकुचित प्रयोगों के कारण साधारण वाक्यों को संयुक्त वाक्य मानना ठीक नहीं है, क्योंकि वाक्य के कुछ भाग मुख्य और कुछ गौण होते हैं। जिस वाक्य में एक उद्देश्य के अनेक विधेय हों या अनेक उद्देश्यों का एक विधेय हो अथवा अनेक उद्देश्यों के अनेक विधेय हों, उसीको संकुचित संयुक्त वाक्य मानना उचित है। यदि वाक्य के दूसरे भाग अनेक हों और वे समानाधिकरण समुच्छय-बोधकों के द्वारा भी जुड़े हों, तो भी उनके कारण साधारण वाक्य संयुक्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि ऐसा करने से एक ही साधारण वाक्य के कई अनावश्यक उपवाक्य बनाने पड़ेंगे।

उद्धा०—हृषिमणी उसी दिन से, रात-दिन, आठ पहर, चौसठ घण्ठी, सोते-जागते, बैठे-खड़े, चलते-फिरते, खाते-पीते, खेलते, उन्हींका ध्यान किया करती थी और गुण गाया करती थी। इस वाक्य में एक उद्देश्य के दो विधेय हैं और दोनों विधेयों के एकत्र आठ विधेय-विस्तारक हैं। यदि हम इनमें से प्रत्येक विधेय-विस्तारक को एक-एक विधेय के साथ अलग-अलग लिखें, तो दो वाक्यों के बदले सोलह वाक्य बनाने पड़ेंगे। परंतु ऐसा करने के लिए कोई कारण नहीं है, क्योंकि एक तो ये सब विधेय-विस्तारक किसी

समुच्चयबोधक से नहीं जुड़े हैं और दूसरे इस प्रकार के शब्द वा वाक्यांश वाक्य के केवल गौण अवयव हैं ।

७२८—कभी-कभी साधारण वाक्य में “और” से जुड़ी हुई ऐसी दो संज्ञाएँ आती हैं जो अलग-अलग वाक्यों में नहीं लिखी जा सकती अथवा जिनसे केवल एक ही व्यक्ति वा वस्तु का बोध होता है; जैसे, दो और दो चार होते हैं । राम और कृष्ण मित्र हैं । आज उसने केवल रोटी और तरकारी खाई । इस प्रकार के वाक्यों को संयुक्त वाक्य नहीं मान सकते क्योंकि इनमें आये हुए दुहरे शब्दों का क्रिया से अलग-अलग संबंध नहीं है । इन शब्दों को साधारण वाक्य का केवल संयुक्त भाग मानना चाहिये ।

७२९—अब दो-एक उदाहरण संयुक्त वाक्य के पृथक्करण के दिये जाते हैं । इसमें शुद्ध संयुक्त वाक्य के प्रधान उपवाक्यों का परस्पर संबंध बताना पड़ता है; और संकुचित संयुक्त वाक्य के संयुक्त भागों को पूर्णता से प्रकट करने की आवश्यकता होती है । शेष बातें साधारण अथवा मिश्र वाक्यों के समान कही जाती हैं—

(१) दो-एक दिन आते हुए दासी ने उसको देखा था; किंतु वह संध्या के पीछे आता था, इससे वह उसे पहचान न सकी; और उसने यही जाना कि नौकर ही चुपचाप निकल जाता है । (संयुक्त वाक्य)

(क) दो-एक दिन आते हुए दासी ने उसको देखा था । (मुख्य उपवाक्य, ख, ग, घ का समानाधिकरण)

(ख) किंतु वह संध्या के पीछे आता था । (मुख्य उपवाक्य ग, घ का समानाधिकरण, क का विरोध-दर्शक)

(ग) इससे वह उसे पहचान न सकी । (मुख्य उपवाक्य घ का समानाधिकरण, ख का परिणाम-बोधक)

(घ) और उसने यही जाना । (मुख्य उपबाक्य घ. का, ग का संयोजक)

(ङ) कि नौकर ही चुपचाप निकल जाता है । (संज्ञा-उप-बाक्य घ का कर्म)

(२) अन्य जातियों के प्राचीन इतिहास में विचार-स्वातंत्र्य के कारण अनेक महात्मा पुरुष सूली पर चढ़ाये या आग में जलाये गये; परंतु यह आर्य-जाति ही का गौरवान्वित प्राचीन इतिहास है जिसमें स्वतंत्र विचार प्रकट करनेवाले पुरुषों को, चाहे उनके विचार लोकमत के कितने ही प्रतिकूल क्यों न हों, अवतार और सिद्ध पुरुष मानने में जरा भी आनाकानी नहीं की गई । (संकुचित संयुक्त बाक्य)

(क) अन्य जातियों के प्राचीन इतिहास में विचार-स्वातंत्र्य के कारण अनेक महात्मा पुरुष शूली पर चढ़ाये गये । (मुख्य उपबाक्य ख, ग का समानाधिकरण)

(ख) या (अन्य जातियों के प्राचीन इतिहास में विचार-स्वातंत्र्य के कारण अनेक महात्मा पुरुष) आग में जलाये गये । (मुख्य उपबाक्य ग का समानाधिकरण, क का विभाजक)

[ख०—इस बाक्य में विषेय-विस्तारक और उद्देश्य का संकोच किया गया है ।]

(ग) परंतु यह आर्य जाति ही का गौरवान्वित इतिहास है । (मुख्य उपबाक्य घ का; क, ख का विरोध-दर्शक)

(घ) जिसमें स्वतंत्र विचार प्रकट करनेवाले पुरुषों का अव-तार और सिद्ध पुरुष मानने में जरा भी आनाकानी नहीं की गई । (विशेषण उपबाक्य ग का)

[ख०—इस बाक्य के विषेय-विस्तारक में सकर्मक क्रियार्थक संज्ञा की पूर्ति संयुक्त है; पर इसके कारण, बाक्य के स्वाटीकरण में विषेय-विस्तारक

को दुहराने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि पूर्ति के दोनों शब्दों से एक ही भावना सुचित होती है। यदि विधेय-विस्तारक को दुहरावें, तो भी उससे वाक्य नहीं बनाये जा सकते, क्योंकि वह वाक्य का मुख्य आवश्यक नहीं है।]

(३) चाहे उनके विचार लोकमत के कितने ही प्रति-कूल क्यों न हों। [क्रिया-विशेषण-उपवाक्य, (८) का विरोध ०]

छठा अध्याय ।

संक्षिप्त वाक्य ।

७३०—बहुधा वाक्यों में ऐसे शब्द जो उसके अर्थ पर से सहज ही समझ में आ सकते हैं, संज्ञेप और गौरव लाने के विचार से छोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार के वाक्यों को संक्षिप्त वाक्य कहते हैं। (अंक—६५१—६५४) । उदाहरण—() सुना है। () कहते हैं। दूर के ढोल सुहावने () । यह आप जैसे लोगों का काम है=यह ऐसे लोगों का काम है जैसे आप हैं। इन उदाहरणों में छूटे हुए शब्द वाक्य-रचना में अत्यंत आवश्यक होने पर भी अपने अभाव से वाक्य के अर्थ में कोई हीनता उत्पन्न नहीं करते ।

[स०—संकुचित संयुक्त वाक्य भी एक प्रकार के संक्षिप्त वाक्य हैं; पर उनकी विशेषता के कारण उनका विवेचन अलग किया गया है। संक्षिप्त वाक्यों के दर्ग में केवल ऐसे वाक्यों का समावेश किया जाता है जो साधारण अथवा मिथ होते हैं और जिनमें प्रायः ऐसे शब्दों का लोप किया जाता है जो वाक्य में पहले कभी नहीं आते अथवा जिनके कारण वाक्य के अवयवों का संयोग नहीं होता । इस प्रकार के वाक्यों के अनेक

उदाहरण अध्याहार के अध्याय में आ चुके हैं; इसलिए यहाँ उनके लिखने की आवश्यकता नहीं है ।]

७३१—किसी-किसी विशेषण-बाक्य के साथ पूरे मुख्य बाक्य का लोप हो जाता है; जैसे, जो हो, जो आङ्ग, जो आप समझें।

७३२—संचित बाक्यों का पृथक्करण करते समय अध्याहृत शब्दों को प्रकट करने की आवश्यकता होती है; पर इस बात का विचार रखना चाहिये कि इन बाक्यों की जाति में कोई हेरफेर न हो ।

[टी०—बाक्य-पृथक्करण का विस्तृत विवेचन हिन्दी में आङ्गरेजी भाषा के व्याकरण से लिया गया है; इसलिए हिन्दी के अधिकांश वैयाकरणों ने इस विषय को ग्रहण नहीं किया है। कुछ पुस्तकों में इसका संचेप से वर्णन पाया जाता है; और कुछ में इसको केवल दो-चार बातें लिखी गई हैं। ऐसी अवस्था में इन पुस्तकों में की हुई विवेचना का खंडन-मंडन अनावश्यक जान पड़ता है ।]

सातवाँ अध्याय ।

विशेष प्रकार के बाक्य ।

७३३—अर्थ के अनुसार बाक्यों के जो आठ भेद होते हैं (अं०—५०६) उनमें से संकेतार्थक बाक्य को छोड़कर, शेष सभी बाक्य तीनों प्रकार के हो सकते हैं। संकेतार्थक बाक्य मिश्र होते हैं। उदाहरण—

(१) विधानार्थक ।

साधारण—राजा नगर में आये। मिश्र—जब राजा नगर में आये तब आनंद मनाया गया। संयुक्त—राजा नगर में आये और उनके लिए आनंद मनाया गया।

(६२)

(२) निषेधवाचक ।

सा०—राजा नगर में नहीं आये । मि०—जिस देश में राजा नहीं रहता, वहाँ की प्रजा को शांति नहीं मिलती । सं०—राजा नगर में नहीं आये; इसलिए आनंद नहीं मनाया गया ।

(३) आज्ञार्थक ।

सा०—अपना काम देखो । मि०—जो काम तुम्हें दिया गया है उसे देखो । सं०—आतचीत बंद करो और अपना काम देखो ।

(४) प्रश्नार्थक ।

सा०—वह आदमी आया है ? मि०—क्या तुम जानते हो कि वह आदमी कब आया ? सं०—वह कब आया और कब गया ?

(५) विस्मयादिवोधक ।

सा०—तुमने तो बहुत अच्छा काम किया ! मि०—जो काम तुमने किया है वह तो बहुत अच्छा है ! तुमने इतना अच्छा काम किया और मुझे उसकी खबर ही न दी !

(६) इच्छावोधक ।

सा०—ईश्वर तुम्हें चिरायु करे । मि०—वह जहाँ रहे वहाँ सुख से रहे । सं०—भगवान्, मैं सुखी रहूँ और मेरे समान दूसरे भी सुखी रहें ।

(७) सन्देहसूचक ।

सा०—यह चिट्ठी लड़के ने लिखी होगी । मि०—जो चिट्ठी मिली है वह उस लड़के ने लिखी होगी । सं०—नौकर वहाँ से चला होगा और सिपाही वहाँ पहुँचा होगा ।

(८) संकेतार्थक ।

मि०—जो वह आज आवे, तो बहुत अच्छा हो । जो मैं आपको पहले से जानता, तो आप इस विश्वास न करता ।

[स०—ऊपर के वाक्यों के जो अर्थ बताये गये हैं उनके लिये भिन्न वाक्य में यह आवश्यक नहीं है कि उसके उपवाक्यों से भी ऐसाही अर्थ सूचित हो जो मुख्य से सूचित होता है; पर संयुक्त वाक्य के उपवाक्य समानार्थी होने चाहिए ।]

७३४—भिन्न-भिन्न अर्थवाले वाक्यों का प्रयोगरण उसी रीति से किया जाता है जो तीनों प्रकार के वाक्यों के लिये पहले लिखी जा चुकी है ।

(अ) आज्ञार्थक वाक्य का उद्देश्य मध्यम पुरुष सर्वनाम रहता है; पर बहुधा उसका लोप कर दिया जाता है । कभी-कभी अन्य पुरुष सर्वनाम आज्ञार्थक वाक्य का उद्देश्य होता है; जैसे वह कल से यहाँ न आवे, लड़के कुएँ के पास न जावे ।

(आ) जब प्रश्नार्थक वाक्य में केवल किया की घटना के विषय में प्रश्न किया जाता है, तब प्रश्नवाचक अव्यय 'क्या' का प्रयोग किया जाता है और वह बहुधा वाक्य के आरंभ अथवा अंत में आता है; परन्तु वह वाक्य का कोई अवयव नहीं समझा जाता ।

आठवाँ अध्याय ।

विराम-चिह्न ।

७३५—शब्दों और वाक्यों का परस्पर संबंध बताने तथा किसी विषय को भिन्न-भिन्न भागों में बाँटने और पढ़ने में ठहरने

के लिए, लेखों में जिन चिन्हों का उपयोग किया जाता है, उन्हें विरामचिह्न कहते हैं ।

[टी०—विराम-चिह्नों का विवेचन अँगरेजी भाषा के अधिकांश व्याकरणों का विषय है और हिंदी में यह वहीं से लिया गया है । हमारी भाषा में इस प्रणाली का प्रचार अब इतना बड़ गया है कि इसका महश्य करने में कोई सोच-विचार हो ही नहीं सकता; परं यह प्रश्न अवश्य उत्पन्न हो सकता है कि विराम-चिह्न शुद्ध व्याकरण का विषय है या भाषा-रचना का ? यथार्थ में यह विषय भाषा-रचना का है, क्योंकि लेखक वा वक्ता अपने विचार स्पष्टता से प्रकट करने के लिए जिस प्रकार अभ्यास और अध्ययन के द्वारा शब्दों के अनेकार्थ; विचारों का संबंध, विषय-विभाग, आशय की स्पष्टता, लाघव और विस्तार, आदि बातें जान लेता है (जो व्याकरण के नियमों से नहीं जानी जा सकती), उसी प्रकार लेखक को इन विराम-चिह्नों का उपयोग केवल भाषा के व्यवहार ही से जात हो सकता है । व्याकरण से इन विराम-चिह्नों का केवल इतना ही संबंध है कि इनके नियम घृण्डा वाक्य-पृथक्करण पर स्थापित किये गये हैं, परन्तु अधिकांश में इनका प्रयोग वाक्य के अर्थ पर ही अवलंबित है । विराम-चिह्नों के उपयोग से, भाषा के व्यवहार से संबंध रखनेवाला कोई सिद्धांत मी उत्पन्न नहीं होता; इसलिए इन्हें व्याकरण का अङ्ग मानने में बाधा होती है । यथार्थ में व्याकरण से इन चिह्नों का केवल गौण संबंध है; परन्तु इनकी उपयोगिता के कारण व्याकरण में इन्हें स्थान दिया जाता है । तो भी इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि कई-एक चिह्नों के उपयोग में बड़ा मतभेद है; और जिस नियमशीलता से अँगरेजी में इन चिह्नों का उपयोग होता है वह हिंदी में आवश्यक नहीं समझी जाती ।]

७३६—मुख्य विराम-चिह्न ये हैं—

(१) अल्प-विराम ,

- (२) अद्वं-विराम ;
- (३) पूर्ण-विराम ।
- (४) प्रश्न-चिह्न ?
- (५) आश्चर्य-चिह्न !
- (६) निर्देशक (डैश) —
- (७) कोष्ठक ()
- (८) अवतरण-चिह्न “ ”

[स०—अँगरेजी में कोलन नामक एक और चिह्न (:) है, पर हिंदी में इससे विसर्ग का भ्रम होने के कारण इसका उपयोग नहीं किया जाता । पूर्ण-विराम चिह्न का रूप (।) हिंदी का है, पर शेष चिह्नों के रूप अँगरेजों ही के हैं ।]

(१) अल्प-विराम ।

७२७—इस चिह्न का उपयोग बहुधा नीचे लिखे स्थानों में किया जाता है—

(क) जब एक ही शब्द-भेद के दो शब्दों के बीच में समुच्चय-बोधक न हो; जैसे, वहाँ पीले, हरे खेत दिखाई देते थे । वे लोग नदी, नाले पार करते चले ।

(ख) यदि समुच्चय-बोधक से जुड़े हुए दो शब्दों पर विशेष अवधारण देना हो; जैसे, यह पुस्तक उपयोगी, अतएव उपादेय है ।

(ग) जब एक ही शब्द-भेद के तीन या अधिक शब्द आवें और उनके बीच विकल्प से समुच्चय-बोधक रहे, तब अंतिम शब्द को छोड़ शेष शब्दों के पश्चात्; जैसे, चातक-चब्ब, सीप का सम्पुट, मेरा घट भी भरता है ।

(घ) जब कई शब्द जोड़े से आते हैं, तब प्रत्येक जोड़े के

पश्चात्; जैसे, ब्रह्मा ने दुख और सुख, पाप और पुण्य, दिन और रात, ये सब बनाये हैं।

(अ) समानाधिकरण शब्दों के बीच में; जैसे, ईरान के याद-शाह, नादिरशाह ने दिल्ली पर चढ़ाई की।

(च) यदि उद्देश्य बहुत लंबा हो, तो उसके पश्चात्; जैसे, चारों तरफ चलनेवाले सवारों के घाँड़ों को बढ़ती हुई आवाज, दूर-दूर तक फैल रही थी।

(छ) कई-एक क्रिया-विशेषण वाक्यांशों के साथ; जैसे, बड़े महात्माओं ने, समय-समय पर, यह उपदेश दिया है। एक हज़री लड़का मजबूत रस्सी का एक सिरा अपनी कमर में लपेट, दूसरे सिरे को लकड़ी के बड़े ढुकड़े में बाँध, नदी में कूद पड़ा।

(ज) संबोधन-कारक की संज्ञा और संबोधन शब्दों के पश्चात्; जैसे, घनश्याम, फिर भी तू सबकी इच्छा पूरी करता है। लो, मैं यह चला।

(झ) छंदों में बहुधा यति के पश्चात्; जैसे—

भणित मोर सब गुण-रहित, विश्व-विदित गुण एक।

(झ) उदाहरणोंमें; जैसे, यथा, आदि शब्दों के पश्चात्।

(ट) संख्या के अंकों में सैकड़े से ऊपर इकहरे वा दुहरे अंकों के पश्चात्; जैसे, १,२३४।३३,५४,२१२।

(ठ) संज्ञा-वाक्य को छोड़ मिश्र वाक्य के शेष बड़े उपवाक्यों के बीच में; जैसे, हम उन्हें सुख देंगे, व्योंकि उन्होंने हमारे लिए दुख सहा है। आप एक ऐसे मनुष्य की खोज कराइए, जिसने कभी दुःख का नाम न सुना हो।

(ड) जब संज्ञा-वाक्य मुख्य वाक्य से किसी समुद्दय-बोधक के द्वारा नहीं जोड़ा जाता; जैसे, लड़के ने कहा, मैं अभी आता हूँ। परमेश्वर एक है, यह धर्म की मूल बात है।

(ढ) जब संयुक्त वाक्य के प्रधान उपवाक्यों में घना संबंध रहता है, तब उनके बीच में; जैसे, पहले मैंने बगीचा देखा, फिर मैं एक टीले पर चढ़ गया, और वहाँ से उतरकर सीधा इधर चला आया ।

(ण) जब छोटे समानाधिकरण प्रधान वाक्यों के बीच में समुच्चय-बोधक नहीं रहता, तब उनके बीच में; जैसे, पानी बरसा, हवा चली, ओले गिरे । सूरज निकला, हुआ सबेरा, पक्षी शोर मचाते हैं ।

(२) अर्द्ध-विराम ।

७३८—अर्द्ध-विराम नीचे लिखी अवस्थाओं में प्रयुक्त होता है—

(क) जब संयुक्त वाक्यों के प्रधान वाक्यों में परस्पर विशेष संबंध नहीं रहता, तब वे अर्द्ध-विराम के द्वारा अलग किये जाते हैं; जैसे, नंदगाँव का पहाड़ कटवाकर उन्होंने विरक्त साधुओं को छुच्च किया था; पर लोगों की प्रार्थन पर सरकार ने इस घटना को सीमा-बद्ध कर दिया ।

(ख) उन पूरे वाक्यों के बीच में जो विकल्प से अंतिम समुच्चय-बोधक के द्वारा जोड़े जाते हैं; जैसे, सूर्य का अस्त हुआ; आकाश लाल हुआ; बराह पोखरों से उठकर धूमने लगे; मोर अपने रहने के फ़ाड़ों पर जा चैठे; हरिण हरियाली पर सोने लगे; पक्षी गाते-गाते घोसलों की ओर उड़े; और जंगल में धीरे-धीरे अंधेरा फैलने लगा ।

(ग) जब मुख्य वाक्य से कारणवाचक क्रियाविशेषण का निकट संबंध नहीं रहता; जैसे, हवा के दबाव से साबुन का एक बुलबुला भी नहीं दब सकता; क्योंकि बाहरी हवा का दबाव भीतरी हवा के दबाव से कट जाता है ।

(घ) किसी नियम के पश्चात् आनेवाले उदाहरण-सूचक 'जैसे' शब्द के पूर्व ।

(ङ) उन कई आश्रित वाक्यों के बीच में, जो एकही मुख्य वाक्य पर अवलम्बित रहते हैं; जैसे, जब तक हमारे देश के पढ़े-लिखे लोग यह न जानने लगेंगे कि देश में क्या-क्या हो रहा है; शासन में क्या-क्या त्रुटियाँ हैं; और किन-किन बातों की आवश्य-कत्वा है; और आवश्यक सुधार किये जाने के लिए आनंदोलन न करने लगेंगे; तब तक देश की दशा सुधरना बहुत कठिन होगा ।

(३) पूर्ण-विराम ।

७३६—इसका उपयोग नीचे लिखे स्थानों में होता है—

(क) प्रत्येक पूर्ण वाक्य के अन्त में; जैसे, इस नदी से हिंदु-स्थान के दो समविभाग होते हैं ।

(स) बहुधा शीर्षक और ऐसे शब्द के पश्चात् जो किसी वस्तु के उल्लेख-भात्र के लिए आता है; जैसे, राम-बनभामन । पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ।—तुलसी ।

(ग) प्राचीन भाषा के पदों में अद्वाली के पश्चात्; जैसे—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।

सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥

[८०—पूरे छंद के अंत में दो खड़ी लकीरें लगाते हैं ।]

(घ) कभी-कभी अर्थ की पूर्णता के कारण और, परंतु, अथवा, इसलिए, आदि समुच्चय-बोधकों के पूर्व-वाक्य के अंत में; जैसे, ऐसा एक भी मनुष्य नहीं जो संसार में कुछ न कुछ लाभ-कारी कार्य न कर सकता हो । और ऐसा भी कोई मनुष्य नहीं जिसके लिए संसार में एक न एक उचित स्थान न हो ।

(४) प्रश्न-चिह्न ।

७४०—यह चिह्न प्रश्नवाचक वाक्य के अंत में लगाया जाता-

है; जैसे, क्या वह चैल तुम्हारा ही है ? वह ऐसा क्यों कहता था कि हम वहाँ न जायेंगे ?

(क) प्रश्न का चिह्न ऐसे वाक्यों में नहीं लगाया जाता जिनमें प्रश्न आङ्गा के रूप में हो; जैसे, कलकत्ते की राजधानी बताओ ।

(ख) जिन वाक्यों में प्रश्नवाचक शब्दों का अर्थ संबंध-वाचक शब्दों का सा होता है, उनमें प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जाता जैसे, आपने क्या कहा, सो मैंने नहीं सुना । वह नहीं जानता कि मैं क्या चाहता हूँ ।

(५) आश्चर्य-चिह्न ।

७४१—यह चिह्न विस्मयादिबोधक अव्ययों और मनोविकार सूचक शब्दों, वाक्यांशों तथा वाक्यों के अन्त में लगाया जाता है जैसे, वाह ! उसने तो तुम्हें अच्छा घोखा दिया ! राम-राम ! उस लड़के ने दीन पक्की को मार डाला !

(क) तीव्र मनोविकार-सूचक संबोधन-पदों के अंत में भी आश्चर्य-चिह्न आता है; जैसे, निश्चय दया-हृषि से माधव ! मेरी और निहारोगे ।

(ख) मनोविकार सूचित करने में यदि प्रश्नवाचक शब्द आवे तो भी आश्चर्य-चिह्न लगाया जाता है; जैसे, क्योंरी ! क्या तू आँखों से अनधी है !

(ग) बढ़ता हुआ मनोविकार सूचित करने के लिए दो अथवा तीन आश्चर्य-चिह्नों का प्रयोग किया जाता है; जैसे, शोक ! शोक !! महाशोक !!!

[८०—वाक्य के अंत में प्रश्न वा आश्चर्य का चिह्न आने पर पूर्ण-विराम नहीं लगाया जाता ।]

(६) निर्देशक (डैश) ।

७४२—इस चिह्न का प्रयोग नीचे लिखे स्थानों में होता है—

(क) समानाधिकरण शब्दों, वाक्यांशों अथवा वाक्यों के बीच में; जैसे, दुनिया में नयापन—नूतनत्व—ऐसी चीज़ नहीं जो गली-गली मारी किरती हो। जहाँ इन बातों से उसका संबंध न रहे—वह केवल मनोविज्ञोद की सामग्री समझी जाय—यहीं समझना चाहिये कि उसका उद्देश्व नष्ट हो गया—उसका ढंग बिगड़ गया ।

(ख) किसी वाक्य में भाव का अचानक परिवर्त्तन होने पर, जैसे, सबको सान्त्वना देना, बिखरी हुई सेना को इकट्ठा करना, और—और क्या ?

(ग) किसी विषय के साथ तत्संबंधी अन्य बातों की सूचना देने में; जैसे, इसी सोच में सबेरा हो गया कि हाय ! इस बीराम में अब कैसे प्राण बचेंगे—न जाने, मैं कौन मौत मरूँगा ! हँगलैंड के राजनीतिज्ञों के दो दल हैं—एक उदार, दूसरा अनुदार ।

(घ) किसी के बच्चों को उद्धृत करने के पूर्व; जैसे, मैं—अच्छा यहाँ से जमीन कितनी दूर पर होगी ? कप्तान—कम से कम तीन सौ मील पर । हम लोगों को सुना-सुनाकर वह अपनी बोली में बकने लगा—तुम लोगों को पीठ से पीठ चाँधकर समुद्र में झुका दूँगा । कहा है—

सौंच बरोबर तप नहीं, मूठ बरोबर पाप ।

[८०—अंतिम उदाहरण में कोइँ-कोइँ लेखक कोलन और डैश लगाते हैं; पर हिंदी में कोलन का प्रचार नहीं है ।]

(ङ) लेख के नीचे लेखक या पुस्तक के नाम के पूर्व; जैसे—
किते न औंगुन जग करै, नइ वय चढ़ती बार ।

—बिहारी ।

(च) कई एक परस्पर-संबंधी शब्दों को साथ साथ लिखकर वाक्य का संचेप करने में; जैसे, प्रथम अध्याय—प्रारंभी वार्ता। मन—सेर—छटांक । ६—११—१६१८— ।

(छ) बातचीत में रुकावट सूचित करने के लिए; जैसे मैं—अब—चल—नहीं—सकता ।

(ज) ऐसे शब्द या उपवाक्य के पूर्व जिस पर अवधारण की आवश्यकता है; जैसे, फिर क्या था—लगे सब मेरे सिर टपाटप गिरने ! पुस्तक का नाम है—श्यामालता ।

(झ) ऐसे विवरण के पूर्व जो यथास्थान न लिखा गया हो; जैसे, इस पुस्तकालय में कुछ पुस्तकें—हस्तलिखित—ऐसी भी हैं जो अन्यत्र कहीं नहीं हैं ।

(७) कोष्ठक ।

७४३—कोष्ठक नीचे लिखे स्थानों में आता है—

(क) विषय-विभाग में क्रम-सूचक अक्षरों वा अंकों के साथ; जैसे, (क) काल, (ख) स्थान, (ग) रीति, (घ) परिमाण । (१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार, (३) उभयालंकार ।

(ख) समानार्थी शब्द या वाक्यांश के साथ; जैसे, अफ्रिका के नीप्रो लोग (हब्शी) अधिकतर उन्हीं की सन्तान हैं । इसी कालेज में एक रईस-किसान (बड़े जमीदार) का लड़का पढ़ता था ।

(ग) ऐसे वाक्य के साथ जो मूल वाक्य के साथ आकर उससे रचना का कोई संबंध नहीं रखता; जैसे, रानी मेरी का सौंदर्य अद्वितीय था (जैसी वह सुरुपा थी वैसी ही एलिजबेथ कुरुपा थी) ।

(घ) किसी रचना का रूपांतर करने में बाहर से लगाये गये शब्दों के साथ; जैसे, पराधीन (को) सपनेहु सुख नाही (है) ।

(ड) नाटकादि संबादमय लेखों में हाव-भाव सूचित करने के लिये; जैसे, इंद्र—(आनंद से) अच्छा देवसेना सजित हो गई ?

(च) भूल के संशोधन या संवेद में; जैसे यह चिह्न आकार शब्द (वर्ण ?) का निप्रांत रूप है ।

(द) अवतरण-चिह्न ।

भ्रष्ट—इन चिह्नों का प्रयोग नीचे लिखे स्थानों में किया जाता है—

(क) किसी के महत्व-पूर्ण वचन उद्धृत करने में अथवा कहावतों में; जैसे, इसी प्रेम से प्रेरित होकर ऋषियों के मुख से यह परम पवित्र वाक्य निकला था—“जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी” । उस बालक के सुखचाण देखकर सब लोग यही कहते थे कि “होनहार विरचान के होत चीकने पात” ।

(ख) व्याकरण, तर्क, अलंकार, आदि साहित्य-विषयों के उदाहरणों में; जैसे, “मौर्य-बंशी राजाओं के समय में भी भारत-वासियों को अपने देश का ज्ञान था” ।—यह साधारण वाक्य है । उपमा का उदाहरण—

“प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे ।

जिमि राकेश उदय भये तारे ॥”

(ग) कमी-कभी संज्ञा-वाक्य के साथ, जो मुख्य वाक्य के पूर्व आता है; जैसे, “रवर काहे का बनता है”, यह बात बहुतेरों को मालूम नहीं है ।

(घ) जब किसी अच्छर, शब्द या वाक्य का प्रयोग अच्छर या शब्द के अर्थ में होता है; जैसे, हिंदी में, ‘ल’ का उपयोग नहीं होता । “शिक्षा” बहुत व्यापक शब्द है । चारों ओर से “मारो-मारो की आवाज सुनाई देती थी ।

(छ) अप्रचलित विदेशी शब्दों में, विशेष प्रचलित अथवा आज्ञेप-योग्य शब्दों में और ऐसे शब्दों में जिनका धात्वर्थ बताना हो; जैसे, इन्होंने बी० ए० की परीक्षा बड़ी नामबरी के साथ “पास” की। आप कल्पकत्ता विश्व-विद्यालय के “फेलो” थे। कहते अरबवाले अभी तक “हिंदसा” ही अंक से। उनके “सर” में चोट लगी है।

(च) पुस्तक, समाचार-पत्र, लेख, चित्र, मूर्ति और पदबी के नाम में तथा लेखक के उपनाम और बस्तु के व्यक्तिवाचक नाम में; जैसे, कालाकॉर्क से “समाट्” नाम का जो साम्राज्यिक पत्र निकैलता था, उसका इन्होंने दो मास तक संपादन किया। इसके पुराने अंकों में “परसन” नाम के एक लेखक के लेख बहुत ही हास्यपूर्ण होते थे। बंधई में “सरदार-गृह” नाम का एक बड़ा विश्वान्ति-गृह है।

[स०—(१) अचर, शब्द, वाक्यांश अथवा वाक्य अप्रधान हो या अवतरण चिह्नों से घिरे हुए वाक्य के भीतर भी इन चिह्नों का प्रयोगन हो तो इकहरे अवतरण-चिह्नों का उपयोग किया जाता है; जैसे, “इस पुस्तक का नाम हिंदी में ‘आयां-समाचार’ लिपता है”। “बच्चे मा को ‘मा’ और पानी को ‘पा’ आदि कहते हैं।”]

(२) जब अवतरण-चिह्नों का उपयोग ऐसे लेख में किया जाता है, जो कहै पैरों में विभक्त है, तब ये चिह्न प्रत्येक पैरे के आदि में और अनु-च्छेद के आदि-अंत में लिखे जाते हैं।]

७४५—पूर्वोक्त चिह्नों के सिवा नीचे लिखे चिह्न भी भाषा-रचना में प्रयुक्त होते हैं—

(१) वर्गाकार कोष्ठक []

(२) सर्वाकार कोष्ठक { }

(३) रेखा	—
(४) अपूर्णता-सूचक	x x x
(५) हंस-पद	
(६) टीका-सूचक	* , + ^ , ‡ ,
(७) संकेत	°
(८) पुनरुक्ति-सूचक	"
(९) तुल्यता-सूचक	=
(१०) स्थान-पूरक
(११) समाप्ति-सूचक	—○—

(१) वर्गकार कोष्ठक ।

७४६—यह चिह्न भूल साधारणे और त्रुटि की पूर्ति करने के लिए व्यवहृत होता है; जैसे, अनुबादित [अनूदित] प्रथ, वृ [व्र] ज-मोहन, कुटी [र] ।

(क) कभी-कभी इसका उपयोग दूसरे कोष्ठकों को घेरने में होता है; जैसे, अंक [४ (क)] देखो । दरखास्तें [नमूना (क)] के मुताविक हो सकती हैं ।

(ख) अन्यान्य कोष्ठकों के रहते भिन्नता के लिए; जैसे—

(१) मातृ-मूर्ति—(कविता) [लेखक, बाबू, मैथिलीशरण गुप्त] ।

(२) सर्पकार कोष्ठक ।

७४७—इसका उपयोग एक वाक्य के ऐसे शब्दों को मिलाने में होता है जो अलग पंक्तियों में लिखे जाते हैं और जिन सबका संबंध किसी एक साधारण पद से होता है; जैसे—

आद्रैपन	} = गीलापन,	चंद्रशेखर मिश्र
आद्रैभाव		शित्तक, राजस्कूल दरभंगा } (बिहार और उडीसा) }

(३) रेखा ।

७४८—जिन शब्दों पर विशेष अवधारणा देने की आवश्यकता होती है उनके नीचे बहुधा रेखा कर देते हैं, जैसे, जो रुपया लड़ाई के कर्जे में किया जायगा, उसमें का हर एक रुपया यानी वह सबका सब मुल्क हिंद में खर्च किया जायगा । आप कुछ न कुछ रुपया बचा सकते हैं, चाहे वह थोड़ा हो हो और एक रुपये से भी कुछ न कुछ काम चलता है ।

(क) भिन्न-भिन्न विषयों के अलग-अलग लिखे हुए लेखों वा अनुच्छेदों के अन्त में भी; जैसे—
आजकल शिमले में हैजे का प्रकोप है ।

आगामी बड़ी व्यवस्थापक सभा की बैठक कई कारणों से नियत तिथि पर न हो सकेगी, क्योंकि अनेक सदस्यों को और-और सभा-समितियों में समिलित होना है ।

[स०—लेखों के अंत में इस चिह्न के उदाहरण समाचार-पत्रों अथवा मासिक पुस्तकों में मिलते हैं ।]

(४) अपूर्णता-सूचक चिह्न ।

७४९—किसी लेख में से जब कोई अनावश्यक अंश छोड़ दिया जाता है, तब उसके स्थान में यह चिह्न लगा देते हैं; जैसे,

× × × × ×

पराधीन सपनेहु सुख नाही ।

(क) जब वाक्य का कोई अंश छोड़ दिया जाता है, तब यह चिह्न (.....) लगते हैं; जैसे, तुम समझते हो कि यह निरा बालक है, पर..... ।

(५) हंस-पद ।

७५०—लिखने में जब कोई शब्द भूल से छूट जाता है तब उसे पंक्ति के ऊपर अथवा हाशिये पर लिख देते हैं और उसके मुख्य स्थान के नीचे^{यहाँ} वह चिह्न कर देते हैं; जैसे, रामदास की -शक्ति रचना ^{यहाँ} व्याख्यातिक है। किसी दिन हम भी आपके व्याख्यातिक हो जाएँगे।

(६) टीका-सूचक चिह्न ।

७५१—पृष्ठ के नीचे अथवा हाशिये में कोई सूचना देने के तत्परतावाली शब्द के साथ कोई एक चिह्न, अङ्गु अथवा अच्चर लिख देते हैं; जैसे, उस समय मेवाह में राना उदयसिंह^{*} राज करते थे।

(७) संकेत ।

७५२—समय की बचत अथवा पुनरुक्ति के निवारण के लिए किसी संज्ञा को संकेत में लिखने के निमित्त इस चिह्न का उपयोग करते हैं; जैसे, डा० घ० । जि० । सर० । श्री० । रा० सा० ।

(क) अँगरेजी के कई एक संक्षिप्त नाम हिंदी में भी संक्षिप्त मान लिये गये हैं, यथापि इस भाषा में उनका पूर्ण रूप प्रचलित नहीं है; जैसे, बी० ए० । सी० आई० ई० । सी० पी० । जी० आई० पी० आर० ।

(८) पुनरुक्ति-सूचक चिह्न ।

७५३—किसी शब्द या शब्दों को बार-बार प्रत्येक पंक्ति में लिखने की अड़चन मिटाने के लिए सूची आदि में इस चिह्न का प्रयोग करते हैं; जैसे,

श्रीमान् माननीय पं० मदनमोहन मालवीय, प्रयाग

, , , बाबू सी० बाई० चिंतामणि, ,

* ये वही उदयसिंह थे जिनकी प्राय-रक्षा पञ्चादाई ने की थी ।

(६) तुल्यता-सूचक चिह्न ।

७५४—शब्दार्थी अथवा गणित की तुल्यता सूचित करने के लिए इस चिह्न का उपयोग किया जाता है; जैसे, शिक्षित = पढ़ा लिखा । दो और दो = ४; अ = व ।

[१०] स्थान-पूरक चिह्न ।

७५५—यह चिह्न सूचियों में खाली स्थान भरने के काम आता है, जैसे,

खेल (कविता) बाबू भैयिलीशरण गुप्त १७६ ।

[११] समाप्ति-सूचक चिह्न ।

७५६—इस चिह्न का उपयोग बहुधा लेख, अथवा पुस्तक के अंत में करते हैं; जैसे,

परिशिष्ट (क) ।

कविता की भाषा ।

१—हिंदी कविता प्रायः तीन प्रकार की उपभाषाओं में होती है—ब्रजभाषा, अबधी और खड़ीबोली । हमारी अधिकांश प्राचीन कविता में ब्रजभाषा पाई जाती है और उसका बहुत कुछ प्रभाव अन्य दोनों भाषाओं पर भी पड़ा है । स्वयं ब्रजभाषा ही में कभी-कभी बुद्देलखंडी तथा दूसरी दो भाषाओं का थोड़ा-बहुत मेल पाया जाता है, जिससे यह कहा जा सकता है कि शुद्ध ब्रजभाषा की कविता प्रायः बहुत कम मिलती है । अबधी में तुलसीदास तथा अन्य दो-चार श्रेष्ठ कवियों ने कविता की है; परंतु शेष प्राचीन तथा कई एक अर्बाचीन कवियों ने मिश्रित ब्रजभाषा में अपनी कविता लिखी है । आजकल कुछ चर्चों से खड़ीबोली अर्थात् बोल-

चाल की भाषा में कविता होने लगी है। यह भाषा प्राय; गद्य ही की भाषा है।

२—इस परिशिष्ट में हिंदी कविता की प्राचीन भाषाओं के शब्द-साधन के कई एक नियम संचेप में * देने का प्रयत्न किया जाता है। इस विषय में ब्रजभाषा ही की प्रधानता रहेगी, तो भी कविता की दूसरी प्राचीन भाषाओं की रूपावली भी जो हिंदी में पाई जाती है, ब्रजभाषा की रूपावली के साथ यथातंभव दी जायगी; पर प्रत्येक रूपांतर के साथ यह बताना कठिन होगा कि वह किस विशेष उपभाषा का है। ऐसी अवस्था में एक प्रकरण के भिन्न-भिन्न रूपांतरों का उल्लेख एक ही साथ किया जायगा। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि जितने रूपों का संप्रह इस परिशिष्ट में किया गया है उनके सिवा और भी कुछ अधिक रूप यत्र-तत्र कविता में पाये जाते हैं।

३—गद्य और पद्य के शब्दों के वर्ण-विन्यास में बहुधा यह अंतर पाया जाता है कि गद्य के ढ, य, ल, व, श, और च के

* इस विषय को संचेप में लिखने का कारण यह है कि व्याकरण के नियम गद्य ही की भाषा पर रखे जाते हैं और उसमें पद्य के प्रचलित शब्दों का विचार केवल प्रसंग-वश किया जाता है। यथापि आधुनिक हिंदी का ब्रजभाषा से अनिष्ट संबंध है, तथापि व्याकरण की दृष्टि से दोनों भाषाओंमें बहुत कुछ अंतर है। यदि केवल इतना ही अंतर पूर्णतया प्रकट करने का प्रयत्न किया जावे, तो भी ब्रज-भाषा का एक छोटा-मोटा व्याकरण लिखने की आवश्यकता होगी; और इतना करना भी प्रस्तुत व्याकरण के उद्देश्य के बाहर है। इस पुस्तक में कविता के प्रयोगों का योड़ा-बहुत विचार यथात्थान हो जुका है; यहाँ वह कुछ अधिक नियमित रूप से, पर संचेप में, किया जायगा ? हिंदी कविता की भाषाओं का पूर्ण विवेचन करने के लिए एक स्वतंत्र पुस्तक की आवश्यकता है।

बदले पद्य में क्रमशः र, ज, र, व, स और छ (अथवा ख) आते हैं; और संयुक्त वर्णों के अवयव अलग-अलग लिखे जाते हैं; जैसे, पड़ा = परा, यज्ञ = जज्ञ, पीपल = पीपर, बन = बन, शील = सील, रचा = रच्छा, साक्षी = साक्षी, यत्र = जतन, धर्म = धर्म ।

४—गद्य और पद्य की भाषाओं की रूपावली में एक साधारण अंतर यह है कि गद्य के अधिकांश आकारांत पुलिंग शब्द पद्य में ओकारांत रूप में पाये जाते हैं; जैसे,

संज्ञा—सोना = सोनो, चेरा = चेरो, हिया = हियो, नाता = नातो, बसेरा = बसेरो, सपना = सपनो, बहाना = बहानो (उद्दू), मायका = मायको ।

सर्वनाम—मेरा = मेरो, अपना = अपनो, पराया = परायो, जैसा = जैसो, जितना = जितनो ।

विशेषण—काला = कारो, पीला = पीरो, ऊँचा = ऊँचो, नया = नयो, बड़ा = बड़ो, सीधा = सीधो, तिरछा = तिरछो ।

क्रिया—गया = गयो, देखा = देखो, जाऊँगा = जाऊँगो, करता = करतो, जाना = जान्यो ।

लिंग ।

५—इस विषय में गद्य और पद्य की भाषाओं में विशेष अंतर नहीं है। स्त्रीलिंग बनाने में इन और इनि प्रत्ययों का उपयोग अन्यान्य प्रत्ययों की अपेक्षा अधिक किया जाता है; जैसे, बर-दुलहिनि सकुचाहिं। दुलही सिय सुंदर। भूलि हून कीजै ठकु-राइनी इतेक हठ। भिजिनि जनु छोड़न चहत ।

वचन ।

६—बहुत्र सूचित करने के लिए कविता में गद्य की अपेक्षा कम रूपांतर होते हैं और प्रत्ययों की अपेक्षा शब्दों से अधिक

काम लिया जाता है । रामचरित-मानस में बहुधा समूहवाची नामों (गन, धृति, यूथ, निकर, आदि) का विशेष प्रयोग पाया जाता है । उदाहरण—

जगुना-तट कुंज कदंब के पुंज तरे तिनके नवनीर फिरें ।
लपटी लतिका तरु जालन सों कुसुमावलि तें मकरंद गिरें ।

इन उदाहरणों में मोटे अक्षरों में दिये हुए शब्द अर्थ में बहुवचन हैं; पर उनके रूप दूसरे ही हैं ।

(क) अविकृत कारकों के बहुवचन में संज्ञा का रूप बहुधा जैसा का तैसा रहता है; पर कहीं-कहीं उसमें भी विकृत कारकों का रूपांतर दिखाई देता है । आकारांत खोलिंग शब्दों के बहुवचन में एं के बदले बहुधा ऐं पाया जाता है ।

उदाहरण—भौंरा ये दिन कठिन हैं । खिलोकृत ही कछु भौंर की भीरन । सिगरे दिन येही सुहाति हैं बातें ।

(ख) विकृत कारकों के बहुवचन में बहुधा न, नहं अथवा नि आती है; जैसे, पूछेसि लोगनह काह उछाहू । ज्यों आँखिन सब देखिये । दै रहो अँगुरी दोऊ कानन में ।

कारक ।

७—पद्य में संज्ञाओं के साथ भिज्ज-भिज्ज कारकों में नीचे लिखी विभक्तियों का प्रयोग होता है—

कर्त्ता—ने (क्वचित्) । रामचरित-मानस में इसका प्रयोग नहीं हुआ ।

कमे—हिं, कौं, कहूं

करण—तें, सों

संप्रदान—हिं, कौं, कहूं

अप्रदान—तें, सों

संबंध—कौ, कर, केरा, केरो । भेद के लिंग और वचन के अनुसार कौ, केरा और केरो में विकार होता है ।

अधिकरण—में, माँ, माहिं, माँझ, महँ ।

सर्वनामों की कारक-रचना ।

—संज्ञाओं की अपेक्षा सर्वनामों में अधिक रूपांतर होता है; इसलिए इनके कुछ कारकों के रूप यहाँ दिये जाते हैं ।

उत्तम-पुरुष सर्वनाम ।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	मैं, हाँ	हम
विकृत रूप	मो	हम
कर्म	मौकौं, मोहिं	हमकौं, हमहिं
	मोकहँ (अव०)	हमकहँ
संबंध	मेरो, मोर, मोरा	हमारो, हमार
	मम (सं०)	

मध्यम-पुरुष सर्वनाम ।

कर्त्ता	तू, तैं	तुम
विकृत रूप	तां	तुम
कर्म	तोकौं, तोहिं	तुमकौं, तुमहिं
	तोकहँ	तुमकहँ
संबंध	तेरो, तोर, तोरा	तुम्हारो, तुम्हार
	तव (सं०)	तिहारो, तिहार

अन्य-पुरुष सर्वनाम ।

(निकटवर्ती)

कर्त्ता	यह, एहि,	ये
विकृत रूप	या, एहि	इन

कारक	एकवचन	यहुवचन
कर्म	याकों, याहि, एहिकहँ	इनकों, इनहिं इनकहँ
संबंध	याकौं, एहिकर (दूरवर्ती)	इनको, इनकर
कर्ता	बोढ, आं, सो	वे, ते
विकृत रूप	वा, ता, तेहि	उन, तिन
कम	बाकौं, ताहि ताकहँ	उनकों, उनहिं तिनको, तिनहिं
संबंध	बाकौं, ताकौं तासु (सं०-तस्य) ताकर, तेहिकर	तिनकों, तिनकर उनकों, उनकर

निजवाचक सर्वनाम ।

कर्ता	आपु	मान
विकृत रूप	आपु	म
कर्म	आपुकों	मान
संबंध	आपुन, अपुनों	मुक्त

संबंधवाचक सर्वनाम ।

कर्ता	ओ, जैन	जे
विकृत रूप	जा	जिन
कर्म	जाकौं, जेहि, जाहि, जाकहँ	जिनकौं, जिनहिं, जिनकहँ
संबंध	जाकौं, जाकर, (सं०-यस्य) जेहि- कर, जासु	जिनकौं, जिनकर

प्रश्नवाचक सर्वनाम [कौन] ।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	कौन, को, कवन	कौन, को
विकृत रूप	का	किन
कर्म	काकौं, काहि,	किनकौं, किनहि
	केहि	
संबंध	काकौं, काकर (क्या)	किनकौं, किनकर

कर्ता	का, कहा	का, कहा
विकृत रूप	काहे	काहे
कर्म	काहे कौं	काहे कौं
संबंध	काहे को	काहे को

अनिश्चयवाचक सर्वनाम [कोई]

कर्ता	कोऊ, कोय,	काऊ, कोय
विकृत रूप	काहू	काहू
कर्म	काहू को, काहुहि	काहू कौं, काहुहि
संबंध	काहू कौं	काहू कौं

[कुछ]

कर्ता	कछु	कछु
विकृत रूप	कछु	कछु
कर्म		
संबंध		

ये रूप नहीं पाये जाते ।

क्रियाओं की काल-रचना ।

कर्तव्य ।

६—धातुओं के प्रत्यय अलग-अलग बताने में सुभीता नहीं

है; इसलिए भिन्न-भिन्न कालों में कुछ धातुओं के रूप लिखे जाते हैं—

‘होना’ क्रिया (स्थिति-दर्शक) ।

क्रियार्थिक संज्ञा—होनाँ, हीइथो

कर्तृवाचक संज्ञा—होनहार, होनेहारा

वर्तमानकालिक कुदंत—होत

भूतकालिक कुदंत—भयो

पूर्वकालिक कुदंत—होइ, है, हैके, होयके

तात्कालिक कुदंत—होतही

सामान्य वर्तमान-काल ।

कर्ता—पुङ्गिंग वा स्त्रीलिंग

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
-------	-------	--------

१	हाँ, अहाँ	हैं, अहैं
---	-----------	-----------

२	है, हसि	हौ, अहौ
---	---------	---------

३	है, अहै, अहहि	हैं, अहैं, अहहिं
---	---------------	------------------

सामान्य भूतकाल ।

कर्ता—पुङ्गिंग ।

१	}	हतो	हते
२			
३			

अथवा

१	रहाँ, रह्णाँ, रहेऊ	}	हो	{
२	रहाँ, रहेसि			
३	रहाँ, रहेसि			

{	रहे, हे
---	---------

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१—३ रही, ही	१—३ रहों, ही
-------------	--------------

[स०—इस किया के शेष काल विकारदर्शक 'होना' किया के रूपों के समान होते हैं ।]

होना (विकार-दर्शक) ।

संभाव्य-भविष्यत् (अथवा सामान्य-वर्त्तमान)

कर्ता—पुङ्गि वा खीलिंग ।

पुरुष	एकवचन	पुरुष	बहुवचन
१	होऊँ	१—३	होयँ
२—३	होय, होवे, होहि	२	हो

विधिकाल (प्रत्यक्ष) ।

कर्ता—पुङ्गि वा खीलिंग ।

१	होऊँ	१—३	होयँ
२—३	होय, होवे	२	हो, होहु

विधिकाल (परोक्ष) ।

कर्ता—पुङ्गि वा खीलिंग ।

२	होइयो	होइयो, होहु
---	-------	-------------

सामान्य-भविष्यत् ।

कर्ता—पुङ्गि वा खीलिंग ।

१	होइहौं, हैहौं	१—३	होइहैं, हैहैं
२—३	होइहै, हैहै	२	होइहौ, हैहौ

अथवा

कर्ता—पुङ्गि

१	होऊँगो	१—३	होयेंगे
२—३	होयगो	२	होगे

कर्ता—खीलिंग ।

१	होऊँगी	१—३	होयेंगी
२—३	होयगी	२	होगी

सामान्य संकेतार्थ-काल ।

कर्ता—पुलिंग ।

पुरुष

एकवचन

बहुवचन

१

होतो, होतेऊँ

१—३

होते

२

होतो, होतेऊ, होतु

२

होते, होतेऊ

३

होतो, होतु

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

होती, होतिऊँ }

२—३

होत, होती }

होती,

सामान्य वर्तमान-काल ।

कर्ता—पुलिंग वा स्त्रीलिंग ।

१

होतु हौं, होत हौं

१—२

होतु हैं, होत हैं

२—३

होतु है, होत है

२

होतु हौ, होत हौ

अपूर्ण-भूत-काल ।

कर्ता—पुलिंग ।

१

होत रहो—रहेऊँ

)

२—३

होत रहो

)

होत रहे

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१—३

होत रही, रहेऊँ

होत रही

सामान्य भूत-काल ।

कर्ता—पुलिंग ।

१

भयौ, भयऊँ

१—३

भये

२

भयौ, भयेसि

३

भयौ, भयऊ, भयेसि

कर्ता—खीलिंग ।

पुरुष	एकवचन	पुरुष	बहुवचन
१—३	भई		भई

आसन भूत-काल ।

कर्ता—पुँजिंग ।

१	भयौ है	१—३	भये हैं
२—३	भयौ है	२	भये हैं

कर्ता—खीलिंग ।

१	भई हौं,	{	भई हैं
२—३	भई है		

[स०—अवशिष्ट रूपों का प्रचार बहुत कम है और वे ऊपर लिखे रूपों की सहायता से बनाये जा सकते हैं ।]

व्यंजनांत धातु ।

चलना (अकर्मक क्रिया) ।

क्रियार्थक संज्ञा—चलना, चलनाँ, चलिथौ

करूं वाचक संज्ञा—चलनद्वार

वर्तमानकालिक कुदंत—चलत, चलतु

भूतकालिक कुदंत—चल्यौ

पूर्वकालिक कुदंत—चलि, चलिकै

तात्कालिक कुदंत—चलतही

अपूरण क्रियाद्यातक कुदंत—चलत, चलतु

पूर्णे क्रियाद्यातक कुदंत—चलें

संभाव्य-भविष्यत् (अथवा सामान्य-वर्तमान) ।

कर्ता—पुँजिंग वा खीलिंग ।

१	चलौं, चलऊँ	१—३	चलें, चलाइं
---	------------	-----	-------------

पुरुष	एकवचन	पुरुष	बहुवचन	
२	चलौ, चलसि	२	चलौ, चलहु	
२	चलौ, चलह, चलहि			
	विधिकाल (प्रत्यक्ष) ।			
	कर्ता—पुङ्गिंग वा खालिंग ।			
१	चलौं, चलऊँ	१—३	चलैं, चलहि	
२	चल, चलै, चलही	२	चलौ, चलहु	
	विधिकाल (परोक्ष) ।			
	कर्ता—पुङ्गिंग वा खालिंग ।			
२	चलियो		चलियो	
	आदरसूचक विधि	२—३	चलिये	
२—३	चलिये	२—३	चलिये	
	सामान्य-भविष्यत् ।			
	कर्ता—पुङ्गिंग वा खालिंग			
१	चलिहौं	१—३	चलिहैं	
२—३	चलिहै	२	चलिही	
	(अथवा)			
	कर्ता—पुङ्गि ।			
१	चलौंगो	१—३	चलैंगे	
२—३	चलौगो	२	चलौगी	
	कर्ता—स्त्रीलिंग ।			
१	चलौंगी	१—३	चलैंगी	
२—०	चलौगी	२	चलौगी	
	सामान्य संकेतार्थ ।			
	कर्ता—पुङ्गि			
१	चलतो, चलत	१—३	चलते	

पुरुष	एकवचन चलतेऊँ	पुरुष २	बहुवचन चलतेऊँ
२	चलतो, चलत		
	चलतेऊँ		
३	चलतो, चलत		
		कर्ता—स्त्रीलिंग ।	
१	चलती, चलतिऊँ	}	चलती
२—३	चलती, चलत	}	
		सामान्य वर्तमान-काल ।	
		कर्ता—पुज्जिंग वा स्त्रीलिंग ।	
१	चलत हौं	१—३	चलत हैं
२—३	चलत है	२	चलत हौं
		(अथवा)	
		कर्ता—स्त्रीलिंग	
१	चलति हौं	१—३	चलति हैं
२—३	चलति है	२	चलति हौं
		अपूर्ण भूत-काल ।	
		कर्ता—पुज्जिंग ।	
१	चलत रहौं—रहेऊँ	१—३	चलत रहे
२—३	चलत रहो		रहे—रहौं
		कर्ता—स्त्रीलिंग ।	
१—३	चलत रही	१—३	चलत रहीं
२	चलत रही, हुती		

सामान्य-भूत ।

कर्ता—पुङ्गिंग ।

पुरुष	एकवचन	पुरुष	बहुवचन
१—३	चल्यौ	१—३	चले

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१—३	चली	चली
-----	-----	-----

आसन भूत-काल ।

कर्ता—पुङ्गिंग ।

१	चल्यौ हों	१—३	चले हैं
२—३	चल्यौ है	२	चले हैं

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१	चली हों	१—३	चली हैं
२—३	चली है	२	चली हैं

पूर्ण भूत-काल ।

कर्ता—पुङ्गिंग ।

१—३	चल्यौ रहो, हो	१—३	चले रहे, हे
		२	चले रहे—रही, हे

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१—३	चली रही, ही	१—३	चली रही, ही
-----	-------------	-----	-------------

स्वर्णत धातु ।

पाना (सकर्मक) ।

क्रियार्थक संज्ञा—पाना, पावनौ, पाइबो

कर्तृवाचक—पावनहार

वर्तमानकालिक कुदंत—पावत

भूतकालिक कुदंत—पायो

पूर्वकालिक कुदंत—पाय, पाइ, पायकै,

पाइकै

सात्कालिक कुदंत—पावतही
अपूर्ण क्रियाद्योतक”—पावत
पूर्ण क्रियाद्योतक ”—पाये

संभाव्य भविष्यत-काल ।

(अथवा सामान्य वर्तमान-काल)
कर्त्ता—पुलिंग वा स्त्रीलिंग ।

पुरुष	एकवचन	पुरुष	बहुवचन
१	पावौं, पावडँ	१—३	पावहिं, पावे
२	पावै, पावसि	२	पावौ, पावहु
३	पावौ, पावइ, पावहि		

विधि-काल (प्रत्यक्ष) ।

कर्त्ता—पुलिंग वा स्त्रीलिंग ।

१	पावौं, पावडँ	१—३	पावै, पावहि
२	पाड, पावौ, पावही	२	पावौ, पावहु

विधि-काल (परांक) ।

२	पाइयो	२	पाइयो
---	-------	---	-------

आदर-सूचक विधि ।

२—३	पाइये	२—३	पाइये
-----	-------	-----	-------

सामान्य भविष्यत-काल ।

१	पाइयों	१—३	पाइहैं
२—३	पाइहैं	२	पाइहो

(अथवा)

कर्त्ता—पुलिंग ।

१	पाडँगो, पावहुँगो	१—३	पायेंगे, पावहिंगे
२—३	पायगो, पावहिगो	२	पाओंगे, पावहुगे

(७१२)

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

पुरुष १	एकवचन पाठँगी, पावैंगी	पुरुष १—३	बहुवचन पावैंगी
२—३	पावैंगी	२	पावैंगी

सामान्य संकेतार्थ-काल ।

कर्ता—पुलिंग ।

१—३	पावतो	१—३	पावते
१—३	पावती	१—३	पावती

सामान्य वर्तमान-काल ।

कर्ता—पुलिंग ।

१	पावत हौं	१—३	पावत हैं
२—३	पावत हैं	२	पावत हौं

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१	पावति हौं	१—३	पावति हैं
२—३	पावति हैं	२	पावति हौं

अपूर्ण भूत-काल ।

कर्ता—पुलिंग ।

१	पावत रह्हों	१—३	पावत रहे
२—३	पावत रह्हो	२	पावत रहे—रही

कर्ता—स्त्रीलिंग ।

१—३	पावत रही	१—३	पावत रहीं
-----	----------	-----	-----------

मासान्य भूत-काल ।

कर्ता—पुलिंग ।

१—३	पायौ	१—३	पाये
-----	------	-----	------

कर्म—स्त्रीलिंग ।

पुरुष एकवचन पुरुष बहुवचन

१—३ पाईं १—३ पाईं

[६०—सामान्य भूतकाल तथा इस वर्ग के अन्य कालों में सकर्मक किया की काल-रचना अकर्मक किया के समान होती है । अवशिष्ट काल ऊपर के आदर्श पर बन सकते हैं ।]

अव्यय ।

१०—अव्ययों की वाक्य-रचना में गद्य और पद्य की भाषाओं में विशेष अंतर नहीं है; पर पिछली भाषा में इन शब्दों के प्रांतिक रूपों का ही प्रचार होता है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं—

क्रिया-विशेषण ।

स्थान-वाचक—इहाँ, इत, इतै, हाँ, तहाँ, तित, तितै, उहाँ, तहँ, तहँवाँ, कहाँ, कित, कितै, कहँ, कहँवा, जहाँ, जित, जितै, जहँ, जहँवा ।

काल-वाचक—अब, अबै, अबहिं (अभी), तब, तबै, तबहिं (तभी), कब, कबै, कबहुँ (कभी), जब, जबै, जबहिं (जभी) ।

रीति-वाचक—ऐसे, अस, यों, इमि, तैसे, तस, त्यों, वैसे, तिमि, कैसे, कस, क्यों, किमि, जैसे, जस, ज्यों, जिमि ।

परिमाण-वाचक—बहुत, बड़, केवल, निपट, अतिशय. अति ।

संबंध-मूलक ।

निकट, नेरे, ढिग, बिन, मध्य, सम्मुख, तरे, ओर, बिनु, लाँ, लगि, नाईं, अनुरूप, समान, करि, जान, हेतु, सरिस, इच, लाने, सहित, इत्यादि ।

समूच्य-बोधक ।

संयोजक—ओ, अरु, फिर, पुनि, तथा, कह—कहँ ।

विभाजक—नतरु, नाहिंत, न—न, कै—कै, बरु, मकु(राम०),
धौं, की, अथवा, किंवा, चाहै-चाहै, का-का ।
विरोध-दर्शक—पै, तदपि, यदपि—तदपि ।
परिणामदर्शक—यातें, यासों, इहि हेतु, जातें ।
स्वरूपबोधक—कै, जो ।
संकेत-दर्शक—जो—तो, जोपै—तो ।
विस्मयादि-बोधक ।
हे, रे, हा, हाय, हा-दा, अहह, धिक्, जय, वाहि, पाहि, एरे ।

परिशिष्ट (ख)

काव्य-स्वतंत्रता ।

११—कविता की दोनों प्रकार की भाषाओं में अलग-अलग प्रकार की काव्य-स्वतंत्रता पाई जाती है; इसलिए इसका विचार दोनों के संबंध से अलग-अलग किया जायगा ।

(अ) प्राचीन भाषा की काव्य-स्वतंत्रता ।

५२—विभक्तियों का लोप—

(क) कर्त्ता-कारक—इन नाहीं कल्पु काज विगारा । नारद देखा विकल्प जयंता—(राम०) । जगत जनायो जिहिं सकल—(सत०) ।

(ख) कर्म—भूप भरत पुनि लिये बुलाई—(राम०) । पापी अजामिल पार कियो—(जगत०) ।

(ग) करण—ज्यों छाँखिन सब देखिये—(सत०) । लागि अगम आपनि कदराई—(राम०) ।

(घ) संप्रदान-जामवंत नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ—
(राम०)। सुरन धीरज देत यह नव बीर गुण संचार (क० क०)।

(ङ) अपादान—हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहू
वेद विदित सब काहू—(राम०)। विकृत भयंकर के डरन जो
कहु चित अकुलात—(जगत०)।

(च) संबंध—भूष रूप, तब राम दुरावा—(राम०)।
पावस धन अधियार में—(सत०)।

(छ) अधिकरण—भानुवंश भे भूष धनेरे—(राम०)।
एक पाय भीत एक भीत कांधे धरे—(जगत०)।

१३—सत्तावाचक और सहकारी कियाओं का लोप—

(क) अब जो कहै सो मूठी—(कबीर०)। धनि रहीम वे
लोग—(रहीम०)।

(ख) अति विकराल न जात () बतायो—(बज०)।
कपि कहू () धर्मशीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर-तिय-चोरी—
(राम०)।

१४—संबंधी शब्दों में से किसी एक शब्द का लोप अथवा
विपर्यय जो जनत्याँ बन बंधु-विद्धोहू।

() पिता-बचन नहिं मनत्यों ओहू ॥ (राम०)

कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहिं बीच ।

() नल-बल जल ऊँचो चढ़ै, अंत नीच को नीच ॥ (सत०)
जाको राखै साइयाँ, () मारि न सकिहै कोय । (कबीर०)
तौ लगि या मन-सदन महूँ, हरि आवहिं केहि बाट ।

निपट विकट जै लौं जुटै, खुलहिं न कपट-कपाट ॥ (सत०)
तब लगि मोहिं परखियहु भाई ।

× × ×

जब लगि आवहुँ सीतहिं देखी ॥ (राम०)

१५—प्रचलित शब्दों का अपञ्चश—
काज-काजा (राम०) ।

सपना—सापना (जगत०) ।

एकत्र—एकत (सत०) ।

संस्कृत—संसकिरत (कबीर०) ।

१६—नाम-धातुओं की बहुतायत—
प्रमाण—प्रमानियत (सत०) ।

धिरद्ध—विरुद्धिये (कुण्ड०) ।

गवन—गवनहु (राम०) ।

अनुराग—अनुरागत (नीति०) ।

१७—अर्थ के अनुसार नामांतर—
मेघनाद—घननाद (राम०) ।

हिरण्याच्च—हाटकलोचन (तत्रैव) ।

कुंभज—घटज (तत्रैव) ।

(आ) खड़ीबोली की काव्य-स्वतंत्रता ।

१८—बद्यपि खड़ीबोली की कविता में शब्दों की इतनी तोड़ मरोड़ नहीं होती जितनी प्राचीन भाषा की कविता में होती है तथापि उसमें भी कवि लोग बहुत कुछ स्वतंत्रता से काम लेते हैं। खड़ीबोली की काव्य-स्वतंत्रता में नीचे लिखे विषय पाये जाते हैं—

[क] शब्द-दोष ।

१९—कहीं-कहीं प्राचीन शब्दों का प्रयोग—

नेक न जीवन-काल बिताना (सर०) ।

पल-भर में तजके ममता सब (हिं० प्र०) ।

सुष्वनित पिक लौं जो बाटिका था बनाता (प्रिय०) ।

२०—कठिन संस्कृत शब्दों का अधिक उपयोग—

माता है जो स्वयमपि बही रूप होता बरिष्ठ (प्रिय०) ।

स्वकुल-जलज का है जो समुत्कुद्धकारी (प्रिय०) ।

२१—संस्कृत शब्दों का अपभ्रंश—

मार्ग=मारग (सर०) ।

हरिश्चंद्र=हरिचंद्र (क० क०) ।

यद्यपि=यद्यपि (हिं० प्र०) ।

परमार्थ=परमारथ (सर०) ।

२२—नाम-धातुओं का प्रयोग—

न तो भा मुके लोग सम्मानते हैं (सर०) ।

देख युवा का भी मन लोभा (क० क०) ।

२३—लंबे समास—

दुख-जलनिधि-इच्छी का सहारा कहाँ है (प्रिय०) ।

अगणित-कमल-अमल-जल-पूरित (क० क०) ।

शैलेन्द्र-तीर-सरिता-जल (सर०) ।

२४—फारसी-अरबी शब्दों का अनभिल प्रयोग—

अफसोस ! अब तक भी बने हैं पात्र जो संताप के
—(सर०) ।

शिरोरोग का अंतः एक दिन लिये बहाना । (तत्रैव) ।

२५—शब्दों की तोड़-मरोड़—

आधार=अधारा (प्रिय०) ।

तूही=तुही (सर०) ।

चाहता=चहता (तत्रैव) ।

नहीं=नहिं (एकांत०) ।

२६—संस्कृत का वर्णा-गुरुता—

किंतु अमी लोग उसी सबेरे (हिं० ग्र०) ।

मुझ पर मत लाना दाप कोई कदापि (सर०) ।

उशीनर-चितीश ने स्वमांस दान भी किया (सर०) ।

२७—पाद-पूरक शब्द—

है सु कोकिल समान कलबैनी (सर०) ।

न होगी, आहो पुष्ट जौलौं स्वभाषा (तत्रैव०) ।

२८—विषम तुकांत—

रत्न-खचित सिंहासन-ऊपर जो सदैव ही रहते थे ।

नृप-मुकुटों के सुमन रजःकण जिनको भूषित करते थे ।
—(सर०) ।

जब तक तुम पथ पान करोगे, नित नीरोग-शरीर रहोगे ।

फूलोगे नित नये फलोगे, पुत्र कभी मद-पान न करना ।

—(सूक्ति०) ।

[ख] व्याकरण-दोष ।

२९—संकर-समास—

बन-बाग (सर०) ।

रण-खेत (तत्रैव०) ।

लोक-चख (तत्रैव) ।

मंजु-दिल (तत्रैव) ।

भारत-बाजी (तत्रैव) ।

३०—शब्दों के प्राचीन रूप—

कीजिये = करिये (सर०) ।

हूजियो = हूजो (तत्रैव) ।

देओगे = दोगे (तत्रैव) ।

जलती है = जलै है (एकांत) ।

सरलपन = सरलपना (प्रिय०) ।

३१—शब्द-भेदों का प्रयोगांतर—

(क) अकर्मक क्रिया का प्रयोग सकर्मक क्रिया के समान सकर्मक का अकर्मक के समान—

(१) प्रेम-सिंधु में स्व-जन वर्ग को शीघ्र नहा दो (सर०) ।

(२) व्यापक न ऐसी एक भाषा और दिखलाती यहाँ ।

—(सर०) ।

(ख) विशेषण को क्रिया-विशेषण बनाना—जीवन सुखद विसाते थे (सर०) ।

३२—अप्राणिवाचक कर्म के साथ अनाशयक चिह्न—

सहसा उसने पकड़ लिया कृष्ण के कर को (सर०) ।

पाकर उचित सत्कार को (तत्रैव) ।

३३—“नहीं” के बदले “न” का प्रयोग—

शुक ! न हो सकते फलों से वे कदापि रसाक हैं (सर०) ।

लिखना मुझे न आता है (तत्रैव) ।

३४—भूत-काल का प्राचीन रूप—

रति भी जिसको देख लजानी (क० क०) ।

मोह-महाराज की पताका फहरानी है (तत्रैव) ।

३५—कर्मणि-प्रयोग की भूल—

तद्विषय एक रस-केलि आप निधारि (सर०) ।

स्वपद-भ्रष्ट किये जिसने हमें (क० क०) ।

३६—विभक्तियों का लोप—

(जो) मम सुदन बहाता स्वर्ग-मंदाकिनी था (प्रिय०) ।

सुरपुर बैठी हुई (सर०) ।

३७—सहकारी किया का लोप—

किंतु उच्च-पद में मद रहता (सर०) ।

हाय ! आज ब्रज में क्यों फिरते, जाओ तुम सरसी के तीर ।

—(तत्रैव) ।

३८—संबंधी शब्दों में से किसी एक का अथवा विपर्यय—

प्रबल जो तुम्हें पुरुषार्थी हो—

() सुलभ कौन तुम्हें न पदार्थी हो (पद०) ।

निकला बही दण्ड यम का जब,

() कर आगे अनुमान (सर०) ।

कहो न मुझसे ज्ञानी बनकर, () जगजीवन है स्वप्न-समान
—(जीवन०) ।

जब-तक हुम पर्यान करोगे । () नित नीरोगे-शरीर

—रहोगे । (सूक्ष्म०) ।

लख सुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ ।

वह हृदय हमारा नैन-ताना कहाँ है ? (प्रिय०) ।

समाप्त ।

उदाहृत ग्रंथों के नामों के संकेत ।

- (१) अध०—अधसिला फूल (पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय)
- (२) आदर्श०—आदर्श-जीवन (पं० रामचंद्र शुक्र)
- (३) आरा०—आराध्य-पुष्पांजलि (पं० श्रीघर पाठक)
- (४) इंग०—इंगेंड का इतिहास (पं० श्यासिहारी मिश्र)
- (५) इति०—इतिहास-तिभिर-नाशक, भा० १—३ (राजा शिवप्रसाद)
- (६) एकांत०—एकांतवासी योगी (पं० श्रीघर पाठक)
- (७) एकट०—एकट-काशकारी, मध्यप्रदेश (रा० सा० बाबू मथुराप्रसाद)
- (८) क० क०—कविता-कलाप (पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी)
- (९) कवि—कवि-प्रिया (केशवदास कवि)
- (१०) कपूर०—कपूर-मंजरी (भारतेंदु बाबू हरिचंद्र)
- (११) कशीर०—कशीर साहच के प्रथ)
- (१२) कहा०—कहावत (प्रचलित)
- (१३) कुंड०—कुंडलियाँ (गिरिधर कविराय)
- (१४) गो०—गोदान (बाबू प्रेमचंद्र)
- (१५) गंगा०—गंगा-लहरी (पश्चाकर कवि)
- (१६) गुटका०—गुटका, भा० १—३ (राजा शिवप्रसाद)
- (१७) चंद्र०—चंद्रहास (बाबू अंगिलीशरण गुप्त)
- (१८) चंद्रप्र०—चंद्रप्रभा और पूर्ण-प्रकाश (भारतेंदु बाबू हरिचंद्र)
- (१९) चौ० पु०—चौथी पुस्तक (पं० गणपतिलाल चौधे)
- (२०) जगत०—जगद्विनोद (पश्चाकर कवि)

(२१) जीवन०—जीवनोहेश्य (रा० सा० पं० रघुवरप्रसाद
द्विवेदी)

(२२) जीविका०—जीविका-परिपाटी (पं० श्रीलाल)

(२३) ठेठ०—ठेठ हिंदी का ठाठ (पं० अयोध्यासिंह उपा-
ध्याय)

(२४) तिलो०—तिलोत्तमा (बाबू मैथिलीशरण गुप्त)

(२५) तु० स०—तुलसी-सतसई (गो० तुलसीदास)

(२६) नागरी०—नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (काशी-ना०प्र०-
सभा)

(२७) नीति०—नीति-शतक (महाराजा प्रतापसिंह)

(२८) नील०—नीलदेवी (भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र)

(२९) निबंध०—निबंध-चंद्रिका (पं० रामनारायण चतुर्वेदी)

(३०) पद्य०—पद्य-प्रबंध (बाबू मैथिलीशरण गुप्त)

(३१) परी०—परीक्षा-गुरु (लाला श्रीनिवासदास)

(३२) प्रणयित०—प्रणयि-माधव (पं० गंगाप्रसाद अमिनहोत्री)

(३३) प्रिय०—प्रिय-प्रबास (पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय)

(३४) पीयूष०—पीयूषधारा-टीका (पं० रामेश्वर भट्ट)

(३५) प्रेम०—प्रेमसागर (पं० लल्लूजी लाल कवि)

(३६) भा० दु०—भारत-दुर्वशा (भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र)

(३७) भाषासार०—भाषासार-संग्रह (नागरी-प्रचारिणी-सभा)

(३८) भारत०—भारत-भारती (बाबू मैथिलीशरण गुप्त)

(३९) मुद्रा०—मुद्राराज्ञस (भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र)

(४०) रघु०—रघुवंश (पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी)

(४१) रत्ना०—रत्नावली (बाबू बालमुकुंद गुप्त)

(४२) रहीम०—रहिमन-शतक (रहीम कवि)

(४३) राज०—राजनीति (पं० लल्लूजीलाल कवि)

- (४४) रोम०—रामचरित-मानसं (गो० तुलसीदास)
 (४५) ल०—लक्ष्मी (लाला भगवानदीन)
 (४६) विद्या०—विद्यार्थी (पं० रामजीलाल शर्मा)
 (४७) विद्यांकुर—विद्यांकुर (राजा शिवप्रसाद)
 (४८) विचित्र०—विचित्र-विचरण (पं० जगन्नाथप्रसाद
 चतुर्वेदी)
 (४९) विभक्ति०—विभक्ति-विचार (पं० गोविंदनारायण
 मिश्र)
 (५०) वी०—वीणा (कालिकाप्रसाद दीक्षित)
 (५१) ब्रज०—ब्रजविलास (ब्रजवासी दास कवि)
 (५२) शकु०—शकुंतला (राजा लक्ष्मणसिंह)
 (५३) शिच्छा०—शिच्छा (पं० सूक्लनारायण पांडेय)
 (५४) शिव०—शिव-रामभु का चिट्ठा (बाबू बालमुकुंद गुप्त)
 (५५) श्यामा०—श्यामा-स्वप्न (ठाकुर जगन्मोहनसिंह)
 (५६) सत०—सतसई (बिहारीलाल कवि)
 (५७) सत्य०—सत्य-हरिशचंद्र (भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र)
 (५८) सद०—सदगुणी बालक (संतराम)
 (५९) सर०—सरस्वती (पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी)
 (६०) सरोजिनी०—सरोजिनी (बाबू रामकृष्ण बर्मा)
 (६१) साखी०—साखी (कबीर साहब)
 (६२) साकेत०—साकेत (मैथिलीशरण गुप्त)
 (६३) सुंदरी०—सुंदरी-तिलक (भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र)
 (६४) सूक्ति०—सूक्ति-मुक्तावली (पं० रामचरित उपाध्याय)
 (६५) सूर०—सूर-सागर (सूरदास कवि)
 (६६) स्वा०—स्वाधीनता (पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी)
 (६७) स्कंद०—स्कंदगुप्त (बाबू जयशंकरप्रसाद)

- (६८) हित०—हितकारिणी (रा० सा० पं० रघुवरप्रसाद
द्विवेदी)
- (६९) हिं० को०—हिंदी-कोविद-रत्नमाला (रा० सा० बाबू
श्यामसुंदर दास)
- (७०) हिं० प्रं०—हिंदी प्रथमाला (पं० माधवराव सप्रे)
-

भाषाओं के नामों के संकेत ।

अ०—अरबी	सं०—संस्कृत
प्रा०—प्राकृत	हिं०—हिंदी
अँ०—अँगरेजी	

अन्य संकेत

अं०—अंक	प्रेरणा०—प्रेरणार्थक
कहा०—कहावत	टी०—टीका
सू०—सूचना	उदा०—उदाहरण

हिंदीव्याकरण की सर्वमान्य पुस्तकें ।

(काल-क्रम के अनुसार)

- (१) हिन्दी-व्याकरण—पादरी आदम साहिब ।
- (२) भाषा-तत्त्वबोधिनी—पं० रामजसन ।
- (३) भाषा-चंद्रोदय—पं० श्रीलाल ।
- (४) नवीन-चंद्रोदय—बाबू नवीनचंद्र राय ।
- (५) भाषा-तत्त्व-दीपिका—पं० हरि गोपाल पाठ्ये ।
- (६) हिंदी-व्याकरण—राजा शिवप्रसाद ।

- (७) भाषा-भास्कर—पादरी एथरिंगटन साहिव ।
 (८) भाषा-प्रभाकर—ठाकुर रामचरणसिंह ।
 (९) हिंदी-व्याकरण—पं० केशवराम भट्ट ।
 (१०) बालबोध-व्याकरण—पं० माधवप्रसाद शुक्ल ।
 (११) भाषा-तत्त्व-प्रकाश—पं० विश्वेश्वरदत्त शर्मा ।
 (१२) प्रवेशिका-हिंदी-व्याकरण—पं० रामदहिन मिश्र ।
-

अँगरेजी में लिखी हुई हिंदी-व्याकरण की पुस्तकें ।

- (१) कैलाग-कृत—हिंदी-व्याकरण ।
 (२) एथरिंगटन-कृत—हिंदी-व्याकरण ।
 (३) हार्नली-कृत—पूर्वी हिंदी का व्याकरण ।
 (४) ढाठ प्रियसंन-कृत—विहारी भाषाओं का व्याकरण ।
 (५) विंकाट-कृत—हिंदी-मैनुष्ल ।
 (६) पड़विन प्रीज्ज-कृत—रामायणीय व्याकरण ।
 (७) " " —हिंदी-व्याकरण ।
 (८) रेवरेंड शोलवर्ग—हिंदी व्याकरण ।
-

~~Rec'd~~ / 6/68

CATALOGUED

**Central Archaeological Library,
NEW DELHI.**

Call No. 491.435-Haru
Recd 8791

Author—Ramte Prasad Gupte

Title—Hindi Vyakarana

Borrower No.	Date of Issue	Date of Return
Dr. R. S. P.		

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.

Please help us to keep the book
clean and moving.